हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य

A Critical Study of Modern Hindi Mahakavayas on Puranic Themes

[शोध-प्रबन्ध]

लेखक

डॉ. देवीप्रसाद गुप्त

एम ए एल-एल ,बी पी-एच डी.,

प्राध्यापक-स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,

राजकीय स्नातकोत्तर डूंगर महाविद्यालय,

बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशक

उपमा प्रकाशन, उदयपुर

प्रकाशक
उपमा प्रकाशन
बापू बाजार,
उदयपुर

लेखक
डा. देवीप्रसाद गुप्त

प्रथम संस्करण, १९७२

मूल्य : पैंतीस रुपया मात्र

मुद्रक
राजधानी प्रिन्टर्स
लालजी सांड का रास्ता,
जयपुर-३

सौम्यमूर्ति-श्रद्धेय

प्रो. कृपाशंकर जी तिवारी

को

सादर समर्पित

आमुख

महाकाव्य-जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होता है। इस दृष्टि से यदि महाकाव्य की महत्ता पर विचार किया जाय तो वह सर्वोपरि काव्य रूप सिद्ध होता है। वैसे भी शिल्पगत वैशिष्ट्य एवं जीवन दर्शन संबंधी उपलब्धियों के कारण महाकाव्य में महार्घता का समाहार अनिवार्यतः होता है। महाकाव्यों में भी पौराणिक विषयों के महाकाव्य हमारी जातीय-जीवन-चेतना के अभिन्न अंग हैं। भारतीय महाकाव्य-परम्परा के आर्ष ग्रन्थ 'रामायण' और 'महाभारत' तथा संस्कृत के श्रेष्ठ महाकाव्य-कुमारसंभव, रघुवंश, किराता-र्जुनीय, शिशुपाल वध, और नैषधचरित पौराणिक विषयों के ही हैं। हिन्दी के प्राचीन महाकाव्यों में 'रामचरितमानस' और आधुनिक युग के महाकाव्यों में 'कामायनी' जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थ पौराणिक महाकाव्य परम्परा की ही अमूल्य निधि हैं। इस प्रकार रामायण और महाभारत से लेकर अद्यावधि पौराणिक विषयों के महाकाव्यों की अक्षुण्ण परम्परा मिलती है।

इधर आधुनिकता के प्रभाव में पौराणिक कथाओं को कपोल-कल्पित गाथाएं (गप्प) कहकर उपेक्षा की जाती है। हिन्दी के आधुनिक कृतिकारों पर भी आधुनिकता (वैज्ञानिकता) का प्रभूत प्रभाव पड़ा है। किन्तु इस सबके बावजूद भी हिन्दी में पौराणिक विषयों के प्रबन्ध-काव्यों की रचना विपुल परिमाण में हुई, और हो रही है। यह अवश्य है कि इनमें महाकाव्योचित गरिमा से सम्पन्न काव्य ग्रन्थ उंगलियों पर गिन जाने लायक हैं। विज्ञान और बौद्धिकता की प्रधानता के इस युग में पौराणिक विषयों की महाकाव्य-रचना देखकर मेरा यह विश्वास दृढ हुआ कि पौराणिक आख्यानों उपाख्यानों में केवल 'गप्पें' ही नहीं वरन् उनमें हमारी सांस्कृतिक चेतना के समृद्ध स्वरूप की धरोहर भी रक्षित है। तभी तो उन्हें महाकाव्य जैसे महत काव्य रूप में इतिवृत्त विधान के लिये ग्रहण किया जाता है। मूलतः इसी विचार बिन्दु ने मुझे प्रस्तुत शोध-कार्य के लिये प्रेरित किया है। अस्तु,

पौराणिक विषयों के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का यह अध्ययन जहां एक ओर सहस्राब्दियों से विकसित होने वाली महाकाव्य-परम्परा के स्वरूप की

समृद्धि को रूपायित करता है वहाँ दूसरी ओर हमारे वर्त्तमान सामाजिक एवं जातीय जीवन की चेतना के सम्यक् आकलन का भी एक विनम्र प्रयास है। इस दृष्टि से प्रस्तुत अनुसंधान का महत्व साहित्यिक भी है और सांस्कृतिक भी। जहाँ तक इस अध्ययन की मौलिकता का प्रश्न है, मेरा निवेदन है कि हिन्दी में पौराणिक विषयों के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों की विशिष्ट परम्परा का अध्ययन-इस अन्वेषण शोध प्रबन्ध के माध्यम से प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में कुल ६ अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय 'भूमिका' रूप में है जिसमें महाकाव्य की परिभाषा, स्वरूप, रूप-विधायक तत्त्वों एवं पौराणिक महाकाव्यों की परम्परा के विकास का विवेचन करते हुए हिन्दी के अगणित प्रबन्ध काव्यों में से रूप विधायक तत्त्वों के आधार पर महाकाव्य सिद्ध होने वाले नौ ग्रन्थों का निर्धारण किया गया है। ये ग्रन्थ हैं– प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी, कुरुक्षेत्र, साकेत-सन्त, दैत्यवंश, रश्मिरथी, ऊर्मिला और एकलव्य।

द्वितीय अध्याय में उपर्युक्त महाकाव्यों की कथावस्तु का संक्षिप्त सारांश देकर, कथावस्तु के मूल पौराणिक स्रोतों एवं आधार ग्रंथों का उल्लेख किया गया है। तदनंतर प्रत्येक महाकाव्य की कथावस्तु में मार्मिक प्रसंग-सृष्टि, मौलिक प्रसंगोद्‌भावनाओं, युगीन परिवेश के प्रतिफलन एवं शास्त्रीय गुणदोषों का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय में महाकाव्यों के चरित्र-तत्त्व के अध्ययन-क्रम में सर्व प्रथम प्रत्येक महाकाव्य की सम्पूर्ण पात्र-सृष्टि को कोटियों में विभाजित किया गया है। प्रथम कोटि का शीर्षक है-'प्रमुख-पात्र' जिसके अन्तर्गत नायक-नायिका एवं दूसरे प्रमुख पात्र सम्मिलित किये गये हैं। द्वितीय कोटि में 'अन्यपात्र' शीर्षक के अन्तर्गत शेष पात्रों को समाविष्ट किया गया है। चरित्र-विश्लेषण में सर्व प्रथम नायक-नायिका के पुराण-प्रतिपादित स्वरूप का ऐतिहासिक क्रम-विकास बताते हुये उनकी चरित्रगत विशेषताओं का सोदाहरण निरूपण किया गया है। तदनंतर अन्य पात्रों के चरित्र का मूल्यांकन किया गया है। चरित्र-निरूपण में महाकाव्यकारों की मानवतावादी एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि को विशेष महत्व दिया गया है चरित्र-विश्लेषण में यह भी दर्शाया गया है कि किन अर्थों में आलोच्य महाकाव्यों के पात्र पौराणिक पात्रों से भिन्न अर्थात् नवीन और युगीन हैं। पात्रों की उन विशेषताओं को विशेष रूप से उभारा गया है जिनके कारण उनका चरित्र युग-जीवन के लिये प्रेरक और वरेण्य बना है।

चतुर्थ अध्याय मे आलोच्य महाकाव्यो की रसयोजना और शिल्प-तत्त्व का विवेचन है। शिल्प-विधायक उपकरणो मे प्रकृति-चित्रण-कौशल, नामकरण, सर्गबद्धता, भाषा-शैली, अलकार योजना और छन्द विधान आदि के सन्दर्भ से प्रत्येक महाकाव्य के शिल्प-तत्त्व का मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है। इस मूल्याकन मे आलोच्य महाकाव्यो की शिल्प-विधि का महाकाव्योचित गरिमा का दृष्टि से महत्वांकन करते हुये शिल्पगत उपलब्धियो के साथ साथ अभावो की भी विवेचना की गई है।

पचम अध्याय मे आलोच्य महाकाव्यो मे प्रतिपादित जीवन-दर्शन अर्थात् दार्शनिक, आध्यात्मिक एव सास्कृतिक मान्यताओ का विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण मे महाकाव्यकारो की जीवन-दृष्टि को प्रभावित करने वाली युगीन विचारधाराओ के प्रादान को भी स्वीकृति प्रदान की गई है। सब से अधिक बल इस बात पर दिया गया है कि आलोच्य महाकाव्यो के जीवन-दर्शन मे चिरतन मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा के आग्रह की पूर्ति किस रूप मे हुई है। साथ ही यह भी चिन्तनीय रहा है कि भारतीय सस्कृति के आधारभूत तत्त्वो एव भारतीय दर्शन की सार्वभौम मान्यताओ के प्रतिपादन मे महाकाव्यकार कहा तक सफल हुए हैं।

षष्ठ अध्याय मे महाकाव्य-तत्त्व के विकास का अनुशीलन किया गया है। पूर्वोक्त अध्यायो मे महाकाव्य-रचना के तत्त्वगत आधारो पर प्रत्यक महाकाव्य का स्वतत्र मूल्याकन किया गया था। इस अध्याय म प्रत्यक महाकाव्य तत्त्व का उसके परम्परित स्वरूप से भिन्न जो रूप आलोच्य महाकाव्यो मे समन्वित रूप मे विकसित हुआ है, उसका विवेचन किया गया है।

उपसहार मे महाकाव्य-सृजन की वर्तमान युग मे उपयोगिता एव सभावनाओ पर विचार किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन मे मैं कहा तक सफल हुआ हूँ, यह मैं नही कह सकता। किन्तु मुझे इतना सन्तोष अवश्य है कि इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से बीसवी शताब्दी के गत पाच दशको (१६१० से १६६०) मे विकसित होने वाली पौराणिक विषयो की आधुनिक हिन्दी महाकाव्य-परम्परा की उपलब्धिया और अभावो का व्यवस्थित मूल्याकन अवश्य हुआ है। मेरा विश्वास है कि इस शोध प्रबन्ध के द्वारा आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की एक विशिष्ट एव समृद्ध परम्परा के स्वतत्र मूल्याकन के अभाव की पूर्ति हो सकेगी।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध साहित्य-मनीषी स्व॰ डॉ॰ माताप्रसाद जी ग ,

पू० निदेशक–क० मु० हिन्दी तथा भाषा–विज्ञान विद्यापीठ, आगरा के निर्देशन मे लिखा गया और राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के द्वारा पी. एच. डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। डॉ० गुप्त के सुयोग्य निर्देशन एव स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन के लिए मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हू। इस अध्ययन मे जिन ग्रन्थो एव पत्र–पत्रिकाओ आदि से मुझे सहायता मिली है, उनके लेखको और सम्पादको के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हुआ अपना शोध–साधना का यह सुमन माँ भारती को अर्पित करता हूँ।

गणतन्त्र दिवस, १९७२ — देवीप्रसाद गुप्त

बीकानेर

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

भूमिका

द्वितीय अध्याय

कथा तत्त्व

तृतीय अध्याय

चरित्र-तत्त्व

चरित्र-चित्रण, समष्टि मूल्यांकन। कामायनी–प्रमुखपात्र–मनु, श्रद्धा और इड़ा और अन्य पात्रो मे किलात-आकुलि और कुमार का चरित्र-चित्रण तथा मूल्यांकन। कुरुक्षेत्र–नायकत्व की समस्या, कुरुक्षेत्र का युद्ध एक प्रतीक नायक, युधिष्ठिर और भीष्मपितामह के चरित्रो का विश्लेषण और मूल्यांकन। साकेत-सन्त–प्रमुख-पात्र भरत और माण्डवी ; अन्य पात्र–राम, सीता, कौशल्या, केकैयी आदि। दैत्यवंश–बलि, बाणासुर, स्कंद तथा उषा का चरित्र-चित्रण; चरित्र–विश्लेषण पद्धति का मूल्यांकन। रश्मिरथी–प्रमुखपात्र–कर्ण और कुन्ती, अन्य पात्र परशुराम, अर्जुन, कृष्ण आदि। ऊर्म्मिला–नायकत्व का प्रश्न–प्रमुख पात्र ऊर्मिला, लक्ष्मण, राम और सीता तथा अन्य पात्र–जनक, और सुनयना, चरित्र–चित्रण की उपलब्धियो का मूल्यांकन। एकलव्य–प्रमुख पात्र–एकलव्य तथा द्रोणाचार्य ; अन्य पात्रो मे हिरण्यधनु, एकलव्य जननी, नागदन्त और अर्जुन का चरित्र विश्लेषण।

चतुर्थ अध्याय

भूमिका-महाकाव्य मे रसयोजना का महत्त्व और अगीरस, शिल्पगत वैशिष्ट्य का स्वरूप। प्रियप्रवास–प्रकृति-चित्रण, मनोवैज्ञानिक निरूपण, रसपरिपाक और भावचित्रण, सर्ग सयोजन, भाषा शैली, अलकार-विधान और छद योजना। साकेत–प्रकृति-वर्णन, विरह वर्णन, रसपरिपाक तथा भाव-चित्रण; नामकरण, सर्ग योजना, भाषाशैली अलकार विधान छद योजना। कामायनी–प्रकृति वर्णन सौन्दर्य-चित्रण, मानवीय रूप सौन्दर्य, प्राकृतिक रूप सौन्दर्य, भाव–सौन्दर्य, मनोवैज्ञानिक निरूपण, रसपरिपाक और भाव–चित्रण, नामकरण, सर्ग सयोजन, भाषा-शैली, अलकार योजना छद-विधान, निष्कर्ष। कुरुक्षेत्र प्रकृति-चित्रण, रसपरिपाक भाषा शैली, अलकार–योजना, प्रतीक-विधान, छद विधान, नामकरण सर्गविधान। साकेत संत प्रकृति वर्णन, रसपरिपाक और भावचित्रण कौशल, भाषा-शैली, अलकार योजना, द, नामकरण सर्ग-सयोजन। दैत्यवंश–प्रकृति वर्णन, रसपारिपाक और भाव–चित्रण, नामकरण, सर्गविधान, भाषा शैली, अलकार–योजना, छंद विधान। रश्मिरथी–प्रकृति चित्रण, रसपारिपाक, नामकरण, सर्ग योजना, भाषा-शैली, अलकार-योजना. अलंकार-विधान और छंद योजना। ऊर्म्मिला–प्रकृति–चित्रण, रसपारिपाक और भाव-चित्रण

कौशल, नामकरण, सर्गयोजना, भाषा-शैली, अलंकार-योजना, छंद विधान। एकलव्य-प्रकृति-चित्रण, रसपरिपाक और भाव-चित्रण, नामकरण सर्ग-योजना, भाषाशैली, अलकार योजना, छद-विधान, शिल्पगत मूल्यांकन।

पंचम् अध्याय

भूमिका--जीवन-दर्शन के स्वरूप की व्याख्या। प्रियप्रवास-महत् उद्देश्य और सृजन-प्रेरणा, सास्कृतिक निरूपण-भारतीय-सस्कृति के आदर्श, मानवतावादी सस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा, दार्शनिक पृष्ठभूमि-ब्रह्म की परिकल्पना और कृष्ण, जीव, जगत, मोक्ष, भक्ति-साधना का विवेचन और विश्वबन्धुत्व-भाव की स्थापना, निष्कर्ष। साकेत-सृजन-प्रेरणा और उद्देश्य, सन्देश, सास्कृतिक निरूपण--समन्वयवाद, पारिवरिक जीवन, आदर्श-समाज, धार्मिकता। अन्य जीवनादर्श-नैतिक, कर्मण्यवाद नारी की महत्ता और विश्वबन्धुत्व। दार्शनिक पृष्ठभूमि-सम्प्रदायकगत विचार-भक्ति विषयक, ब्रह्म का स्वरूप और राम, जीव, जगत आदि। जीवनदर्शन पर युगीन विचारधाराओं का प्रभाव-गाधीवाद, साम्यवाद, राष्ट्रवाद, मानवतावाद। कामायनी -सृजन-प्रेरणा और सन्देश, सास्कृतिक निरूपण देव और मानव सस्कृति विशेषताएं प्राचीन भारतीय सस्कृति का कर्मकाण्डी स्वरूप, नवीन सास्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा, दार्शनिक पृष्ठभूमि-प्रत्यभिज्ञादर्शन-आत्मा, जीव, जगत और तीन पदार्थों का विवेचन; आनन्दवाद, समरसता, नियतिवाद, गाधीवाद, शून्यवाद, परमाणुवाद और मानवतावाद का विवेचन। कुरुक्षेत्र-युद्धवादी विचारदर्शन, मानवतावादी विचारदर्शन नवीन सामाजिक सरचना का सकल्प, आध्यात्मिक निष्ठाओं मे परिष्कार, मानवतावाद की प्रतिष्ठा, निष्कर्ष। साकेत सन्त-सृजन-प्रेरणा, भारतीय सस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा, प्राचीन जीवन-मूल्यो की श्रेष्ठता का प्रतिपादन पाश्चात्य भौतिकतावादी जीवनदर्शों का निषेध, भाग्यवाद, नियति, पुरुषार्थ का विवेचन, युगीन समस्याओ का निरूपण और निदान, निष्कर्ष। दैत्यवंश--सृजन-प्रेरणा-जीवनदर्शन के दो सन्दर्भ; परम्परित सन्दर्भ-अवतारवाद, भाग्यवाद, शकुन विचार, तपश्चर्या, दान, यज्ञविधान आदि। प्रगतिशील सन्दर्भ--मानवतावादी,

दृष्टिकोण या विकास । रश्मिरथी—उद्देश्य और सन्देश, आध्यात्मिक मान्यताएं—ईशविषयक धारणा और कृष्ण, नियति, भाग्य, धर्म आदि का विवेचन । चिरन्तन जीवन—मूल्यों की प्रतिष्ठा—दान, तप, सत्य, मैत्री और श्रम की महत्ता, युद्ध की समस्या और समाधान उर्मिला सृजन-प्रेरणा और उद्देश्य, आर्य संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा-सत्य, तप, यज्ञ, नारी की महत्ता, संस्कारों का महत्व, वर्णाश्रम—व्यवस्था, अर्थवाद का खंडन, आत्मवाद में आस्था और विश्वबन्धुत्व भाव । युगीन चेतना के स्वर; वादात्मक प्रभाव—गांधीवाद, रोमांसवाद, स्वच्छंदतावाद, हालावाद आदि । एकलव्य—सृजन-प्रेरणा और महत् गुरुभक्ति का अन्यतम आदर्श, पुरुषार्थ-सिद्धि, मानवतावादी जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा ।

षष्ठ अध्याय

भूमिका—महाकाव्य-तत्वों के विकास का स्वरूप और मूल्यांकन । कथातत्वविकास का स्वरूप और विशेषताएं; आख्यान तत्व का ह्रास, कथानक के प्रस्तुतीकरण एवं संयोजन—विधि की नवीनता मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं, कथाप्रसंगों की अलौकिकता का परिष्कार, कथानक की महाकाव्योचित गरिमा का प्रश्न और कथाविधान की उपलब्धियां । चरित्र तत्व—नायक संबंधी दृष्टिकोण में क्रांतिकारी परिवर्तन; नायकत्व के लिये सद्वंशीय, धीरोदात्त या पुरुषपात्र आवश्यक नहीं, चरित्र-विश्लेषण-पद्धति के परिवर्तित आधारमान—पौराणिक पात्रों का युगानुरूप चित्रण, चित्रण-पद्धति में यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक एवं मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास; महत् जीवनादर्शों से सम्पन्न चरित्रों की प्रतिष्ठा, उपेक्षित पात्रों का चरित्रोद्धार, नारी निरूपण की विशेष प्रवृत्ति, चरित्र तत्व के विकास का स्वरूप और उपलब्धियां । रसयोजना तथा शिल्प तत्व—अंतरंग पक्ष की समृद्धि—रसात्मकता, अंगीरस विषयक

: १ :

भूमिका

महाकाव्य : लक्षण, परिभाषा और विकास

महाकाव्य की परिभाषा

महाकाव्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि विभिन्न युगों में उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। महाकाव्य युगीन जीवन-चेतना को आत्मसात् करने के कारण व्यापक अर्थ में प्रगतिशील रचना है। महाकाव्य-सृजन एक सांस्कृतिक प्रयास है। जिस प्रकार 'संस्कृति' का मूल रूप अखण्डित रहते हुए भी उसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहते हैं, उसी प्रकार महाकाव्य की काव्यरूपात्मक प्रभुता के अखण्ड होते हुए भी उसकी प्रवृत्तियों और परम्पराओं में विकास क्रम निरन्तर गतिमान रहता है। महाकाव्य व्यष्टि जीवन की अभिव्यक्ति न होकर जातीय जीवन का चित्र होता है जिसमें सामाजिक-जीवन की सामयिक परिस्थितियों और विश्व-जीवन की प्रचलित प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्बन स्वतः ही हो जाता है। श्री दिनकर ने एक स्थान पर लिखा है ".............विश्व के महाकाव्य मनुष्यता के प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं। वे व्यजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहां तक प्रगति कर सका है।"[1] अस्तु, महाकाव्य को प्रगतिशील रचनाओं की भांति किसी रूढ़ परिभाषा में बांधा नहीं जा सकता। किन्तु महाकाव्य के तात्विक विवेचन एवं विकास क्रम को समझने के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता होती है। इस विश्लेषण के लिए प्रथम आवश्यकता है—परिभाषा। इसके अभाव में रचना का स्वरूप सम्बन्धी बोध नितान्त अनिश्चित प्रायः रहता है।

पाश्चात्य एवं पौर्वात्य देशों के साहित्य-शास्त्रियों ने अद्यावधि महाकाव्य की जो परिभाषाएं निश्चित की हैं, उनका आदर्श, उनके समय से पूर्व रचित महाकाव्य

---

१. रामधारीसिंह दिनकर, अर्धनारीश्वर, पृ० ४६

रहे हैं। जैसे अरस्तु के लिए 'इलियड' और 'ओडेसी' तथा भारतीय काव्याचार्यों के लिए 'महाभारत' और 'रामायण'। किन्तु प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित परिभाषाएं आधुनिक युग के महाकाव्यों पर लागू नहीं होती हैं क्योंकि शैली, रूप, प्रवृत्ति और परम्परा सभी दृष्टियों से महाकाव्य-रचना परिवर्तनोन्मुखी रही है, जिसे विकास की संज्ञा देना अधिक युक्तिसंगत होगा। इस सम्बन्ध में डा० शम्भूनाथसिंह का मत है कि—"कौन सा ग्रन्थ महाकाव्य है और कौन नहीं, अब तक के मान्य महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर इसका निर्णय करना कठिन है। इसका सबसे सुगम उपाय तो यही है कि प्रत्येक देश या समाज में जिस काव्य को परम्परा से महाकाव्य माना जाता है या वर्तमान काल के जो काव्य सामान्यतः महाकाव्य मान लिए जाते हैं उन्हें सामने रखकर महाकाव्य की परिभाषा निर्धारित की जाय"[1] किन्तु डा० सिंह ने स्वयं अपने शोध प्रबन्ध में इस दृष्टिकोण का पूर्णतः अनुपालन नहीं किया है। उन्होंने वर्तमान युग के मान्य महाकाव्यों (जैसे साकेत, कृष्णायन, पार्वती, प्रियप्रवास आदि) को महाकाव्य नहीं माना है।[2] जबकि परम्परा से जिसे सामान्य काव्य की संज्ञा प्राप्त है, उस आल्हखण्ड को उन्होंने महाकाव्य माना है।[3] वास्तव में डा० सिंह की उपर्युक्त मान्यता को महाकाव्य की कसौटी नहीं माना जा सकता। हां, एक सुझाव के रूप में ठीक है। इसके अतिरिक्त परम्परा भी किसी काव्य-ग्रन्थ को महाकाव्य की मान्यता उसके स्वरूप, आकार-प्रकार प्रवृत्ति, उद्देश्य, लोक प्रसिद्धि आदि के आधार पर देती है। अतः इस दृष्टि से भी किसी रचना को महाकाव्य की संज्ञा देने के लिए सामान्य काव्यशास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह या निर्धारण करना अनिवार्य हो जाता है। महाकाव्य की परिभाषा के निश्चय से पूर्व भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के एतद्विषयक मतों की विवेचना आवश्यक है।

भारतीय मत

संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्य भामह के 'काव्यालंकार' नामक ग्रन्थ में महाकाव्य की परिभाषा दी गयी है। उन्होंने काव्य के पांच भेद—सर्गबन्ध, अभिनेयार्थ, आख्यायिका, कथा और अनिबन्ध—बताते हुए सर्गबन्ध रचना को ही महाकाव्य कहा है। आचार्य भामह ने अपनी परिभाषा में महाकाव्य के व्यापक रूप का समाहार करने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है जिसका आकार बड़ा होना चाहिए। उसकी कथा का आधार महान् चरित्र होते हैं। अलंकारयुक्त अग्राम्य (शिष्ट) भाषा का प्रयोग होता है। उसमें राजदरबार, दूत, आक्रमण, सन्धि, युद्ध

---

१. डा० शम्भूनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४३
२ वही , पृ० ६६८
३ वही , पृ० ३६७ ६८

आदि का विस्तृत वर्णन होना चाहिए। उसमें नाटक की पाँचों सन्धियों के साथ-साथ अति व्याख्या नहीं होनी चाहिए। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चतुवर्ग-फल प्राप्ति का विधान होना चाहिए। उसमें नायक का अभ्युदय होता है किन्तु अन्य पात्रों का उत्कर्ष दिखाने के लिए नायक का वध नहीं किया जाता है।[1]

आचार्य दण्डी ने महाकाव्य का विवेचन करते समय भामह द्वारा कही गयी सभी बातों को अपनी परिभाषा में समेटा है, किन्तु कुछ परिवर्तन भी किए हैं। उन्होंने महाकाव्य के बहिरंग सम्बन्धी नियमों पर भी बल दिया है, जैसे वर्णन वैविध्य, अलङ्कृति, चमत्कार आदि।[2] दण्डी की परिभाषा का परवर्ती काव्याचार्यों

---

१ सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्य-शब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्॥
मन्त्र-दूत प्रयाणाजि नायिकाभ्युदयैश्च यत्।
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्॥
नायकं प्रागुपन्यस्य वंश-वीर्य-श्रुतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया॥
—भामह, काव्यालंकार, परि० १,१९–२२

२, सर्गबन्धो महाकाव्य-मुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया-वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहास—कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्ग-फलायत्तं चतुरोदात्त-नायकम्॥
नगरार्णव-शैलर्तु चन्द्रार्कोदय-वर्णनैः।
उद्यान—सलिल—क्रीडामधुपान—रतोत्सवैः॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदय—वर्णनैः।
मन्त्रदूत-प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैरपि॥
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभाव-निरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः, श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः॥
सर्वत्र भिन्न-वृत्तान्तैरुपेतं, लोकरञ्जनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति॥
न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति।
यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयति तद्विदः॥
—दण्डी, काव्यादर्श, परि० १,१४–२०

ने भी अनुकरण किया। उदाहरणार्थ, रुद्रट[1] और हेमचन्द्र की परिभाषाओं में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तृत विवेचन होते हुए भी कुछ बातों की पुनरावृत्ति है। रुद्रट ने महाकाव्य के विषय में महदुद्देश्य, महच्चरित, महती घटना और समग्र जीवन का रसात्मक चित्रण आदि चार प्रमुख लक्षणों का निर्देश करके अपने दृष्टिकोण की व्यापकता और मौलिकता का परिचय दिया है। हेमचन्द्र ने महाकाव्य

---

१. तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरी वर्णनं महाकाव्ये।
कुर्वीत तदनु तस्यां नायक-वंश प्रशंसा च॥
तत्र त्रिवर्गसक्तं समिद्धशक्तिं नयं च सर्वगुणम्।
रक्त-समस्त-प्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत्॥
विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राजवृत्तं च।
तस्य कदाचिदुपेतं शरदादिं वर्णयेत्समयम्॥
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादिं साधयिष्यतस्तस्य।
कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद् गुणिनम्॥
स्वचरात्तद् दूताद्वा कुतोपि वा बुध्यतोरि कार्याणि।
कुर्वीत सदसि राज्ञा क्षोभं कोपेद्धचित्तगिराम॥
सम्मन्त्र्यसमं सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसाध्यतां शत्रोः।
न दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखरम्॥
अथ नायक-प्रयाणे नागरिकाक्षोभजनपदाद्रि-नदी।
अटवी कानन सरसीमरु जलधि दीप भुवनानि॥
स्कन्धावार-निवेशं क्रीडा यूनां यथायथं तेषु।
अस्तमयं सन्ध्यां सतमसमथोदयं शशिनः॥
रजनी च तत्र यूनां समाज-संगीतपान शृंगारान्।
इति वर्णं येत्प्रसगात्कथा च भूयो निबध्नीयात्॥
प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखम मृष्यमाणमायान्तम्।
अभिदध्यात् कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वापि॥
योद्धव्य प्रतिरिति प्रबन्ध मधुपीति निशि कलत्रेभ्यः।
स्ववधं विशंकमानान्सदेशान्दापयेत्सुभटान्॥
सन्नह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरुभयोः।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यान्ते॥
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवान्तर प्रकरणानि कुर्वीत।
सन्धीनपि संश्लिष्टांस्तेषामन्योन्यसं-बन्धात्॥

—रुद्रट, काव्यालंकार, अध्याय १६.७-१९

का विवेचन करते समय प्राकृत तथा अपभ्रंश के महाकाव्यों को अपने समक्ष रखा था।[1] कविराज विश्वनाथ ने महाकाव्य की बड़ी व्यापक और स्पष्ट परिभाषा दी है। उनका समय ईसा की १४ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध था, अतः अपने 'साहित्य-दर्पण' नामक ग्रन्थ में उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्देशित समस्त लक्षणों का समाहार कर लिया है। उनकी महाकाव्य विषयक परिभाषा में निम्नांकित तथ्य द्रष्टव्य हैं—

१. कथानक की ऐतिहासिकता।
२ कथावस्तु का सर्गों में विभाजन।
३. नाटकीय संधियों का निर्वाह।
४. नायक का धीरोदात्त गुणों से युक्त एवं उच्चकुलीन होना। एक वंश के एकाधिक राजा भी नायक हो सकते हैं।
५. शृंगार, वीर और शान्त रसों में से एक की प्रमुखता एवं अन्य रसों का सहायक होना।
६ चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)।
७ सर्ग संख्या आठ से अधिक तथा सर्गांत में छन्द परिवर्तन के नियम का अनुपालन।
८. काव्यारम्भ में नमस्कार, मंगलाचरण, आशीर्वचन आदि।
९. सज्जन-स्तुति, दुर्जन-निंदा।
१०. संध्या, सूर्य, रजनी, प्रदोष, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, सागर, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, पुर, यज्ञ, यात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि का सांगोपांग वर्णन होना।
११. महाकाव्य का नामकरण कवि, कथा अथवा नायक पर आधारित होना। सर्गों का नाम कथा के आधार पर होना चाहिए।[2]

---

१. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८,९

२. सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्त-गुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा॥
शृंगार-वीर-शान्तानामेकोऽङ्गी रसः इष्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक-संधयः॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥

कविराज विश्वनाथ की उपर्युक्त परिभाषा व्यापक अवश्य है, किन्तु परिभाषा मे मौलिकता की अपेक्षा सकलन की प्रवृत्ति प्रधान है। उन्होने रुद्रट की महाकाव्य विषयक मान्यताओ को ही समसामयिक महाकाव्यों की प्रचलित रूढियो के आधार पर सुनियोजित करने का प्रयास किया है। आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा का परवर्ती महाकाव्यकारो द्वारा बहुमान हुआ। कवियो ने 'महाकवि' बनने तथा अपने काव्य को 'महाकाव्य' की सज्ञा से सम्बोधित कराने के लिए विश्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट लक्षणो का निर्वाह प्रारम्भ कर दिया। आज (बीसवीं शताब्दी) तक के महाकाव्यों मे साहित्य-दर्पणकार द्वारा दिये गये लक्षणो का निर्वाह होता है। हिन्दी महाकाव्य विषयक अधिकाश समालोचनाओं में इन लक्षणो को आधारमान के रूप मे स्वीकार भी किया गया है। किन्तु यह सर्वथा उपयुक्त नही है, क्योकि अधिकांश महत्वपूर्ण हिन्दी साहित्य के विकास का मूल स्रोत प्राकृत अपभ्रंश साहित्य था काव्य-शास्त्र के क्षेत्र मे हिन्दी के आलोचको ने सस्कृत साहित्य-शास्त्र का अनुकरण किया है। इस सम्बन्ध मे डा० शम्भूनाथसिंह का यह कथन उल्लेखनीय है कि "यह हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य रहा कि यद्यपि उसके अधिकाश मूल्यवान साहित्य का मूल स्रोत प्राय प्राकृत-अपभ्रंश का साहित्य था पर उसका साहित्य-शास्त्र प्रारम्भ से ही सस्कृत साहित्य शास्त्र का अन्धानुकरण करता रहा है। इसका यह अर्थ नही कि हिन्दी-साहित्य पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव पड़ा ही नही है बहुत अधिक पड़

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तु निर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीना सता च गुण-कीर्तनम् ॥
एक-वृत्तमयैं पद्यैं रवसानेऽन्य वृत्तकै।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ॥
नाना वृत्त मय क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया सूचन भवेत् ॥
सध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्त वासरा।
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तु वन-सागरा ॥
सभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वरा:।
रण-प्रयाणोपयममन्त्र-पुत्रोदयादय: ॥
वर्णनीया यथा योग सांगोपागा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाना नायकस्येतरस्य वा ॥
नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्ग नाम तु।
अस्मिन्नार्षे पुन: सर्गा भवन्त्याख्यान-सज्ञका ॥

—विश्वनाथ, साहित्य दर्पण परिच्छेद ६, ३१५-२५

है, पर उसका सहज विकास संस्कृत की ओर से नहीं प्राकृत-अपभ्रंश की ओर से हुआ है। अतः हिन्दी के काव्यरूपों का विवेचन प्राकृत-अपभ्रंश के आधार पर विशेष रूप से होना चाहिए, केवल संस्कृत के अलकार-शास्त्रों के आधार पर नहीं। महाकाव्य की जो परिभाषा संस्कृत के आचार्यों ने दी है वह मूलत संस्कृत के महाकाव्यों को देखकर बनायी गयी है। यह बात दूसरी है कि किसी-किसी ने प्राकृत-अपभ्रंश के महाकाव्यों की कुछ ऊपरी बातों की चर्चा कर दी है।"[1] निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये गये महाकाव्य विषयक लक्षणों का प्रमुख आधार उनके युग में प्रचलित महाकाव्य थे। संस्कृत आचार्यों की महाकाव्य सम्बन्धी परिभाषाओं से महाकाव्य के बाह्य रूप पर विशेष बल दिया गया है। यद्यपि उनके द्वारा परिभाषित लक्षणों का निर्वाह आज के महाकाव्यकार भी अपनी कृतियों में कर रहे हैं किन्तु अधिकांश उपेक्षित प्राय. हो गये हैं। उदाहरणार्थ; मगलाचरण, उच्चकुलीन नायक की परिकल्पना, सर्ग-सख्या, सर्गांत छन्द परिवर्तन आदि नियमों का अनुपालन आधुनिक युग के हिन्दी महाकाव्यों में नहीं हुआ है।

पाश्चात्य—मत

पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र मे महाकाव्य को एपिक (Epic) कहा गया है। "एपिक" शब्द "एपोस" (Epos) से बना है जिसका अर्थ है "शब्द"। कालान्तर मे "एपोस" का प्रयोग "गीत" के लिए होने लगा और यह शब्द "वीर काव्य" के लिए प्रयुक्त हुआ।

ससार के प्राय सभी देशो के साहित्य का प्रारम्भिक युग "वीर युग" रहा है। इस युग के साहित्य म वीर गाथाओं का सृजन हुआ है। इन वीर गाथाओं मे वीरो के अदम्य साहस, पराक्रम, शक्ति एव शौर्य की प्रशसा की गयी है। "वीर युग" सघर्ष और युद्ध का काल था जिसमे युद्धों का आयोजन उत्सवों की भाति होता था। इसी काल से महाकाव्य का बीज वपन प्रारम्भ होता है। इन्हीं वीर-गाथाओं का विकास वीर-स्तुतियों (प्रशस्तियों) मे हुआ। इन्हीं से शैली के अनुरूप कलात्मक और विकसनशील (Epic of Art & Epic of Growth) महाकाव्यों का विकास हुआ। महाकाव्य के स्वरूप विकास के अध्ययन से भी यही बात सही प्रतीत होती है कि वीर-काव्यों का विकास शैली के अनुरूप महाकाव्यों मे हुआ। विश्व के सभी प्रारम्भिक महाकाव्यों मे वीर-भावना का ही चित्रण मिलता है। डा० शम्भूनाथ सिंह ने यूरोपीय महाकाव्यों के विकास की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है।

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ९६

उनके अनुसार — "...... पहली अवस्था वीर भावना की; दूसरी शास्त्रीय, धार्मिक और नैतिक भावना की, तीसरी रोमांचक भावना की और चौथी स्वच्छन्दतावादी भावना की। पहली अवस्था का महाकवि होमर; दूसरी के वर्जिल, दान्ते, कैमास, मिल्टन, आदि, तीसरी के स्पेन्सर, एरिआस्टो, टैसो आदि; और चौथी के गेटे, टेनीसन, ब्राउनिंग, विक्टर ह्यूगो, हार्डी आदि।" [१] "दी बुक आव एपिक" की "भूमिका" में जो महाकाव्य की परिभाषा दी इस तथ्य को लक्ष्यगत करके दी गयी है — "एपिक प्रधान रूप से उस वीर - रस प्रधान कथात्मक काव्य का नाम है जिसमें श्रेष्ठ काव्यों के सभी गुण हों जैसे सुख दुःख और संयोग- वियोग का चित्रण तथा रीति तत्त्वों और कथा-तत्त्वों का चित्रण आदि हो, जिसमें स्वाभाविक जीवन के मनोहारी चित्र और घात-प्रतिघात वर्णित हो और जिसम सार तत्त्वों का प्रकृत समन्वय इस कुशलता से किया गया हो कि वह रचना सदा के लिऐ अमर हो जाय।" [२] अस्तु, स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्य-शास्त्रियों ने महाकाव्य का स्वरूप निर्धारण करते समय वीर काव्यों को लक्षीभूत किया था।

पाश्चात्य विद्वानों में अरस्तु ने महाकाव्य का विवेचन किया है। उनके विवेचन का आधार 'इलियड' और 'ओडेसी' नामक महाकाव्य हैं। 'पोइटिक्स' नामक ग्रन्थ में महाकाव्य का जो विवेचन किया गया है, यद्यपि उस विवेचन के आधार-ग्रन्थ 'इलियड' और 'ओडेसी' जैसे विकसनशील महाकाव्य ही प्रतीत होते हैं, किन्तु वे लक्षण किसी सीमा तक अलंकृत महाकाव्यों पर भी लागू होते हैं। अरस्तु द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों की व्यापकता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि पाश्चात्य महाकाव्यालोचकों को उनमें से अधिकांश लक्षण आज भी मान्य हैं। अरस्तु के महाकाव्य विषयक विवेचन का सारांश इस प्रकार है—

१ महाकाव्य भी काव्य की भांति किसी पूर्ण, गम्भीर और उदात्त कार्य-व्यापार की अनुकृति होती है।

२. महाकाव्य कथात्मक काव्य है जिसका कथानक ऐतिहासिक हो सकता है। महाकाव्य के कथानक में गुरु गम्भीर संयोजना होती है। कथानक में

---

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ७०

२ विदेशों के महाकाव्य, अनुवादक गोपीकृष्ण गोपेश, भूमिका पृ० १३

प्रतिप्राकृत तथा अलौकिक तत्त्वों [1] का मिश्रण तथा असम्भव बातों का वर्णन रहता है। [2] महाकाव्य का कथानक नाटक की भांति अन्वितिपूर्ण होना चाहिए यद्यपि नाटक से महाकाव्य के कथानक का आकार बडा होता है और बड़ा होना स्वाभाविक है। [3] कथानक मे आदि, मध्य और अन्त होना चाहिए।

३. महाकाव्य मे आरम्भ से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है। यह छन्द षटपदी (Hexametre) है। वीरकाव्यों मे इस छन्द का व्यवहार उपयुक्त भी है।

४. त्रासदी (Tragedy) और महाकाव्य की तुलना करते हुए पात्रों के बारे मे अरस्तु ने लिखा है कि जहां तक शब्दों के माध्यम से महान् चरित्रों और उनके कार्यों के अनुकरण का सम्बन्ध है; महाकाव्य और त्रासदी मे समानता पायी जाती है। अर्थात् पात्र महान् होने चाहिए। [४]

५. महाकाव्य में जीवन की सम्पूर्णता का चित्रण होता है। अतः महाकाव्य के कवि को अपनी सशक्त कल्पना द्वारा जीवन के विविध व्यापारों का वर्णन करना चाहिए।

---

१. "The surprising is necessary in tragedy; but the epic poem goes further and admits even the improbable and incredible from which the highest senes of surprising results". Aristotle's Poetics, part III, The Epic poem, p. 49, Edited by T.A. Moxon.

२. "The poet should prefer impossibilities which appear probable to such things, as though possible, appear improbable. Far from producing a plan made up of improbable incidents, he should, if possible, admit no one circumstance of that kind or, if he does it, it should be exterior to the action itself".

—Ibid, p. 50.

३. But the epic imitation, being narrative, admits of many such simultaneous incidents, properly related to the subject which swell the poem to a considerable size."

—Ibid., p. 48.

"Epic poetry agrees so far with tragic, as it is imitation of great characters and actions by means of words"

—Ibid., p. 13.

६. महाकाव्य की भाषा का चयन सुन्दर होना चाहिए। महाकाव्य चाहे सरल हो या जटिल किन्तु भावनाओं को साकार करने की शक्ति भाषा मे अवश्य होनी चाहिए।

७. अरस्तु की मान्यता थी कि काव्य का लक्ष्य मुख्यतः अनुकृति द्वारा आनन्द की उपलब्धि कराना है। अतः महाकाव्य का भी यही लक्ष्य होना चाहिए।

अरस्तु के अतिरिक्त महाकाव्य के सम्बन्ध मे अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भी विचार किया है। फ्रेंच विद्वान ली बस्सु (Le Bassu) के अनुसार—

"महाकाव्य प्राचीन घटनाओं का छन्दोबद्ध रूपक है।"[1]

लार्ड केम्स के अनुसार—"महाकाव्य वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में किया गया वर्णन है।"[2]

हॉब्स ने कथात्मक कविता को महाकाव्य कहा है।[3] इन सभी परिभाषाओं मे महाकाव्य के बाह्य स्वरूप पर ही अधिक विचार किया गया है।

वर्तमान काल में भी अंग्रेजी के समालोचको ने महाकाव्य का स्वरूप विवेचन किया है। सुप्रसिद्ध समालोचक बावरा ने महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—"सर्व सम्मति से महाकाव्य वह कथात्मक काव्य रूप है जिसका आकार बृहद होता है। जिसमे महत्वपूर्ण और गरिमायुक्त घटनाओं का वर्णन होता है और जिसमें कुछ चरित्रों की क्रियाशील जीवन-कथा होती है। उसके पढने के बाद हमे विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है क्योंकि उसकी घटनाए

---

१. Le Bassu defined epic as, 'a composition in verse intended to form the manners by instructions disguised under the allegories of an importent action."
—Quoted by M. Dixon, English Epic and Heroic Poetry. p. 2.

२. "As to the general taste there is a little reason to doubt that a work where heroic actions are related in an elevated style will, without further requisite, be deemed an epic poem" — Ibid., p. 18.

३. "The heroic peom narrative is called an epic said, Hobbes, the heroic poem dramatic is tragedy." —Ibid., p. 22

और पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महानता, गौरव और उपलब्धियों के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न करते हैं।"[1] इनकी परिभाषा में महाकाव्य की आन्तरिक व्याख्या बड़ी स्पष्ट हुई है किन्तु बाह्याकार के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं है। एबरक्राम्बी की महाकाव्य-विषयक परिभाषा इस प्रकार है—"बृहद आकार के कारण ही कोई काव्य महाकाव्य नही बन सकता है। महाकाव्य की शैली ही उसे महाकाव्य बना सकती है। और वह शैली कवि की कल्पना, विचारधारा तथा उसकी अभिव्यक्ति से जुड़ी रहती है। इस शैली के काव्य हमें ऐसे लोक मे पहुँचा देते हैं जहाँ कुछ भी मह त्वहीन और असारगर्भित नहीं रह जाता है। महाकाव्य के भीतर एक पुष्ट, स्पष्ट और प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो उसकी गति का आद्यांत संचालन करता है।"[2]

महाकाव्य के सम्बन्ध में प्रो० टिलीयार्ड ने भी विस्तार से विचार किया है। उनका मत है कि हमारे पास मूल्यांकन का कोई निश्चित मानदण्ड नही है कि अमुक रचना महाकाव्यात्मक प्रभाव से युक्त है या नही।[3] महाकाव्य की कुछ अनिवार्य

---

१. "An epic poem is by common consent a narrative of some length and deals with events which have a certain grandeur and importance and come from a life of action, Especially of violent action such as war. It gives a special pleasure because its events and persons enhance our belief in the worth of human achievement and in the dignity and nobility of man."
— C. M. Bowra, From Virgil to Milton, p. 1.

२. 'What epic quality, detached from epic proper do these poems possess them, apart from the mere fact that they take up great many pages ? It is a simple question of *their style–the style of their conception and the style of* their writings, the whole style of their imagination, in fact. They take us into a region in which nothing happens that is not deeply significant; a dominant, noticeable symbolic purpose presides out each poem, moulds it greatly and informs it throughout."
–Lascelles Abercrombie, The Epic pp. 41–42.

३. "We donot find any principle to guide us in deciding whether this or that work does or does not give the epic impression."
—E.M W. Tillyard, The English Epic and its Background, p. 3 (London, 1954).

विशेषताएं ही होती है जिनके आधार पर उनका निर्णय किया जा सकता है। उन्होने महाकाव्य के लिए जिन आवश्यकताओं का उल्लेख किया है, वे संक्षेप मे इस प्रकार है—

१. महाकाव्य उत्तम गुणों से युक्त गम्भीर रचना है।[1]

२. महाकाव्य व्यापक, विविधोन्मुखी और सर्वांगीण जीवन का चित्रक होना चाहिए।[2]

३. महाकाव्य की तीसरी आवश्यकता व्यापक मानवीय विश्वासों और भावनाओं का सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप चित्रण होना चाहिए।[3]

४. महाकाव्य की चौथी आवश्यकता यह है कि उसमें समसामयिक जीवन तथा जन समूह की भावनाओं तथा उद्‌गारों को अभिव्यक्ति देने की अमोघ शक्ति होनी चाहिए।[4]

---

१. "The first Epic requirement is the simple one of high quality and of high seriousness." —Ibid., p. 5.

२. "The second Epic reqnirement can be roughed out by vague words like amplitude, breadth, inclusiveness and so on........" as (Aristotle directs us to greater amplitude in the epic, that ability to deal with more sides of life, which differentiate it from tragic drama) —Ibid., p. 6.

३. "The third Epic requirement has been hinted already though what I said about fortuitous concatenations." Ibid , p. 6.

प्रो० टिलीयार्ड ने इस मन्तव्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है :

"This exercise of will and belief in it (Paradise Lost) which are a corollary of our third Epic requirement, help to associate epic poetry with the largest human movements and solidest human institutions. In creating what we call civilization the sheer human will has had a major part."

४. "The fourth Epic requirement can be called choric The Epic must express the feeling of a large group of people living in or near his own time. The notion that Epic is Pri-

५. सच्चे अर्थों मे महाकाव्य कही जाने वाली रचना मे वीर भावना की प्रभावाभिव्यक्ति होनी चाहिए।[1]

६ जहा तक महाकाव्य विषय विधान का सम्बन्ध है, महाकाव्यकार को जीवन की सर्वांगीणता का व्यापक अनुभव और विस्तृत ज्ञान होना चाहिए।[2]

इस प्रकार प्रो० टिलीयार्ड ने अपने महाकाव्य-विषयक विवेचन में महाकाव्य के बाह्य एवं आभ्यन्तरिक दोनो पक्षो पर बल दिया है। उनकी परिभाषा आज के महाकाव्यो पर भी पूर्णतः लागू होती है। आज का महाकाव्यकार प्राचीन रूढ और काव्यशास्त्रीय लक्षणो का निर्वाह आग्रह पूर्वक नहीं करता है। प्रो० टिलीयार्ड के विवेचन मे काव्य के उदात्त गुणो और सर्वांगीण जीवन के चित्रण पर विशेष बल दिया गया है जो युगानुरूप है। समष्टि–रूप से विभिन्न पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य-विषयक जो मत प्रकट किये हैं, उनका सारांश इस प्रकार है—

१ महाकाव्य वीरकाव्य (Heroic Poetry) है।

---

marily patriotic is an unduly narrowed version of this requirement......We can simplify even further and say no more that the Epic must communicate the feeling what it was like to be alive at time But that feeling must include the condition that behind the Epic author is a big multitude of men whose most serious convictions and dear habits he is mouthpiece" —Ibid, p 12.

१ "I want to insist that true Epic creates a Heroic impression." Ibid, p. 10.

२. "As to contents, the writer must seem to know everything before his mission to speak for a multitude can be satified. He must also span a corresponding width of emotions, if possible one embracing the simplest sensualities at one end and a sense of the numinous at the other But while in the large area of the life, the Epic writer must be counted in normal; he must measure the crooked by the straight, he must exemplify the sanctity that has been claimed for true genius Only of this condition will the community trust him and allow him to speak for them" —E. M W Tillyard, The Epic Strain in English Novel, p. 16.

२. महाकाव्य का कथानक लोक-विश्रुत और महत्वपूर्ण होना चाहिए ।

३ उसमे जातीय जीवन का व्यापक चित्रण होना चाहिए ।

४. महाकाव्य का नायक असाधारण प्रतिभा और व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति होता है । उसमे शौर्य, वीर्य और पराक्रम आदि गुणो का होना अनिवार्य है । अन्ततोगत्वा वह काव्य मे विजयी चित्रित किया जाता है । उसके व्यक्तित्व मे राष्ट्रीय जीवन का सास्कृतिक प्रतिनिधित्व होता है ।

५. महाकाव्य मे घटना-बाहुल्य और वर्णन-वैविध्य होता है । अत वस्तु संकलन मे शिथिलता आ जाती है । कथानक में समृद्धि तो होती है किन्तु नाटको जैसी अन्विति का अभाव होता है ।

६ महाकाव्य की भाषा ओजपूर्ण होती है । उसमें जातीय-जीवन के आदर्शों की व्यजना की पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य होनी चाहिए । शैली गरिमापूर्ण तथा एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए ।

७ महाकाव्य का रचयिता महान् प्रतिभा-सम्पन्न और मेधावी कलाकार होता है । उसमें विराट कल्पना-शक्ति और विलक्षण काव्य कौशल होना चाहिए ।

८. महाकाव्य का लक्ष्य महान् होता है, अर्थात् शाश्वत जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा । उदाहरण के लिए, असत् पर सत् की विजय । महाकाव्य सम-सामयिक जीवन की प्रेरणा का स्रोत होना चाहिए ।

पाश्चात्य और पौर्वात्य महाकाव्यादर्शों की तुलना :

यह पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक देश के साहित्याचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करते समय पूर्व प्रचलित महाकाव्यों को ही लक्ष्य ग्रन्थो के रूप में स्वीकार किया था । इसके अतिरिक्त आरम्भिक काल के सभी देशों के महाकाव्यों में भी सामान्य प्रवृत्तिया पायी जाती है, क्योंकि विश्व भर के महाकाव्यो के मूल स्रोतो की खोज मानव जाति के आदिम साहित्य के भीतर से की जाती है ।[1] यही कारण है कि महाकाव्य-विषयक पाश्चात्य और पौर्वात्य आचार्यों की आधारभूत मान्यताओ के सम्बन्ध मे विशेष अन्तर प्रतीत नही होता है । दोनो ही देशो के विचारक महाकाव्य को काव्य का महत्वपूर्ण रूप मानते हैं । दोनो ही मानते हैं कि महाकाव्य मे महान् कार्य और व्यापक विषय-वस्तु होती है । महाकाव्य की कथा

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० १

पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा लोक विश्रुत होनी चाहिए। महाकाव्य की घटनाओं और कार्यों के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टि से कोई प्रतिबन्ध नहीं, इसीलिए भारतीय महाकाव्यों की घटनाएं अनेक वर्षों की होती हैं जबकि पाश्चात्य देशो के महाकाव्यो में कार्य की अवधि कुछ दिनों की भी होती है। जैसे 'इलियड' और 'ग्राडेसी' की कथा कुछ दिनों की ही है।

महाकाव्य के नायक के सम्बन्ध में दोनों के दृष्टिकोण समान हैं। महाकाव्य का नायक उदात्त गुणों से सम्पन्न आदर्श और चरित्रवान् होना चाहिए। नायक के व्यक्तित्व में जातीय जीवन और सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतिनिधित्व की क्षमता होनी चाहिए। भारतीय महाकाव्यों में आदर्श चरित्र की धारणा के मूल में लक्ष्य की महानता अन्तर्भूत है। नायक के व्यक्तित्व मे वह शक्ति, शील और शौर्य होना चाहिए जो असत् और अमानवीय प्रवृत्तियों का शमन कर सके। नायक का कृतित्व जीवन के स्थायी मूल्यों (सत्व, शील, नय, शान्ति, व्यवस्था, आदि) का संस्थापक होना चाहिए। घोर संघर्ष के बाद भी महाकाव्य में अन्ततः नायक की विजय होनी चाहिए। पाश्चात्य देशों के महाकाव्यों मे हम नायक का चारित्रिक पतन और हनन भी पाते हैं; अतः स्पष्ट है कि नायक की चारित्रिक उच्चता पर वहा इतना बल नहीं दिया जाता है।

महाकाव्य की भाषा सशक्त और शैली गरिमापूर्ण होनी चाहिए। भाषा शैली में काव्य के प्रतिपाद्य को व्यंजित करने की शक्ति और क्षमता होनी चाहिए। वर्णनों की विविधता को दोनों ने ही माना है। छन्दविधान के सम्बन्ध मे पाश्चात्य समीक्षकों ने महाकाव्य में प्राधान्य एक ही छन्द के प्रयोग पर बल दिया है जब कि भारतीय महाकाव्यों में एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग उचित माना गया है। संस्कृत के कुछ आचार्यों ने सर्गांत में छन्द परिवर्तन का उल्लेख किया है।

अति प्राकृत तत्वों और अलौकिक शक्तियों का समावेश भी उचित माना गया है। दैवी शक्तियों और नियति के बारे मे भी सहमति है। किन्तु पाश्चात्य देशो के महाकाव्यों में जहां भूत, प्रेत, दैत्य, दानव, देवता, आदि प्रत्यक्ष पात्रों के रूप मे कथा में आये हैं, वहा भारतीय महाकाव्यों में देवता अवतार ग्रहण करके [illegible] रूप से आये हैं।

पाश्चात्य महाकाव्यों में वीर भावना पर बल दिया गया है। युद्ध की घटनाओं और संघर्षों ने ही वहां के महाकाव्यो मे प्रमुख स्थान पाया है। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों मे महाकाव्य (Epic poetry) वीर-काव्य (Heroic poetry) का पर्याय रहा है। वैसे प्रारम्भिक महाकाव्यो मे युद्ध ही सर्वत्र प्रधान तत्त्व रहा है। किन्तु भारतीय महाकाव्यों में शृंगार, वीर और शान्त तीनों में से एक रस की प्रधानता और अन्य सब रसों का वर्णन भी स्वी-

कार किया गया है। पाश्चात्य महाकाव्यो मे भौतिकतावादी संस्कृति की अनिवार्य विशेषताएं ही संघर्ष, द्वन्द्व और युद्ध की अवतारणा का मूल कारण हैं। भारतीय संस्कृति की त्याग और वैराग्य भावना ने महाकाव्यों मे शील, सत्त्व और नीति तत्त्वों को प्रमुखता दी है। इसीलिए हमारे यहा के महाकाव्यों का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात् चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति माना गया हैं। रामायण और महाभारत जसे महाकाव्यो मे युद्धो की रक्त रंजित गरिमा से विराटत्व की स्थापना हुई है किन्तु युद्ध नीति यहा नीति मे ही अन्ततः बदली है। हमारे यहा युद्ध-क्षेत्र (कुरु-क्षेत्र) भी धर्म-क्षेत्र ही रहा है। महाभारत का केन्द्र बिन्दु मारन-युद्ध न होकर गीता के 'सत्य जयते नानृत' उपदेश मे सन्निहित है। रामायण मे भी राम-रावण का संघर्ष मानव की दानवीय और दैवीय प्रवृत्तियों का संघर्ष है. और फिर संघर्ष प्रमुख नही, संघर्ष का परिणाम अर्थात् असत् पर सत् की, अनीति पर नीति की, अधर्म पर धर्म की विजय प्रमुख और महत्व-है। पूर्ण हमारे महाकाव्यो मे प्रतिपादित शाश्वत जीवन मूल्य भोग और कर्म है। कर्म, कर्त्तव्य भावना से युक्त योग और त्याग-निष्ठा से युक्त भोग, धर्माचरण मे है। यही कारण है कि भारतीय महाकाव्यो मे जीवन दर्शन का एक व्यवस्थित रूप मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य की आधारभूत मान्यताओ मे यथा—कथा-संयोजन, चरित्र-सृष्टि, वर्णन-वैविध्य, छन्द-विधान, भाषा—शैली की गरिमा, जातीय जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा, समग्र जीवन चित्रण एव उद्देश्य की महानता आदि की दृष्टि से पाश्चात्य और पौर्वात्य दृष्टियो मे समानता है। महा-काव्य के एक साहित्यालोचक डिक्सन ने महाकाव्यो की मौलिक समानताओ को देखकर ही कहा था कि — "महाकाव्य (वीरकाव्य) सर्वत्र एक ही प्रकार का होता है। वह चाहे पूर्व का हो अथवा पश्चिम का, उत्तर का हो अथवा दक्षिण का, उसका रक्त और प्रकृति समान होते हैं। सच्चा महाकाव्य कहीं भी लिखा जाय, वह एक कथात्मक काव्य होता है, उसमे महान् चरित्र और महान् कार्य होते हैं। उसकी शैली विषय की व्यापकता के अनुकूल होती है। जिसका प्रयास चरित्रो और कार्यों को आदर्श रूप मे चित्रित करके घटनाओ और वर्णनो के द्वारा कथात्मक वैभव की अभिवृद्धि करना होता है।"[1]

---

१. "Yet Heroic Poetry is one, whether of East or west, the North, or South its blood and temper are the same, and the true Epic wherever created will be a narrative poem, organic in Structure dealing with great actions and great characters, in a style commensurate with lordiness of its theme, which tends to idealize these characters and actions and to sustain embellish its subject by means of episode and amplifications." —M. Dixon, English Epic and Heroic Poetry p 24.

पाश्चात्य और भारतीय काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य-लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के बहिरंग पक्ष पर अपने विवेचन में अधिक बल दिया है। उनकी दृष्टि मे महाकाव्य में कलात्मक औदात्त अधिक महत्वपूर्ण रहा है, अन्तरंग की दृष्टि से उन्होने रस निष्पत्ति को पर्याप्त माना है। इस प्रसंग मे डा० माताप्रसाद जी गुप्त का यह कथन उचित है कि — "महाकाव्य की .... रूप रेखा को देखने से ज्ञात होगा कि हमारे यहां के साहित्य-शास्त्रियों का ध्यान विशेषतः उसके आकार–प्रकार के विषय में रहा है; उसकी अन्तरात्मा के विषय मे नहीं।"[1] तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर भी पहुंचते हैं कि महाकाव्य पर विचार करते समय आचार्यों ने पूर्ववर्ती एवं समकालीन महाकाव्यों को लक्ष्य बनाया था। यही कारण है कि प्राचीन काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों के निकष पर आज के महाकाव्य खरे नहीं उतरते और सम्भव है कि आधुनिक मान्य लक्षणों के आधार पर भविष्य के महाकाव्यों का स्वरूप–निर्णय न हो सके। महाकाव्य का स्वरूप कभी भी एकसा नही रहा है। युग, जीवन और समाज की परिस्थितियो एव परम्पराओ के अनुसार महाकाव्य की परिभाषाएं बनती और बदलती रही हैं। हिन्दी महाकाव्य के अध्ययन–अनुशीलन से पूर्व हिन्दी के विद्वानों के महाकाव्य विषयक विचार और परिभाषाओं को समझ लेना समीचीन होगा।

आधुनिक हिन्दी समीक्षकों मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महाकाव्य के स्वरूप पर विभिन्न महाकाव्यों (यथा रामचरितमानस, पद्मावत आदि) की समीक्षा करते हुए सविस्तार विचार किया है उन्होंने महाकाव्य के केवल चार तत्वों को महत्त्व दिया है —इतिवृत्त, वस्तु व्यापार–वर्णन, भाव–व्यंजना तथा संवाद। उनके अनुसार महाकाव्य का इतिवृत्त व्यापक और सुसंगठित होना चाहिए। उसमें ऐसी वस्तुओ और व्यापारों का चित्रण होना चाहिए जो हमे आन्दोलित कर दें। भाव-व्यंजना इतनी विशद, प्रांजल एवं सुष्ठु हो, जो रसानुभूति मे सहायक एवं पूर्ण समर्थ हो। संवाद रोचक, नाटकीय और औचित्यपूर्ण होने चाहिए। शुक्ल जी ने परोक्ष रूप से सन्देश की महानता एवं शैली की प्रौढता को भी महाकाव्य का प्रमुख लक्षण माना है। किन्तु शुक्ल जी द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षण अनेक नवीन महाकाव्यों पर लागू नही होते हैं।[2] शुक्ल जी ने महाकाव्य के बाह्य आकार पर इतना अधिक बल दिया है कि वैचारिक गाम्भीर्य एव भाव–सुषमा से परिपूर्ण 'कुरुक्षेत्र' और 'कामायनी' जैसे नवीन महाकाव्यों पर भी ये लक्षण लागू नही होते हैं।

---

१. तुलसीदास, पृ० ३६६, तृतीय संस्करण १६५३
२. साहित्यिक निबन्ध (सं० १९६१) पृ० ६००।

डा० श्यामसुन्दर दास ने महाकाव्य का विवेचन करते समय उसमें महत् उद्देश्य, उदात्त आशय, संस्कृति के चित्रण, आदि का उल्लेख किया है। उन्ही के शब्दो में — "........महाकाव्य मे एक महत् उद्देश्य का होना आवश्यक है। संस्कृत के साहित्य शास्त्रों मे महाकाव्य के आकार-प्रकार और वर्णन विषय के सम्बन्ध मे बडी जटिल और दुरूह व्याख्याएं की गयी हैं जिनका आधार लेकर लिखने से बहुत से महाकाव्यो के शरीर अब संघटित हो गये हैं; पर उनमें से बहुत थोडे से ऐसे हैं जो आत्मा के किसी उदात्त आशय, सभ्यता के किसी युग प्रवर्तक संघर्ष अथवा समाज की किसी उद्वेगजनक स्थिति को लेकर किसी प्रकाण्ड विचारक या कवि द्वारा लिखे गये हैं, जिन्हे जातीय इतिहास मे अनिवार्य स्थान सुलभ हो सके। 'रामायण' 'महाभारत' 'रामचरितमानस' आदि की कोटि के सच्चे महाकाव्य शताब्दियो मे दो एक लिखे जाते है।" [१] डा० श्यामसुन्दरदास जी की परिभाषा का सबसे महत्वपूर्ण अंश वह है जिसमे उन्होने महाकाव्य का विषय—आत्मा का उदात्त आशय, सभ्यता या संस्कृति के संघर्ष तथा समाज की उद्वेगजनक स्थिति की अवतारणा माना है। आज के महाकाव्यो की कसौटी का एक आवश्यक अंग उपर्युक्त विवेचन ही होना चाहिए क्योंकि युग जीवन के संघर्ष की व्यंजना ही वास्तव मे महाकाव्य का उच्चतम आशय है।

डा० गुलाबराय जी के मतानुसार—"महाकाव्य वह विषय-प्रधान काव्य है जिसमें अपेक्षाकृत बडे आकार मे जाति मे प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओ, आदर्शों और आकांक्षाओ का उद्घाटन किया जाता जाता है।" [२] बाबूजी की इस परिभाषा में जातीय जीवन के चित्रण तथा नायक के कार्यों की महानता पर बल दिया गया है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने 'साकेत' के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए महाकाव्य के लक्षणो का उल्लेख इस प्रकार किया है—"महाकाव्य के तीन प्रमुख लक्षण माने जा सकते हैं प्रथम, रचना का प्रबन्धात्मक या सर्गबद्ध होना। द्वितीय, उसकी शैली का गाम्भीर्य और तृतीय, उसमें वर्णित विषय की व्यापकता और महत्व। इनके अतिरिक्त भी अन्य उपनियम हो सकते हैं किन्तु मैं उनका समावेश इन्हीं तीन लक्षणों मे करना चाहूंगा।" [३] इस विवेचन में वाजपेयी जी ने सामान्यतः महाकाव्य के सर्वप्रमुख अन्तर्बाह्य लक्षणो का ही उल्लेख किया है।

---

१. साहित्यालोचन (१२ वां संस्करण सं० २०१४) पृ० ६४-६५
२. काव्य के रूप (चतुर्थ संस्करण) पृ० ८१
३. आधुनिक साहित्य (द्वितीय संस्करण) पृ० १०६-१०७

डा० नगेन्द्र ने 'कामायनी' के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए महाकाव्य-रचना के आधारभूत तत्वो का विवेचन इस प्रकार किया है—"मैं महाकाव्य के उन्हीं मूल तत्वो को लेकर चलूंगा जो देशकाल सापेक्ष नहीं हैं, जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नही बन सकती और जिनके सद्भाव मे परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नही किया जा सकता। ये मूल तत्व हैं—(१) उदात्त कथानक (२) उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य (३) उदात्त चरित्र (४) उदात्त भाव और उदात्त शैली अर्थात् औदात्त ही महाकाव्य का प्राण है।"[1] डा० नगेन्द्र द्वारा उल्लिखित तत्व महाकाव्य रचना के अनिवार्य और अपरिहार्य तत्व हैं। इनके अभाव मे महाकाव्य की रचना पूर्ण और सार्थक नही हो सकती। इसके अतिरिक्त डा० नगेन्द्र द्वारा निर्देशित लक्षण महाकाव्यालोचन के स्थायी मानदण्ड भी स्वीकार किये जा सकते हैं। अस्तु, इन तत्वो का महाकाव्य के सृजन और समालोचन दोनो ही दृष्टियो से महत्व है।

हिन्दी महाकाव्य के स्वरूप-विकास एव प्रवृत्तियों आदि पर शोध करने वाले कतिपय विद्वानो ने भी महाकाव्य की परिभाषाए दी हैं। डा० प्रतिपालसिंह के शब्दो मे—"महाकाव्य विषय-प्रधान रुचिर रचना है जिसमे जातीय सस्कृति के किसी महाप्रवाह, सभ्यता के उद्गम सगम, युग प्रवर्त्तक सघर्ष, महच्चरित्र के विराट उत्कर्ष, समाज की उद्वेगजनक स्थिति, आत्मा के किसी उदात्त आशय अथवा रहस्य का उद्घाटन किया जावे।"[2] डा० प्रतिपालसिंह की परिभाषा में डा० श्याम सुन्दरदास की परिभाषा की ही सामान्यत. पुनरावृति हुई है।

डा० शम्भूनाथसिंह के अनुसार— 'महाकाव्य के छन्दोबद्ध कथात्मक काव्य रूप मे जिसमे क्षिप्र कथा प्रवाह या अलकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सागोपाग और जीवन्त लम्बा कथानक होता है जो रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने मे पूर्ण समर्थ होता है, जिसमे यथार्थ, कल्पना या सम्भावना पर आधारित ऐसे चरित्रो के महत्वपूर्ण जीवन वृत्त का पूर्ण या आशिक चित्रण होता है जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी-न-किसी रूप मे प्रतिनिधित्व करते हैं, और जिसमे किसी महत्प्रेरणा से परिचालित होकर किसी महदुद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्वपूर्ण, गम्भीर अथवा आश्चर्योत्पादक और रहस्यमय घटना या घटनाओ का आश्रय लेकर सश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति विशेष और युग विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपो, पक्षों, मानसिक अवस्थाओ

---

१. डा० नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध-सम्पादक-भारतभूषण अग्रवाल, पृ० १२५

२. बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य.पृ० १६

अथवा नाना रूपात्मक कार्यो का वर्णन और उद्घाटन किया गया है और जिसकी शैली इतनी उदात्त गरिमामय होती है कि युग-युगान्तर में उस महाकाव्य को जीवित रहने की शक्ति प्रदान करती है।"[1] डा. शम्भूनाथसिंह की परिभाषा यद्यपि बहुत विस्तारपूर्ण है, किन्तु उसमे महाकाव्य के सभी तत्वो के समाहार की चेष्टा की गयी है। डा० गोविन्दराम शर्मा के अनुसार—"महाकाव्य एक ऐसी छन्दोबद्ध प्रकथनात्मक रचना होती है, जिसमे विषय की व्यापकता और नायक की महानता के साथ साथ कथावस्तु की एक सूत्रता, छलकता हुआ रसप्रवाह, वर्णन की विशदता, उदात्त भाषा-शैली, जीवन का यथासाध्य सर्वांगीण चित्रण और जातीय भावनाओ तथा संस्कृति की सुन्दर अभिव्यक्ति हो।"[2] प्रस्तुत परिभाषा मे भी महाकाव्य के तत्वो पर ही विशेष बल दिया गया है। हिन्दी महाकाव्य के एक अन्य समीक्षक डा० श्यामनन्दन किशोर ने लिखा है कि—"महाकाव्य मर्मस्पर्शी घटनाओ पर आधारित एक कवि की ऐसी छन्दोबद्ध कृति है जिसमे मानव-जीवन की किसी ज्वलन्त समस्या का व्यापक प्रतिपादन, किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति या जातीय संस्कृति के महाप्रवाह उद्‌भावन, उदात्त वर्णन शैली, व्यंजक भाषा, पूर्ण रसात्मकता और उच्चकोटि के शिल्प-विधान द्वारा किया जाता है और जिसका नायक किसी भी लिंग, जाति या वंश का होकर भी अपने गुणों से कवि के आदर्शों को मूर्तिमान करने वाला होता है।"[3]

हिन्दी महाकाव्य के शोध-कर्ताओं के अतिरिक्त हिन्दी के काव्य कर्ताओ (कवियो) ने भी हिन्दी महाकाव्य को परिभाषा निबद्ध करने का प्रयास किया है। कवि सम्राट हरिऔध जी ने पुरोहित प्रताप नारायण के 'नलनरेश' महाकाव्य की भूमिका मे लिखा है कि—'महाकाव्य की उचित परिभाषा यह हैं कि जिसमे वास्तव में महाकवित्व पाया जाय, और जिसका एक ऐसा महदुद्देश्य हो, जो देश, जाति और समाज के भावो का दर्पण हो, जिसमे ऐसे विचारो और महान् कल्पनाओ का चित्रण हो, जो किसी लोक-समूह के लिए कल्पद्रुम का काम दे सकें। हा, उसके सर्ग अथवा अध्यायो की संख्या आठ या दस से अधिक अवश्य हो. जिसमे वर्णित विषयो का उचित परिपाक ग्रन्थ मे हो सके। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि कोई पच्चीस तीस सर्ग का ग्रन्थ ही क्यों न लिखे, यदि उसमें महाकाव्यत्व नही, कवि कर्म नही तो इतना बड़ा ग्रन्थ होने पर भी वह महाकाव्य कहलाने योग्य न होगा। और, थोडे ही सर्गो का ग्रन्थ क्यो न हो, यदि उसमें व्यजना के प्रधानता है, भावुकता उसमें छलकती मिलती है, महाकवि का कर्म देखा जाता हैं, तो वह अवश्य ही महाकाव्य कहा जा सकेगा, क्योंकि ग्रन्थ का महत्व ही उसकी महत्ता का कारण हो सकता है।"

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० १०८
२. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ४३
३ आधुनिक हिन्दी महाकाव्य का शिल्प विधान प० ६०

श्री हरिऔध ने महाकाव्य में सर्ग संख्या से अधिक महत्वपूर्ण भाव-औदात्त और कवि कर्म माना है।[१]

'तारकवध' महाकाव्य की 'भूमिका' में कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है कि—"संक्षेप में, महाकाव्य मानव सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास का जीवन्त पर्वताकार दर्पण होता है, जिसमें अपने मुख को देखकर मानवता अपने को पहचानने में समर्थ होती है।"[२] पन्त जी की परिभाषा में महाकाव्य के सांस्कृतिक महत्व की ही चर्चा विशेष है। श्री रामधारीसिंह दिनकर ने महाकाव्य की रचना के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—'महाकाव्य की रचना मनुष्य को विकल करने वाली अनेक भावधाराओं के बीच सामंजस्य लाने का प्रयास है। महाकाव्य की रचना समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है। जब परम्परा से आने वाले महान् प्रश्नों और भावों की अनुभूति में परिवर्तन होने लगता है तथा इस परिवर्तित संस्कार को चित्रित करने के लिए ही महाकाव्य लिखे जाते हैं। विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं, वे व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहां तक प्रगति कर सका है।"[३] श्री तारादत्त हारीत कृत 'दमयन्ती' महाकाव्य की प्रस्तावना लिखते हुए महाकाव्य की उद्भावना के सम्बन्ध में कवि श्री गोपालदास नीरज ने लिखा है कि—"जब कवि का मानस चषक भाव के रस से इतना भर जाता है कि वह मासव उसमें से छलक छलक पड़ता है, तब गीत का जन्म होता है। लेकिन जब कवि की दृष्टि रूप से ऊपर उठकर लोकमानस की भूमि पर 'पर' से तादात्म्य करने का प्रयास करती है, तब महाकाव्य का जन्म होता है। एक में अपनी रचना का लक्ष्य व्यक्ति स्वयं होता है और दूसरी में उसका लक्ष्य समाज और संसार होता है। इसलिए जहां गीत में तीव्र संवेदनशीलता होती है वहां प्रबन्धकाव्य में एक विशद् व्यापकता के दर्शन हमें होते हैं।...... ...महाकाव्य की महान् योजना के लिए एक स्पष्ट जीवन-दर्शन, सूक्ष्म ज्ञान-दृष्टि, अनुभूतियों की एकतानता, भावना, बुद्धि और कल्पना का समीचीन सन्तुलन आवश्यक होता है।"[४] श्री नीरज जी ने उपर्युक्त विवेचन में गीतिकाव्य और महाकाव्य के तात्विक अन्तर को स्पष्ट करते हुए महाकाव्य-रचना के अनिवार्य उपकरणों पर विचार किया है। यहां स्मरणीय है कि गीति तत्व आधुनिक महाकाव्य-रचना का एक अनिवार्य अंग बन गया है। आधुनिक युग के सामान्यतः सभी महाकाव्यों में गीतों की सुन्दर योजना की गयी है। हिन्दी के इन कवियों के अतिरिक्त महाकाव्य की परिभाषा बड़े सुन्दर शब्दों में महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी दी है। वे

---

१. नलनरेश, अन्तर्दर्शन, पृ० १
२. तारकवध, प्राक्कथन, पृ० १
३. दिनकर, अर्धनारीश्वर, पृ० ४६
४. दमयती, प्रस्तावना पृ० १५७

लिखते हैं—"... मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मन्दिर निर्माण करते हैं। उस मन्दिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अन्तर्देश में रहती है और उसका शिखर मेघों को भेद कर आकाश में उठता है। उस मन्दिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देवभाव से मुग्ध और पुण्य किरणों से अभिभूत होकर नाना दिग्देशों से आ आकर लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।"[1] इस विवेचना से विदित होता है कि श्री टैगोर ने महाकाव्य के लिए विराट चरित्र-कल्पना को प्रमुख अंग माना है।

इन अनेक विद्वानों एवं सुप्रसिद्ध कवियों की इन विभिन्न परिभाषाओं को देखने से प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने-अपने मतानुसार एक या एकाधिक महाकाव्य रचना के तत्त्वों को प्रमुखता दी है। इन सभी परिभाषाओं को दृष्टिगत करके महाकाव्य की एक व्यापक परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है "महाकाव्य वह महत् काव्य रूप है, जिसमें व्यापक कथानक, विराट चरित्र कल्पना गम्भीर अभिव्यंजना शैली, विशिष्ट शिल्प विधि और मानवतावादी जीवन दृष्टि से उसका रचयिता युग जीवन के उन्नत बोध को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रतिफलित करता है। संक्षेप में श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना मानवता के मंगलमय आख्यान और लोक मानस की चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होती है।"

सच तो यह है कि महाकाव्य की कोई सार्वकालीन एवं सर्वव्यापूर्ण परिभाषा नहीं दी जा सकती है क्योंकि युग जीवन की परिस्थितियों और सामाजिक परम्पराओं के अनुसार ही महाकाव्य के स्वरूप, लक्षण, तत्त्व और मान्यताओं में परिवर्तन होता रहा है। फिर भी, उपर्युक्त परिभाषा में महाकाव्य के स्वरूप को व्यापकतम परिवेश में प्रतिष्ठित करने का एक विनम्र प्रयास अवश्य किया गया है। इस परिभाषा में प्रमुख रूप से दो दृष्टियां अपनाई गयी हैं—परम्परा और प्रगति। जब तक प्राचीन महाकाव्यदर्शों का अनुसरण करते हुए भी, हम अपने युग के महाकाव्यों की प्रवृत्तियों को दृष्टिगत करके लक्षण निर्धारित नहीं करेंगे तब तक सिद्धान्त-विवेचन की दृष्टि से पूर्ण न्याय नहीं हो सकेगा। दूसरे, इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान महाकाव्य का विकास प्राचीन महाकाव्यों की परम्परा से ही हुआ है। इसी लिए इस परिभाषा में प्राचीन और नवीन दोनों ही महाकाव्यों के आदर्शों के समन्वय का प्रयत्न किया गया है।

---

१ मेघनादवध-महाकाव्य, भूमिका पृ० १२७–२८

महाकाव्य के रूपविधायक तत्त्व :

महाकाव्य के रूप विधायक तत्वो से अभिप्राय उसके रचनात्मक उपकरणों से है। महाकाव्य की परिभाषाओ मे पाश्चात्य और पौर्वात्य तथा प्राचीन और नवीन आचार्यों ने रचना के विभिन्न उपकरणो का उल्लेख किया है। इनमे भी कौन से तत्त्व अनिवार्य है, कौन से अप्रमुख, इस सम्बन्ध मे भी पूर्ण मतैक्य नही। कुछ आचार्यों ने कथा-तत्त्व और चरित्र योजना को महत्त्व दिया तो कतिपय ने रचना-शिल्प और उद्देश्य की महत्ता स्वीकार की है। कहने का अभिप्राय यह है कि महाकाव्य की रूप-रचना का प्रश्न हिन्दी साहित्य जगत मे बडा विवादास्पद बना हुआ है। रूपविधायक तत्वो की अनिश्चितता के कारण यह कहना बडा कठिन रहा है कि कौन सी काव्यकृति महाकाव्य है; कौन सी नही। उदाहरणार्थ, डा० शम्भूनाथसिंह ने अपने शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' मे 'पृथ्वीराज रासो', 'पद्मावत', 'आल्हखण्ड', 'रामचरितमानस' और 'कामायनी' पाच ही ग्रंथो को महाकाव्य माना है। डा० गोविन्दराम शर्मा ने 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य' नामक शोध-प्रबन्ध मे इन पाचो के अतिरिक्त प्रियप्रवास', 'साकेत', 'कृष्णायन', वैदेहीवनवास' और 'साकेत सन्त' को भी महाकाव्य की सज्ञा प्रदान की है। हिन्दी महाकाव्य पर शोध करने वाले अन्य विद्वानो मे डा० प्रतिपालसिंह,[1] डा० श्यामनन्दन किशोर,[2] डा० श्यामसुन्दर व्यास[3] आदि ने 'कुरुक्षेत्र', 'रावण' 'दैत्यवंश', 'एकलव्य', 'तारक वध', 'नूरजहाँ, विक्रमादित्य', 'सिद्धार्थ', 'वर्द्धमान,' 'अगराज', 'पार्वती' शीर्षक काव्य ग्रन्थों को भी महाकाव्य स्वीकार किया है। इस प्रकार इन मान्यताओ मे मतैक्य के अभाव का कारण महाकाव्यालोचन के प्रतिमानो का अनिश्चित होना ही है। अस्तु, महाकाव्य की आलोचना और रचना दोनो ही दृष्टियों से महाकाव्य के रूपविधायक तत्वो का निश्चित किया जाना अपेक्षित है।

आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट समस्त लक्षणो का समाहार निम्नांकित चार शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है, जिन्हे महाकाव्य रचना के रूपविधायक तत्व अभिधान भी दिया जा सकता है—

१. लोक प्रख्यात कथानक
२. उदात्त चरित्र-सृष्टि
३ विशिष्ट रचना-शिल्प
४. महत् उद्देश्य और जीवन दर्शन

---

१. बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य
२ आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का शिल्प विधान
३ हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण।

१ लोक प्रख्यात कथानक

महाकाव्य-रचना का सर्वप्रमुख और अनिवार्य तत्व कथानक है। कथातत्त्व के अभाव में महाकाव्य सृजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। महाकाव्य के कथानक मे दो विशेषताए अनिवार्यत होनी चाहिए। एक तो उसकी ख्याति और दूसरी सुसगठन। इसके अतिरिक्त एक सामान्य विशेषता विषय-वस्तु का व्यापक होना भी है। कथावस्तु के प्रमुख स्रोत होते हैं—इतिहास, पुराण, समसामयिक घटना-चक्र और कवि-कल्पना। महाकाव्यो के लिए प्रथम दो स्रोत ही उपयुक्त है। समसामयिक घटना चक्र पर आधृत कथावस्तु आवश्यक नही विख्यात भी हो और कवि-कल्पना का समावेश तो प्रत्येक प्रकार की कथा वस्तु मे होता ही है।

अधिकाश महाकाव्यो की कथावस्तु का चयन इतिहास-पुराण से ही किया गया है क्योंकि इतिहास-पुराण के कथानक इतने लोक प्रख्यात है कि पाठक सहज ही हृदयगम कर लेता है। कथानक के स्रोत की दृष्टि से भी पुराणो का अन्यतम स्थान है। पुराणों मे भारतीय जीवन-चेतना और सस्कृति के अपूर्व तत्त्व विद्यमान है। पुराणों की कथाओ मे जीवन को प्रेरणा प्रदान करने वाली असख्य घटनाए भरी हुई है। यही कारण है कि हिन्दी के महाकाव्यकारों ने पुराण-ग्रन्थो को महाकाव्य-वस्तु का अक्षय भण्डार माना है। हमारे युग के अधिकाश महाकाव्यो की विषय-वस्तु का सकलन पुराणो से ही किया गया है।[1] अस्तु, पुराणो की इस दृष्टि से महत्ता स्पष्ट ही है। हिन्दी मे ही नहीं, विश्व के सुप्रसिद्ध प्राचीन महाकाव्यो मे भी पौराणिक और निजधरी आख्यानों (Myths & Legends) को ही कथानक के रूप में ग्रहण किया गया है। वास्तव मे महाकाव्यकार की कल्पना-शक्ति इतनी प्रबल और विराट होनी चाहिये कि वह पुराणो को जीर्ण-शीर्ण कथाओ को प्राणवान बना सके तथा उन्हें युग जीवन के साचे में ढालकर प्रस्तुत कर सके। पौराणिक कथाओं के पुनराख्यान का कोई सार्थक्य या महत्त्व नही, यदि वे समसामयिक जीवन चेतना को प्रभावित करने की क्षमता से शून्य हो।

---

१ प्रियप्रवास, साकेत कामायनी, वैदेही वनवास, कृष्णायन, साकेतसन्त, दैत्यवश, नलनरेश, अगराज, जय भारत, पार्वती, रश्मिरथी, एकलव्य, तारकवध, सेनापति-कर्ण, कुरुक्षेत्र, दमयन्ती, उर्वशी, सारथी, अनघ, रामराज्य, प्रिय-मिलन, कैकेयी, श्रीराम चन्द्रोदय, रामचरित चिन्तामणि, कृष्णचरितमानस आदि।

महाकाव्य-वस्तु का सुसगठित होना भी अनिवार्य है। इसके अभाव में महाकाव्य के प्रबन्धत्व मे बाधा पड़ती है। महाकाव्य वस्तु के सगठित स्वरूप के लिए आचार्यों ने सर्गों का विधान किया है। साथ ही नाटकीय सन्धियो के निर्वाह का भी उल्लेख किया है। सधियो की योजना से विषय वस्तु का विकास व्यवस्थित ढग से होता है। सन्धियो के अतिरिक्त महाकाव्य–वस्तु मे घटनाओ की अन्विति और कार्य व्यापारों की सुसम्बद्धता भी होनी चाहिए।

महाकाव्य के कथानक का व्यापक होना भी आवश्यक है। महाकाव्य में सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति होती है। यह तभी सम्भव है जब कथानक व्यापक एव पूर्ण हो। उसमे समग्र जीवन को व्यजित करने की भी क्षमता होनी चाहिए। महाकाव्य का कथानक जातीय जीवन और समूह चेतना को साकार करने की शक्ति और क्षमता को सधारण कर सके, इसी मे महाकाव्यकार के कथा-सयोजन–कौशल को देखा जा सकता है। सक्षेप मे लोकप्रसिद्ध सुसगठन और व्यापकता महाकाव्य की कथावस्तु की प्रमुख विशेषताए कही जा सकती हैं।

२. उदात्त चरित्र-सृष्टि

महाकाव्य रचना का दूसरा प्रमुख तत्त्व चरित्र सृष्टि है। किसी भी कथा मे अच्छे बुरे सभी प्रकार के पात्र होते है। महाकाव्यकार का दायित्व है कि वह असद् पात्रों पर सद्पात्रो की विजय का प्रदर्शन करे। किन्तु इस प्रदर्शन के लिए उसे असद् प्रवृत्तियों वाले पात्रो की सदैव हत्या या वध ही नहीं करवाना चाहिए वरन् सद्पात्रो के उच्च व्यावहारिक आदर्शो की प्रेरणा असद् कोटि के पात्रों को ग्रहण करानी चाहिए। इस प्रक्रिया मे पात्रो का चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक एव स्वाभाविक ढग से ही होना चाहिए। पात्रो के चरित्र–विश्लेषण में महाकाव्यकार की दृष्टि निरपेक्ष अर्थात् पूर्वाग्रह मुक्त होनी चाहिए। उसे पात्रो के कार्यों एव चारित्रिक विशेषताओ के आधार पर उनके कृतित्व एव व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना चाहिए। विशेषकर नायक के सम्बन्ध में महाकाव्य के रचयिता का दृष्टिकोण निस्पृह होना चाहिए।

महाकाव्य की मुख्य कथा (आधिकारिक वस्तु) से सम्बन्धित पात्रों मे प्रमुख पात्र नायक होता है। काव्य का कार्य-व्यापार नायक द्वारा ही प्रचालित होता है। अतः नायक के व्यक्तित्व और कृतित्व में जातीय जीवन के आदर्शों की प्रस्थापना के लिए सघर्षरत रहने की क्षमता और शक्ति होनी चाहिए। किन्तु इस कार्य के लिए आवश्यक नहीं कि वह उच्चकुलीन, सद्वशीय, धीरोदात्त और दैवीय गुणों से सम्पन्न हो। वर्तमान युग की काव्यधारा का मूल स्वर मानवतावादी जीवनादर्शों

स्वीकृति और स्थापना है। अतः मानवोचित चारित्रिक दुर्बलताएं नायक में भी हो सकती है और इनके कारण ही किसी पात्र को नायकत्व के पद से वंचित नहीं किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात नायक का प्रयास महान् होना चाहिए। कार्यों से ही महानता अर्जित की जाती है। आज के अधिकांश महाकाव्य नायिका प्रधान भी हैं, अतः पुरुष पात्र ही नायकत्व के एकाधिकारी नहीं हैं। अस्तु, महाकाव्य के नायक के लिए निम्नांकित बातें आवश्यक हैं–

(अ) मानवीय चरित्र।

(आ) स्त्री और पुरुष दोनों ही नायक पद पर समासीन हो सकते हैं।

(इ) महान् लक्ष्य की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील।

(ई) जातीय जीवनादर्शों का प्रतिष्ठाता।

समष्टि रूप मे चरित्र-विश्लेषण करते समय महाकाव्यकार की दृष्टि मानव-जीवन के समग्र मूल्याकन की ओर होनी चाहिए। मानवीय व्यक्तित्व के महान् से महान् स्वरूप की परिकल्पना नायक के चरित्र मे साकार की जानी चाहिए।

३. विशिष्ट रचना-शिल्प

यों तो प्रत्येक साहित्यिक रचना का निश्चित शिल्प होता है जिसके आधार पर उसे आकार-प्रकार प्रदान किया जाता है। किन्तु महाकाव्य सदृश सर्वोपरि काव्य रूप के शिल्प मे विशिष्टता लाने के लिए उसके रचयिता को कुछ नियमो का अनुपालन करना ही चाहिए। नियमो के अनुपालन से अभिप्राय यह है कि महाकाव्य कार को महाकाव्य के स्वरूप-विधायक उपकरणो का सयोजन विशेष विधि से करना चाहिए। रचना-शिल्प के दो पक्ष हैं-अन्तरग और बहिरग।

महाकाव्य के अन्तरग का निर्माण रसात्मकता द्वारा होता है। बहिरग के निर्माण मे भाषा, शैली, छन्द, वर्णन एव चित्रण आदि योगदान करते हैं।

बहिरंग के उपकरण

(अ) वस्तु-वर्णन–महाकाव्य मे वस्तु-वर्णन वैविध्यपूर्ण होना चाहिए। महाकाव्य में युग-जीवन का समग्र चित्र अंकित रहता है, अत. जीवन की अनेकरूपता की व्यजना विविध वर्णनो द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। प्रकृति के विविध रूपों का कलात्मक वर्णन और नाना भावो की मनोरम झाँकियो की अभिव्यक्ति ही महाकाव्यकार के वर्णन कौशल को व्यक्त करते हैं। काव्याचार्यो ने महाकाव्य मे

में वस्तु-वर्णन-व्यापारों की लम्बी सूचियों का उल्लेख इसी दृष्टि से किया है। प्रकृति और मानव का अनादि सम्बन्ध रहा है। परिस्थितियों के अनुरूप दोनों के सम्बन्धों में भी परिवर्तन का क्रम गतिमान रहा है। इसीलिए महाकाव्य मे मानव और प्रकृति के मिलन और संघर्ष तथा परिणाम और उपलब्धियो का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त विषय-वस्तु के इतिवृत्तात्मक स्थलों का रूक्षता को दूर करने के लिए भी भावपूर्ण, मनोरम एवं मार्मिक प्रकृति दृश्यों की योजना अपेक्षित होती है।

(आ) कल्पना-शक्ति—महाकाव्य के कथा-स्रोतों का उल्लेख करते हुए कहा जा चुका है कि कथानक के प्रमुख स्रोत इतिहास-पुराण हैं। महाकाव्यकार का कर्त्तव्य और कौशल इस बात में निहित है कि वह इतिहास-पुराण के पुराख्यानों और जीर्ण-शीर्ण कथा-स्रोतों को कल्पना-शक्ति के प्रयोग द्वारा दीप्तिमान करके युग, जीवन और समाज के तात्कालिक परिसन्दर्भों में प्रस्तुत करे। कथानक के अतिरिक्त चरित्र-योजना, शिल्प-विधान और उद्देश्य-सिद्धि मे भी कल्पना शक्ति का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नही होता। सत्य तो यह है कि प्रौढ़ कवि-कल्पना ही महाकाव्य को जन्म दे सकती है।

मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि—महाकाव्य-वस्तु के विशाल कलेवर मे मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा पाठक को सरसता प्रदान करती है। इनकी सृष्टि द्वारा ही महाकाव्य एक प्रभावपूर्ण रचना बनती है। महाकाव्यकार को घटनाओं के चयन में ऐसे स्थलो को महत्व देना चाहिए जो अपनी प्रभाव-क्षमता के कारण रागात्मक वृत्तियों को जाग्रत एवं उद्दीप्त कर सकें।

(ई) गरिमापूर्ण भाषा-शैली—महाकाव्य की शैली का स्वरूप अन्य काव्यरूपों की अपेक्षा विशिष्ट और गरिमापूर्ण होता है। गुण, रीति, अलंकार शब्द-शक्तियां, ध्वनि आदि शैली-विधान के उपकरण हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध शैली के बाह्यरूप से है। शैली की व्यापकता और गम्भीरता (प्रौढ़ता) उसकी अन्तरात्मा मे निहित है। काव्य-चेतना की प्रबलता का प्रमाण सरल भाषा और सामान्य अलंकृति एवं गम्भीर व्यंजना द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। शैली के माध्यम से कवि के व्यक्तित्व की भी अभिव्यक्ति होती है इस गुण को साकार करने के लिए भाषा-शैली मे यत्नसाध्य अलंकरण, जटिल शब्द-समूह और कृत्रिमता अपेक्षित नहीं वरन् थोड़े मे बहुत कहने की, सरल शब्दावलि मे गम्भीर व्यंजना की तथा चेतना-प्रभाव को व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए। महाकवियो की शैली मे यह सामर्थ्य हुआ करती है। महाकाव्य का सबसे बड़ा गुण सम्प्रेषणीयता (Communicability) तथा प्रसग-गर्भत्व होना चाहिए। महाकाव्यकार की शैली के स्वरूप का निर्माण श्रमसाध्य या प्रयत्नपूर्ण न होकर उसकी सुदीर्घ काव्य-साधना का परिणाम होता है।

अनिवार्य हैं ।

(उ) छन्द-विधान—छन्द-बद्धता महाकाव्य के लिए अनिवार्य है । संस्कृत के आचार्यों ने तो काव्यात्मक औदात्य के लिए भी छन्द-विधान अपेक्षित है । संस्कृत के आचार्यों ने तो सर्गांत में छन्द-परिवर्तन के नियम का विधान भी किया है । यद्यपि इस नियम का कोई विशेष महत्व नहीं और न ही आधुनिक महाकाव्यों में इस नियम का अनुपालन ही किया जाता है । तो भी छन्द-वैविध्य से पाठक की मनोवृत्ति का रमण तथा कवि-कौशल का परिचय अवश्य मिलता है ।

(ऊ) सर्ग योजना—प्रबन्धत्व के सफल निर्वाह के लिए सर्ग-योजना अनिवार्य है । कथावस्तु के सम्यक् संयोजन और विभाजन के लिए भी सर्ग योजना अपेक्षित है । कथानक का विभाजन हर स्थिति में आवश्यक है । यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि 'सर्ग' ही नाम दिया जाय । कथावस्तु का विभाजन समयों, काण्डों, पर्वों प्रकाशों या अन्य शीर्षकों से भी हो सकता है । सर्गों की संख्या के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित मत नहीं है । प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य में आठ की संख्या कथ । मान्यता दी है, किन्तु आज के महाकाव्यों में सर्गों की संख्या ६, ७, २५ इत्यादि भी मिलती है ।

अन्तरंग पक्ष

रसात्मकता—भारतीय साहित्यशास्त्र में रस को काव्य की आत्मा माना गया है । रस की स्थिति प्रत्येक काव्य की संज्ञा पाने वाली रचना में अनिवार्यतः होती है । महाकाव्य के विशाल कलेवर में रस का वेगवान अमित प्रवाह होना चाहिए । रसात्मकता महाकाव्य के अन्तरंग का निर्माण करती है । प्राचीन काव्याचार्यों ने महाकाव्य में वीर, शृङ्गार और शान्त रसों में से किसी एक की प्रधानता एवं अन्य रसों की सम्यक् योजना का उल्लेख किया है, किन्तु आज यह आवश्यक नहीं माना जाता । कोई भी रस प्रधान हो सकता है । वर्तमान युग में करुण-रस-प्रधान अनेक महाकाव्य मिलते हैं ।

रसानुभूति महाकाव्य के पाठक के हृदय में भावोच्चता या महद् प्रभाव की जनक होती है । मानव मात्र में मूल मनोभाव और संवेदनाएं एक सी हैं । उन भावों को उच्च और उदार बनाने के लिए, उन्हें जीवन की विस्तृत भूमिका में अवतरित कराना महाकाव्यकार की प्रतिभा का द्योतक होता है । इसके अतिरिक्त पात्रों के क्रिया-व्यापारों और घटना-प्रवाहों से अनुभूति का तादात्म्य रस की भूमिका पर ही हो सकता है । इतिवृत्तात्मक विरसता भी रस-प्रवाह से ही दूर होती है । भाव-चित्रण भी रसात्मकता द्वारा ही सम्भव है ।

४ महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन

महाकाव्य महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन से अनुप्राणित रचना होती है। भारतीय काव्याचार्यों ने महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग फलप्राप्ति अर्थात् धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा रसात्मकता माना है । किन्तु वर्तमान युग-जीवन के सन्दर्भ में मात्र इन्हें ही महाकाव्य का लक्ष्य स्वीकार नही किया जा सकता है। महत् उद्देश्य से अभिप्राय महाकाव्य सृजन के लिए रचयिता की अन्तरात्मा मे किसी महान् प्रेरणा का आविर्भाव भी है। प्रेरणा का स्रोत जीवन की कोई भी घटना, परिस्थिति अथवा वस्तु हो सकती है किन्तु कवि का कौशल उस प्रेरणा-प्रभाव को विश्व व्यापी परिप्रेक्ष्य मे रूपायित करने मे है। आज की प्रत्येक काव्य-रचना सोद्देश्य है। आज यह मान्यता बलवती है कि काव्य-रचना लेखक के लिए आत्म-तोषी या स्वांतः सुखाय न होकर जाति, समाज और विश्व-जीवन की मनः तुष्टि के लिए होनी चाहिए। डा० माता प्रसाद गुप्त का यह कथन प्रस्तुत सन्दर्भ मे उल्लेखनीय है कि—"मानवता को अशक्ति से शक्ति, अशान्ति से शान्ति और नीचे से ऊंचे ले जाना ही.........वस्तुत. महाकाव्य के अन्य लक्षणों की अपेक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण माना जा सकता है । इसी मे उसकी वास्तविक महानता होनी चाहिए।"[1] अस्तु !

महाकाव्य के उद्देश्य की महानता और उसकी सिद्धि के लिए आवश्यक है कि महाकाव्य कही जाने वाली प्रत्येक रचना में—

(अ) मानवतावादी जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा हो;
(ब) युगीन जीवनादर्शों की स्थापना हो,
(स) रचना का सांस्कृतिक उन्नयन मे योगदान हो,
(द) उन्नत विचार-दर्शन (जीवन-दर्शन) हो,
(य) सजीवनी शक्ति प्रदान करने की क्षमता हो।

(अ) मानवतावादी जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा—प्रत्येक युग और काल के काव्य-सृजन का सार्थक्य मानवता के मगल विधान मे निहित है। मानव-जीवन के चिरतन मूल्यों और शाश्वत सत्यों की व्यजना महाकाव्य-रचना की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। विश्व भर के महाकाव्यो में सदैव से ही किसी न किसी रूप मे मानवता-वादी जीवन-दृष्टि की प्रस्थापना का आग्रह रहा है। मानव-जीवन के स्थायी मूल्य प्रेम, करुणा, क्षमा, शील, श्रद्धा, सत्त्व, नय सत्य, अहिंसा आदि रहे हैं। इन्हें आध्यात्मिकता की सकुचित सीमा मे नहीं बाधा जा सकता है। मानव-जीवन के

---

१. तुलसीदास, तृतीय सस्करण, पृ० २७०

वैविध्य को चित्रित करते समय भी इन मूल्यों की प्रतिष्ठा महाकाव्यकार का लक्ष्य होना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति; जीवन के विराट संघर्ष मे इन मूल्यो को भूल ही नहीं जाता वरन् परिस्थिति-द्वन्द्व मे इनकी उपेक्षा भी करता है। इनकी उपेक्षा का परिणाम मानव जाति और समाज की अवनति और अन्तत. विनाश होता हैं। महाकाव्यकार का दृष्टिकोण इन जीवन-मूल्यो की सत्ता सिद्ध करना है। तभी महाकाव्य विश्व-जनीन और सार्वभौम हो सकते है। मानव मात्र की धरोहर बनने के लिए महाकाव्यों को जाति, समाज और राष्ट्र की सीमाओ का भी अतिक्रमण करना पडता है अर्थात् मानवतावाद की प्रतिष्ठा के लिए जातीय हितों की बलि भी देनी पड़ती है।

(ब) **युगीन जीवनादर्शों की स्थापना**—महाकाव्य युगो की देन होते है। उनमे कवियो की साधना, जातीय जीवन की विशेषताएं और मानवता की भी प्रगति व्यंजित होती है। प्रत्येक युग मे जीवन के आदर्श स्थापित होने हैं। कभी वीरपूजा का युग होता है तो कभी भक्ति-साधना जीवन का सर्वस्व बनती है। कभी राष्ट्र सेवा, परमार्थ, समाज-कल्याण, प्रेममय-जीवन, समानता और सद्व्यवहार जीवन के आदर्श स्वीकृत किये जाते हैं। महाकाव्यो मे इन जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। इनके साथ ही कुछ शाश्वत सत्य एव चिरन्तन मूल्य होते हैं जो प्रत्येक युग मे मानव-जीवन को परिचालित करते हैं। अतः महाकाव्यकार को चिरन्तन जीवन-मूल्यो के परिपार्श्व मे ही युगीन जीवनादशो की प्रतिष्ठा करने चाहिए। हमारे युग की प्रगति अतीत के प्रयत्नो का परिणाम तथा अनागत के प्रति आस्था का प्रतीक होनी चाहिए। महाकाव्य को विश्व वाङ्मय की अमूल्य निधि हम तभी कह सकते हैं जब उनमे जातीय ही नही वरन् विश्व-जीवन के आदर्शों को साकार करने की क्षमता हो। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों मे इस प्रवृत्ति का समुचित विकास हुआ है।

(स) **सांस्कृतिक उन्नयन में योगदान**—'विज्ञान युग मे काव्य-लेखन एक सांस्कृतिक प्रयास है।' इस कथन की सत्यता महाकाव्यवत् काव्य रूप की रचना द्वारा ही सिद्ध होती है। महाकाव्यों मे जाति, समाज, राष्ट्र और विश्व के सांस्कृतिक उत्कर्ष-अपकर्ष की एक विराट् भूमिका उपस्थित की जाती है। महाकाव्य एक सीमा तक देश का सांस्कृतिक इतिहास भी प्रस्तुत करते हैं। क्योंकि महाकाव्यों में समग्र जीवन का चित्रण करते समय समाज व्यवस्था का निरूपण, सभ्यता के विकास का वर्णन, राष्ट्रीय मर्यादाओ का स्वरूपाकन तथा पर्वो और परम्पराओं का आख्यान एक प्रकार से देश की सांस्कृतिक धरोहर ही हैं। महाकाव्य के पात्रो के संस्कार जातीय एवं राष्ट्रीय आचरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। अस्तु, स्पष्ट है कि महाकाव्य की रचना द्वारा जातीय एव देशीय जीवन के सांस्कृतिक उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

(द) उन्नत विचार-दर्शन—विचार-दर्शन से अभिप्राय जीवन-दर्शन है। जीवन-दर्शन का सम्बन्ध कवि के उस दृष्टिकोण से है जिसके आधार पर वह जीवनगत प्रश्नो और समस्याओ पर विचार करता है। जीवन-दर्शन का निर्माण करने वाले तत्त्व है अनुभव, चिन्तन और साधना। महाकाव्य में जिस जीवन-दर्शन की प्रस्थापना होती है वह मूलतः कवि की वैयक्तिक अनुभूति, चिन्तन और साधना की सामाजिक परिणति है। महाकाव्यकार को 'समय के परस्पर विरोधी प्रश्नो का समाधान' प्रस्तुत करने के लिए जीवन-दृष्टि निर्धारित करनी ही पड़ती है। इस जीवन-दृष्टि को ही जीवन-दर्शन अभिधान दिया गया है। इस दृष्टि के दो रूप हैं—एक परम्परागत और दूसरा प्रगतिशील। महाकाव्य मे दोनो ही अपेक्षित है।

परम्परागत जीवन-दृष्टि का आधार लेकर महाकाव्यकार कृति मे दार्शनिक प्रवृत्तियो और मान्यताओ के परम्परागत स्वरूप को प्रस्तुत करता है जैसे ईश्वर, माया, जीव, मोक्ष, नियति, काल, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, धर्म आदि।

प्रगतिशील जीवन-दृष्टि का आधार ग्रहण कर वह परम्परागत दार्शनिक मान्यताओ की युग सापेक्ष व्याख्या और युगधर्म का निरूपण सामयिक सन्दर्भों मे प्रस्तुत करता है। जैसे समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्वभाव, कर्तव्यपरायणता, परमार्थ, आस्था, विश्वास, सहयोग, मानव के मगल हेतु साधना के महत्व का निरूपण आदि।

आज के युग (विज्ञान युग) की काव्य-रचना मे बुद्धि तत्व की प्रधानता होती है। आज का काव्यकार मात्र भावप्रवण प्राणी न होकर बुद्धिजीवी कलाकार होता है। उसका लक्ष्य रसानुभूति ही नही वरन् वैचारिक उपलब्धि भी है। अस्तु, महाकाव्य में इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक उन्नत विचारदर्शन की आयोजना होती है।

(ध) सजीवनी शक्ति प्रदान करने की क्षमता—महाकाव्य की रचना का कोई महत्व नही यदि उसमे जीवन को अदम्य उत्साह और आशाप्रद सन्देश प्रसारण की सजीवनी शक्ति न हो। जीवन की परिस्थिति, द्वन्द्व, सामाजिक परिवर्तनो, राष्ट्रीय जीवन के सम विषम प्रभावो एव विश्व जीवन की विभिन्न प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करने की सामर्थ्य महाकाव्य मे होनी चाहिए। महाकाव्यो मे जिस शक्ति, स्फूर्ति उत्साह और प्रेरणा को हम पाते हैं वह तत्वत व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधि रूप है। इसीलिए महाकाव्य व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर राष्ट्रीय धरोहर और विश्वनिधि होते हैं। तुलसी का 'रामचरितमानस' स्वात:सुखाय होते हुए भी जातीय गौरव और राष्ट्रीय गरिमा का काव्य है। उसमे वह सजीवनी शक्ति है जिसके कारण शताब्दियो से वह महाकाव्य भारतीय जनता का

हिन्दी के साहित्य सृष्टाओं ने प्रारम्भ से ही इस अमूल्य ज्ञान सामग्री का समुचित प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं (यथा कहानी, उपन्यास नाटक, एकाकी काव्य आदि) में पुराणों के कथानकों विचार-परम्पराओं और शैलियों का प्रयोग हुआ है। काव्य के विभिन्न रूपों में महाकाव्य का प्रमुख स्थान है। गुरुत्व और गाम्भीर्य की दृष्टि से तो शीर्ष। महाकाव्य में युग जीवन की चेतना का विराट चित्र और उच्च उद्घोष होता है। महाकाव्यकार महती काव्य प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार होता है। उसके शब्दनाद में समाज के सांस्कृतिक सृजन और समुन्नयन के गीत की स्वर लहरी होती है वह काव्य का महान् प्रणेता होता है। उसकी रचना महा की संज्ञा से सम्बोधित की जाती है। प्रस्तुत प्रसंग में इस काव्य रूप (महाकाव्य) के सृजन में पौराणिक इतिवृत्त के अनुदान पर विचार अभीप्सित है।

हम इस तथ्य का लक्ष्यीभूत करके चल रहे हैं कि महाकाव्य का विनायक अपने काव्य की सामग्री का सकलन ज्ञानराशि के अथाह सागर की जीवन्त और चेतना स्पंदित ऊर्मियों से करता है। महाकाव्य प्रबन्धकाव्य का वह भेद है जिस में अनिवार्यत कथाक्रम होता है। कथानक महाकाव्य का अपरिहार्य अंग या प्रमुख उपकरण है। महाकाव्यों के कथानकों की प्राप्ति के अक्षय भण्डार पुराण ग्रन्थ रहे हैं। हिन्दी ही नहीं अपितु भारतीय और विश्व महाकाव्य का इस दृष्टि से अध्ययन करने पर यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि उनका बृहद् अंश पौराणिक कथानक और निजरी आख्यानों (Myths & Legends) पर अवलम्बित है सभी साहित्यों के आदि और प्राचीन महाकाव्यों पर तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। यदि हम अपने अध्ययन क्रम की परिधि समिति करके भी विचार करें अर्थात् सस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के महाकाव्यों का ही कथानक की दृष्टि से पर्यालोचन करें तो भी हमे पौराणिक प्रभाव स्वीकार करना पड़ेगा। इसका एक कारण यह भी है कि पुराणों की कथाएं महाकाव्य वस्तु के लिए निर्दिष्ट सभी गुणों से सम्पन्न है। सस्कृत काव्याचार्यों द्वारा दिये गए महाकाव्य वस्तु विषयक सभी निर्देशों का इन पर सफल निर्वाह भी हो जाता है।

हिन्दी के महाकाव्यकारों ने पुराणों के अखण्ड कथा भण्डार से सामग्री का सकलन किया हैं। पौराणिक कथा वस्तु से सपृक्त महाकाव्यों में कतिपय के नाम इस प्रकार है—रामचरितमानस रामचन्द्रिका, रामचरित चिन्तामणि, प्रियप्रवास साकेत, कामायनी वैदेहीवनवास कृष्णायन साकेत सत दैत्यवंश, रावण, पार्वती, रश्मिरथी, एकलव्य, कुरुक्षेत्र, अंगराज, उर्मिला, तारक वध, सेनापति कर्ण, नल नरेश, उर्वशी आदि।

इन महाकाव्यों मे पौराणिक वस्तु को कही तो मूल रूप मे, कही स्रोत रूप में, और कही तन्तु रूप मे ग्रहण किया गया है। पौराणिक कथाओं की कुछ काव्यात्मक विशेषताएं भी हैं। उदाहरण के लिए अर्थ-वैभिन्य, अर्थ-वचित्रय आदि। पौराणिक कथाओं का साहित्यिक परीक्षण करने पर हमे इन कथाओं के आध्यात्मिक भौतिक और ऐतिहासिक अर्थों के अतिरिक्त साकेतिक. प्रतीक, परम्परित और लोक विश्वव अर्थ भी मिलते हैं। पौराणिक कथाओं को प्राय: कपोल कल्पित, असगत और अतिरंजित कहकर तिरस्कृत किया जाता है किन्तु यह अल्पज्ञता का प्रमाण है। पौराणिक कथाओं के गम्भीर अध्ययन से उनके तात्विक अर्थ प्राप्त हुए है जो ज्ञानार्जन और साहित्य सृजन दोनो दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। प० रामप्रसाद त्रिपाठी ने वायु पुराण की भूमिका मे बताया है कि"........वायु पुराण के अन्तर्गत नहुष, ययाति तुर्वश, आदि राजाओं के वर्णन दोनो पक्ष मे अपना रहस्यपूर्ण स्थान रखते है। जब हम इन कथाओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हुए वैदिक वर्णनो से तुलना करते है तो हमे यह राजा के बजाय आकाशीय पदार्थ ही जान पडते हैं। वायु पुराण में नहुष के लडके का नाम ययाति था। उसकी रानी शक्र की कन्या थी। दूसरी रानी का नाम वृषपर्वा था वैदिक आख्यान से संगति मिलाते हुए जब हम पौराणिक आख्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण करते है तो ययाति, शक्र की कथा और वृषपर्व भी आकाशीय पदार्थ ही सिद्ध होते हैं।"[1] इसके अतिरिक्त पौराणिक कथाओं के सूक्ष्म अध्ययन पर इन कथाओं मे हम सत्य और कल्पना, यथार्थ और आदर्श आदि साहित्यक कथा-तत्व भी पाते हैं कथाओं मे प्राकृत, और अप्राकृतचक्र तथा कार्य व्यापार सभी सप्रयोजन है। उदाहरण के लिए श्री त्रिपाठी ने समुद्रमथन की कथा का विश्लेषण करते हुए बताया है कि"........ रूपी महासागर से ही निकले है। किसी उत्तम वस्तु की प्राप्ति मे या आविष्कार मे शक्ति (असुर) और ज्ञान (सुर या सत्व) और रज या तम (असुर) के परस्पर सहयोग की आवश्यकता होती है। परन्तु उपयोग के समय सत्व और ज्ञान की ही आवश्यकता है अन्यथा आसुरी शक्ति प्रबल होकर विश्व सहार कर देगी।"[2]

हिन्दी के महाकाव्य लेखकों ने पुराणों से वस्तु ग्रहण करके उसमे युगीन परिस्थितियो, समसामयिक वातावरण और तत्कालीन जीवनादर्शों के अनुरूप परिवर्तन तथा परिवर्द्धन किया है। राम के ही कथानक को लीजिए—रामचरित-मानस, रामचन्द्रिका, साकेतसन्त, वैदेहीवनवास, रावण, उर्मिला आदि काव्यों मे एक ही कथा मे तात्विक भिन्नता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो मानस के आरम्भ मे ही स्पष्टतः कहा है "नाना पुराण निगमागम सम्मत————"यही स्थिति

१. पं० रामप्रसाद त्रिपाठी—वायुपुराण, भूमिका, पृ० ६
२ वही, पृष्ठ १६

कृष्ण कथा के विकास के सम्बन्ध मे है। प्रियप्रवासकार के राधा-कृष्ण मूलरूप में पुराण गाह्य होते हुए भी समस्त पौराणिक कृष्ण कथाओं से भिन्न कवि की जीवन्त कल्पना शक्ति के ज्वन्त (ज्वलत) प्रमाण हैं। अकेले कर्ण के चरित्र को लेकर आधुनिक युग के तीन काव्यों (रश्मिरथी, अगराज, सेनापति कर्ण) मे कथातत्त्व का भिन्नस्वरूप है। किन्तु 'महाभारत' के मूल कथानक को किसी भी कवि ने खर्व नहीं किया है। वास्तव मे इसी मे कवि कर्म और कौशल निहित है।

सत्य तो यह है कि हिन्दी के महाकाव्य-लेखको ने पौराणिक कथानकों के जीर्ण-शीर्ण ढाचो मे अपनी काव्य शक्ति से प्राणदान दिया है। उन कथानको के अलौकिक और अतिरजित तत्त्वों का परिष्कार युग की आवश्यकताओं और परिस्थितियो के परिपार्श्व मे किया है। यहा एक बात और कहनी है कि हमारे कवियो की दृष्टि प्राय: प्रचलित कथानको पर ही अधिक अटकी रही है। राम-सीता और राधा-कृष्ण आदि दैवी कथानको पर अत्यधिक लिखा जा चुका है। अभी पुराणो मे असख्य अमूल्य कथा-रत्न वर्तमान है जिनमे वर्तमान जीवन सघर्ष के लिए निश्चित निर्देशो का अनुसधान किया जा सकता है। इस दिशा मे कविवर दिनकर के प्रयास प्रशसनीय हैं। उनकी काव्यकृतियो मे रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, उर्वशी आदि उपलब्धिया निश्चय ही हिन्दी की चिरन्तन निधि बन गयी है। उनमे गूढ जीवन सन्देश वर्तमान की सास्कृतिक परिस्थिति के अनुकूल है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे मनस्वी साहित्य सृष्टा और महाकाव्यकार पौराणिक कथाओ का अनुशीलन कर हिन्दी काव्य को नवीन उपलब्धिया प्रदान करायें। डा० देवराज के शब्दो मे— "काव्य सृजन एक सास्कृतिक प्रश्न है।" इस कथन की सत्यता का स्वरूप महाकाव्यो मे ही देखा जा सकता है। महाकाव्य के रचयिता से सास्कृतिक अभ्युत्थान की माग की जा सकती है। मेरी दृष्टि मे पुराण भारतीय-सास्कृतिक-वाड्मय के अग हैं। उनके कथात्मक, वैचारिक और शिल्प सम्बन्धी विकास से हम हिन्दी महाकाव्य को सास्कृतिक साहित्य शृखला मे जोडने का प्रयास मानेंगे।

स्वरूप विकास :

हिन्दी महाकाव्य के उद्भव और विकास की आख्यायिका का सम्बन्ध भारतीय महाकाव्य-परम्परा से है। भारतीय महाकाव्य का स्वरूप-विकास विभिन्न युगों की साधना और सर्जनी शक्ति का परिणाम है। यद्यपि भारतीय महाकाव्य का प्राचीनतम लिखित रूप हमे रामायण और महाभारत में मिलता है; तथापि उस रूप के निमित होने में उससे पूर्व भी कुछ समय लगा होगा। वास्तव में महाकाव्यो का उदय मानव-सभ्यता की अल्प या अर्द्ध-विकसित अवस्था मे हुआ है। इसलिए

महाकाव्य के स्वरूप विकास का सम्यक् अध्ययनत करने के लिए मानव सभ्यता के विकसनशील युगो के ऐतिहासिक सन्दभ ग्रहण करना नितान्त अनिवार्य है। मनुष्य ने जब बबरता की अवस्था को पार करके सगठित रूप मे रहना सीखा (रक्षा की दृष्टि से, अन्य कारणो से) तो सवप्रथम कबीले बने। इन कबीलो का आधार जातिया थीं। इन कबीलो के सभी कार्य सामूहिक ढग से हुआ करते थे। इन कबीला समाजो की धार्मिक चेतना विभिन्न अवसरो पर नृत्यो और गीतो क रूप मे अभिव्यक्त हुआ करती थी। आज भी पिछड़ी हुई जातियो मे नृत्यगीत और गीतनृत्य की प्राचीन परम्पराए प्रचलित हैं। इन्ही नृत्यगीतो मे आदिम काव्य के रूप का सधान किया जा सकता है। कबीला युग की अपनी विशेषताए थी जैसे इस युग में वीरों की पूजा होती थी क्योकि शौर्य, साहस और पराक्रम ही तत्कालीन जीवनादश थे। यह कबीली समाज शक्ति पूजक था। शक्तिशाली व्यक्ति ही इस कबीला जनसमाज के नायक होते थे। साहित्येतिहासो मे इसे वीर युग (Heroic Age) अभिधान दिया गया है। इस प्रकार का युग ससार के प्राय सभी देशो के इतिहास मे मिलता है। प्रत्येक देश के आदिम काव्यो में वीरभावनाओ का ही उत्कष दिखाई भी देता है। प्रारम्भिक महाकाव्यो की रचना का आधार भी वीरगाथाए ही हैं। कालान्तर से इन गाथाओ ने गाथा चक्रो (Cycles of Ballads) का रूप ग्रहण किया, जिनसे महाकाव्य का प्रारम्भिक रूप निर्मित हुआ।

वीरगाथाओं मे वीरों की प्रशसा के गीत हुआ करते थे। विद्वानो का मत है कि प्राचीनकाल से ही भारतवष मे वीरो की स्तुतिया प्रचलित थी। ऋग्वेदादि ग्रन्थो मे भी इन्द्र एव अन्य शक्तिशाली देवो (वीरो) के कार्यो की प्रशसा के गीत पाये जाते हैं जिनमे भारतीय महाकाव्य के मूल प्रतिपाद्य विषय की झलक देखी जा सकती है।[1] और यह सच है कि बहुत प्राचीनकाल से ही इस देश म महकाव्यो की रचना हुआ करती थी। मैक्समूलर का मत है कि वीरो और देवताओ की प्रशसा मे गाये जाने वाले गीत भारत और अन्य प्राय राष्ट्रों मे बहुत प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध थ। इसलिए महाकाव्य क रूपानुसन्धान के लिए वीरगीतो की खोज रामायण और महाभारत मे ही नही अपितु वेदो मे करनी चाहिए। अनेक वैदिक गीतों को महा

---

1 "Songs in celebrations of great heroes were current in India from very oldest time The deeds of Indra and other Gods and heroes were narrated and lauded in Rigveda in which we may trace the fore shadowings of Indian Epic poetry' -Kokileshwar shastri A Brief History of Sanskrit Literature, (Veidc and Classical), p 22

काव्य कहा जा सकता है[1] प्राचीनतम लिखित वाङ्मय का रूप आज वैदिक ज्ञानराशि के रूप मे उपलब्ध है और वेदो मे महाकाव्य के प्रारम्भिक मूल रूप की उपलब्धि उसकी प्राचीनता की ही द्योतक है। भारतीय महाकाव्य की प्राचीनता का द्योतक वेद के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ हो भी कौन सकता है ? मानव जाति ने अपनी आदि अवस्था मे काव्य-रचना किस प्रकार की, इसका लिखित प्रमाण आज उपलब्ध भी नही है। किन्तु जैसा प्रारम्भ मे कहा गया है कि आज भी अविकसित (अर्द्ध-सभ्य या असभ्य) जातियो की रीतियो और परम्पराओ के अध्ययन द्वारा तत्कालीन समाज की मनोवृत्तियो के बारे मे अनुमानाधारित तथ्यो को जाना जा सकता है, और इसी क्रम से वैज्ञानिक अध्ययन भी। आदिवासी जातियो की विभिन्न परम्पराओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज मे अन्धविश्वास बहुत होगे। मनुष्य प्राकृतिक शक्तियो से भयभीत होकर उनकी उपासना करता होगा। इस उपासना मे बलिदान की प्रथा मुख्य रही होगी। बलिदान के अवसर पर कबीलो के लोग एकत्रित होकर गीत गाकर और नृत्य करके अपने मनोभावो को अभिव्यक्ति देते होगे। जादू, मन्त्र तन्त्र और टोने मे इन लोगो का अधिक विश्वास रहा होगा। इस प्रकार मानव जाति के आदिम समाज के हर्ष उल्लास, आमोद-प्रमोद की भावाभिव्यक्ति सामूहिक रूप मे नृत्य और गीत के रूप मे होती थी। डा॰ शम्भूनाथसिंह ने महाकाव्य के विकास की प्रारम्भिक सामूहिक गीतो से लेकर अलकृत महाकाव्य तक छ स्थितिया बतलायी हैं। वे इस प्रकार है—

(१) सामहिक गीत नृत्य (Coral Music and Dance)
(२) आख्यान नृत्य गीत (Ballad Dance)
(३) आख्यान और गाथा (Lays and Ballad)
(४) गाथा चक्र (Cycles of Ballads)

---

१ 'This is not meant denial that the real epic poetry that is to say a mass of popular songs celebrating the power of exploits of Gods and heroes, existed in very early periods in India, as well as among the other Aryan nations, but it shows that if it is existing, it is not in the Mahabharata and Ramayana, we have to look for these old songs but rather in veda itself In the collection of the vedic hymns there are some which may be called epic and may be compared with the shortest hymns ascribed to Homer' -Max Muller, A History of Ancient Sanskrit Literature, P 19

(५) प्रारम्भिक महाकाव्य (Epic of Growth)
(६) अलङ्कृत महाकाव्य (Epic of Art) ?

वैदिक साहित्य म धार्मिक मन्त्रो के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उपलब्ध हैं, जिनमे आख्यान का स्वरूप निहित है। इन्हे 'आख्यान सूक्त' भी कहा जाता है। इन सूक्तो का रूप सवादात्मक और नाटकीय है। ऋग्वेद मे 'इन्द्र-सूक्त' के अन्तर्गत जो वर्णन मिलता है उसमे महाकाव्य के प्रारम्भिक लक्षण स्पष्ट रूप से मिल जाते हैं। ऐसे सवाद और आख्यान जब किसी प्रतिभाशाली कवि द्वारा एक साथ सग्रहीत कर दिये गये तो महाकाव्य को जन्म मिल गया। आगे चलकर महाभारत मे सवाद के भीतर सवाद की जो शैली दिखायी देती है वह सम्भवत इन्ही वैदिक आख्यानो की प्रेरणा से विकसित हुई होगी।[२] इसके अतिरिक्त वेदो मे कुछ ऐसी प्रशसाए भी मिलती है जिन्हे दानस्तुति, गाथा नाराशसी और कुन्तापसूक्त कहा जाता है, इन प्रशसाओ मे राजाओ की वीरता का वर्णन है। विन्टरनित्स आदि विद्वानो का मत है कि इन प्रशसात्मक सूक्तो से ही महाकाव्य के रूप का भी प्रादुर्भाव हुआ।[३]

वेदो के अनन्तर पौराणिक काल मे आकर आख्यानो ने कथाओ का रूप धारण किया, यद्यपि इन पौराणिक कथाओं की रचना मे मूल रूप से निर्जधरी आख्यानो एव परम्परागत अनुश्रुतियो आदि का भी योगदान रहा है, तो भी पौराणिक कथाओ म ऐतिहासिक तथ्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पुराणों में भारतीय जीवन और समाज का बहुत व्यापक रूप से चित्रण किया गया है। वेदों के पश्चात् पुराण ही लोकप्रिय एव उपादेय सामग्री से सम्पन्न ज्ञानराशि के ग्रन्थ हैं। पुराणो मे भारतीय सस्कृति और साहित्य की चिरन्तन निधि सुरक्षित है। भारतीय मनीषा के व्यापक चिन्तन और चेतना के सम्यक् विकास का समृद्ध रूप पुराणों में ही प्राप्य है, जन जीवन की सास्कृतिक चेतना के अभ्युदय और विकास का जितना भव्य, विराट् और महान् चित्र अकित करने में पुराणकार सफल हुए हैं, उतना भारतीय वाङ्मय के किसी रूप का कोई भी लेखक नहीं। पुराणों की महत्ता का मूल कारण उनका लोकग्राह्य होना है। पुराण सच्चे अर्थो मे जनवादी साहित्य है, क्योंकि उनकी भाषा भाव, विचार-परम्परा, जीवन दर्शन, आदर्श एव प्रतिपाद्य सभी का आधार तत्कालीन

---

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४।
२ डा० शकुन्तला दुबे, काव्य रूपो के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० ४५।
३ "These songs in praise of man probably soon developed into epic poems of considerable length, i e, heroic songs, and into entire cycles of epicsongs entering around one hero.... ." M Winternitz. A History of Indian Literature, Vol P. 314

जनवादी प्रवृत्तियां और लोकप्रचलित परम्पराएं हैं। पुराणों मे असख्य आख्यान हैं जो साहित्य सृष्टाओं को सृजनात्मक उपकरण प्रदान करते रहे हैं। पुराणो मे विषयों की व्यापकता इतनी अधिक है कि उसमे अन्विति का अभाव है। पुराणों की कथाएं अव्यवस्थित रूप मे बिखरी हुई हैं और काव्य तत्त्व का भी उनमे अभाव है। समय-समय पर बहुत से नये नये आख्यान भी उनम जुडते रहे हैं, जिनके कारण उनकी ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता भी सदिग्ध बनी रही है। अस्तु पुराणों मे महाकाव्य का कोई निश्चित रूप उपलब्ध नहीं होता है। हा, पुराण ग्रन्थो ने महाकाव्य की रचना के लिए विषय-सामग्री (कथानक) प्रदान करने मे निश्चय ही महत्वपूर्ण योग दिया है।

महाकाव्यो की सुव्यवस्थित परम्परा का [illegible] रामायण और महाभारत से होता है। भारतीय वाड्मय के इन दोनो ग्रन्थ[illegible] पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों ने एक मत से महाकाव्य स्वीकार किया है। [illegible]न्दी महाकाव्य की सम्पूर्ण परम्परा का विकास रामायण और महाभारत के कथा-प्रसगो, आख्यानो एव उपाख्यानो को लेकर हुआ है। इसीलिए इन दोनो काव्यो को आर्ष ग्रन्थ अभिधान दिया जाता है। इन ग्रन्थों का हमारे जीवन, समाज और सस्कृति से गहन सम्बन्ध है। सस्कृत साहित्य मे रामायण और महाभारत से बडा कोई महाकाव्य नही लिखा गया है। भाषा, भाव, कला, शिल्प-शैली, चरित्र-चित्रण, कथा-सयोजन आदि सभी दृष्टियो से इन महाकाव्यो को परवर्ती कवियो ने आदर्श रूप मे स्वीकार किया है। रामायण और महाभारत दोनो ही सकलनात्मक महाकाव्य है। सस्कृत महाकाव्य की सुदीर्घ परम्परा का विकास इन्ही महाकाव्यो को आदर्श मान कर हुआ। प्राचीन काव्याचार्यों ने महाकाव्य के जिन लक्षणो का निरूपण किया है उनमे भी इन महाकाव्यों का योगदान है। वास्तव मे परवर्ती महाकाव्यकारो ने महाभारत से कथातत्त्व ग्रहण किया, शैली और शिल्प-विधान की प्रेरणा का स्रोत रामायण बनी। इस प्रकार रामायण और महाभारत लिपिबद्ध (लिखित) महाकाव्य परम्परा के दो आदि ग्रन्थ कहे जा सकते हैं।

पौराणिक महाकाव्य-परम्परा

भारतीय महाकाव्य परम्परा के आदि ग्रन्थ रामायण और महाभारत पौराणिक विषयो के ही महाकाव्य है। पौराणिक विषयो के महाकाव्यो की एक सुदीर्घ परम्परा सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ के साहित्य मे भी मिलती है। कालिदास कृत 'कुमारसम्भव' और रघुवश', भारवि रचित 'किरातार्जुनीय', माघ कृत, 'शिशुपालवध', और श्री हर्ष कृत 'नैषध चरित्र', सस्कृत के पाचो सवश्रेष्ठ महाकाव्य पौराणिक विषयो के ही है। इनके अतिरिक्त सस्कृत मे भट्टी कृत 'रावणवध', कुमारदास कृत 'जानकीहरण', रत्नाकर विरचित 'हरिविजय' और

कविराज कृत 'राघव पाडवीय' नामक महाकाव्य भी इसी परम्परा के हैं। इसी क्रम मे प्राकृत भाषा मे प्रवरसेन कृत 'सेतुबध', श्री कृष्ण-लीला-शुक कृत 'श्री चिन्ह काव्य', (सिरिचिंधकव्व), वाक्पतिराज कृत 'गौडबहो' और रामपाणिवाद कृत 'उषानिरुद्ध' तथा अपभ्रंश म स्वयभू कृत 'पउमचरिउ' के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी की पौराणिक महाकाव्य-परम्परा

हिन्दी की पौराणिक महाकाव्य-परम्परा का प्रारम्भ महाकवि तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' से होता है। इसकी रचना का आधार 'नाना पुराण-निगमागम' हैं। 'रामचरितमानस' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। उसकी गणना विश्व के श्रेष्ठ महाकाव्यो मे निःसकोच की जा सकती है। 'मानस' मे काव्य की महार्घता का चरम निदर्शन है। वस्तुतः 'मानस' महाकाव्यदर्शों की सर्वोत्कृष्ट परिकल्पना का मूर्तिमान प्रतीक है।

'मानस' के अनन्तर रीतिकाल मे मुक्तक-रचना की प्रधानता होते हुए भी, पौराणिक विषयो के अनेक प्रबध काव्य लिखे गये हैं। जैसे—पद्माकर कृत रामाश्वमेध' गोविन्दसिह कृत 'चडीचरित्र', गुमान मिश्र कृत 'ब्रजविलास' और 'कृष्णचन्द्रिका', मंचित कृत 'कृष्णायन', और आचार्य केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका', ये सभी ग्रन्थ वर्णनात्मक काव्य हैं जिनमें महाकाव्य की शास्त्रीय-रूढ़ियों का निर्वाह अवश्य किया गया है किन्तु महाकाव्योचित गरिमा से ये शून्य है। इन सब ग्रन्थों मे अपेक्षाकृत केशव रचित 'रामचन्द्रिका' अवश्य ही महाकाव्यालोचको द्वारा चर्चा का विषय रही है। किन्तु शिल्पविधि विषयक एकाध तत्त्व को छोड़कर 'रामचन्द्रिका को कथा, चरित्र या उद्देश्य किसी भी दृष्टि से महाकाव्य नही कहा जा सकता। रीतिकाल महाकाव्य-रचना की दृष्टि से महत्वहीन है।

आधुनिक काल मे हरिऔध जी के 'प्रियप्रवास' से पौराणिक विषयो के महाकाव्यो की अविच्छिन्न परम्परा मिलती है जिसकी कालक्रमानुसार सूची निम्नांकित प्रकार है :—

१.	प्रियप्रवास	— अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध	— सन् १९१४
२.	साकेत	— मैथिलीशरण गुप्त	— सन् १९२९
३.	कामायनी	— जयशंकर प्रसाद	— सन् १९३४
४.	नलनरेश	— पुरोहित प्रतापनारायण	— सन् १९३४
५.	श्री रामचन्द्रोदय	— रामनाथ ज्योतिषी	— सन् १९३७
६.	वैदेही वनवास	— हरिऔध	— सन् १९३९
७.	कृष्णचरित मानस	— प्रद्युम्न दुगा	— सन् १९४१
८.	कृष्णायन	— द्वारिकाप्रसाद मिश्र	— सन् १९४२

९.	कुरुक्षेत्र	– रामधारीसिंह दिनकर	– सन् १९४३
१०	साकेत-सन्त	– बल्देवप्रसाद मिश्र	– सन् १९४६
११.	दैत्यवंश	– हरदयालु सिंह	– सन् १९५२
१२.	कैकेयी	– केदारनाथ मिश्र प्रभात	– सन् १९५१
१३.	अंगराज	– आनन्द कुमार	– सन् १९५०
१४	रावण	– हरदयालु सिंह	– सन् १९५२
१५.	जयभारत	– मैथिलीशरण गुप्त	– सन् १९५२
१६	पार्वती	– रामानंद तिवारी	– सन् १९५५
१७.	रश्मिरथी	– रामधारीसिंह दिनकर	– सन् १९५७
१८.	दमयंती	– ताराक्त हारीत	– सन् १९५७
१९.	ऊर्मिला	– बालकृष्ण नवीन	– सन् १९५८
२०.	एकलव्य	– रामकुमार वर्मा	– सन् १९५८
२१.	सेनापति कर्ण	– लक्ष्मीनारायण मिश्र	– सन् १९५८
२२.	तारकवध	– गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश	– सन् १९५८
२३.	रामराज्य	– बल्देवप्रसाद मिश्र	– सन् १९६०
२४.	सारथी	– रामगोपाल दिनेश	– सन् १९६१
२५.	उर्वशी	– रामधारीसिंह दिनकर	– सन् १९६१
२६.	प्रियमिलन	– नंदकिशोर झा	– सन् १९६४

पौराणिक विषयों के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों की उपर्युक्त लम्बी सूची देखकर यह प्रश्न स्वभावत उठता है कि क्या इस सूची में उल्लिखित सभी काव्यग्रन्थ महाकाव्य हैं। वस्तुत: इस सूची के अधिकांश ग्रन्थों (जैसे नलनरेश, वैदेही वनवास, रावण, दमयंती, अंगराज, सारथी, सेनापति कर्ण, राम-राज्य और प्रिय-मिलन आदि) को तो महाकाव्य इसलिए भी कहा जाता रहा है कि उनके मुख पृष्ठ पर 'महाकाव्य' शब्द छपा हुआ है। कुछ ग्रन्थ (जैसे कृष्णायन, पार्वती, जयभारत, तारकवध आदि) बृहदाकार होने के कारण महाकाव्य स्वीकारे गये हैं। कतिपय के भूमिका लेखकों और प्रस्तावकों ने उन्हें महाकाव्य की संज्ञा दी है। अथवा ग्रन्थों के रचयिताओं ने 'महाकवि' बनने के व्यामोह में रूढ़काव्य-शास्त्रीय लक्षणों का सकौशल निर्वाह करके अपनी कृतियों को समालोचकों से महाकाव्य कहला लिया है।

यह तो निश्चित है कि ये सभी काव्य-ग्रन्थ महाकाव्य नहीं हैं। महाकाव्य की रचना सहज सम्भव नहीं। महाकाव्य सृजन गुरुतर कवि-कर्म है। महाकाव्य की रचना जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आलकन का सांस्कृतिक प्रयास होती है। युग युग की चेतना का नवजागरण, राष्ट्रीय जीवन का प्रति-निधित्व, सांस्कृतिक उन्नयन, सामाजिक अभ्युत्थान का संकल्प और कलात्मक औदात्त महाकाव्य-रचना

द्वितीय अध्याय

कथा—तत्त्व

भूमिका—

महाकाव्यो की रचना मे कथातत्त्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य मे कथानक की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विद्वानो ने महाकाव्य को 'कथाकाव्य' की संज्ञा दी है। पाश्चात्य महाकाव्यालोचको ने सर्वत्र ही महाकाव्य को कथाकाव्य (Narrative Poetry) का पर्याय कहा है।[1] बावरा ने अपनी परिभाषा मे महाकाव्य को 'बृहदाकार कथात्मक काव्य रूप' ही कहा है।[2] विश्वकोषकार ने महाकाव्य का अर्थ एक "कथात्मक कविता" ही दिया है।[3] महाकाव्य का विकास भी कथाप्रधान आख्यानो (Narratives) से ही माना गया है[4] अस्तु स्पष्ट है कि महाकाव्य अन्तत. कथाकाव्य है और कथानक महाकाव्य-रचना का अनिवार्य उपकरण है। वास्तविकता तो यह है कि कथानक की व्यापकता, प्रसिद्धि और उसका सुसंगठित स्वरूप ही ऐसे गुण हैं जो किसी काव्य को महाकाव्योचित गरिमा से मंडित करते हैं।

प्रस्तुत प्रकरण मे आलोच्य महाकाव्यो के कथातत्त्व का अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन निम्नांकित सरणियो (Phases) मे प्रस्तुत किया गया है :—

(१) **सारांश**—सर्वप्रथम प्रत्येक महाकाव्य की कथावस्तु को सार के रूप मे इस दृष्टि से प्रस्तुत किया है कि जिससे कथासूत्रो के मूल स्रोतो के संधान और उनमे किये गये परिवर्तनो को सुविधापूर्वक समझा जा सके। साथ ही सम्पूर्ण ग्रन्थ मे फैले हुये कथातत्व की संयोजन विधि, प्रस्तुतीकरण, मौलिकता आदि का अध्ययन किया जा सके।

(२) **आधार ग्रंथ**—आलोच्य महाकाव्यो की कथावस्तु मूलत पुराणो से गृहीत है। किन्तु किन किन पुराणो एव पुराणोत्तर ग्रंथो का कथानक के संगठन मे उपयोग किया गया है, उसका उल्लेख इस शीर्षक अंतर्गत हुआ है।

---

1. I.T. Myers-A Study in Epic Development-Introduction-page 32,
2. C M. Bowra-From Viragil to Milton Page 1.
3. Casselt's Encyclopedia of Literature, Vol I, page 195,
4. Koklleshwar Shastry-A brief History of Sanskrit Literature. Page 19,

(३) मौलिक प्रसंग तथा नवीन उद्भावनाएं—इस शीर्षक के अन्तर्गत महाकाव्यों में गृहीत कथा-प्रसंगों की मौलिकता का परीक्षण किया गया है। वस्तुत. जीर्ण-शीर्ण पौराणिक वृत्तों को लेकर महाकाव्यकार ने अपनी प्रतिभा और कल्पना शक्ति से किन नवीन प्रसंगों की कथावस्तु में उद्भावनाएं की है? किन प्राचीन प्रसंगों को मौलिक ढंग से युगीन सन्दर्भों में प्रस्तुत किया गया है? कहाँ तक कथा-वस्तु के संगठन में पौराणिकता की रक्षा की है? या खंडित किया है? आदि प्रश्न चिह्नों के सन्दर्भ में भी आलोच्य महाकाव्यों की कथावस्तु का अध्ययन किया गया है।

(४) शास्त्रीय-विधान—कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण, मुख्य कथा और अवान्तर कथा प्रसंगों की अन्विति, संधियों एवं कार्यावस्थाओं के अनुरूप संयोजन, पूर्वापर प्रसंगानुसार घटनाक्रम का आयोजन, मार्मिक स्थलों की योजना और कथा में प्रवाह आदि के निर्वाह का विवेचन इस शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

(५) आलोच्य महाकाव्यों की कथावस्तु विषयक उपलब्धियों एवं अभावों पर इस दृष्टि से भी विचार किया गया है कि इन कथाओं का स्थायी महत्व क्या है?

प्रत्येक महाकाव्य की कथावस्तु का अलग-अलग अध्ययन इस दृष्टि से किया गया है कि वस्तु-विषयक विशेषताएं पूर्णरूपेण उभर सकें।

प्रियप्रवास

कथासार

प्रियप्रवास की समस्त कथावस्तु सत्रह सर्गों में विभाजित है। प्रथम सर्ग का प्रारंभ सूर्यास्त के दृश्य से होता है। इसी समय श्री कृष्ण गोचारण के उपरान्त सखाओं सहित ब्रज में आते हैं। उन्हें देखकर समस्त ब्रजजनों को अपार आनन्द होता है। सहसा रात्रि हो जाती है। द्वितीय सर्ग में गोकुल ग्राम में एक ढिंढोरा पिटता है कि प्रातःकाल राजा कंस के यहां धनुष यज्ञ उत्सव हो रहा है और मुकुन्द को मथुरा के लिये आमंत्रित किया गया है। इस घोषणा से समस्त ब्रजवासी व्याकुल होकर अनेक प्रकार की चिन्ताओं में निमग्न हो शोकातुर होते हैं। तृतीय सर्ग में कृष्ण की मथुरा के लिए विदाई का वर्णन है। कृष्ण की विदाई का दृश्य बड़ा करुण एवं हृदय-विदारक है। विशेषकर माता यशोदा के ममत्व का चित्रण इस सर्ग में बड़ा भव्य बन पड़ा है। वह जगदम्बा से कृष्ण की रक्षा की प्रार्थना करती है। कृष्ण बलराम जिस रथ से जाने को है उसके आगे प्रेम विह्वल नर-नारी लेट जाते हैं जिन्हें वे किसी प्रकार समझा बुझाकर प्रस्थान करते हैं। चतुर्थ सर्ग में कृष्ण की चिन्ता में गोकुल ग्रामवासियों की विरह वेदना का वर्णन है। पशु-पक्षी भी कृष्ण की वियोग व्यथा से आकुल हैं। राधा की वेदना दुर्वह हो जाती है। राधा का परिचय कवि ने इसी सर्ग में दिया है। राधा और कृष्ण की बाल-

लीलाओं का भी वर्णन है। पाचवे सर्ग मे नद कृष्ण-बलराम के मथुरा गमन के कारण समस्त व्रजवासी करुणक्रदन करते हैं। यशोदा की दशा अवर्णनीय है वह शोकसिन्धु मे निमग्न हैं। छठे सर्ग मे व्रजवासी कृष्णागमन की प्रतीक्षा मे पेडो पर चढकर उनकी राह देखते है। स्त्रिया गवाक्षो मे झाकती हैं। राधा पवन को दूती बनाकर कृष्ण के पास सन्देश भेजती है। सप्तम सर्ग मे नद श्री कृष्ण को मथुरा छोडकर गोकुल लौट आते है उन्हे अकेला देखकर यशोदा विरह मे व्याकुल हो जाती है। अष्टम सर्ग मे कृष्ण के आगमन की सूचना यशोदा को पागल बना देती है। तब नद बाबा कृष्ण के अतुल पराक्रम अर्थात् कुवलय हाथी, मल्लो एव कस के वध की बाते बताते हैं जिससे यशोदा को कुछ सान्त्वना मिलती है। किन्तु कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करते-करते सब निराश हो जाते है। व्रज के लोग स्थान-स्थान पर बैठकर कृष्ण की बाल-लीलाओं का स्मरण कर अपने प्रेम भाव को व्यक्त कर रहे हैं। नवम सर्ग मे कृष्ण को मथुरा रहते बहुत दिनो बाद व्रजजनो का स्मरण हो आया। उन्होंने अपने अभिन्न सखा उद्धव जी को व्रजजनो की सुध लाने तथा समझाने बुझाने के लिये भेजा। उद्धव जी जब मथुरा से व्रज आ रहे थे मार्ग मे प्राकृतिक दृश्यो की सुन्दर छटा भी मिली। दशम् सर्ग मे यशोदाने उद्धव के सम्मुख कृष्ण की बाल लीलाओ तथा कथाओ का वर्णन किया है। इस सर्ग मे भ्रातृत्व की व्यजना सुन्दर ढ ग से हुई है। एकादश सर्ग मे उद्धव व्रजजनो सहित यमुना तट पर बैठे हैं तभी एक वृद्ध यमुना की ओर स केत करके काली नाग के दलन तथा दावानल से गो-गोपो की रक्षा का वृत्त सुनाता है। द्वादश सर्ग मे पुरन्दर के प्रकोप के कारण घोर वर्षा तथा कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत धारण की कथा है। त्रयोदश सर्ग मे कृष्ण के समाज सेवी रूप का वर्णन है। कृष्ण के द्वारा अघासुर, केशी और व्योमासुर नामक दैत्यो के वध की कथाए है। चतुर्दश सर्ग मे गोपिकाओ का उद्धव के प्रति विरह निवेदन है। इस सर्ग मे भ्रमरगीत की परपरा का विकसित स्वरूप है। उद्धव-गोपी स वाद मे निर्गुण सगुण ब्रह्म की बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। पचदश सर्ग मे एक व्रजबाला मधुमास म उपवन मे जाकर विभिन्न प्रकार के पुष्पो को अपनी विरह व्यथा सुनाती है। पुष्पो का निरुत्तर देखकर उन पर व्यग्य कसती है, तत्पश्चात भ्रमर से वार्तालाप करती है। अ त मे यमुना तट पर जाती है। कृष्ण प्रेम म विह्वल गोपी के मर्मस्पर्शी भावोद्गारो को उद्धव छिपे हुए सुनते है। षोडश सर्ग मे उद्धव और राधा का स वाद है। इसी सर्ग मे राधा के श्रीमुख से विश्व प्रेम, सत्यनिष्ठा, नवधाभक्ति, सगुण-निर्गुण आदि विषयो का विवेचन हुआ है। उद्धव कृष्ण का स देश सुनाते हैं। राधा धैर्यपूर्वक कृष्ण का सन्देश सुनकर अपने उद्गार भी कृष्ण के लिये उद्धव से कहती है। राधा के प्रेम के सम्मुख उद्धव नतमस्तक हो जाते हैं उनका समस्त ज्ञान गर्व खर्व हो जाता है और राधा की चरणरज लेकर मथुरा को चले जाते है। सप्तदश सर्ग मे मगधपति जरासन्ध के अत्याचारो से पीडित

जनता को त्राण देने के लिये कृष्ण द्वारिकापुरी चले जाते हैं। उधर राधा दीन-हीन निराश्रितों की सेवा-सुश्रूषा करती हुई, यशोदा को धैर्य बधाती हुई जीवन व्यतीत करती है।

कथात्मक आधार

प्रियप्रवास महाकाव्य का इतिवृत्तात्मक आधार कृष्णकथा है। कृष्णकथा सहस्राब्दियों से भारतीय जनजीवन का कठहार बनी रही है। हिन्दी साहित्य की सुदीर्घ परपरा मे कृष्ण के नाम पर अपरिमित साहित्य-सृजना हुई है। कृष्ण काव्य की एक समृद्ध परपरा का स्वरूप हमे आदिकाल से आज तक प्राप्य है। इसका कारण श्री कृष्ण के नाम, गुण, चरित्र और व्यक्तित्व की विशेषताए हैं। कृष्ण के व्यक्तित्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता वैविध्य या अनेकरूपता है। दूसरे शब्दो मे कृष्ण का चरित्र लोकजीवन की प्रेरणा का अक्षय स्रोत रहा है। श्री मद्भागवत-महापुराण, महाभारत, गीता आदि मे कृष्ण का स्वरूप अनेक-मुखी प्रतिभाओ से सपन्न है। वह श्री मद्भागवत महापुराण मे परमपुरुष-परमात्मा, गीता में कर्मयोगी, महाभारत मे नीतिज्ञ, विद्यापति के काव्य मे रसराज शिरोमणि-श्यामसुन्दर, सूर के सखा गोपाल, मीरा के मोहन-माधव, रीतिकाल के रतिपति और हरिऔध के प्रियप्रवास मे ब्रह्मतेज प्रसूत महामानव के रूप मे अवतरित हुए हैं। हरिऔध जी ने इन्ही श्रीकृष्ण की कथाओ को प्रियप्रवास का आधार बनाया है।

कृष्णकथा के पौराणिक स्रोत

पौराणिक वाङ्मय मे कृष्ण कथा का उल्लेख महाभारत मे मिलता है। मूल महाभारत मे श्रीकृष्ण का वर्णन अवतार रूप मे अधिक नही हुआ है। महाभारत मे कृष्ण के राजनीतिज्ञ स्वरूप का ही विशेष विवेचन है। महाभारत मे कृष्ण के द्वारिका गमनोपरात की घटनाओ का ही उल्लेख है किन्तु महाभारत के परिशिष्ट हरिवश पुराण के विष्णु पर्व मे श्रीकृष्ण की जन्म से लेकर द्वारिका जाने तक की कथाओ का विस्तृत वर्णन है।[1]

ब्रह्मपुराण मे कृष्ण कथा का विस्तृत विवेचन है। ब्रह्मपुराण के अध्याय १८८ से २१२ तक कृष्ण के चरित्र से सबधित गोकुल, वृन्दावन, मथुरा आदि की लीलाओ का वर्णन है। पद्मपुराण के सृष्टि खड मे कृष्णावतार का उल्लेख मात्र है।[2] इसी पुराण के स्वर्ग खड मे भी कृष्णकथा का वर्णन है।[3] श्रीकृष्ण के

---

१. हरिवश पुराण-विष्णु पर्व, सर्ग ४ से ५६ तक
२. कल्याण का पद्मपुराणाक-वर्ष १९-अक १, पृ० ७४
३ पद्मपुराण-स्वर्गखड-अध्याय ६९, तथा ७०

परब्रह्म स्वरूप की व्याख्या के साथ वृन्दावन, गोप-गोपिकाओं की महिमा का भी वर्णन है।[१] पाताल खंड में भी श्रीकृष्ण-चरित दिया गया है। इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में श्रीकृष्ण के जन्म की कथा का उल्लेख है।[२] विष्णु पुराण के पांचवें अंश में श्रीकृष्ण की जन्म से लेकर संपूर्ण कथाओं का विस्तृत वर्णन है।[३] महारास का सजीव वर्णन विष्णुपुराण के अध्याय १३ में है।

अग्नि पुराण के १२ वें अध्याय में कृष्णावतार की कथा दी गई है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्मखंड में श्रीकृष्ण के परब्रह्मस्वरूप का वर्णन है।[४] डा० हरवंशलाल शर्मा का अभिमत है कि—"श्रीकृष्ण चरित का पूर्ण विवेचन करने वाला दूसरा पुराण 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' है……ब्रह्मवैवर्त में बहुत सी स्तुतियां दी गई हैं और अनेक स्थलों पर उच्चकोटि के शृंगारिक वर्णन हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के कवियों ने बहुत कुछ सामग्री ब्रह्मवैवर्त पुराण से ली है……" इस पुराण में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन हरिवंश पुराण के वर्णनों की अपेक्षा अधिक शृंगारिक और विस्तृत है।[५] इसी पुराण में श्रीराधा की महिमा का वर्णन तथा गो, गोप और गोपिकाओं की लीलाओं का चित्रण है। इसी पुराण के श्रीकृष्ण-जन्म नामक खंड में श्रीकृष्ण के जन्म से युवाकाल तक की लीलाओं का विस्तृत उल्लेख है। साथ ही उद्धव-राधा संवाद और भक्तितत्व का विवेचन है।[६] वाराह-पुराण में श्रीकृष्ण का उल्लेख न होकर मथुरा महात्म्य एवं वृन्दावन आदि वनों की रमणीयता का विस्तृत वर्णन है।[७] देवी भागवत पुराण के चतुर्थ स्कंद में कृष्ण जन्म तथा अन्य लीलाओं का वर्णन है।[८] वायुपुराण के द्वितीय खंड में श्रीकृष्ण जन्म एवं स्यमन्तक मणि की कथा का उल्लेख है। कृष्ण की १६ सहस्र पत्नियां आदि का भी वर्णन इस पुराण में है। कृष्ण की गो-गोप लीलाओं का वर्णन यहां नहीं है।[९] वामनपुराण में केशी और कालनेमि के वध की कथा है। कूर्मपुराण में यदुवंश वर्णन तथा श्रीकृष्ण के पुत्रों की कथा है। गरुड पुराण में पूतना-वध,

---

१. पदमपुराण, अध्याय ७०, ७२
२. कल्याण, विष्णु पुराणांक, वर्ष २८, पृ० ७३१
३. विष्णु पुराण, पंचम अंश, अध्याय १ से ३८ तक
४ ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मखंड, अध्याय २, ३
५. डा० हरवंशलाल शर्मा-सूर और उनका साहित्य, पृ० १२८
६ ब्रह्मवैवर्तपुराण-श्रीकृष्ण जन्म खंड, अध्याय ९३, ९६
७ वराहपुराण, अध्याय १५३
८. देवीभागवत पुराण, चतुर्थ स्कन्द, अध्याय २०-२५
९ वायुपुराण, द्वितीय खण्ड अध्याय ३४

यमलार्जुन उद्धार, कालियदमन, गोवर्द्धन-धारण आदि की कथाओं के साथ साथ कृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आठ पत्नियों का भी उल्लेख है।[१]

कृष्ण कथा का सर्वाधिक समृद्ध स्वरूप श्री मद्भागवत-पुराण मे मिलता है। श्री मद्भागवत पुराण के दशम स्कंद मे ९० अध्यायो मे श्री कृष्ण चरित्र का विस्तार से निरूपण किया गया है।[२] कृष्ण के जन्म से यौवन काल तक की समस्त घटनाएं, गोपिकाओं के प्रेम, महारास, विरह वेदना के चित्र, गोपी उद्धव संवाद (भ्रमरगीत प्रसग) प्रकृति वर्णन आदि श्रीमद्भागवत पुराण में प्राप्य है। कृष्ण चरित के सभी गायकों ने श्रीमद्भागवतपुराण का आश्रय लिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार--"सब संप्रदायो के कृष्ण भक्त भागवत मे वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को लेकर चले।'[३] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि श्रीमद्भागवत महापुराण ने वैष्णव भक्तो और कवियों को विष्णुपुराण से भी अधिक प्रभावित किया है। उन्होंने लिखा है कि "यह (विष्णु) पुराण सभी वैष्णवों के लिये प्रमाण और आदर का पात्र रहा है परन्तु भक्ति तत्व का विशद वर्णन इसमे नहीं मिलता है। इस विषय मे भागवतपुराण बेजोड है। क्या कवित्वशक्ति, क्या शास्त्रीय तत्व-क्या ज्ञान चर्चा-भागवत पुराण किसी मे अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानता। इस महापुराण ने रामायण और महाभारत की भांति समस्त भारतीय चिन्ता को बहुत दूर तक प्रभावित किया है।"[४] श्री मद्भागवत महापुराण ने भक्तिमार्ग को प्रशस्त तथा पुष्ट करने के साथ-साथ ललित साहित्य के लिये भी अनमोल सपत्ति प्रदान की है।[५] इसके अतिरिक्त कवियो का भागवत को ग्रहण करने का प्रमुख कारण यह भी है कि उसमे कृष्ण के सभी रूपो का सागोपाग विवेचन आ गया है। डा० हरवशलाल शर्मा के शब्दों मे--"महाभारत से लेकर पौराणिक युग तक जितना भी कृष्ण का विवेचन हुआ है; वह सब समन्वित रूप मे श्री मद्भागवत मे मिल जाता है।...... भागवत मे कृष्ण के सभी रूप आ गये हैं, जैसे--(१) अद्भुत कर्मा असुर संहारक कृष्ण, (२) बालकृष्ण, (४) गोपीविहारी श्रीकृष्ण, (४) राजनीति वेत्ता, कूटनीति विशारद श्रीकृष्ण, (५) योगेश्वर श्रीकृष्ण,

१. गरुड पुराण, अध्याय १४४
२. श्रीमद्भागवत महापुराण-दशम स्कन्द
३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १५३
४. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ८७
५. वैदिक संस्कृति का विकास, पृ० १७२

(६) परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण।"[1] श्री मद्‌भागवत पुराण मे, महाभारत, गीता तथा कृष्ण सम्बन्धी अन्य सभी ग्रंथो मे दिये हुये भावो का समन्वय कर लिया गया है।

इस प्रकार महाभारत काल से लेकर विभिन्न कालो मे निर्मित पुराणो मे कृष्ण कथा का स्वरूप विकसित हुआ है। वास्तव मे कृष्ण का अवतारी रूप ही काव्य का आलबन बन सका है। क्योकि अवतारी श्रीकृष्ण की लीलाए ही भक्त कवियो के आकर्षण का केन्द्र बनी। इस स्वरूप का विकास पुराण काल मे ही हुआ है। डा० हरवशलाल शर्मा ने यही मत व्यक्त करते हुये लिखा है—"वैदिक साहित्य मे जिस रूप मे कृष्ण का उल्लेख मिलता है, उसमे उन्हें न तो हम अवतार की ही सज्ञा दे सकते हैं और न देवता की ही। महाभारत मे श्रीकृष्ण का अवतार रूप मे उल्लेख है उन्हें आधुनिक विद्वान प्रक्षिप्त मानते हैं। परन्तु महाभारत के अनन्तर तो कृष्ण का रूप ही बदल गया। उनकी गणना पूर्ण अवतारो मे होने लगी। गोपाल रूप मे उनकी उपासना पौराणिक काल की ही देन है।"[2] पुराणकाल तक आते-आते विष्णु, नारायण, वासुदेव आदि विभिन्न नामो का पर्यवसान कृष्ण नाम मे हो गया। पुराणो मे विष्णु के अवतारो की ही महिमा का गायन है। अवतारवाद पुराण-साहित्य का लक्षण बन गया। हिन्दी के काव्य विधायको ने विष्णु के अवतारो मे राम-कृष्ण की महिमा का गायन ही अधिक किया। सारा भक्ति-काव्य कृष्णकथाओ से परिपूरित है। अष्टछाप के कवियो, मीरा, रीतिकाल के काव्य स्रष्टाओ के लिए कृष्ण का चरित्र अमूल्य निधि बना रहा है। आधुनिक युग के काव्य रचयिताओ ने भी कृष्ण कथा को माध्यम बनाया है। प्रियप्रवास महाकाव्य मे कृष्ण कथा का विकसित स्वरूप है। इस काव्य मे श्रीमद्‌भागवत पुराण की कथाओ को ही अधिकाशत ग्रहण किया गया है।

प्रियप्रवास की कथावस्तु के नवीनता (युगानुरूपता)

प्रियप्रवास के इतिवृत्त का आधार कृष्ण काव्य परम्परा की भाति श्रीमद्‌भागवत पुराण है किन्तु प्रियप्रवासकार ने कथानक को मौलिक रूप मे प्रस्तुत किया है। प्रियप्रवास की कथावस्तु का आरम्भ श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन से होता है। वहा कस वध करके वे मथुराधिप होकर लोकरक्षण मे लग जाते हैं। प्रमुख कथा भी यही है। लेखक का अभिप्राय भी कृष्ण के लोकरन्जक स्वरूप का चित्रण करना ही है किन्तु उनके वियोग मे गोकुलवासियो का गुण-स्मरण के रूप मे कृष्ण की लीलाओ का उल्लेख हुआ है। प्रियप्रवास मे वे कथाए विस्तुत रूप से आयी है

---

१ डा० हरवशलाल शर्मा-सूर और उनका साहित्य, पृ० १३०, १३२, १३४
२ वही, पृ० ११६

जिनमे श्रीकृष्ण के लोकरक्षक रूप का चित्रण होता है—उदाहरण के लिये कालियदमन,[१] दावानल दाह,[२] गोवर्द्धन धारण,[३] अघासुर का वध,[४] केशी दैत्य का हनन,[५] व्योमासुर के विनाश की कथाए।[६] इन कथाओ को प्रस्तुत करने में हरिऔध जी ने कल्पना शक्ति का परिचय दिया हैं। इस कथन की पुष्टि के लिये कतिपय कथाओ की पौराणिक कथाओ से तुलना आवश्यक है।

श्रीमद्भागवत मे कालियनाग को एक महान विषैला सर्प बताया है जिसने यमुनाजल को अपने विष से दूषित कर दिया था और कृष्ण ने एक दिन खेल म कूदकर नाग को पकड उस चरण प्रहार से विदीर्ण कर दिया। नागपत्नियों की प्रार्थना पर उसे प्राणदान देकर वहा से निकालकर रमणीक द्वीप म भेज दिया।[७] प्रियप्रवास मे श्री कृष्ण वेणुनाद के द्वारा कौशलपूर्वक उसे वश मे करके युक्तिपूर्वक किसी समीपवर्ती पर्वत के गहन वन मे निकाल देते हैं। कृष्ण का नाद चातुर्य मानवीय कार्य है। यहा घटना की अलौकिकता का प्रक्षालन कर उसे मानवीय धरातल पर विवेचित किया गया है।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत मे इन्द्र प्रकोप के कारण मूसलाधार वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को उखाड कर छत्रे की भांति ऊंगली पर रोककर व्रजजनों की रक्षा की।[८] किन्तु प्रियप्रवासकार ने इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है कि व्रज में घोर वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने ग्रामवासियो को लेकर गोवर्द्धन पर्वत की गुफाओ और कदराओ मे जाकर निवास किया। बडे कौशल स श्रीकृष्ण व्रज के आबाल वृद्धजनो को सुरक्षित स्थानो पर ले गये श्रीमद्भागवत मे दावानल

१ प्रियप्रवास–११–११–५४
२ वही–११–५६–९६
३ वही–१२–१८–६८
४ प्रियप्रवास–१३–३७–५७
५ वही–१३–५८–६७
६ वही–१३–६८–८४
७ श्रीमद्भागवत पुराण—दशम स्कन्द, अ० १७
८ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्,
दधार लीलयाकृष्णश्छत्राकामिव बालक ॥
—भागवत–दशमस्कन्द, अध्याय १९
९ सकल गोकुल को पुर ग्राम को सजल लोचन से कुछ काल म।
कुशल से गिरि मध्य बसा दिया लघु बना पवनाद्रिप्रमाद को ॥
प्रियप्रवास–सर्ग १२–६३
लख अपार प्रसार गिरीन्द्र म व्रजधराधिप के प्रिय पुत्र का।
सकल लोग लगे कहने उसे। रख लिया ऊंगलिया पर श्याम ने ॥
प्रियप्रवास–सर्ग १२–६७

की कथा का वर्णन इस प्रकार है कि एक बार गायें बन मे चर रही थी तो दावाग्नि लग गयी। समस्त गो, गोप, ग्वालों को व्याकुल देख श्रीकृष्ण उस अग्नि को अपनी माया शक्ति से पी गये। किन्तु प्रियप्रवास मे श्रीकृष्ण अपने सखाओं तथा गायों की रक्षा के लिए अग्नि मे कूद पडे और जाकर उन्हें आग मे से निकाल कर बचाया। इस प्रकार हरिऔध जी ने कथाओं को युगानुरूप आवरण देकर बुद्धिग्राह्य बनाया है।

प्रियप्रवास के कथानक में मौलिक प्रसंग तथा नवीन उद्भावनाएं

वस्तु विधान में प्रियप्रवास का इतिवृत्तात्मक आधार पौराणिक होते हुए भी उसके रचयिता ने वस्तुविधान मे मौलिकता का परिचय दिया है। कृष्ण और राधा का समग्र जीवन लोकसेवी के रूप मे प्रस्तुत कर हरिऔध ने समस्त कृष्ण काव्य परंपरा को एक नया मोड दिया है। पुराणकाल से लेकर रीतिकाल तक सर्वत्र ही कृष्ण राधा का स्वरूपांकन रसिक, विहारी या गोपाल के रूप मे हुआ था। उसमे लोकपक्ष का अभाव था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि—"प्रियप्रवासकार ने कृष्ण के पूर्व प्रचलित चरित्र मे आमूल परिवर्तन कर उन्हे समाजसुधारक, लोकसेवी, जाति उद्धारक, विश्व प्रेमी एव नि.स्वार्थ नेता का रूप चित्रित किया। प्रियप्रवास की समस्त कथाओं की सार्थकता कृष्ण के इसी रूप की व्यंजना मे हैं।"[3]

कृष्ण की ही भाँति राधिका का चरित्र विधान करने वाली समस्त घटनाए भी हरिऔध जी की कुशाग्र बुद्धि की परिचायक हैं। श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख नही है। ब्रह्मवैवर्त पुराण से लेकर रीतिकाल तक सर्वत्र ही राधा को कृष्ण

---

१. पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्योमचय।
—भागवत–दशम स्कन्द, अध्याय १९–२२

'कृष्णस्य योग वीर्यं तद्योग मायानुभावितम्।
दावाग्ने रात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम्॥
—भागवत–दशम स्कन्द, अध्याय १९–१४

२. स्वसाथियों को देख दुर्दशा। प्रचंड दावानल मे प्रवीर से।
स्वयं फसे श्याम दुरन्त वेग से। चमत्कृता सी वनभूमि को बना॥
प्रवेश के बाद सवेग ही बढ़े। समस्त गोपालक धेनु संग में।
अलौकिक स्फूर्ति दिखा त्रिलोक को। वसुन्धरा मे कल कीर्ति बेलि बो॥
—प्रियप्रवास–सर्ग ११–९४–९५

३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५९३–९४

की अनन्य प्रेमिका के रूप म चित्रित किया गया है राधा कृष्ण की प्रेयसी एवं अनन्य उपासिका भी दिखाई गई है। राधा की विरह व्यजना मे बहुत साहित्य सृष्टि हुई है। राधा के नाम नायिका भदो का परिगणन भी खूब हुआ है। किन्तु हरिऔध जी ने प्रियप्रवास की कथा मे राधा को लोकसेविका और विश्वप्रेमिका के रूप मे प्रस्तुत किया है। प्रियप्रवास की कथावस्तु मे राधिका, कृष्ण के विश्वव्यापी स्वरूप की वदना करती है। वह कृष्ण विरह मे क्लाति मन है किन्तु विदग्धा या विमूढ़ा की स्थिति को नही पहुचती। वरन् समस्त व्रजजनो को शांति सात्वना देती है। राधा को परम मानवीया के रूप मे प्रियप्रवास के वृत मे वर्णित किया गया है। उनकी भक्ति का आदर्श भी युगानुरूप ही है। राधिका के लोकोपकारी रूप प्रतिष्ठा प्रियप्रवासकार की मौलिकता का ही द्योतन करती हैं।

प्रियप्रवास मे पवनदूती-प्रसग भी नितात मौलिक है। यद्यपि दूत प्रणाली की एक सुव्यवस्थित परपरा मिलती है। जहा विरहिणी नायिकाए पक्षियो को प्राय: अधिकतर दूत बनाकर प्रियतम को सन्देश भेजती रही है। प्रियप्रवास में राधा ने पवन को दूतत्व का कार्य सौंपा है। कालिदास के मेघदूत मे मेघ को यक्ष ने दूत बनाकर भेजा था। पवन दूती प्रसग की प्रेरणा और प्रभाव हरिऔध जी ने यद्यपि कालिदास के मेघदूत से प्राप्त की है तो भी कृष्ण-कथा मे पवन दूती प्रसग की उद्भावना मौलिक ही कही जायेगी।

कृष्णकाव्य परपरा का भ्रमरगीत प्रसग भी प्रियप्रवास मे नवीन ढ ग से प्रस्तुत किया गया है। यहा गोपी उद्धव सवाद के रूप मे इसकी सयोजना नही हुई है। प्रियप्रवास के पचदश सर्ग मे एक गोपिका भ्रमर को सबोधित कर अपनी विरह व्यथा निवेदन करती है। उद्धव दूरस्थ सब सुन लेते है किन्तु वार्त्तालाप नही करते हैं।

प्रियप्रवास की कथावस्तु मे सध्या-वर्णन, गोचारण, महारास आदि का निरूपण भी मौलिक ढ ग से हुआ है। यद्यपि इन प्रसगो का कथात्मक स्रोत श्रीमद भागवत पुराण ही है।

प्रियप्रवास की कथावस्तु मे मौलिक प्रसंगोद्भावना के मूल म युग की प्रेरणा है। प्रियप्रवास का रचयिता महान कवि है। युगीन जीवन और जातीय सस्कृति के महाप्रवाह को उसने अपने महाकाव्योदधि मे सम्यक् रूप से नियोजित किया है। वैज्ञानिक युग की प्रवृत्ति के अनुरूप ही प्रियप्रवास की कथावस्तु का चयन तथा घटनाओं का बौद्धिक सयोजन हुआ है।

इसके अतिरिक्त कथावस्तु मे शास्त्रीय विधान एव परिपाटी का भी समुचित रूप मे परिपालन हुआ है। डा० द्वारिकाप्रसाद के शब्दो में—"कथानक की योजना

कवि ने सर्वथा शास्त्रीय नियमानुसार की है। इसमे संधियो एवं कार्यावस्थाओं का ध्यान रखा है।" १

प्रियप्रवास के कथानक पर आक्षेप और उनका निराकरण

विद्वानो ने 'प्रियप्रवास' की कथावस्तु को महाकाव्य के लिए अपर्याप्त माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रियप्रवास की कथावस्तु पर विचार प्रकट करते हुये लिखा है। कि—"जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, इसकी कथावस्तु एक महाकाव्य क्या अच्छे प्रबन्ध काव्य के लिए भी अपर्याप्त है।" २ डा० शम्भुनाथसिंह ने भी अपने शोधप्रबन्ध मे कहा है कि—"घटना-विरलता और वर्णन विस्तार के कारण इसमे (प्रियप्रवास) कथानक बहुत संक्षिप्त है और उसमे वह प्रवाह तथा जीवन्तता नही जो महाकाव्य के कथानक मे होनी चाहिये।"३ डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने लिखा है कि 'हरिऔध ने वर्त्तमान बुद्धिवाद और सुधारवाद की प्रगति के प्रभाव मे आकर कृष्ण और राधा को एक आदर्श महात्मा और त्यागिनी के रूप मे चित्रित करने की कोशिश तो की थी, परन्तु अपनी इस कोशिश के लिये उन्होने जो प्रतिपाद्य विषय चुना, वह उसके बिलकुल ही अनुपयुक्त था।" ४ डा० गोविन्दराम शर्मा का मत है कि—"महाकाव्य की दृष्टि से प्रियप्रवास की कथावस्तु की समीक्षा करने पर उसमें तीन मुख्य त्रुटियां दिखाई देती हैं। पहली तो यह है कि वह बहुत व्यापक और विस्तृत न होने के कारण महाकाव्य के उपयुक्त नहीं है। दूसरे कथावस्तु के साथ विविध घटनाओं का पूरा सामंजस्य नही दिखाई देता है। तीसरी त्रुटि पाठको को खटकने वाली कथावस्तु की एकरसता।" ५

उपर्युक्त मतो मे जो बात अधिकतर कही गई है वह कथानक की लघुता की है। इस संबंध मे मेरा मत यह है कि कथानक की लघुता किसी काव्य की महार्घता को खर्व नही करती। वर्त्तमान युग के काव्यो और उपन्यासो की एक सामान्य प्रवृत्ति कथावस्तु का उत्तरोत्तर ह्रास है। इसका कारण युग की बौद्धिक प्रवृत्ति है इस युग का बुद्धि जीवी पाठक और लेखक काव्य-ग्रन्थो के प्रतिपाद्य (Themes) को अधिक महत्व न देकर इतिवृत्त के माध्यम से विचार उपलब्धि को महत्वपूर्ण मानता है। आज के महाकाव्यो मे घटना-बाहुल्य है भी नही। इस युग के

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद-प्रियप्रवास मे काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ० ९२
२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५८२
३ डा० शंभुनाथसिंह - हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ६९७
४ डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी : महाकवि हरिऔध का प्रिय प्रवास, पृ० १३
५ डा० गोविन्दराम : हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० १४०

अधिकाश प्रबन्ध काव्यो मे कथातत्त्व की प्रधानता न होकर भाव और विचार तत्त्व की ही प्रधानता है। उदाहरण के लिए 'कामायनी' और 'कुरुक्षेत्र' को ले सकते हैं इसके अतिरिक्त पौराणिक वृत्तो को अलौकिक घटनाओ की पुनरावृत्ति मे काव्य और कल्पना-शक्ति का कोई प्रमाण भी नही, डा० प्रतिपालसिंह के इस मत से मैं सहमत हूँ कि—"सबसे बडा आक्षेप यह है कि कथानक इतना सूक्ष्म है कि कृष्ण चन्द्र का पूर्ण जीवन इसमे व्यक्त न हो सका। किन्तु आलोचको को यह बात नहीं भुला देनी चाहिये कि यह बुद्धिवाद का युग है। इस काल में महाकाव्य उतने घटना प्रधान नही होते जितने विचार प्रधान। अत: इस महाकाव्य मे कृष्ण चरित्र को एक बौद्धिक और नैतिक रूप दिया गया है, जो राष्ट्रीय भावना के अनुकूल है। जीवन वृत्त कथन न तो काल के अनुरूप होता है न उसमे एकरसता आती है जो कवि को अपेक्षित है।"[१] प्रियप्रवास के कथानक की विशेषता महाभारत काल से रीतिकाल तक की कृष्णकथा मे युगीन परिवर्तनो द्वारा नवीन अध्याय का आरम्भ है। प्रियप्रवास मे हरिऔध जी ने कृष्ण कथा और काव्य की परम्परा को अग्रसर ही नही किया, विकसित भी किया है। यही उसकी मौलिकता है। किसी भी ग्रथ की मौलिकता नई नई उद्भावनाओ मे ही नही, वरन् विषय की पैठ और गहराई मे भी होती है साहित्य मे मौलिकता का अर्थ नवीनता ही नही विकास भी है। 'प्रियप्रवास' ने राधा-कृष्ण के अध्ययन मे एक नया अध्याय जोडा है, जो पिछली पीढियो के कवियो से निस्सन्देह कई कदम आगे है।[२] कथानक मे वर्णनात्मकता वास्तव मे कथाप्रवाह को अवरुद्ध करती है। जैसे सर्ग ११ और १२ मे उद्धव के सम्मुख एक वृद्ध का भाषण समाप्त हुआ तो दूसरे ने कहना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु ऐसे स्थल कम ही है। अंततः यह कहा जा सकता है कि कृष्ण कथा महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। प्रियप्रवास मे कृष्ण की कथा को जिस रूप मे ग्रहण किया गया है उससे काव्य की कथात्मक महार्घता मे कोई विशेष त्रुटि नही जान पडती वरन् प्रियप्रवास की कथा के प्रस्तुतीकरण की शैली का तो वर्तमान युग के अनेक हिन्दी महाकाव्यकारों ने अनुसरण किया है। इस दृष्टि से प्रियप्रवास की कथावस्तु अनागत के लिये प्रेरणाप्रद सिद्ध हुई है।

कथासार **साकेत**

साकेत महाकाव्य मे १२ सर्ग हैं। साकेत के प्रथम सर्ग का समारम्भ सरस्वती वदना से होता है। साकेत नगरी (अयोध्या) का वर्णन करता हुआ कवि लक्ष्मण उर्मिला के प्रेमालाप और वाग्विनोद की सुन्दर झाकी देता है। यही दोनो के

---

१. डा० प्रतिपालसिंह : बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य, पृ० १००
२. वासुदेव : विचार और निष्कर्ष, पृ० २१२

वार्तालाप से राम के राज्याभिषेक की सूचना मिलती है जिसकी पुरवासी बड़ी लग्न एवं उत्साह से तैयारी कर रहे हैं। द्वितीय सर्ग में मंथरा नाम की दासी कैकेयी के पास जाकर उसे महाराज दशरथ के विरुद्ध कुमंत्रणा देती है कि भरत की अनुपस्थिति में राम का अभिषेक हो रहा है। रानी के मन में यह बात पैदा हो जाती है कि— "भरत से सुत पर भी संदेह, बुलाया तक न उसे जो गेह।' कैकेयी कुपित हो राजा दशरथ से पूर्व संचित दो वरदान मांग लेती है जिसमें भरत को राज्य तथा राम को चौदह वर्षों का बनवास है। सत्य प्रतिज्ञ दशरथ पुत्र-विरह की कल्पना से मूर्च्छित हो जाते हैं। तृतीय सर्ग में राम पितृ वंदना के लिए प्रातः जब आते हैं तो दशरथ जी की दशा को देखकर माता कैकेयी से सब वृत्तांत सुन-कर वनगमन को उद्यत हो जाते हैं। लक्ष्मण आवेश में आकर कैकेयी के प्रति अपशब्द तक कह जाते हैं। राम उन्हें वर्जित करते हैं। चतुर्थ सर्ग में राम माता कौशल्या से वनगमन की आज्ञा लेते हैं सुमित्रा लक्ष्मण के भी राम के साथ वन जाने में स्वयं को गौरवान्वित मानती है। सीता भी बहुत समझाने बुझाने के उपरान्त राम के साथ ही वन जाने में अपना कर्त्तव्य और पतिव्रत धर्म मानती है, किन्तु उर्मिला लक्ष्मण के मार्ग की बाधा न बन विरह वेदना और शोक भार को पी जाती है। उसकी स्थिति बड़ी करुण और दारुण है। पंचम सर्ग में गुरु वशिष्ट एवं प्रजाजनों से विदा हो राम, लक्ष्मण और जनकनंदिनी सीता वनगमन के लिए प्रस्थान करते हैं। पहली रात्रि वे तमसा नदी के तट पर बिताते हैं। फिर शृ गबेरपुर में गुहराज से मिलकर गंगातट पहुंचते है। यहीं सुमंत्र को सन्देश दे विदा करते हैं। गंगा पार कर भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचते हैं। फिर प्रयाग में भारद्वाज से विदा हो चित्रकूट आते हैं। जहां लक्ष्मण निवास के लिए पर्णकुटी बनाते है। षष्ठ सर्ग में राम-सीता के विरह में राजा दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, उर्मिला आदि शोक सिन्धु में डूबे हुए हैं। उसी समय सुमंत्र खाली रथ ले आते है। राम को न लौटा देख महाराज दशरथ प्राण त्याग देते हैं। भीषण हाहाकार मच जाता है। महामुनि वशिष्ठ सभी को सांत्वना देकर भरत को ननिहाल से बुलाने के लिए दूतों को भेजते हैं। सप्तम सर्ग में भरत शत्रुघ्न ननिहाल से अयोध्या आते हैं। पिता निधन से वे व्याकुल हैं। फिर राम, सीता, लक्ष्मण का वनगमन सुन हतचेतन हो जाते हैं। कैकेयी से स्वहेतु राज्य सिंहासन की बात सुनकर उसे ही कोसते हैं। गुरु की आज्ञा से पिता का दाह संस्कार कर राम को वन से लौटाने के लिए साकेत के जनसमूह सहित चित्रकूट प्रस्थान करते हैं। गुरु आदि के अत्यधिक कहने पर भी वे अयोध्या का राज्य स्वीकार नहीं करते। अष्टम सर्ग में सीता राम के सानन्द-सामोद चित्रकूट निवास का वर्णन है। सीता के लिए राजकुटी राजभवन है। भरत साकेतवासियों सहित चित्रकूट पहुंचते हैं। लक्ष्मण दूरस्थ भरतादि को देखकर उनकी कुटिल मति पर क्रोधित होते हैं। राम के समझाने पर वे चुप रहते हैं। यहां सबका मिलन होता है। कैकेयी अपने

पूर्वकृत्य पर पश्चाताप कर क्षमायाचना करती है। भरत सहित सभी राम से अयोध्या लौटने का अनुनय विनय और आग्रह करते है किन्तु राम सभी को सस्नेह समझा बुझाकर दृढ़ प्रतिज्ञ रहते है। भरत राम की चरण-पादुकाएं लेकर सेवक रूप मे राज्य की देखरेख के लिये राम की आज्ञा शिरोधार्य करते हैं। यही सीता के चातुर्य से पर्णकुटी म लक्ष्मण उर्मिला की क्षणिक एकात भेंट भी होती है। नवम सर्ग मे उर्मिला की विरह वेदना की भावपूर्ण और तलस्पर्शी व्यंजना है। विरह की सभी दशाओ का मार्मिक वर्णन है। दशम् सर्ग मे उर्मिला सरयू को अपनी सखी मानकर स्मृति रूप मे बीती हुई घटनाओ-स्वजन्म रघुकुल वैभव, सीता स्वयवर आदि का वर्णन करती है। एकादश सर्ग मे प्रथम तो भरत और माडवी के तपस्वी जीवन का चित्र है तत्पश्चात लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर हनुमान जी जो सजीवनी बूटी लेने जा रहे थे भरत के बाण से गिर पड़ते हैं। सचेत होकर वे भरत जी को दण्डकारण्य मे मारीच आदि के वध, सीताहरण, रामसुग्रीव मैत्री लका दहन, विभीषण भेंट कुम्भकरण वध, लक्ष्मण मेघनाथ युद्ध और लक्ष्मण को शक्ति लगने तक की समस्त घटनाओ का विवरण देते हैं। सजीवनी, भरत जी से ही लेकर तदोपरात चले जाते हैं। द्वादश सर्ग मे सीताहरण एव लक्ष्मण-शक्ति का समाचार वे सुन साकेतवासी रावण के विरुद्ध युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते है उर्मिला का वीरत्व भाव जागता है वह स्वय युद्धोद्यत हो जाती है। तभी वशिष्ट मुनि अपने योगबल से तथा दिव्य दृष्टि प्रदान कर लका के रामरावण युद्ध का दृश्य दिखाते हैं जिसम राम विजयी होते हैं। तब गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से सब साकेतवासी सरयू स्नान कर लौट आते हैं। फिर वह दिन आता हैं जब श्री राम-सीता लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण सहित अयोध्या लौट आते हैं। भरत-राम का स्नेह मिलन तथा लक्ष्मण-उर्मिला के भावमिलन के साथ साकेत काव्य की कथावस्तु समाप्त होती है।

कथात्मक आधार

साकेत महाकाव्य का वस्तु-विन्यास सुप्रसिद्ध रामकथा के आधार पर हुआ है। रामकथा पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी भाषा म विपुल साहित्य सृजन हुआ। विभिन्न धर्म सम्प्रदायो और देशो के साहित्य में रामकथा की सुदीर्घ और समृद्ध परपरा वर्तमान है। साकेत से पूर्व हिन्दी म रामकथा को लेकर तुलसी कृत 'रामचरितमानस जैसे अमर ग्रन्थ का सृजन हो चुका है। साकेत कार ने भी इसी रामकथा रूपी प्रख्यात वृत्त को अपने महाकाव्य का माध्यम बनाया है। किन्तु कथा-चयन म परम्परा विनियोजित होते हुए भी श्री मैथिलीशरण गुप्त ने मौलिक प्रसगोद्भावनाए की है जो कवि की कल्पना शक्ति एव काव्य कौशल की परिचायक है।

रामकथा के पौराणिक स्रोत

रामकथा की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत है। डा० वेबर ने रामकथा का आदि स्रोत बौद्ध दशरथ जातक को माना है जबकि श्री एच० याकोबी एवं ए० ए० मैकडानल ने रामकथा को वेदों से उद्भूत कहा है। ई० हाप्किन्स और डा० वानवेगे बैल आदि विद्वान रामकथा का आधार वैदिक आख्यानों को ही मानते हैं। स्वदेशी विद्वानों में श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन का मत है कि रामायण लेखन का आधार जातक कथाएँ हैं। श्री आर० जी० भंडारकर का मत है कि रामायण की रचना पतंजलि के बाद हुई होगी क्योंकि उनके महाभाष्य में राम का नाम नहीं आया है।

वास्तव में मुख्य रामकथा का स्रोत वेद न होकर वाल्मिकि रामायण एवं पुराण-ग्रन्थ ही हैं। वेदों में रामकथा के पात्रों (दशरथ, राम, जनक आदि) के नाम तो प्राप्त हैं किन्तु कथा अपने पूर्ण अपूर्ण किसी भी रूप में प्राप्त नहीं है[1]। रामकथा की उत्पत्ति और विकास के अनुसंधाता डा० कामिल बुल्के ने रामकथा का विकास वाल्मिकि-रामायण से ही माना है।[2]

डा० गार्गी गुप्त का मत है कि—"अनेक विद्वानों के मतों के विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि राम कथा सत्य एवं कल्पना का अद्भुत मिश्रण है।.... रामकथा का मूलरूप प्राचीनकाल से प्रचलित और उसका विकसित रूप रामायण में सुरक्षित है। संभव है रामायण से पहले भी किसी राम काव्य की रचना हुई हो जिसकी दीप्ति इस महान काव्य के समक्ष क्षीण पड़ गई और आज उसका कोई संकेत भी अवशिष्ट नहीं रहा है।[3]"

पुराण-साहित्य में रामकथा का उल्लेख मिलता है, कहीं विस्तृत रूप में, कही संक्षिप्त और सांकेतिक रूप में। महाभारत के द्रोण और शांति पर्वों में रामकथा है। पुराण साहित्य तो आख्यानों का भंडार है। पुराणों में रामकथा कितने ही स्थलों पर आई है[4]। रामकथा की दृष्टि से निम्नांकित पुराण दृष्टव्य है :—

१. हरिवंश पुराण—अध्याय ४१, १२१, १२५
२. विष्णुपुराण—खण्ड ४, अध्याय ४

---

१. डा० कामिल बुल्के : रामकथा : उत्पत्ति और विकास, पृ० २७–२९
२. वही, पृ० ४५७
३. डा० गार्गी गुप्त–रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन पृ० ५०–५१
४. डा० द्वारिकाप्रसाद–साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ६१

३ वायुपुराण—अध्याय २८
४. श्रीमद्भागवत पुराण—स्कन्द ९, अध्याय १०, ११
५. कूर्मपुराण—अध्याय १९, ३१, ३४
६. अग्नि पुराण—अध्यायं, ५, ११
७. ब्रह्मपुराण—अध्याय २१३
८ गुरुडपुराण—अध्याय १४३
९. स्कन्दपुराण—माहेश्वर खड, अ० ८, ब्रह्मखंड—अ० २७, २२, ३०, ४४, ४७, नागरखंड ९९–१०३
१०. पद्मपुराण—पातालखड–अ० १–२८
११ शिवपुराण—धर्म सहिता अध्याय १३, १४

इस प्रकार पुराणो मे रामकथा का स्वरूप विकसित हुआ है परन्तु रामकथा को सम्यक् रूप प्रदान करने का श्रेय आदि कवि वाल्मिकी को है। वाल्मिकि रामायण ने रामकथा के विकास और विधान मे महत्वपूर्ण योगदान किया है। कालान्तर मे वाल्मिकि रामायण मे भी परिवर्तन होते रहे है। पुराणकाल मे, वाल्मिकि रामायण मे अनेक उपाख्यान जोड दिये गये। किन्तु रामकथा नैतिक महत्ता और गुणात्मकता के कारण लोकप्रिय रही है। हिन्दी मे तुलसी का "रामचरितमानस" रामकथा की परपरा का महत्वपूर्ण विकास द्योतित करता है। तुलसी ने भी रामायण को ही प्रमुख आधार के रूप मे ग्रहण किया है यद्यपि उन्होंने लिखा है कि :—

नाना पुराण निगमागम सम्मत यद्,
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि।
(रामचरितमानस—बालकाड)

गुप्त जी ने वाल्मिकि रामायण और मानस को ही रामकथा के आधार रूप मे ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने कथा के सगठन के लिये सस्कृत भवभूति के "उत्तर रामचरित" और कालिदास के "रघुवश" आदि को भी आधार बनाया है।

साकेत की सृजन प्रेरणा और इतिवृत्तात्मक मौलिकता

साकेत-सृजन की प्रेरणा के अनेक कारणो मे काव्योपेक्षिता उर्मिला के चरित्र की महानता का काव्यात्मक प्रदर्शन प्रमुख है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'काव्येर-उपेक्षिता' नामक लेख से प्रभावित होकर गुप्त जी के काव्यपथ-प्रदर्शक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' मे 'कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता'

नामक निबन्ध लिखा।[1] इस निबन्ध से गुप्त जी को साकेत-सृजन की बलवती प्रेरणा प्राप्त हुई। इस प्रकार साकेत-रचना के मूल मे काव्य की उपेक्षिता उर्मिला की चरित्र व्यजना प्रमुख है। काव्य मे वृत्त की दृष्टि से उर्मिला की कथा आई भी है किन्तु साकेतकार की राम के प्रति अटूट निष्ठा और आराध्य भाव के कारण राम सीता की कथा भी साथ साथ चली है। साकेत का कवि राम का अनन्य उपासक है। इसलिये उसने रामकथा को आराध्य देव की गाथा के रूप मे प्रथमत स्वीकार किया है[2] और उर्मिला के चित्रण के लिए द्वितीयत। दूसरे रामभक्त होने के कारण रामकथा मे भी कवि की पूज्य भावना कार्यरत रही है जिसके कारण कवि ने रामकथा मे मौलिकता लाने या उर्मिला के चरित्र को उभारने के लिए कही भी कथानक को खर्व नही किया है। उनकी स्वय की धारणा यह है कि— 'किसी कथानक मे आवश्यकतानुसार फेरफार करने का अधिकार कवियो को है, पर आदर्श को विकृत करने का अधिकार किसी को नही।''[3] कथा के विषय मे इस आदर्शोन्मुखी दृष्टिकोण के कारण गुप्त जी उर्मिला की कथा को किसी अत्यधिक नवीन रूप मे प्रस्तुत न कर सके। दूसरे शब्दो म उर्मिला के इति वृत्त की परिकल्पना रामकथा के परपरित स्वरूप से बहुत मुक्त न हो सकी। उर्मिला का वृत्त विधान कवि का अपना होते हुए भी रूढ है, उसमे कवि कल्पना का उन्मुक्त विलास नही है। आचार्य नददुलारे वाजपेयी के शब्दो मे–' ये शास्त्रीय और ऐतिहासिक परपरा पालन साकेत के लिए हानिकर ही हो गये। मैथिलीशरण जी को इतिहास पुराण आदि की अपेक्षा इस अवसर पर अपनी कल्पना शक्ति की ज्योति जगानी थी। पर यहा भी उन्होने रूढि शृ खलाए नही तोडी। फलत उन्हे साकेत मे चित्र के दो पहलू (रामवृत्त और लक्ष्मण उर्मिला प्रेमाख्यान) दिखाकर महाकाव्य का अ ग निर्माण करना पडा।''[4] साकेत की कथा के दो पहलूओ ने साकेत के समालोचको को भी भ्रम म डाल दिया है। प्रो० त्रिलोचन पाडेय तो कहते हैं कि—' असल मे 'साकेत' रामकथा है ही नही। आरम्भ, वर्णन, उद्देश्य किसी भी दृष्टि से नही है। मूल व प्रधान कथा है लक्ष्मण उर्मिला के जीवन की।''[5] इस सब विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि —

---

१ सरस्वती-जुलाई १६०८

२ राम तुम्हारा वृत्त स्वय ही काव्य है
कोई कवि बन जाय सहज सभाव्य है। —साकेत

३ माइकेल मधुसूदन दत्त कृत मेघनाथ वध (काव्यानुवाद) गुप्त जी द्वारा द्वितीय संस्करण, पृ० ७२

४ आचार्य नददुलारे वाजपेयी हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी पृ० ५३

५ प्रो० त्रिलोचन पांडेय साकेत दर्शन, पृ० ७

(१) साकेत-सृजन की मूल प्रेरणा उर्मिला का चरित्र निर्देशन होते हुए भी कवि का लक्ष्य आराध्यदेव की गुणगाथा रहा है।

(२) साकेत की रामकथा और उर्मिला-लक्ष्मण कथा साथ साथ चलती हैं। कार्य की दृष्टि से लक्ष्मण उर्मिला की कथा ही प्रमुख है किन्तु वर्णन और विधान की दृष्टि से कौन सी आधिकारिक और प्रास-गिक है, कहना कठिन है।

(३) राम के प्रति कवि की अनन्य निष्ठा काव्यकला और कल्पना की दृष्टि से उर्मिला की चरित्र व्यजना मे साधक सिद्ध नही हुई।

साकेत की कथा रामायणी और पौराणिक होते हुए भी गुप्त जी द्वारा सर्वथा नवीन एव मौलिक ढग से प्रस्तुत हुई है, क्योकि साकेत के प्रबध-शिल्प में प्राचीन महाकाव्यो की इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण नही किया गया है।" [१] गुप्त जी ने साकेत का समारम्भ वाल्मिकि और तुलसी के काव्यो की भांति वर्णना-त्मक ढग से नही किया है। उन्होने लक्ष्मण उर्मिला प्रेमालाप से कथानक प्रारम्भ किया है जो नाटकीय एव नवीन है। कथात्मक संयोजन मे भी गुप्त जी ने मौलिक प्रसगोद् भावनाए की है। वे इस प्रकार हैं :—

(१) लक्ष्मण उर्मिला के प्रेममय जीवन की समस्त कथा।
(२) कैकेयी का चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक ढग से।
(३) नवम् सर्ग मे उर्मिला का विरह निवेदन।
(४) साकेत पुरी को ही समस्त रामकथा का संगम स्थल रखा है।
(५) लक्ष्मण-शक्ति और राम-रावण-युद्ध समाचार सुनकर समस्त साकेत समाज का रणोद्यत होना तथा उर्मिला का वीरत्व।
(६) वसिष्ठ जी का योग शक्ति के द्वारा अयोध्यावासियो को राम रावण-युद्ध का दृश्य दिखाना आदि।

शास्त्रीय विवेचन

साकेत की कथा महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। क्योकि वह इतिहास-पुराण प्रसूत अर्थात प्रख्यात है। कथानक मे कार्यान्विति और प्रभावान्विति दोनो है। यद्यपि कथा के दो पहलुओ के कारण साकेत म 'कार्य' को ढूढ निकालना कठिन है। [२] रामायण की कथा का मुख्य कार्य रावण वध है किन्तु साकेत का

---

१ डा० नगेन्द्र : साकेत : एक अध्ययन, पृ० ६
२. वही, पृ० ९

मुख्य कार्य लक्ष्मण उर्मिला मिलन है। इसी दृष्टि से लक्ष्मण उर्मिला की कथा आधिकारिक वस्तु है। किन्तु राम की कथा को प्रासगिकवस्तु भी नही कहा जा सकता है। दोनो कथाए परस्पर घनिष्ट हैं। स्वय कवि के मानस मे यह बात थी जिसे उसने इन शब्दो मे स्वीकार किया है—"यद्यपि मेरी सहानुभूति उर्मिला के साथ बहुत थी फिर भी मेरी श्रद्धा और पात्रो को न छोड सकी सबके विषय मे मुझे अपनी श्रद्धा भक्ति प्रकट करनी थी।"[१] साकेत के वृत्त मे कार्यावस्थाओ का रूप दिखाई देता है किन्तु रामकथा सबधी प्रसगो की भरमार के कारण समस्त कथा मे उनका सम्यक समाहार नही हो पाया है। कथान्विति का परीक्षण सधियो के सफल निर्वाह मे देख सकते है। साकेत की वस्तु मे सधियों की योजना है किन्तु स्वाभाविक रूप मे इनकेलिये कवि ने कोई कृत्रिम प्रयास नही किया। साकेत के कथानक मे प्रारम्भ (१ से ८ सर्ग तक) मध्य (९-१० सर्ग) और पर्यवसान (११-१२ सर्ग) भी हैं।

अन्य विशेषताए

साकेत की कथावस्तु प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से सर्वथा नवीन है। कवि ने उर्मिला के चरित्र-चित्रण से असपृक्त और अनावश्यक घटनाओ को घटित न दिखा कर वर्णित किया है। कथा को सममामयिक आधार प्रदान करने के लिये लेखक ने सभी पात्रो और घटनाओ को युगीन बौद्धिकता के परिवेश म भी अ कित किया है। मार्मिक सर्गो की योजना से कवि न वस्तु वि यान कौशल का भी परिचय दिया है। उदाहरण के लिये साकेत के निम्न स्थल मार्मिक और प्रभावपूर्ण हैं जहा कवि की लेखनी खूब रमी है —

(१) लक्ष्मण उर्मिला का प्रेम सवाद, जिसमे भारतीय नव-दाम्पत्य जीवन की सुन्दर झाकी है। प्रेम, शृ गार, हास-परिहास का शिष्ट रूप अ कित किया गया है।[२]

(२ कैकेयी मथरा सवादो मे स्त्रियोचित ईर्ष्या और सौतिया डाह का मनोवैज्ञानिक आकलन है।[३]

(३) राम के अयोध्या से वनगमन के अवसर पर साकेत वासियो का प्रेम प्रदर्शन।[४]

---

१ साकेत-प्रथम सर्ग, पृ० २८-४१
२. साकेत-प्रथम सर्ग, पृ० २८-४१
३ साकेत-द्वितीय सर्ग, पृ० ४४—५४
४. साकेत-पचम सर्ग, पृ० १२८-१३५

(४) दशरथ मरण पर करुण-दृश्य ।

(५) भरत द्वारा ननिहाल से आगमन पर आत्मग्लानि तथा मनोदशा का मार्मिक चित्रण । [१]

(६) चित्रकूट की घटनाए—राम सीता का गृहस्थ जीवन (सीता का अनुभव—मेरी कुटिया मे राजभवन मन भाया) चित्रकूट की भरी सभा मे कैकयी का पश्चाताप तथा कुटिया मे सीताजी की चातुरी से लक्ष्मण-उर्मिला का क्षणिक मिलन ।

(७) उर्मिला का विरह वर्णन ।

त्रुटियां

कथावस्तु के विन्यास मे प्रवाह का अभाव है । डा० नगेन्द्र के शब्दो मे—"प्रारम्भ मे कथा की मथर गति है, मध्य मे स्थिरता है और अ त मे बडी लपक-झपक है । और ऐसा लगता है कि किसी को कुछ कहने का अवकाश ही नही ।" [२] डा० नगेन्द्र ने स्वय ही इसका कारण कवि की मानसिकता (Subjectivity) कहा है जो प्रबध और विशेषकर महाकाव्य के कथा-प्रवाह के अनुकूल नही है [३] किन्तु यह तर्क बहुत ठोस प्रतीत नही होता । गुप्त जी सफल प्रबधकार रहे हैं । कथात्मक सयोजन की दृष्टि से भी वे असफल नहा कहे जा सकते । हा, साकेत की रचना मे दीर्घावधि, कथाप्रवाह मे व्याघात का कारण हो सकती है । आचार्य नददुलारे वाज-पेयी का यह समाधान समीचीन प्रतीत होता है कि—"कथावस्तु के सगठन की इस त्रुटि का कारण सभवत यह है कि कवि ने 'साकेत' की वस्तु कल्पना अपने प्रार-म्भिक साहित्यिक जीवन मे की थी और एक बार कथानक का ढाचा बन जाने के उपरान्त उसमें परिवर्तन करना कठिन होगया ।" [४] इसके अतिरिक्त नवम् सर्ग का उर्मिला-विरह वर्णन भी कथात्मक प्रवाह मे शिथिलता उत्पन्न करता है । घटना आधिक्य ने भी कथानक के सूत्रो को जोडने मे बाधा प्रस्तुत की है ।

सर्वांगेन साकेत की कथा योजना सफल ही कही जायेगी । कवि ने रामकथा को युगीन आवश्यकताओं के अनुसार सास्कृतिक परिवेश प्रदान किया है । रामकथा की उपेक्षिता उर्मिला पर काव्य रचना कर हिन्दी प्रबध काव्य परपरा को भी विकसित किया क्योंकि आगे चलकर रामकथा के अनेक उपेक्षित पात्रो पर प्रबध

---

१. साकेत-सप्तम सर्ग, पृ० १८२-२०४
२. डा० नगेन्द्र . साकेत एक अध्ययन, पृ० १५८
३. वही, पृ० १५८
४. आचार्य नददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० ५३

रचना हुई। बालकृष्ण शर्मा नवीन कृत 'उर्मिला', बलदेव उपाध्याय कृत 'साकेत सत' (भरत) आदि सफल महाकाव्य लिखे गये। डा० कमला कांत पाठक के शब्दों में-"साकेत का वस्तु शिल्प नया और साहित्यिक क्रांति का परिचायक है।" [1]

कामायनी

कथासार

प्रथम (चिंता) सर्ग में मनु हिमगिरि के उत्तुंग शृंग पर बैठे हुए चिंता निमग्न हैं। वे देव सृष्टि के ध्वंस और प्रलय के उपरांत जलप्लावन के दृश्य को देखकर कातर हैं। द्वितीय (आशा) सर्ग में आशा नामक प्रवृत्ति का उदय उनके हृदय में होता है। उधर सूर्य की किरणों के उदय से कालरात्रि पराजित होकर जल में अंतर्निहित हो जाती है। मनु एक गुहा में अग्निहोत्र के कार्य में निरत होकर कर्ममयी संस्कृति का अभ्युदय करने का उपक्रम करते हैं। मनु के मन में अपार संवेदना है जिसकी चोट उनके हृदय को कचोटती है। जीवन की आशा-निराशा का द्वन्द्व उनके हृदय को आन्दोलित किये है। तृतीय (श्रद्धा) सर्ग में मनु की कामकन्या कामायनी अर्थात् श्रद्धा से भेंट हो जाती है। श्रद्धा उन्हें दया माया, ममता और महानुभूति समर्पित करती है। श्रद्धा के सामीप्य से मनु के मन में एकाकीपन का द्वन्द्व शांत हो जाता है और वे भविष्य की मधुरिम कल्पना करते हैं। चतुर्थ (काम) सर्ग में अनंग की ध्वनि मनु स्वप्न में सुनते हैं जहां कामदेव मनु को कहते हैं कि वह अपने को श्रद्धा के योग्य बनावें और दोनों के संयोग से नवीन सृष्टि का विधान होगा। पंचम (वासना) सर्ग में मनु के मन में वासना का भावोदय होता है और वे काम-कन्या श्रद्धा के रूप-सौन्दर्य पर आसक्त हो आत्मसमर्पित हो जाते हैं। षष्ठ (लज्जा) सर्ग में श्रद्धा के नारी-व्यक्तित्व में लज्जा-भाव का जागरण होता है जिसके कारण मनु के प्रति आत्मसमर्पण में उन्हें संकोच होता है। अन्ततोगत्वा वह मनु के जीवन विकास की संगिनी बन जाती है। सप्तम (कर्म) सर्ग में मनु कर्म निरत होते हैं। वह प्रलय काल से बचे आकुली और किलात नामक पुरोहितों की सहायता से यज्ञ करते हैं जिसमें श्रद्धा द्वारा पोषित पशु की बलि दी जाती है। मनु हिंसक प्रवृत्ति से श्रद्धा के मन में शोक उत्पन्न होता है। किन्तु मनु विनय भाव से श्रद्धा को सन्तुष्ट कर देते हैं। अष्टम (ईर्ष्या) सर्ग में गर्भिणी श्रद्धा आगन्तुक (होने वाले शिशु) की भावना में कुटिया बनाती है, तकली से सूत कात कर वस्त्र बनाती हुई व्यस्त रहती है। श्रद्धा का उदासीन भाव मनु को असहनीय होजाता है वह भावी शिशु से ईर्ष्या करने

---

१ डा० कमलाकांत पाठक—मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, पृष्ठ ४२०

लगते है और यहा तक कि श्रद्धा को अकेली छोड चले जाते हैं। नवम (इडा) सर्ग मे मनु को प्रथम तो काम का स्वर सुनाई देता है। जिसमे कहा है कि तुम श्रद्धा को भूल गये। फिर वे सारस्वत प्रदेश में आते है जहा इडा उनका स्वागत सम्मान करती है। वे सारस्वत प्रदेश के शासक बन जाते हैं। दशम (स्वप्न) सर्ग में श्रद्धा अपने पुत्र मानव के साथ एकात उदास जीवन बिताती है। एक दिन स्वप्न में श्रद्धा देखती है कि मनु सारवस्त प्रदेश में इडा के अधीन हो वहा के शासक बने है। मनु इडा पर मोहित हो उन्हे पाना चाहते हैं तभी प्रजा विद्रोह कर देती है। श्रद्धा स्वप्न से भयभीत हो जाती है। एकादश (सघर्ष) सर्ग मे श्रद्धा का स्वप्न साकार हो जाता है। मनु की स्वेच्छाचारिता प्रजा के अत्यधिक क्षोभ का कारण बन जाती है आकुलि और किलात जो प्रजा के नेता है, से मनु युद्ध मे घायल होकर मूर्छित हो जाते हैं। द्वादश (निर्वेद) सर्ग मे इडा के मन मे ग्लानि-भाव पैदा होता है। श्रद्धा मनु को ढूढती हुई वही आ जाती है। जहा मनु मूर्च्छित हैं। वह करुणा से आप्यायित होकर मनु को सहलाती है। श्रद्धा के कुसुम कोमल स्पर्श से मनु जगते हैं किन्तु श्रद्धा से लज्जित एव इडा के प्रति विरक्ति के कारण वे भाग जाते हैं। त्रयोदश (दर्शन) सर्ग मे श्रद्धा अपने पुत्र मानव को इडा को सौंप मनु की खोज मे चल देती है। मनु उसे सरस्वती नदी के तट पर एक गुहा मे मिल जाते है। मनु पश्चाताप प्रकट करते हैं। श्रद्धा का पुर्नमिलन उन्हे आनदित भी करता है। श्रद्धा के सम्मुख गुहा के निविडतम मे वह नर्तित नटेश के दिव्य रूप का दर्शन कर विमुग्ध हो जाते हैं। चतुर्दश (रहस्य) सर्ग मे श्रद्धा के साथ मनु आनद की खोज मे चल देते है श्रद्धा उन्हे विविध लोक दिखाती हुई त्रिपुर मे ले जाती है जहा वे निराधार स्थित हैं मनु के पूछने पर श्रद्धा इच्छा, ज्ञान और कर्मलोक नामक त्रिपुरो का रहस्य समझाती है कि तीनो के पृथक्-पृथक् रहने के कारण ही मन की इच्छा पूर्ण नही होती। तभी श्रद्धा के स्मित हास्य से महाज्योति से रेखा निकल कर तीनो बिन्दुओ को लय कर देती है। स सार मे दिव्यनाद पूरित हो जाता है। श्रद्धा और मनु आनद की भूमिका पर स्थित हो जाते हैं। पचदश (आनद) सर्ग मे इडा कुमार मानव और प्रजा सहित वहा पहुच जाती है। वहा समरसता की भावमहिमा के आगे अवनत हो कृतज्ञता प्रकट करती है। मानव भी श्रद्धा की गोद मे ही शाति पाता है। मनु समरसता का उपदेश देते हुए आनन्द की भूमा मे लीन हो जाते हैं।

कथात्मक आधार

कामायनी की कथा के प्रमुख सूत्रो का स बध मनु, श्रद्धा तथा इडा नामक पात्रों से है जिनके कथा सूत्र भारतीय वाङ्मय के विभिन्न ग्र थो में बिखरे पडे है। वेद, ब्राह्मणग्र थ, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत एव अनेक ग्र थों मे मनु की कथा मिलती है। प्रसाद जी ने कथा स योजन के लिए इन्ही ग्र थो

का सम्यक अध्ययन करने के उपरान्त कामायनी की कथावस्तु का संयोजन किया है। कामायनी महाकाव्य के 'आमुख' मे कवि ने कथा संयोजन सूत्रो का स्पष्ट और सप्रमाण उल्लेख किया है। प्रसाद जी ने कहा है कि—"आर्य साहित्य में मानवो के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदो से लेकर पुराण और इतिहास मे बिखरा हुआ मिलता है। .... 'मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं राम, कृष्ण और बुद्ध इन्ही का वंशज है।"[१] स्पष्ट है कि कवि ने मनु के व्यापक आख्यान को कामायनी का कथात्मक आधार बनाया है। साथ ही कथा शृंखला और काव्यात्मक औदात्त के लिये उसने कल्पनाशक्ति का भी समुचित उपयोग किया है उनके शब्दो मे—"हां, कामायनी की कथा शृंखला को मिलाने के लिए कही कही थोडी बहुत कल्पना को भी काम मे ले आने का अधिकार नही छोड सका हूं।"[२]

वस्तु के स्रोत

कामायनी मे मनु से संबंधित ये कथाएं हैं :—

(१) जलप्लावन की घटना।

(२) मनु और श्रद्धा का मिलन।

(३) मनु और इडा का मिलन सारस्वत प्रदेश मे।

(४) मनु और श्रद्धा का पुर्नमिलन—आनद की खोज मे कैलाश-भ्रमण।

(१) **जलप्लावन की घटना** :—इस घटना का उल्लेख स्वदेश-विदेश के विभिन्न ग्रंथो मे भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलता है। पुराणो मे इस घटना का उल्लेख प्रलय के रूप मे हुआ है। वहां प्रलय का अर्थ समस्त सृष्टि का ध्वस, विनाश या समाप्ति है। विष्णुपुराण मे नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यतिक नाम के तीन प्रलयो का वर्णन है।[३] इन्ही का उल्लेख ब्रह्मपुराण मे भी है।[४] अग्निपुराण[५] तथा श्रीमद्भागवत पुराण[६] मे नैमत्तिक प्रलयों का उल्लेख है मत्स्य पुराण[७] मे इस कथा का विस्तृत वर्णन है। इसके अतिरिक्त भविष्य पुराण[८] मे मनु का नौका बना कर प्रलयकाल मे रक्षा करने का उल्लेख किया है। जल प्लावन की घटना का वर्णन अन्य पुराणो मे भी है।[९]

---

१. कामायनी—आमुख, पृ० १० (दशम संस्करण)
२. वही, पृ० १०
३. विष्णु पुराण—६।३–१–२
४. ब्रह्म पुराण—१३१–१
५. अग्निपुराण—२–८–२
६. श्रीमद्भागवत पुराण—८।२१४।७
७. मत्स्यपुराण—१।१०।३४
८ भविष्य पुराण—प्रतिसर्ग पर्व—३।४।१।५४
९. पद्मपुराण—१—३६, स्कन्दपुराण (वैष्णव खंड), वायुपुराण—सृष्टि प्रकरण, अध्याय ६९

महाभारत मे जलप्लावन की घटना का बडा सुन्दर वर्णन प्राप्त है। यहाँ प्रथम तो महाप्रलय की भयकर स्थितियो का वर्णन है तत्पश्चात मनु सप्तर्षि और समस्त पदार्थों के बीज एक नौका मे बच जाते है। ब्रह्मा के कथनानुसार मनु सृष्टि रचना करते है।[1] डा० द्वारिकाप्रसाद ने अपने शोध-प्रबन्ध मे ससार के विभिन्न देशो और धर्म ग्रथो की जलप्लावन संबंधी घटनाओ का वर्णन किया है और बतलाया है कि किस प्रकार बाइबिल, कुरान की कथाओ का शतपथ, ब्राह्मण-ग्रन्थों आदि से साम्य है।[2] किन्तु जलप्लावन की घटनाओं तथा कामायनी मे उल्लिखित एतद् विषयक वर्णनो से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि कामायनीकार ने पूर्णतः भारती ग्रथो को ही आधार बनाया है।

मनु से संबंधित घटनाएं भी भारतीय ग्रथों से ही ली गई है। मनु का उल्लेख वेदो मे भी हुआ है। पुराणो मे चौदह मन्वतरो की कल्पना है। प्रत्येक मे एक-एक मनु अर्थात् स्वयभू, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्त, सावर्णि, भौत्य, रौच्य तथा चार मेरुसावर्ण्य नामक मनुओ का उल्लेख है।[3] वेद तथा अन्य ग्रंथो मे भी मनु के अनेक रूपो का उल्लेख है। वास्तव मे भारतीय साहित्य मे मनु के दो रूप मिलते हैं—एक तो प्रजापति मनु और दूसरे स्मृतिकार मनु। विद्वानो मे इस पर मतभेद हैं कि प्रजापति और स्मृतिकार मनु एक हैं या नही। सुश्री महादेवी वर्मा के अनुसार—"वेद मे मनु की स्थिति की परीक्षा के उपरान्त यह मानने के लिए बहुत अवकाश रह जाता है कि मनुस्मृति के प्रणेता और मन्वन्तर के प्रवर्तक भिन्न हो सकते हैं।[4] इस संबध मे प्रसाद जी का मत यह है कि—"मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की

---

१ महाभारत—वनपर्व—१८।२-५५
२. डा० द्वारिकाप्रसाद : कामायनी मे काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० ५८-६३
३. मशिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाव (कल्याणांक), पृ० २८३
४. गगा प्रसाद पांडेय : कामायनी एक परिचय-भूमिका, पृ० १

कथा आर्यों की मनुश्रुति मे दृढ़ता से मानी गई है। इसलिए वैवस्त मनु को ऐतिहासिक पुरुष मानना ही उचित है।'[१]

कामायनी का घटना विधान प्रसाद जी के कल्पना विलास का परिणाम है। पुराणों मे इतिहास का तत्त्व अवश्य है किन्तु अतिरंजित या अलौकिक रूप में। डा० शम्भुनाथ सिंह का यह कथन ठीक ही है कि—"पौराणिक कथाओं मे ऐतिहासिक सत्य छिपा रहता है। अतः प्रसाद जी ने पुराणों मे वर्णित कथाओं को तथ्यों के आधार पर ऐतिहासिक सत्यों के रूप मे स्वीकार किया है।"[२] इसका प्रमाण यह है कि जलप्लावन एवं मनवंतर को उन्होंने पुराण कथाओं से भिन्न रूप मे लिया। अतः कथा संयोजन मे प्रसाद जी का दृष्टिकोण पौराणिक नही ऐतिहासिक और वैज्ञानिक था।[३]

(२) श्रद्धा और मनु का मिलन—श्रद्धा मनु की कथा का आधार वेद-पुराण हैं। मनु की भांति श्रद्धा के विषय मे भी वेदादि ग्रंथों मे भिन्न भिन्न उल्लेख हैं। प्रसाद जी ने कामायनी के 'आमुख' मे श्रद्धा विषयक विभिन्न स्रोतों को उद्धृत किया है। ऋग्वेद के बालखिल्य सूक्त मे 'श्रद्धाया दुहिता तपसः' कहकर श्रद्धा को सूर्य की पुत्री कहा गया है।[४] यजुर्वेद[५] एवं शतपथ ब्राह्मण[६] मे भी श्रद्धा को सूर्यस्यदुहिता कहा गया है। तैत्तरीय ब्राह्मण मे श्रद्धा को ऋत की पुत्री तथा काम की माता कहा गया है है।[७] पुराणों मे श्रद्धा को दक्ष प्रजापति की पुत्री माना गया है।[८] श्रीमद्भागवत महापुराण मे मानवोत्पत्ति मनु और श्रद्धा से ही मानी गई है।[९] जहा तक श्रद्धा का काम की पुत्री होने का प्रश्न है इसके लिये प्रसाद जी

---

१. कामायनी– आमुख, पृ० १।
२. डा० शंभुनाथ सिंह–हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास, पृ० ५६८-६६।
३. वही, पृ० ५७३।
४. ऋग्वेद-६।१।६
५ यजुर्वेद-१६।४.
६ शतपथ ब्राह्मण १२।७।३।११.
७. 'श्रद्धा देवो प्रथमजा ऋतस्य-(तैत्तरीय ब्राह्मण-३।१२।१-२)
'श्रद्धा कामस्य मातरम्-(तैत्तरीय ब्राह्मण-२।८।८।८)
८ मार्कण्डेय पुराण-५०।१६।२०, विष्णु पुराण १।७.
९. "ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञयामास भारत।"
श्रद्धायां जनयामास दशपुत्रान् सः आत्मवान ॥
भागवत-स्कन्ध-६।१।११.

ने ऋग्वेद को आधार रूप मे ग्रहण किया है। श्रद्धा को कामगोत्र से उत्पन्न होने के कारण कामायनी कहा गया है।[1] श्रद्धा और मनु के विवाह के विषय मे भी भिन्न भिन्न मत हैं। कही वह सत्य की पत्नी[2] कही धर्म की पत्नी मानी गई है।[3] इस सबंध मे श्रीमद्भागवत पुराण का उल्लेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योकि वहां स्पष्ट रूप से श्रद्धा को वैवस्वत मनु की पत्नी कहा गया है[4] और प्रसाद जी ने भी इसी दृष्टिकोण को अपनाया है। इसी पुराण मे यह भी कहा गया है कि श्रद्धा और मनु के संयोग से दस पुत्र हुए।[5] प्रसाद जी ने भी मानव सृष्टि का विकास श्रद्धा और मनु से ही बताया है। स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने यहा पौराणिक आधार पर श्रद्धा-मनु के मिलन प्रसग की सृष्टि की है।

इसके अनन्तर निर्जन प्रदेश मे सृष्टि के पुनारम्भ के लिए श्रद्धा और मनु मिलकर प्रयत्नरत होते हैं। इसी बीच आकुलि और किलात नाम के दो असुर पुरोहितो से मनु का साक्षात्कार होता है जिनके परामर्श पर मनु पशु यज्ञ करते हैं जिसमे श्रद्धा द्वारा पालित पशु की बलि दे दी जाती है। इन घटनाओं का पुराणों मे विवेचन नहीं। क्योकि इनका आधार यजुर्वेद, ऋग्वेद एव ब्राह्मण ग्र थ ही हैं।

मनु के पशुबलि कर्म मे श्रद्धा का रूठ जाना, गर्भवती होना और तदन्तर भावी सन्तति के लिए ऊनी वस्त्र एव सुन्दर कुटीर आदि का निर्माण करना कवि कल्पना प्रसूत हैं। इन वर्णनो का आधार पौराणिक या ऐतिहासिक नही है।

(३) मनु और इडा मिलन (सारस्वत प्रदेश मे)—मनु के मन मे वासना की अग्नि प्रदीप्त होती है। वे श्रद्धा की गर्भावस्था से खिन्न रहते हैं। गर्भस्थ शिशु के प्रति मन मे ईर्ष्या भाव जाग्रत होता है। एक दिन वे गर्भवती श्रद्धा को छोड़कर ऊजड सारस्वत प्रदेश मे पहु चते हैं जहा की रानी इडा मनु को नगर का शासक नियुक्त करती हैं। मनु के प्रयासो मे नगर समृद्ध एवं सम्पन्न बन जाता

---

१ 'काम गोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका। तथा चानुक्रम्यते। श्रद्धया श्रद्धा कामायनी श्रद्धमानुष्टुभान्त्यिति।
—ऋग्वेद-१०।१५६ (अनुक्रमणिका)

२ एतरेय ब्राह्मण-७।२।१०.

३. मार्कण्डेय पुराण-५०।२१ और विष्णुपुराण-१।७.

४. श्रीमद्भागवत पुराण-६।१।१४.

५ ततो मनुः श्राद्धदेव संज्ञायामास भारत।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान स आत्मवान॥
—श्रीमद्भागवत पुराण-६।१।११.

है। मनु इड़ा से अपनी वासना तृप्ति का प्रयास करते हैं जिसके कारण सारस्वत प्रदेश की जनता विद्रोह कर देती है। संघर्ष में मनु घायल होते हैं।

उपर्युक्त घटनाओं में सारस्वत प्रदेश की स्थिति का ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधार प्राप्त होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से सरस्वती नदी का तटवर्ती प्रदेश सारस्वत प्रदेश है। ऋग्वेद में इस नदी का उल्लेख भी है। आधुनिक विद्वान पंजाब से बहने वाली नदी को सरस्वती मानते हैं किन्तु प्रसाद जी ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि सरस्वती नदी पश्चिमी अफगानिस्तान के पास गांधार में बहती थी, जहां सप्त सिन्धु प्रदेश था। अस्तु, कंधार के समीप स्थित प्रदेश को ही सारस्वत माना है।[1]

जहां तक पुराणों का संबंध है वहां सरस्वती नदी का उल्लेख अवश्य है किन्तु सारस्वत प्रदेश का वर्णन नहीं है। पद्मपुराण में सरस्वती नदी की प्रशंसा मिलती है।[2] स्कन्द पुराण में सारस्वत प्रदेश को द्वारावती नगरी नाम प्राप्त है।[3] अन्य कुछ पुराणों में इडावृत्त वर्ष का उल्लेख मिलता है।[4] जिससे प्रतीत होता है कि यह नाम इडा से संबंधित है। मनु ने इडा के साथ जो अनीतिपूर्ण आचरण करने का उद्योग किया उसका वर्णन वेदों में तो नहीं किंतु ऐतरेय ब्राह्मण से कथासाम्य रखता है। सारस्वत प्रदेश में जो जनविद्रोह चित्रित किया गया है, वह देवों का कोप का प्रतीक है :—

"धूमकेतु से चला रुद्र नाराच भयंकर,
लिए पूंछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर
अंतरिक्ष में महाशक्ति हुंकार कर उठी,
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं।"[5]

इस जनक्रांति का नेतृत्व करते हुए असुर पुरोहित आकुलि और किलात को दिखाया गया है जिन्हें मनु धराशायी कर देते हैं। यह प्रसंग प्रसाद जी की निजि कल्पना पर आधृत है। अंत में मनु ही रुद्र बाण के प्रहार से मूर्च्छित हो जाते हैं।

---

१ कोशोत्सव-स्मारक संग्रह, पृ० १७२-१७३
२ पद्मपुराण—सरस्वती आख्यान-सृष्टिखंड-अध्याय १८
३ स्कन्द पुराण—ब्राह्मखंड, धर्मारण्य माहात्म्य, अध्याय २१
४ मार्कण्डेय पुराणांक (कल्याण), पृ० ३०७; मत्स्यपुराण (हिंदी अनुवाद), पृ० २६०; वायु पुराण हिन्दी, पृ० ११४; अग्नि पुराण, अध्याय १०७-१०८
५. कामायनी—संघर्ष सर्ग, पृ० २०२

मनु-इडा मिलन और सारस्वत प्रदेश से संबंधित कथा खड में इडा और मनु का मिलन तथा मनु इडा पर स्वच्छंद प्रेम आरोपित करने का प्रयत्न और दैवी प्रकोप शतपथ ब्राह्मण के आधार पर, सारस्वत नगर में मनु का इडा को मार्ग प्रदर्शन आदि ऋग्वेद पर आधारित घटनाए हैं।

४. श्रद्धा–मनु का पुनर्मिलन और आनंद की खोज मे कैलाश भ्रमण— कामायनी महाकाव्य की कथावस्तु का अंतिम भाग प्रसाद जी की दार्शनिक तत्व चिंतक दृष्टि पर निर्मित हुआ है। यहा ऐतिहासिक तथ्यो का प्राय. लोप है। इस कथा-भाग मे मनु नटराज शिव को ताडव करते हुए देखते हैं उन्हें इच्छा, ज्ञान और क्रिया के त्रिकोण की वस्तु स्थिति का परिज्ञान होता है। कैलाश मे ही इडा, श्रद्धापुत्र मानव और सारस्वत प्रदेश की प्रजा पहुंच जाती है और सब मिलकर एक संयुक्त परिवार के रूप मे बस जाते हैं। मनु को अखड आनंद की प्राप्ति होती है।

शिव के ताडव नृत्य का वर्णन पुराणो मे प्राप्त है।[१] शिव के ताडव नृत्य पर संस्कृत भाषा मे एक शिव-ताडव-स्तोत्र की भी रचना हुई है। शिव महिमा स्तोत्र के अनुसार शिव का ताडव नृत्य विश्व के कल्याण के लिये है।[२] प्रसाद जी ने भी शिव के ताडव नृत्य को आनंदमयी भूमिका पर प्रस्तुत किया है .—

आनन्दपूर्ण ताण्डव सुन्दर,
झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर।[३]

इसी कथा मे त्रिपुर या त्रिकोण का भी वर्णन मिलता है। त्रिपुर कल्पना भारतीय वाङ्मय का प्राचीन रूपक है जिसका उल्लेख वैदिक एवं ब्राह्मण ग्रंथों के अतिरिक्त पुराणो मे भी विस्तार सहित मिलता है। शिवपुराण,[४] लिंगपुराण[५] मत्स्यपुराण,[६] श्रीमद्भागवत पुराण[७], महाभारत[८] आदिमें त्रिपुर कथाका उल्लेख इस

---

१ मार्कण्डेय ब्रह्मपुराण अंक (कल्याण), पृ० ३४२–४४,
  लिंग पुराण २०६, २५–२८
२ शिवमहिम्न स्तोत्र १६–३३
३ कामायनी—दर्शन सर्ग, पृ० २५३
४. शिवपुराण—रुद्रसंहिता—युद्ध खंड ५–१–१०
५. लिंग पुराण—अध्याय ७१
६. मत्स्य पुराण—अध्याय, १२९–१४०
७. श्रीमद्भागवत पुराण—७-१०-५३-७०
८. महाभारत—कर्ण पर्व—अध्याय ३३-३४

रूप मे हुआ है कि असुरो ने लोहे, चादी और स्वर्ण के तीन पुरो का निर्माण देवताओ से सुरक्षित होने के लिये किया, जिनका ध्वंश शिव द्वारा किया गया। त्रिपुर रहस्य के अनुसार श्रद्धा को त्रिपुरा देवी माना गया है वही अपनी अनतशक्ति द्वारा त्रिपुरों को एक करती है।

कामायनी के मनु कैलाश पर पहुच कर अखड आनद की अनुभूति करते है उन्हे नटराज शिव के चरणो मे ही अखड आनद की प्राप्ति होती है।[1] कैलाश पर्वत का जो वर्णन कामायनीकार ने किया है उसका उल्लेख भी पुराणो म मिलता है। कैलाशगिरि की जिस अनुपम शोभा एव मानसरोवर के जिस दिव्य रूप का वर्णन पुराणो मे हुआ है, उसी के अनुसार प्रसाद जी ने भी कामायनी मे कैलाश प्रदेश का चित्र अकित किया है।

इस प्रकार उपयु'क्त आधार ग्रथो का अनुशीलन करने पर स्पष्ट दिखाई देता है कि इस कथा भाग की निर्मिति मे प्रसाद जी की कल्पनाशक्ति का ही अधिक योग रहा है। उन्हान वेद ब्राह्मणग्रथो, शैवागमो, पुराण-ग्रंथो मे विकीर्ण कथा सामग्री को लेकर कामायनी के कथानक का निर्माण किया है।

कथावस्तु में रूपक तत्व की प्रतिष्ठा :

कामायनी महाकाव्य के "आमुख" मे प्रसाद जी ने लिखा है—"यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बडा भावमय और श्लाघ्य है यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने मे सहायक हो सकता है।"[3] एक अन्य स्थान पर प्रसाद जी ने लिखा है कि—"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास मे रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिये मनु श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए साकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नही। मनु अर्थात मन के दोनो पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सबध क्रमश श्रद्धा और इडा स भी सरलता से लग जाता है इन्ही सबके आधार पर कामायनी की कथासृष्टि हुई है।"[४]

प्रसाद जी के उपर्युक्त कथनो से स्पष्ट है कि कामायनी की ऐतिहासिक कथा मे रूपक तत्व का भी समन्वय है। यहा उल्लेखनीय यह कि मलत कामायनी

१ त्रिपुराहस्य—ज्ञान खड, अध्याय ६
२ कामायनी—रहस्य सर्ग, पृ० २७२-७३
३ कामायनी—आमुख, पृ० ९-१०
४ वही, पृ० ६

ऐतिहासिक काव्य ही है। हा, गौण रूप में रूपक तत्त्व का भी कामायनी की कथा मे समावेश है। कामायनी की कथा में रूपक तत्त्व की व्यजना मुख्यत. तीन प्रकार से हुई है :—

(१) प्रमुख पात्रो के मनोवैज्ञानिक रूपचित्रण मे।
(२) कथानक के सर्गों के नामकरण एव क्रम में।
(३) घटनाओ की अप्रस्तुत अर्थ सयोजना में।

कामायनी के कथानक की रूपकात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रसाद जी ने काव्य के प्रमुख पात्रो के ऐतिहासिक व्यक्तित्व के साथ उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप मे चित्रित किया है। कामायनी के मनु मन के, श्रद्धा हृदय की और इडा बुद्धि की प्रतीक है। कामायनी की कथा से स्पष्ट होता है कि मनु श्रद्धा के सान्निध्य से ही आनद की प्राप्ति करते हैं। इडा मनु को भौतिकता के सघर्ष मे उलभाकर उनका जीवन दु:खमय बना देती है। इस प्रकार यदि मात्र बुद्धि का आश्रय ग्रहण कर मनुष्य का मन (मनु) सुख की प्राप्ति करना चाहे तो सघर्षों मे पड जाता है। मन (मनु) हृदय (श्रद्धा) अर्थात् रागात्मिका वृत्ति का आश्रय प्राप्त करके ही आत्म-विश्वास के साथ जीवनपथ पर अग्रसर होता हुआ अखड आनद की प्राप्ति कर सकता है। कामायनी के अन्य पात्रो मे आकुलि और किलात नामक पुरोहित आसुरी वृत्तियों के प्रतीक हैं जो मानव मन (मनु) को पाप कर्म (हिंसा यज्ञ) मे प्रवृत्त करते हैं। श्रद्धा-मनु का पुत्र कुमार नवमानव का प्रतीक है।[1] डा० नगेन्द्र ने तो कामायनी मे उल्लिखित देव, श्रद्धा के पशु, वृषभ, सोमलता आदि के क्रमश इन्द्रियां, अहिंसा, धर्म और भोग साकेतिक अर्थ माने हैं।[2]

पात्रो के अतिरिक्त कामायनी की कथा की रूपकात्मकता सर्गों के नामकरण एव क्रम से भी स्पष्ट है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण मानवीय प्रवृत्तियों के आधार पर चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना आदि रूप में किया गया है। सबसे बडी विशेषता इन सर्गों के विकास क्रम की है। इन सर्गों को उसी प्रकार चित्रित किया गया है, जिस प्रकार यह वृत्तियां मानव हृदय मे उदित होकर विकसित होती हैं। चिन्ता मानव मन की प्रारम्भिक वृत्ति है। अभाव के कारण मनुष्य के मन में चिन्ता का उदय होता है, तभी मनुष्य का चिंताग्रस्त मन अशांति से निवृत्ति पाने के लिए व्यग्र होता है कि आशा का भाव उदय होता है। आशा मन को शांत करती है तभी श्रद्धा का विकास होता है जो मानव के चपल मन को आस्था और विश्वास का सबल प्रदान करती है। तत्पश्चात् काम और वासना नामक वृत्तियां जाग्रत

---

१ डा० नगेन्द्र : कामायनी के अध्ययन की समस्याएं पृ० ४५
२. वही, पृ० ८६

होती हैं। वासना के आवेग को रोकने के लिए लज्जा की उत्पत्ति होती है। वासना की तीव्रता तृष्णा के रूप मे परिणत होकर मानव को कर्मप्रवृत्त करती है। कर्म प्रवृत्त मन अहंभाव के कारण ईर्ष्यालु हो जाता है और श्रद्धा की अवहेलना करके बुद्धि अर्थात् इडा का आश्रय लेता है। बुद्धि (इडा) आश्रित मन भौतिक सम्पन्नता के लिये नये नये स्वप्न देखता है। वह बुद्धि पर विजय पाने के लिए 'संघर्ष' रत भी होता है। संघर्ष मे असफल होने पर मनुष्य के मन मे निर्वेद (वैराग्य) की भावना का उदय होता है। चोट खाकर मनुष्य का मन पुनः श्रद्धा की ओर उन्मुख होता है और श्रद्धा के सहयोग से उसे आत्मसाक्षातकार (दर्शन) होता है। तभी मानव मन अपनी पराजय का रहस्य समझता है। अततः मानव मन इच्छा, ज्ञान और क्रिया आदि वृत्तियो का समन्वय (समरसता) करके अखंड 'आनन्द' की प्राप्ति करता है। इस प्रकार सर्गों के विकास क्रम मे एक सुन्दर रूपक की योजना हुई है।

इसी प्रकार जलप्लावन, त्रिपुर, मानसरोवर, कैलाश आदि मे घटित घटनाओ के सांकेतिक एवं प्रतीक अर्थ भी भारतीय दार्शनिक मान्यताओ की पृष्ठभूमि मे मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए कामायनी की प्रस्तुत कथा मे मानसरोवर की यात्रा मनोमय कोश मे स्थित जीव की आनन्दमय कोश मे स्थित होने के लिये साधना ही है। यह आनन्दमय कोश ही कैलाश है। त्रिपुर-इच्छा, ज्ञान और क्रिया का त्रिकोण है जिनका समन्वय श्रद्धा के द्वारा होता है।

इस प्रकार कामायनी की प्रस्तुत कथा में मानवता के विकास का सुन्दर रूपक सायोजित किया गया है। जहां तक रूपक तत्त्व के सफल निर्वाह और संगति का प्रश्न है—विद्वानो के अलग अलग मत हैं। एक विद्वान के शब्दो मे—"पूरे आमुख के परिशीलन से यह ज्ञात हो जाता है कि कथा के इतिहासानुमोदित होने के आग्रह के साथ रूपकत्व का निर्वाह ही उनको अधिक अभीष्ट है।"[1] किंतु यह दृष्टिकोण पूर्णत. उपयुक्त प्रतीक नही होता। क्योकि कामायनी मे प्रस्तुत कथा प्रधान है और अप्रस्तुत कथा गौण है। दूसरे रूपक तत्त्व के पूर्ण निर्वाह के लिए कवि अपनी ओर से विशेष प्रयत्नशील नहीं रहा है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि कथा में सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति भी दिखाई पड़े तो 'मुझे' (प्रसाद जी) कोई आपत्ति नही। स्पष्ट है कि कामायनी मे रूपकत्व की प्रतिष्ठा कवि को अधिक अभीष्ट नही। इस कथा के रूपक मे कुछ असंगतियां भी हैं। जैसे "जब मनु मानव मन अथवा मनोमय कोश मे स्थित जीव का प्रतीक है तो उसके पुत्र कुमार को नवमानव का प्रतिनिधि मानकर

---

1. साहित्य सन्देश-अप्रेल १९६२-अंक १०-भाग २३।

भी सगति नही बैठती क्योकि इस तरह पिता पुत्र मे लगभग एक ही प्रतीकार्थ की पुनरावृत्ति हो जाती है।"[१] इस प्रकार की असगतियो के सम्बध मे डा॰ नगेन्द्र का विचार है कि—"प्रस्तुत कथा को पूरी तरह अप्रस्तुतार्थ से जकड देना ठीक नही है। आखिर प्रस्तुत कथा को थोडा सा तो स्वतत्र अवकाश देना चाहिये।"[२] निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि कामायनी की कथा मे इतिहास और रूपक तत्त्व का अद्भुत समन्वय हुआ है जो अभूतपूर्व है।

कथानक की अन्य विशेषताए :

कामायनी की कथावस्तु की अन्य विशेषताओ का विवेचन शास्त्रीय कथा-विधान, नवीन प्रसगो की उद्भावना, मौलिकता एव कल्पना शक्ति के प्रयोग की दृष्टि से किया जा सकता है।

१ प्रसाद जी ने कामायनी के कथाविधान मे एक ओर ऐतिहासिकता और पौराणिकता की रक्षा करते हुए कथावस्तु को प्रामाणिक बनाया है वहा दूसरी ओर मौलिक प्रसगोद्भावनाए भी की हैं। वेदो, ब्राह्मणग्रथो, उपनिषदो, पुराणो आदि प्राचीन ग्रथो मे बिखरे कथानक को कल्पना और काव्य-शक्ति द्वारा अभिनव ढग से सग्रथित करके महाकाव्योचित गरिमा से मडित किया है।

२ कामायनी के कथानक मे निम्नाकित घटनाए कवि की सर्वथा मौलिक उद्भावनाए हैं —

(अ) गर्भिणी श्रद्धा के वात्सल्य भाव के कारण मनु के मन मे ईर्ष्या की उत्पत्ति और परिणामस्वरूप श्रद्धा को अकेली छोडकर मनु का सारस्वत प्रदेश चला जाना।

(आ) सारस्वत प्रदेश मे मनु के विरुद्ध जनक्राति।

(इ) श्रद्धा के स्वप्न का प्रसग।

(ई) मनु और श्रद्धा की कैलाश यात्रा, इडा और मानव का परिणय-सबध एव सारस्वत प्रदेश वासियो सहित इडा और मानव का कैलाश-प्रस्थान।

(उ) इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे स्थल एव प्रसग हैं जिनमे कवि ने परिवर्तन-परिवर्द्धन किया है। जैसे मनु का पुत्रोत्पत्ति के लिये नही वरन्

१. डा॰ कन्हैयालाल सहल और डा॰ विजयेन्द्र स्नातक : कामायनी दर्शन, पृ॰ १४१।

२. डा॰ नगेन्द्र : कामायनी के अध्ययन की समस्याए, पृ॰ ५२।

देव प्रवृत्ति के कारण यज्ञ करना, इडा को मनु की पालिता पुत्री के रूप में चित्रित न करना, मनु के केवल एक पुत्र का होना आदि।

३. शास्त्रीय कथा विधान की दृष्टि से कामायनी की कथावस्तु में सन्धियों एवं अर्थ प्रकृतियों की सफल योजना तो हुई है, साथ ही पाश्चात्य दृष्टि से विचार करें तो प्रारम्भ, विकास, चरम-सीमा, निगति और अंत आदि कार्यावस्थाएं भी स्पष्टतः देखी जा सकती है।

४. कामायनी के कथानक की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास का पुनर्मूल्यांकन है। भारतीय इतिहास का जितना महिमामय और गौरवमय आयोजन कामायनी के इतिवृत्त में हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

५. कामायनी की कथावस्तु घटना-विरल है। "यद्यपि महानकाव्यों की कथायोजना में घटनाओं की प्रधानता मिलती है।""""कामायनी की घटना इतनी विस्तृत नहीं। वह इंगितों के द्वारा आगे बढ़ती है। उसमें दीर्घता की अपेक्षा गाम्भीर्य अधिक है।" [1] कामायनी के कथानक में धारावाहिकता के अभाव में भी एक ऐसी अविच्छिन्नता विद्यमान है जिसके कारण विभिन्न प्रसंगों में सफल सम्बन्ध निर्वाह हुआ है। इसके अतिरिक्त कथानक यद्यपि तीव्रगति से विकसित नहीं होता एवं कहीं कहीं उसमें शैथिल्य भी दिखाई देता है, फिर भी घटनान्विति काव्य में सर्वत्र बनी हुई है।

इस प्रकार कामायनी महाकाव्य के कथानिर्माण में प्रसाद जी ने इतिहास, मनोविज्ञान और कल्पना के प्रयोग से मानवता के विकास का अद्भुत रूपक प्रस्तुत किया है।

कुरुक्षेत्र

कथासार :

प्रथम सर्ग—कुरुक्षेत्र का युद्ध पांडवों और कौरवों में हुआ। युद्ध में पांडव विजयी हुए। युद्ध की समाप्ति पर सभी आनंद निमग्न थे। किसी को भी युद्ध के विनाशकारी भयंकर और वीभत्स दृश्यों की स्मृति न थी। किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर का हृदय करुणाकुल था। वे उस विजय की ओट में हुए असंख्य नर-संहार और विनाश की स्मृति करके शोकातुर हो रहे थे। वे सोचते थे कि पांच असहिष्णु नरों के द्वेष से सारे देश का संहार हो गया। करोड़ों माताएं और नारियां पुत्र-पति

---

१. डा० प्रेमशंकर : प्रसाद का काव्य, पृ० ३१७।

विहीन हो गई। उन्होने सोचा कि रक्त से सने इस राज्य का उपभोग मे कैसे करूंगा ? इसी प्रकार के विचारो से युधिष्ठिर का हृदय इतना खिन्न हो उठा कि व पार्थ से कहकर भीष्म पितामह के पास चले गये।

द्वितीय सर्ग—अजेय भीष्म ने आई हुई मृत्यु से कह दिया कि अभी जाने का योग नही है और यह कर शरशैय्या पर पड़े रहे। काल के करो से उन्होने प्राणो को छीन लिया।

उसी समय धर्मराज को भीष्म पितामह ने चरणस्पर्श करते देखा। धर्मराज ने अत्यत अधीर और व्याकुल होकर कहा कि हे पितामह महाभारत विफल हुआ। तदन्तर धर्मराज ने युद्ध के विनाशकारी परिणामो का विवरण दिया और मन सघर्ष की व्यथा को व्यक्त किया। तब भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा कि युद्ध अवश्यम्भावी है उसे पाडव नही रोक सक्ते थे। युद्ध के अनेक कारण हैं—स्वार्थ, राजनीतिक-प्रवचना और प्रतिशोध। कौरवो ने पाडवो का अपमान किया अत. प्रतिशोध की भावना से युद्ध हुआ। अस्तु, धर्मराज का यह विचार सर्वथा निर्मूल है कि युद्ध करके पाप किया। भीष्म पितामह ने कहा कि पाप और पुण्य के बीच कोई विभाजक रेखा नही खीची जा सकती।

भीष्म पितामह ने श्रीराम का उदाहरण दिया कि उन्होने भी कानन मे मुनिपुंगवो के अस्थि समूह को देखकर दैत्यो का वध करने का प्रण किया था।

तृतीय सर्ग—इस सर्ग मे शाति की समस्या पर विचार किया गया है। भीष्म पितामह ने कहा कि सभी शाति चाहते हैं। कोई भी मरने मारने के घृणित व्यापार मे लिप्त नही होना चाहता किंतु विवश होकर युद्ध का वरण किया जाता है। शाति दो प्रकार की है—एक तो कृत्रिम जिसका आधार अन्याय और शोषण है, दूसरी वास्तविक शाति जिसका आधार प्रेम और अहिंसा है। सत्ताधारी वर्ग चाहता है कि वह शासित का शोषण करे और शाति भग न हो। किंतु शाति का यह कृत्रिम रूप जनमत को बहुत समय तक दमित नही कर सकता क्योकि दमन जनमानस मे घृणा पैदा कर क्राति करा देता है और युद्ध होते हैं। अस्तु ऐसे युद्ध के लिए उत्तरदायी आततायी शासक है। भीष्म पितामह ने कहा कि प्रतिशोध से तो शौर्य की शिखाए दीप्त होती हैं। प्रतिशोधहीनता तो महापाप है। अन्याय और शोषण का तो प्रतिशोध होना ही चाहिये। शांति का प्रथम न्यास न्याय और समता है। इनके अभाव मे समाज मे सच्ची शांति स्थापित नही हो सकती।

चतुर्थ सर्ग—ब्रह्मचर्य के व्रती, धर्म के महास्तम्भ और काल के आगार भीष्म ने कहा कि धर्मराज न्याय को ठुकराने वाला ही रण को आमन्त्रित करता है।

स्वत्व का अन्वेषण पाप नहीं है। कोई भी अकारण किसी से लड़ना नहीं चाहता। अन्यायी स्वयं दूसरा के न्यायोचित स्वत्वों को छीनकर युद्ध करता है। अत युद्ध का उत्तरदायित्व सुयोधन पर है क्योंकि उसने पाडवों के अधिकारों का हरण और हना कर युद्ध किया।

इसके अतिरिक्त भी महाभारत युद्ध के अनेक कारण थे। सुयोधन ने द्रौपदी का भरी सभा मे अपहरण किया था। भीष्म ने कहा युद्ध में जिन व्यक्तियो और नरेशों ने तुम्हारा और सुयोधन का साथ दिया वह भी व्यक्तिगत कारणो से है। उदाहरण के लिये अर्जुन का वध करने के कारण कर्ण सुयोधन की ओर से लड़ा। राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य से वैर चुकाने के लिये पांडवों का साथ दिया। इसी प्रकार किसी न किसी द्वेष के कारण राजा युद्ध मे सम्मिलित हुए। राजसूय यज्ञ युद्ध का कारण बना क्योंकि दूसरा पक्ष ईर्ष्या करने लगा। इस प्रकार महाभारत युद्ध की भूमिका निर्मित हुई। महाभारत एक ज्वालामुखी के समान विस्फोट था जिसके लिये बहुत समय से ताप संचित हो रहा था।

भीष्म पितामह ने कहा कि पाडवो के राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर भी व्यास जी ने राजाओं से प्रेम और सद्भावपूर्वक रहने को कहा था। किन्तु तुम जुए मे द्रौपदी को हार गये। पितामह ने स्वय को भी युद्ध के लिये दोषी बताते हुए कहा कि मेरे मन मे प्रेम और कर्त्तव्य का संघर्ष था। मुझे पांडवो से प्रेम था किन्तु कर्त्तव्य के बधन के कारण म सुयोधन की ओर से लड़ा। उन्होने कहा कि मेरी बुद्धि ने मुक्त हृदय को शासित कर लिया और संभवत मैं ही यदि बुद्धि का अनुशासन न मान सुयोधन को न्याय के लिये ललकार देता तो वह संभल कर चलता और युद्ध न होता। किन्तु सब हो चुका। बीती बात को भुलाकर नये युग का सूत्रपात करो।

पचम सर्ग - इस सर्ग के आरभ मे कवि ने तत्कालीन समाज की भीषण परिस्थिति का चित्र अंकित किया है कि किस प्रकार सर्वत्र ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि प्रज्वलित थी। धर्मराज ने विजय श्री प्राप्त की किन्तु वे युद्ध की विभीषिका पर विचार-निरत थे। भीष्मपितामह की बात सुनते-सुनते वे रोदन कर उठे कि सर्वत्र विनाश का वीभत्स दृश्य है। धर्मराज ने कहा कि हे पितामह राक्षसी समूह मानो मेरे समक्ष आकर उपहास कर रहा है कि मैं ऊपर से साधू वृत्ति धारण किये रहा किन्तु प्रतिशोध की भावना और राज्य लिप्सा ने मेरे तप त्याग को तिलाजलि दे दी। मुझे यह राज्य पाप कर्मों से प्राप्त हुआ है। युधिष्ठर ने पश्चाताप करते हुए कहा कि मुझे युद्ध पूर्व यह बोध क्यो नही हुआ कि युद्ध का कारण राज्य का भोग और धन है। अन्यथा मै युद्ध करता ही नही। राज्य-सिंहासन के लोभ ने ही मेरा

सर्वनाश किया है अस्तु अब में लोभ रूपी वृत्ती से द्वितीय युद्ध लड़ूंगा। महाराज युधिष्ठिर ने कहा कि इस युद्ध में वही विजयी होंगे। मनु का यह पुत्र निराश नहीं है वह नवधर्म का दीप प्रदीप्त करेगा।

षष्ठ सर्ग—प्रस्तुत सर्ग में कवि ने स्वयं युद्ध की समस्या पर विचार किया है। द्वापरकाल के युद्ध विषय को उसने विज्ञान युग की परिस्थितियों के परिपार्श्व में भी सोचा है। सर्गारम्भ में कवि ने भगवान से पूछा कि धर्म या दया का दीप संसार मे कब जलेगा? शांति की सुकोमल ज्योति से धरा कब अभिषिक्त और सरस होंगी। भीष्म, युधिष्ठिर, बुद्ध, अशोक, गांधी और ईसामसीह आदि ने शांति स्थापना का प्रयास किया है। सभी ने महानुभावों की वाणी को सिर झुकाकर सम्मान भी दिया है किन्तु कोई भी उनके आदर्शों को मानता नहीं। मानव आज भी पुराने मार्ग पर ही चल रहा है।

आज का युग पुराने युग की भांति बेबस भी नहीं है। आज मानव ने बुद्धि के द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर संसार के सभी रहस्यो को ज्ञात भी कर लिया है। धरती, आकाश, सागर सर्वत्र वह गतिगामी है। जल, वायु, अग्नि और विद्युत मानव के दास हैं। किन्तु खेद यही है कि बुद्धि की भांति मानव के हृदय का समविकास नही हो पाया है। उसे आज प्रेम और बलिदान की आवश्यकता है।

कवि कहता है कि विज्ञान के अन्वेषणों से अन्ततः मनुष्य चाहता क्या है? संसार वासना मे डूब रहा है। पृथ्वी के सम्पूर्ण रहस्यो को जानकर मानव नक्षत्रों को जानने में प्रयत्नशील है। युद्ध और संहार का प्रिय मानव वहाँ तक पहुँचाना चाहता है। किन्तु यह लक्ष्य उचित नहीं। विज्ञान का लक्ष्य संसार में समरसता की प्रतिष्ठा होनी चाहिये। साम्य की स्निग्ध और उदार रश्मि से ही विश्व में सरसता आयेगी, किन्तु ऐसा कब होगा?

सप्तम सर्ग—काव्य का यह सबसे बड़ा सर्ग है। प्रारम्भ मे कवि स्वयं विचार कर रहा है कि एक व्यक्ति यदि पाप की खाई मे गिरकर भी निकलने का प्रयास करता है तो वह महान् है। ससार मे पाप और पुण्य, उत्थान और पतन सभी हैं। युधिष्ठिर को जब यह बोध हुआ तो भीष्मपितामह ने भी वही बात कही कि धर्मराज! कुरुक्षेत्र के युद्ध से मानवता का संहार या अन्त नहीं हो सकता। दुःख की घटा दूर होकर सुख-शान्ति के फूल भी खिलेंगे। द्वापर युग की समाप्ति पर जिस नवीन युग का समारम्भ होगा उसमें मानव अवश्य ही प्रगतिपथ गामी होगा। मनुष्य ने अभी भी महानता का दिग्दर्शन नही किया है, अन्यथा वह वैर भाव त्याग देता। धर्मराज! यदि तुम मानव कल्याण के मार्ग का संधान करना चाहते हो तो

ज्ञान के दीपालोक को लेकर संसार मे बढो। समाज मे सच्ची शान्ति की स्थापना तभी होगी जब सभी को अपने अधिकार प्राप्त हो जायेंगे।

भीष्म ने कहा कि बहुत पहले व्यक्तियो के समान अधिकार और कर्त्तव्य थे। अत. जीवन मे सर्वत्र शान्ति थी। व्यक्ति के मन मे स्वार्थ का उदय हुआ और उसने अधिकारो का सचय आरम्भ किया। अस्तु शान्ति भग हुई, सघर्ष हुए। तभी शासक का जन्म हुआ। राजतन्त्र का उद्देश्य अधिकारो की सरक्षा तथा न्याय की स्थापना था। राजतन्त्र के भय से लोग ठीक रहने लगे। किन्तु कालान्तर मे राजाओ ने भी शोषण आरम्भ किया। यह शोषण जब तक समाप्त नही होगा, शान्ति असम्भव है। व्यक्ति का शोषण-मुक्त होना अनिवार्य है।

पितामह ने कहा कि धर्मराज ! तुम्हे सन्यास ग्रहण न कर दु खी जनता को सुखी बनाने का प्रयास करना चाहिये। सन्यास से व्यक्ति ससार को नश्वर समझकर चिन्ताओ मे डूब जाता है। वास्तविकता यह है कि नश्वर ससार मे ही हमे कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। ससार मे सुख दु ख तो है ही। साहसी व्यक्ति सुख दु ख सहन करता हुआ ससार को सरस और सुन्दर बनाता है। सन्यासी तो ससार से पलायन करता है। वह ससार के काम नही आता। मानव के शत्रु उसके अन्त करण मे ही विद्यमान हैं अन्यत्र नही। अत मन पर सयम रखकर मानवता के विकास मे विश्वास लिये हुए जीवन को लोककल्याण के पथ पर अग्रसर करना चाहिये। पितामह ने अन्त मे कहा कि धर्मराज ? आशा के दीप जलाये चलो। एक दिन अवश्य ही यह धरा युद्ध की आशका से मुक्त होगी। हार से मानव की महिमा घटेगी नही और न जीत से तेज बढेगा। स्नेह और बलिदान से ही पृथ्वी स्वर्ग के समान हो सकेगी।

कथानक के आधार-स्रोत :

कुरुक्षेत्र काव्य के कथानक का मूल आधार महाभारत है। महाभारत के 'सौप्तिक पर्व' मे युधिष्ठिर को मृत सम्बन्धियो के अन्तिम सस्कार सम्पन्न करते समय ज्ञात होता है कि कर्ण उनके अग्रज थे। इससे उनका मन अशान्त हो जाता है। 'शान्ति पर्व' से युधिष्ठिर नारद के सम्मुख विस्तार से अपनी अन्तस् वेदना को प्रस्तुत करते हैं। वे युद्ध की निन्दा करते हुए वनगमन हेतु उद्यत होते हैं। किन्तु अपने पांचो भाइयो तथा द्रौपदी के विरोध एव श्रीकृष्ण के परामर्श पर वे हस्तिनापुर आते हैं जहां उनका राज्याभिषेक होता है। श्रीकृष्ण के आदेशानुसार वे राज्य धर्म के ज्ञान-बोध हेतु भीष्म पितामह के पास जाते हैं। भीष्म पितामह बडे विस्तार से राज्य धर्म का उपदेश देते हैं। इस वार्त्तालाप मे युधिष्ठिर के प्रति भीष्म पितामह

ने सैंकडो विषयो का विवेचन किया है। भीष्म पितामह के देहावसान के बाद धर्मराज युधिष्ठिर पुनः मोह ग्रस्त होकर शोक सतप्त रहते हैं। उन्हें व्यास और श्रीकृष्ण विभिन्न प्रकार से समझाते हैं।

महाभारत में उपर्युक्त कथानक 'स्त्री पर्व' से 'आश्वमेधिक पर्व' तक फैला हुआ है। किन्तु कुरुक्षेत्र मे प्रयुक्त कथानक शांति एवं उद्योग पर्व तक ही परिसीमित है।

कथानक की विशेषताएं

कुरुक्षेत्र काव्य के कथानक पर विचार करते समय हमे निम्नांकित तथ्यो को दृष्टिगत रखना चाहिए कि—

(१) कुरुक्षेत्र एक विचार प्रधान काव्य है, घटना प्रधान नही।

(२) कुरुक्षेत्र के कवि का प्रमुख ध्येय प्रबध काव्यकारो की भांति कथा कहना नही, वरन् एक विशिष्ट विचारणा को प्रस्तुत करना है।

(३) कुरुक्षेत्र में कथातत्त्व की योजना को कवि ने महत्त्व नही दिया है।

(१) ऐतिहासिकता

कुरुक्षेत्र काव्य की कथावस्तु की ऐतिहासिकता का जहा तक सम्बन्ध है उसे हम महाभारत की कथा के सन्दर्भ मे रख कर ही देख सकते हैं। घटनाओ की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य का कथानक तनिक भी महत्वपूर्ण नही, क्योंकि कोई भी घटना घटित होते हुए चित्रित नही की गई है अत घटनाओ की ऐतिहासिकता का उस रूप मे (घटित होने मे) प्रश्न ही नही उठता। सम्पूर्ण काव्य के यत्किंचित तथाकथित कथानक का विकास दो पात्रों (युधिष्ठिर और भीष्म) के पारस्परिक सवादो के माध्यम से ही हुआ है। इन पात्रो की ऐतिहासिकता ही प्रस्तुत काव्य के कथानक की ऐतिहासिकता के रूप से ग्रहणीय है।

दूसरे महाभारत मे पात्रो के सम्बन्ध म विद्वानों के अनेक मत हैं। उन्हे ऐतिहासिक और अनैतिहासिक दोनो ही माना गया है। प्रस्तुत प्रसग में उल्लेखनीय यह है कि कुरुक्षेत्र के रचयिता ने महाभारत मे प्रतिपादित ऐतिहासिकता को अक्षुण्ण बनाये रखा है।

(२) काल्पनिकता या मौलिकता

महाकाव्यकार का कर्त्तव्य इतिहास-पुराण के जीर्णकाय कथानको को युग जीवन के अनुरूप आकार प्रदान करना होता है। कुरुक्षेत्र के रचयिता ने आद्यन्त कल्पना शक्ति के सशक्त प्रयोग द्वारा कथा विधान मे मौलिकता का प्रदर्शन किया है।

महाभारत मे भीष्मपितामह युधिष्ठिर के प्रति राजनीति, वर्णाश्रम, राष्ट्र रक्षा, तप, सत्य, अध्यात्मज्ञान, मोक्ष, सृष्टि की उत्पत्ति एव प्रलय, युद्धनीति, सैन्य सचालन विधि, धर्माचारण आदि अनेक विषयो पर सविस्तार उपदेश देते हैं कुरुक्षेत्र मे कवि ने काव्य के मूलप्रतिपाद्य विषय को ही दोनो के पारस्परिक विचार विनिमय का माध्यम बनाया है। कवि ने प्रसगेतर विषयो के प्रतिपादन द्वारा कथावस्तु में अनावश्यक आकार वृद्धि नही की है। इसके विपरीत काव्य के प्रतिपाद्य (युद्ध और शाति की समस्या) को विविध प्रकार से सागोपाग उल्लिखित किया है।

(३) युगानुरूपता

कुरुक्षेत्रकार कल्पना का प्रयोग करने मे सयत रहा है। उसने कालविपरीत कुछ नही कहा है। काव्य सत्य को युग जीवन के अनुरूप ग्राह्य बनाने के लिए कवि ने स्वतन्त्र चिन्तन का सहारा भी लिया है। कवि के ही शब्दो मे—"यद्यपि, मैंने सर्वत्र इस बात का ध्यान रखा है कि भीष्म और युधिष्ठिर के मुख से कोई ऐसी बात नही निकल जाय, जो द्वापर के लिए सर्वथा अस्वाभाविक हो। हा, इतनी स्वतंत्रता जरूर ली गई है कि जहां भीष्म किसी बात का वर्णन कर रहे हो, जो हमारे युग के अनुकूल पड़ती हों, उसका वर्णन नये और विशद् रूप से कर लिया जाय।"[१] स्पष्ट हैं कि कवि ने महाभारत के कथानक को युगानुरूप आकार देने के लिए ही स्वातन्त्र्य का सदुपयोग किया है।

कुरुक्षेत्र के कथानक की सबसे बडी विशेषता यह भी है कि कवि ने प्राचीन कथा के द्वारा आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण समस्या को चित्रित किया है। वह समस्या है—युद्ध और शाति की। युद्ध की समस्या यद्यपि मानव जीवन की एक चिरतन समस्या है किन्तु वर्त्तमान युग जीवन के परिप्रेक्ष्य में उसके स्वरूप, प्रतिक्रिया, परिणाम आदि पर विचार कवि की निजी सूझबूझ का उदाहरण हैं।

कुरुक्षेत्र के कथा सयोजन में कवि साग्रह प्रयत्नशील भी नहीं है। प्रबन्धात्मकता को बन्धन के रूप वरेण्य नही हैं। प्रस्तुत काव्य मे कवि का प्रमुख लक्ष्य विचारधारा

---

१. कुरुक्षेत्र : निवेदन, पृ० ३–४

का प्रतिपादन करना है। जहा कथानक इस कार्य को पूरा करने मे सक्षम नही हुआ, वहा कवि ने स्वय कहना भी प्रारभ कर दिया है उदाहरण के लिये छठे सर्ग मे कवि स्वय युद्ध की समस्या पर विचार करता है। वह द्वापर युग की सीमाओ को छोड विज्ञान युग के विकास की पृष्ठभूमि पर इस समस्या के समाधान और निदान की चेष्टा करता है। दूसरे शब्दो म वातावरण के अनुरूप कथानक को गति प्रदान की गई है। डा० पाण्डेय के शब्दो म "कुरुक्षेत्र के युद्धोत्तर काल के वातावरण को कवि ने अपने विचारो की अभिव्यक्ति के लिये बडे कौशल से चुना है। और जहा कही उसका काम कुरुक्षेत्र के कथानक से नही चल पाया वहा स्वय पाठको के सम्मुख आ गया हैं। छठवा सर्ग इसी प्रकार का सर्ग है।"[1]

कुरुक्षेत्र काव्य के कथानक की कुछ त्रुटिया भी हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध मे कथा वस्तु की महाकाव्योचित व्यापकता नही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो दो व्यक्तियों के सवादो मे ही काव्य का आदि म त समाहित है। घटनात्मक विनियोजन के अभाव ने कथात्मक दृष्टि स कुरुक्षेत्र को महत्व हीन बना दिया है। कदाचित इसीलिये कतिपय समीक्षको ने कुरुक्षेत्र को एक महाकाव्य मानने मे सकोच किया है किन्तु महाकाव्य मे कथानक का मात्र अभाव ही उसे महाकाव्य की गरिमा से युक्त या रहित होने म सहायक नही हो सकता। कथानक का ह्रास वर्तमान युग के साहित्य की एक विशेषता बनती जा रही है। यह बात काव्यो के साथ ही नही वरन् कथासाहित्य (कहानी, उपन्यास, नाटक, एकाकी आदि) पर भी लागू होती है। महाकाव्य का प्राणतत्व उसके उद्देश्य की महानता और विचारो की उच्चता है जो कुरुक्षेत्र मे विद्यमान है। जहा तक कथावस्तु का सम्बन्ध है, वह महाभारत की पृष्ठभूमि पर आधारित होने कारण एक प्राचीन तथा दूसरी ओर आधुनिक युग बोध को प्रतिफलित करने के कारण नवीन भी है। वाजपेयी जी ने उचित ही ही कहा है—"हमे यह भी स्मरण रखना होगा कि कुरुक्षेत्र काव्य प्राचीन पृष्ठभूमि पर रखा गया है। उसमे सपूर्ण आधुनिकता हो ही नही सकती। महाभारत म आये हुए भीष्म और युधिष्ठर सवाद को ही नये साँचे मे ढालने की चेष्टा की गई है। उसमे पूरा आधार महाभारत का भी नही है। और न पूरी नवीनता ही है। प्राचीन और नवीन के मिश्रण से जो चीज बन सकती है, वह बनी है।'[2]

कुरुक्षेत्र के कथातत्व मे बौद्धिकता की भी प्रधानता है। क्योकि यह एक चिंतन प्रधान काव्य है। आद्य त बौद्धिक मथन ही काव्य की उपलब्धि रही है।

---

१. डा० शम्भूनाथ पाडेय—आधुनिक हिन्दी काव्य म निराशावाद पृ० ३८६–८७
२ नददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य, पृ० १४५

इस प्रकार कथानक की दृष्टि से कुरुक्षेत्र के सृजन की अपनी सीमाए है। कुरुक्षेत्र की कथावस्तु मे विज्ञानयुग के महाकाव्य की विशेषताए दिखाई देती है और इस दृष्टि से आधुनिक महाकाव्यो को यह समावना भी प्रकट होती है कि कथाविहीन काव्य कृतिया भी वैचारिक गरिमा के कारण महाकाव्यात्मक औदात्य से सम्पन्न हो सकती है।

साकेत सन्त

कथासार

साकेतसत महाकाव्य की कथावस्तु १४ सर्गों मे विभाजित है। प्रथम सर्ग का समारम्भ भरत और माण्डवी के प्रेमपूर्ण वार्तालाप से होता है। भरत अपने मामा युधाजित के साथ अपनी ननिहाल जाते हैं। मार्ग मे हिमालय के सौन्दर्य एव प्रकृति सुषमा पर भी चर्चा होती है। नवदपति (भरत और माडवी) रात्रि हिमालय पर बिताकर प्रात काल केकैय देश मे पहुँचते हैं। द्वितीय सर्ग मे भरत अपने मामा युधाजित के साथ शिकार खेलने जाते हैं। भरत के बाण से एक कस्तूरिका मृग हत होकर गिर पडता है। मृग के करूणापूरित नेत्र देखकर भरत द्रवीभूत हो जाते हैं। तभी युधाजित भरत को ओजपूर्ण वक्तृता द्वारा शासक बनने को उत्साहित करते हैं। किन्तु भरत हिंसात्मक नीति का विरोध करते हैं। इसी अवसर पर युधाजित भरत को कैकेयी विवाह के पूर्व राजा दशरथ द्वारा किये गये प्रण की बात बताते हैं जिसमे कैकयी के ही पुत्र को राज्याधिकार मिलना है और यह भी कहते हैं कि भरत के हितों की रक्षा के लिय वह अवध में मथरा नामक दासी को बता आये हैं। अपने मामा की बात से भरत चितातुर हो जाते हैं कि अयोध्या मे कही कुचक्र न हो जाय। वे साकेत जाने के लिय उद्यत हो जाते हैं। तभी अवध से दूत उन्हें बुलाने आ जाते हैं। तृतीय सर्ग मे भरत अयोध्या पहुँचकर राम के वनगमन तथा पिता के मरण का समाचार पाकर दु खी हो जाते हैं। वे अपनी माता और मथरा के कुकृत्यो से व्यग्र हो जाते हैं। स्वय को कोसते हैं और माता कौशल्या से याचना करते हैं। उधर शत्रुघ्न मथरा की दुर्दशा करते हैं। भरत मथरा की प्राणरक्षा करते हैं। चतुर्थ सर्ग मे भरत आत्मग्लानि और परिताप की ज्वाला में विदग्ध प्राय होते हैं। राम, लक्ष्मण और सीता के वनगमन और पिता-मरण का हेतु वे स्वय को समझ बडे दु खी होते और माण्डवी को उर्मिला की देखरेख का भार सौंपते हैं। पचम सर्ग मे मत्रणागार मे गुरु वशिष्ठ भरत को राज्यारोहित होने की आज्ञा देते हैं। भरत इस आज्ञा से स्तमित हो जाते हैं। वे राम को वन से वापिस लाने का दृढ सकल्प करते हैं। अयोध्यावासी भरत के निर्णय की प्रशसा करते हैं किन्तु कैकेयी आज्ञा के विपरीत भरत का निर्णय व निश्चय दृढ हो जाता है। षष्ठ सर्ग में कैकेयी वशिष्ठ जी के पास जाकर 'दशरथ

की प्रार्थना करती है और सफलता न मिलने पर राजा दशरथ के शव के साथ ही सती होने को उद्यत हो जाती है। भरत कैकेयी को सती होने से रोकते हैं। सप्तम सर्ग म भरत नगर की व्यवस्था कर पुरजन, परिजन एव सैनिकगण सहित चित्रकूट जान के लिए तैयार हो जाते है। साकेतवासी समझते है कि भरत राजमद मे चूर होकर राम का पथ बाधा समझ कर सदैव के लिए हटाने जा रहे हैं। अत वे विरोध करते हैं। किन्तु भरत के निष्कलुष हृदय का परिचय पाकर लज्जित हो जाते हैं। भरत शृ गवेरपुर पहुचते हैं अष्टम सर्ग म निषादराज अरण्यवासियो सहित भरत जी के मतव्य पर सन्देह कर उन्ह रोकने के लिए युद्धोद्यत हो जाता है किन्तु भरत से भेंट होने पर उसके सन्देह का निवारण होता है। भरत उसके साथ गगा को पारकर भारद्वाज आश्रम मे पहुचते है। नवम सर्ग म भारद्वाज मुनि के आश्रम की महिमा और अपार वैभव का वर्णन है। योगबल से आश्रम मे समस्त सुख सुविधाओ का मुनि आयोजन करते हैं पर भरत कुछ भी ग्रहण नही करते। भरत की त्याग भावना स आश्रमवासी अत्यधिक प्रभावित होते हैं। भरत भारद्वाज मुनि की आज्ञा लेकर चित्रकूट चल जाते हैं। दशम सर्ग म मार्ग की कठिनाइयो और ग्रीष्म ऋतु की दुर्वह यातनाओ को सहते हुए चित्रकूट पहुचते हैं। वहा राम की पर्णकुटी को देखकर भरत विह्वल हो जाते हैं। एकादश सर्ग मे श्रीराम स्वय भरत से मिलने के लिए आत है और मध्य-मार्ग मे ही गले मिलकर अपने निवास स्थान पर ले जाते हैं। फिर राम माताओ, पुरजनों आदि से मिलते । गुरु वशिष्ठ से पितामरण की सूचना पाकर राम दुखी होते हैं प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति भरत अपनी मनोकामना कहे बिना ही कई दिनो तक चित्रकूट में रहते हैं। द्वादश सर्ग म भरत पर सन्देह कर जनक भी सदल बल सहित आते हैं किन्तु भरत की दशा देखकर चुप हो जाते हैं। चित्रकूट म कई दिनो रहने के पश्चात एक दिन भरत श्रीराम के हृदय की बात जानने के लिए प्रम और कर्तव्य पर चर्चा करते हैं। श्रीराम चतुराई स भरत को १४ वर्षों तक अवध के राज्य सचालन का सकेत दे देते हैं। त्रयोदश सर्ग मे अचानक रात्रि म घोर आधी और वर्षा होती है। प्रकोप के शात होने पर प्रात काल सभा आयोजित होती है और श्रीराम को वन से लौट चलने के लिए कैकेयी, जाबालि, अत्रि और जनकराज परामर्श देते है। परन्तु राम सभा के निर्णय को अस्वीकार कर देते हैं। तभी वशिष्ठ जी सभा का सारा दायित्व भरत जी पर छोड़ देत हैं। भरत श्रीराम की इच्छानुसार चौदह वर्षों तक राज्य सचालन का भार स्वीकार कर चरण पादुकाए लते हैं। चतुर्दश सर्ग में भरत नदीग्राम म तपोमय जीवन व्यतीत करते हुए अवध के राज्य का सचालन करते हैं। माण्डवी भी पतिअर्चना मे लीन रहती है। भरत प्रजापालन-धर्मको धर्मव्रत के समान करते हैं। एक दिन आकाशमार्ग से संजीवनी ले जाते हुए हनुमान जी को राक्षस समझ कर भरत बाण मार कर गिरा देत हैं। तब हनुमान

सीताहरण से लेकर लक्ष्मण मूर्च्छा तक की घटनाएं सुनाते हैं। भरत विह्वल होकर लंका जाने को सन्नद्ध होते हैं तभी वशिष्ठ योगबल से लंका युद्ध के दृश्य का भविष्य दिखा देते हैं। चौदह वर्षों के बाद लंका विजय कर श्रीराम अयोध्या आते हैं। भरत उन्हें राज्य सौंपकर शांति लाभ करते हैं। अंततः भरत माण्डवी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर घर में ही हिमालय का सा सुख प्राप्त करते हैं।

आधार

साकेत संत की कथावस्तु का मुख्य आधार वाल्मिकी रामायण है। कथात्मक संयोजन और घटना विनियोजन के लिए कवि गुप्त जी के साकेत का भी ऋणी है।

साकेत संत के रचयिता का प्रमुख लक्ष्य भरत के चरित्र की महत्ता को प्रकाश में लाना है। अतः उसने रामायण के उन्हीं कथाप्रसंगों को मुख्य वस्तु का आधार बनाया है जिनका भरत जी के चरित्र चित्रण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। परंपरित रामकथा के आख्यानों में डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने मौलिक प्रसंगोद्‌भावनाएं भी की हैं।

कथानक में नवीन उद्‌भावनाएं

साकेत संत के प्रथम और द्वितीय सर्ग में भरत और माण्डवी का प्रेमालाप, अपने मामा युधाजित के साथ आखेट के लिए हिमालय पर जाना और घायल मृग की दशा पर भरत का करुणापूरित होना आदि घटना प्रसंग सर्वथा मौलिक और नवीन हैं।

परंपरित रामकथा में दशरथ पर यह दोषारोपण किया जाता है कि राम को राज्य देने के लिए भरत को कैकेयी देश भेजा गया था। साकेत संत में भरत के ननिहाल जाने का कारण युधाजित हैं। इसमें दशरथ जी पर कोई आरोप नहीं आता।

प्रचलित रामकथा में विधाता द्वारा मंथरा का मतिभ्रम दिखाकर उसके द्वारा कैकेयी को दो वर मांगने के लिए उत्साहित किया गया है। साकेत संत में युधाजित और भरत के मध्य हुए वार्तालाप से यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत को राजा बनाने के लिए युधाजित ने कुचक्र किया था :—

तुमको राजा होना है, अपने को भरत संभालो।
रघुपति से यह प्रण लेकर, कैकेयी हमने दी है।
तुम समझो युवा हुए हो, अब बालक बुद्धि नहीं है।

है धन्य मन्थरा ही वह, यद्यपि दासी की दारा
जो समझ गई सब बातें, पाकर बस एक इशारा ।"[1]

दशरथ मरण और भरतागमन के उपरान्त कैकेयी की मनोदशा का चित्रण करने में साकेतकार गुप्त जी एवं साकेत सतकार मिश्र जी ने अद्भुत कला कौशल का परिचय दिया है। गुप्त जी ने कैकेयी को पश्चाताप की घोर अग्नि मे परितप्त दिखाया है। किन्तु साकेत सतकार ने प्रस्तुत कथा प्रसग मे दो मौलिक उद्भावनाए की हैं। प्रथम तो कैकेयी गुरु वशिष्ठ के पास जाकर राजा को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना करती है।[2] दूसरे निरुपाय हो राजा के साथ सती होने को आरूढ़ हो जाती है।[3] भरत के बहुत अनुनय पर रुकती हैं। चित्रकूट मे राम से मिलने के लिए भरत के परिवार, प्रजा एवं सैन्यदल सहित गमन के कारण को भी कवि ने स्पष्ट कर दिया है सभी के साथ जाने का कारण श्रीराम को ससम्मान राज्य अर्पित करना था।

भूप के अभिषेक के सब साज लो, तीर्थ के जल और पावन ताज लो ॥
छत्र चवर गजादिवाहन संग हो, चक्रवर्ती के सभी वे रंग हो ।
साथ सेना हो कि नृप को मान दे, साथ हो मुनि मण्डली जो विधान दे ॥
साथ परिजन हों कि सेवा भार लें, साथ पुरजन हो कि प्रभु स्वीकार लें ।
साथ मणि माणिक्य के भडार हों, साथ राजस विभव के शृ गार हो ।
चक्रवर्ती की समूची शान से वे यहाँ आयें स्वत भगवान से ॥[4]

चित्रकूट मे भरत के आगमन की सूचना कोलो से प्राप्त हो जाने से, रामायण की कथा के लक्ष्मण–रोष–प्रसग का प्रश्न ही नही उठता है। इसी प्रकार चित्रकूट की सभा से पूर्व राम और भरत के एकात मिलन का भी अवसर दिया गया है। काव्य के उपसहार मे भरत माण्डवी का मिलन भी मिश्रजी की निजी कल्पना है।

इस प्रकार परम्परित राम कथा के प्रसगो में मिश्र जी ने नवीन उद्भावनाएं की हैं। इन सब घटना परिवर्तनो और मौलिक प्रसंगों के मूल मे कवि का दृष्टिकोण भरत के चरित्र को गरिमापूर्ण बनाना है।

---

१. साकेत सत–सर्ग २ पृ० ४१
२ वही, पृ० ७६
३. 'नृपति के संग जलने खडी थी, सति निज स्वत्व पर आकर अडी थी ॥'
—साकेत सत पृ० ४१
४. साकेत, सर्ग ७–४७–४९ और, पृ० ९१–९२

'साकेतसंत' के कथा संयोजन मे गुप्त जी के साकेत का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिये चतुर्दश सर्ग मे भरत को हनुमान द्वारा सीता हरण तथा लक्ष्मण को शक्ति लगने की बात कहना, राम की सहायता के लिये भरत का लंका जाने को सन्नद्ध होना एवं वशिष्ठ द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त करके युद्ध में राम की विजय देखना आदि प्रसंग 'साकेत' के ही आधार पर निर्मित हुए हैं। शचीरानी गुर्टू का यह कथन उचित ही है कि "कथानक के सृजन मे मिश्रजी श्री मैथिलीशरण गुप्त के साकेत के बहुत ऋणी हैं। उनकी पद्धति और प्रेरणा पर काव्य की रचना हुई है।"[१] बीच मे कवि की बौद्धिक विवेचना के कारण कथा प्रवाह में शैथिल्य भी आया है। कहीं-कहीं तो कवि का अभिप्रेत विचार-प्रतिपादन अधिक प्रमुख प्रतीत होता है। इससे प्रबन्धत्व मे व्याघात भी आया है किन्तु आधुनिक युग के महाकाव्यो की यह एक सामान्य प्रवृत्ति बन गई है। साकेत संत इसका अपवाद नहीं है।

समष्टि रूप मे साकेतसंत का इतिवृत्त अत्यधिक व्यापक न होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। रामकथा मे भरत का चरित्र त्याग और तपस्या के कारण महान और उदात्त है। उसमे भारतीय संस्कृति की त्याग, तपस्या और कर्तव्य भावना की त्रिवेणी का अद्भुत संगम है। चारित्रिक महत्ता की दृष्टि से भरत का चरित्र गौरवपूर्ण एवं महिमामंडित है। मिश्रजी ने साकेतसंत की रचना से रामकथा के अक्षय भंडार की श्रीवृद्धि ही की है।

दैत्यवंश

कथासार

दैत्यवंश की संपूर्ण कथा १८ सर्गों में विभाजित है।

प्रथम सर्ग का समारम्भ मंगलाचरण और सरस्वती वंदना से होता है, तत्पश्चात दैत्यवंश के वैभव का वर्णन है। दिति के गर्भ से हेमलोचन और हेमकश्यप की उत्पत्ति होती है दोनो पृथक तपस्या कर ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करते हैं। इनसे त्रस्त होकर देववृन्द परम पुरुष से प्रार्थना करते हैं विष्णु क्रमशः वाराहवतार एवं नृसिंह अवतार को लेकर दोनो का वध करते हैं। हेमकश्यप का पुत्र प्रह्लाद धर्म विरोधी होने के कारण दैत्य (असिलोमा, वृत्रक आदि) विरोचन को सिंहासन पर आरूढ़ करते हैं।

द्वितीय सर्ग मे इन्द्र गुरु बृहस्पति एवं देवों सहित विरोचन के पास आते हैं और उसे वैर भाव त्यागने का परामर्श देकर अपनी ओर मिला लेते हैं।

---

१. शचीरानी गुर्टू - वैचारिकी, पृ० ११६

विरोचन देवो की बातों में आकर शुम्भ, निशुम्भ चामर, हयग्रीव उत्कल आदि असुरों को निकाल देते हैं। ये सभी असुर मधुकैटभ और महिष के दल मे जाकर मिल जाते हैं। विरोचन के पुत्र बलि को जब यह ज्ञात होता है तो वह गुरु शुक्राचार्य से परामर्श करता है। शुक्राचार्य विरोचन को देवो की कुमन्त्रणा के लिये सजग करते हैं। विरोचन उनकी सलाह के अनुसार असुरो से पुन. सधि करने के लिये बलि का विवाह करता है। विवाहोपरान्त बलि राज्यासीन होकर सैनिक सगठन तथा प्रजाहित हेतु समस्त सुविधाएं जुटाता है। ९९ अश्वमेध यज्ञ करने के पश्चात भी उसका राज्य कोष अमित रहता है।

अनेक वर्षों के बाद बलि के बेन नामक पुत्र पैदा होता है। वह शिव की आराधना करता है। अदेवो के उत्कर्ष को देखकर देवो को शका होती है। वे मन्त्रणा करते है और विनाश के लिये चन्द्रमा और बृहस्पति को भेजते हैं।

तृतीय सर्ग–दैत्यो के वैभव को देखकर देव समूह खिन्न होता है और वे एक षडयन्त्र रचते है। सब मिलकर बलि की सभा मे जाकर मुदित मन से प्रस्ताव करते हैं। सर्वप्रथम चन्द्रमा कहते हैं कि हम एक ही कुल की सतान हैं अत. तुच्छ बातो पर विकट बंधु विरोध का बडा दुष्परिणाम होगा। कहीं दानव भी हमारी निर्बलता का लाभ उठाकर अपने भाग के लिये कलह नही कर बैठें–अगर ऐसा हो गया तो हमारा सारा अस्तित्व मिट जायेगा। तत्पश्चात सुरगुरु बृहस्पति ने इन्द्र के प्रस्ताव का अनुमोदन किया और सधि करने पर बल दिया। उन्होने कहा कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इस वश के प्रतिकूल हैं। श्रीहरि ने भी छलपूर्वक दैत्यों का वध किया है। अतः तुम दोनों मिलकर बधक विधाता (ब्रह्मा) को यह पाठ पढ़ादो कि तपस्वी को वह इस प्रकार वरदान न दें। इधर ब्रह्मलोक उजाड दो और फिर विष्णु से बात करो। इस प्रकार प्रबल शत्रुओं को दबाकर ब्रह्मलोक और बैकुण्ठ को मिलाकर दोनों मिलकर शासन करो। शिव कैलाश पर भग में मस्त रहते हैं। जब वे विधि विष्णु का पतन सुनेंगे तो अकेले कुछ नही कर सकेंगे। तब तुम उन्हें प्रसन्न कर इच्छानुसार वरदान ले लेना।

सुरगुरु के यह वचन सुनकर शुक्राचार्य ने मुस्कराकर दैत्य नरेश को समझाया कि ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश से वैर कराकर तुम्हारे वश का नाश कराना चाहते हैं। जब जब हरि ने दैत्यों का वध किया, इन्होंने उनकी स्तुति की थी। हर समय ये शत्रु से मिलकर कुमन्त्रणा करते रहे हैं। अब तो ये बलि के उत्कर्ष से घबराकर समझौता करने आये है। इस पर बलिराज ने नित्य का कलह समाप्त करने के उद्देश्य से इनके प्रस्ताव का अर्द्धाश ही स्वीकार करने की सलाह दी। इस पर वरुण ने कहा कि सिन्धु में कमला और अपार रत्नराशि है अतः सागर

मंथन करके उसके सम भाग को बाट दीजिये। वलि ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

सागर मथन के लिये वासुकिनाग की रज्जु और मदराचल को मथनी बना कर बडी बडी औषधियां डाली गयी। दैत्यो ने वासुकी का मुख पकडा था अत. वासुकि के विष उगलने पर उनका रग काला पड गया। अपार कष्ट सहकर भी दैत्यो ने सागर मथन किया। सर्वप्रथम सागर से हलाहल नाम का एक विष निकला जिसे श्रीहरि के आग्रह पर शिव ने कठ मे धारण कर लिया। फिर कल्पतरु, गज, वाजि, रम्भा, धेनु, धनु आदि निकले, जिन्हे सुरों ने लिया। कौस्तुभ लेने की इच्छा दैत्यो की हुई किन्तु वलि ने मना कर दिया। तब कमला निकली जिसके लिये सभी लालायित थे। अत यह तय हुआ कि प्रात स्वयवर होगा और जिसे यह सुन्दरी चाहेगी, वरमाला पहना देगी। पुन मथन करने पर धनवतरि पीयूप घट लेकर निकले। सुर जब प्रमुद मन से आगे बढे तभी बलिराज ने कडक कर कहा कि यही खडे रहो और घट लेकर चले गये।

चतुर्थ सर्ग—दूसरे दिन प्रात सिन्धु सुता का स्वयवर हुआ। सागर ने एक सुन्दर भवन का निर्माण किया। देव अदेव सभी वहा बैठ गये। शारदा ने एक-एक देवता से सिन्धु सुता का परिचय कराया। अन्ततोगत्वा सिन्धु सुता ने श्रीहरि को वरण किया।

अमृतपान के लिये शक्रादि देवो ने श्रीहरि से प्रार्थना की तथा विष्णु ने छद्म तिया का रूप धारण कर सब को मोह लिया और देवो को अमृत और अदेवों को वारुणी पिलादी। देवो की पक्ति मे राहु भी देववपु धारण कर बैठ गया और अमृत पी गया। तभी शशि के बताने पर इन्द्र ने वज्र से राहु का सिर काट दिया किन्तु अमृत के प्रभाव से वह बच गया और राहुकेतु बन गया। उसने बलि के पास जाकर सारा समाचार कह दिया। अत मे कामदेव ने तिय रूप धारण कर सब सैनिको को धोखे मे डाल दिया और बलि के घर से अमृत कलश ले आया। उस समय बलि आदि दैत्य सिन्धु सुता के स्वयवर मे गये हुए थे।

पचम सर्ग—राहु से अमी वितरण की विडम्बना सुनकर बलिराज ने गुरु, मत्री और सभासदो से परामर्श किया और समर की तैयारी हुई। देवो ने भी व्यूह रचना की। देव अदेव चमुओं सहित समरागण मे आ डटे। सर्गान्त मे बाणासुर ने पद्मुख से सवाद किया कि हम दोनों ने शिव से सर सधान सीखा, उमा का दूध पिया फिर यहां शत्रुता क्यो ?

षष्ठ सर्ग—पद्मुख ने कहा कि कर्त्तव्य-धर्म बडा कठोर है। मैं देवों की सेना का सेनानी हूं अत कर्त्तव्य पथ पर अडिग रहना है। इसके बाद सेनानी और

बाणासुर मे परस्पर भयकर सग्राम छिड गया। बहुत दिनो तक युद्ध चलता रहा। बाणासुर के बाद तारक सेनापति बने तब इन्द्र ने बलि को बुलाया। दोनो मे भयकर युद्ध हुआ। अठाइसवे दिवस दैत्यो की विजय हुई।

सप्तम सर्ग—सचेत होने पर इन्द्र छिपते छिपते इन्द्रपुरी मे अपनी माता के पास पहुचे और पुनः युद्ध के लिये आज्ञा मागी। माता ने समझाया कि दैत्यो ने सम्पूर्ण पुरी पर कब्जा कर लिया है अत अपने प्राण बचाने के लिये मानसरोवर के कमल नाल मे जाकर छिप जाओ। हम अबलाओ को बलि नही मारेगा। इन्द्र चला गया। इधर प्रात काल बलि ने समस्त अलकापुरी को लुटाया और अंत मे नहुष को राज्य सौंप दिया। इन्द्र वर्षो तक मानसरोवर मे रहा। एक दिन हस के साथ अपनी माता, पत्नी और पुत्र को सन्देश भेजा कि दु ख के दिन सदा नही रहते। धैर्य धारण करना चाहिये। हस शची को सन्देश देकर वापिस लौट आया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर हस को वरदान दिया।

अष्टम सर्ग—राजा बलि विजयोपरान्त अपनी पुरी मे आया। गुरु शुक्र एव प्रजा द्वारा उसका भव्य अभिनदन किया गया। माता-पिता ने उसे आशीर्वाद दिया। सम्पूर्ण नगर विजयोपलक्ष मे आनन्दोत्सव मे मग्न हो गया।

नवम सर्ग—बलि ने गुरु शुक्र से कहा कि बल स हमने इन्द्र को जीत लिया पर इससे हमारा राज्य स्थायी नही हो सकेगा क्योकि शत्रु के मन मे सदा बैर की भावना रहेगी। ९९ अश्वमेध तो कर लिय है, सौ पूरे करके मैं इन्द्रासन का अधिकारी बन सकता हूँ। गुरु की आज्ञा स बलि ने सौवा अश्वमेध यज्ञ प्रारभ कर दिया। नर्मदा के तट पर विधिवत यज्ञ कार्य प्रारम्भ हुआ पर छीक हो जाने से आशका भी हुई। बाणासुर अश्व को लेकर ससैन्य बढ़ा। मार्ग मे अक्षय कुमार ने अश्व को पकड लिया और मेघनाथ युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ। लेकिन सायकाल का समय होने के कारण दशानन ने रोक दिया। दोनो सेनाए चली गई। बाणासुर न जब यह समाचार बलि को भिजवाया तो बलि को बडी चिंता हुई।

दशम सर्ग—देवमाता अदिति के गर्भ से श्रीहरि न वामन के रूप मे जन्म लिया। वामन बहुत तेजस्वी था। उसे सभी विद्याओ मे पारगत किया गया। देवो के दु ख से दु खी रहन पर भी अदिति वामन को कुछ नही कहती। वह वामन से विशेष प्रेम करती थी। उसको खिन्न चित और आँसु बहाते देख कर वामन ने एक दिन कारण पूछा। उसके अत्यधिक आग्रह पर अदिति ने दैत्यो द्वारा देवो के पराभव की कथा को सविस्तार सुनाया। दैत्यो के आक्रमण और शची पर आघात इन्द्र की दुर्दशा की करुण कथा सुनकर वामन अमर्ष पूरित हो गय। वह दैत्यो

का नाश करने को सन्नद्ध हो गया किन्तु अदिति ने समझाया कि पहले बलि को जाकर समझा दो। यदि वह न माने तो जो चाहे सो करना।

एकादश सर्ग—के प्रारम्भ मे प्रकृति वर्णन है। बाद मे वामन अपने पिता कस्यप के पास जाता है और अदिति के दुख और दैत्यो के अत्याचारो का वर्णन किया तथा उपाय पूछा। कस्यप ने देवो की कुटिलता तथा दैत्यो की बुद्धिहीनता का समर्थन किया। किन्तु अन्ततोगत्वा वामन को आज्ञा दे दी। वामन बलि के पास गगन मार्ग से वटु का वेष बनाकर आये।

द्वादश सर्ग—वामन बलि की यज्ञशाला मे जाते है तथा तीन पग पृथ्वी की याचना करते हैं। शुक्राचार्य वामन की प्रवचना के रहस्य को बलि से अवगत कराते हैं पर बलि दृढ प्रतिज्ञ रहते है। बलि से तीन पग धरती मागकर वामन दो पग में ही आकाश पाताल और पृथ्वी नाप लेते है। तीसरे पग के लिय बलि ने स्वशरीर अर्पण कर दिया। वामन ने बलि को बाँधकर पाताल भेज दिया देवता पुन इन्द्रपुरी मे आ गये।

त्रयोदश सर्ग—अश्वमेघ यज्ञ के समय मे बलि पुत्र बाणासुर जब विजयी होकर लौटा तो पुर उजडा हुआ पाया। स्वागतार्थ भी कोई नही आया। अन्त मे माता और गुरु से सारी घटना ज्ञात हुई। तब बाणासुर ने उत्तर मे आक्रमण कर सोनपुर बसाया। वही समस्त दैत्य रहने लगे। बाणासुर के उषा नाम की कन्या हुई जो असाधारण सुन्दरी थी। उसकी सहेली चित्ररेखा थी। उषा ने स्वप्न मे अपने प्रिय को देखा और चित्ररेखा से प्राप्त करने को कहा। चित्ररेखा मन्त्रबल से यदुवंशी अनिरुद्ध को द्वारिका से ले आई। उषा और अनिरुद्ध विहार करने लग गये। उधर द्वारिका म अनिरुद्ध की खोज प्रारम्भ हुई। उसकी माता चिन्तित रहने लगी।

चतुर्थ सर्ग—चरो द्वारा अनिरुद्ध की खोज कराई गयी। प्रमुख चर ने सोनपुर के समस्त समाचार बलदाऊ को बताये। साथ ही बाणसुता का प्रम और नृप-नीति का भी वृत्तात सुनाया।

पचदश सग—बलदाऊ ने समस्त प्रजाजनो, मन्त्रियो एव सेनाध्यक्षों को बुलाकर परामर्श किया। सबकी सलाह से वे यदुवशी सेना सहित सोनपुर आये। अक्रूर जी सन्देश लेकर बाण की सभा मे उपस्थित हुए। बाणासुर को सन्देश बुरा लगा। उसने कह दिया कि गायो को चराने वाले राजकुल से विवाह नहीं कर सकते। दोनो दलो की सेनाए युद्धोद्यत हो गयी। तभी शिव आय और बाणासुर को समझाकर विवाह हेतु प्रसन्न कर लिया। अनिरुद्ध भी आकर से मिल।

षोडस सर्ग— उषा अनिरुद्ध विवाह की सम्पूर्ण प्रथाओं का सविस्तार वर्णन है। बाणासुर कृष्ण-बलराम की सम्पूर्ण बरात का स्वागत करता है। अन्त में बरात द्वारिकापुरी के लिये विदा होती है।

सप्तदश सर्ग—बाणासुर की पत्नी ऊषा की चिंता से चिन्तित रहती है। उसे बुलाने के लिए पुत्र प्रसकंद कुमार को भेजा जाता है। विरोचन जरावस्था में रोगग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त होता है। बाणासुर पुत्र प्रस्कंद कुमार का राज्याभिषेक करके स्वयं कृच्छ्रतप करके शिवलोक प्रस्थान करता है।

अष्टादश सर्ग में नृप प्रस्कंदकुमार राज्य का भार मंत्रियों को सौंपकर रानियों एवं कुछ सेना के साथ समस्त नगर का भ्रमण करता है। भ्रमण करते समय समस्त गुरुकुलों, यज्ञशालाओं, राजमार्गों एवं व्यवसायिक वर्गों आदि का पर्यवेक्षण करता है। तदोपरांत ऋतुओं के अनुकूल रानियों सहित आमोद प्रमोद, विलास एवं शिवाराधना के साथ काव्य का अन्त होता है।

वस्तु का पौराणिक आधार

दैत्यवंश महाकाव्य का कथानक प्रख्यात और पौराणिक है। कथा का मुख्य आधार ग्रंथ श्रीमद्भागवत पुराण है। वैसे दैत्यवंश की कथाएं विष्णु पुराण, वामनपुराण एवं नृसिंह पुराण भी प्राप्य हैं।

सृजन प्रेरणा के स्रोत

दैत्यवंश के सृजन की प्रेरणा कवि को मूलतः 'रघुवंश' के अध्ययन से प्राप्त हुई। काव्य की प्रस्तावना में कवि ने स्वीकार किया है कि बाल्मीकीय रामायण, श्रीमद्भागवत हरिवंश पुराण आदि के अध्ययन ने उसे राक्षसों, दैत्यों और असुरों के विवेचनात्मक चरित्र विश्लेषण की दृष्टि दी। माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाथ वध' तथा गुप्तजी के 'साकेत' ने उपेक्षित पात्रों पर काव्य सृजन का मार्ग प्रशस्त किया। स्वभावतः दैत्यवंश की रचना में इन सभी कृतियों का योग रहा है।

मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं

दैत्यवंश का मुख्याधार श्रीमद्भागवत महापुराण होने के कारण कथाएं पौराणिक और प्रख्यात तो हैं ही, कवि ने भी कथा चयन में मौलिकता का प्रदर्शन नवीन प्रसंगोद्भावनाओं द्वारा किया है। उदाहरण के लिए दैत्यवंश के निम्न लिखित प्रसंग मौलिक और सर्वथा नवीन हैं:—

प्रथम सर्ग मे वराह ने आकर हेम लोचन की पुष्प वाटिका और सुन्दर उद्यानो को उजाडा जिससे क्रोधित होकर हेम लोचन आया। चतुर्थ सर्ग मे सिन्धु-सुता के स्वयवर के अवसर पर उसके साथ सरस्वती भी है जो सभी देवो और प्रदेवो का परिचय कराती है। कवि की कल्पना शक्ति का परिचय अनेक स्थलो पर मिलता है। जैसे कवि ने ब्रह्माजी का परिचय इस प्रकार दिया है —

"तीनहू लोक के ये करता, अरु चारहूँ वेद बनावन वारे।
दाढी भई सन-सी सिगरी, सिर पै कछु केस न दीसत कारे॥
नारद से इनके हैं सपूत, तिहूँ पुर ज्ञान सिखावन हारे।
प्रेम की पास मे बाधन को, तुम्हे दूढे बाबा है यहा पगु धारे॥

(सर्ग ४, पृ० ३५)

सप्तम सर्ग मे इन्द्र का हस के साथ शची को सन्देश प्रेषित करना तथा अमरावती की दशा का वर्णन प्रसग भी नवीन है। वैसे इस प्रसग पर कालिदास के मेघदूत का प्रभाव भी है। दशम सर्ग मे वामन के जन्म, बाल लीलाओ द्वारा वात्सल्य का सजीव चित्र अ कित किया गया है। त्रयोदश सर्ग मे चित्ररेखा द्वारा अनिरुद्ध का हरण भी मौलिक प्रसग है।

इन नवीन प्रसगोद्भावनाओ द्वारा दैत्यवश के पौराणिक कथानक मे नवीनता का विधान किया गया है।

इसके अतिरिक्त दैत्यवश के वस्तु विधान की सर्वाधिक मौलिक विशेषता पौराणिक आख्यान के साथ साथ जीव विकासवाद एव मानव मनोविज्ञान का विकास है। क्योकि प्रस्तुत महाकाव्य मे देवत्व और दानवत्व को प्रवृत्तिमूलक दृष्टि से भी प्रस्तुत किया गया है। दैत्यवश के भूमिका लेखक श्री उमेशचन्द्र मिश्र के अनुसार—"मानव का अविकसित या अपविकसित रूप दैत्य और सुविकसित रूप देव है। फलत दैत्य प्रकृति को आदि मानव रूप कहा जा सकता है, जिसमे शारीरिक बल प्रचुर मात्रा मे मौजूद है, क्योकि वह प्रकृति की सीधी देन है। परन्तु मस्तिष्क बल अधिक नही है। शारीरिक और मानसिक शक्तिया प्राय एक से अनुपात मे किसी वर्ग मे नही पायी जाती। विकास क्रम मे यह भी देखा गया है कि किसी वर्ग मे जैसे जैसे मस्तिष्कीय शक्तियो का विकास होता है, शारीरिक बल का ह्रास भी हो जाता है। छल, प्रपच, धूर्तता, विश्वासघात आदि मस्तिष्क के विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल मे चढे-बढे हैं तो उनमें सरल विश्वास, सत्यनिष्ठा और सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर में निर्बल हैं पर चतुर अधिक है। वे बात बात मे दैत्यो को धोखा देते हैं और उनकी सरल

प्रकृति से लाभ उठा कर उन्हे छल लेते हैं।"[1] कथा में हम इस तथ्य का स्वाभाविक स्वरूप विकसित पाते हैं। यद्यपि दैत्यवंश के कवि ने कामायनीकार की भांति ऐसी किसी बात का उल्लेख प्रस्तावना मे नहीं किया।

दैत्यवश के वस्तु विधान मे अन्विति का अभाव अवश्य खटकता है। घटनाएं कही कही तो बिखरी हुई सी प्रतीत होती है। इसका कारण अनेक राजाओं की कथाओ का समावेश है। "दैत्यवश" छ (हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और स्कद) राजाओ का कथानक है। प्रमुख कथा की दृष्टि से बलि का चरित्र ही महत्वपूर्ण है। मूलकथा का लक्ष्य दैत्यों की चारित्रिक विशेषताओ का उद्घाटन है, जिसका सम्यक विकास बलि के चरित्र मे ही होता है। सम्पूर्ण दैत्यवश से संबंधित होने के कारण कथानकमे अति विस्तार भी हो गया है।

सर्वाशेन कवि का प्रयास सराहनीय है। दैत्यवंश मे प्रथम बार पौराणिक इतिवृत्त को क्रातिकारी ढग से प्रस्तुत किया गया है। दैत्यवशकार का यह प्रयास युगजीवन की विचारधारा के अनुरूप और सामयिक है।

कथासार :

रश्मिरथी

प्रथम सर्ग—इस सर्ग के प्रारम्भ मे रगभूमि का दृश्य है जहा अर्जुन अपनी धनुर्विद्या के प्रदर्शन द्वारा उपस्थित जनसमूह द्वारा अपनी जय जयकार सुन रहा है। इसी अवसर पर कर्ण आकर अपने शौर्य और पराक्रम का प्रदर्शन करके सबको चकित कर देता है। कर्ण अर्जुन को द्वन्द्व युद्ध के लिए आमंत्रित भी करता है। किन्तु अर्जुन इसके लिये प्रस्तुत नही। इसी समय कृपाचार्य कर्ण का नाम, कुल, जाति आदि पूछते हुए कहते हैं कि अर्जुन से लडने के लिये उसे राज्य कुलीन होना चाहिये। कर्ण आवेश मे जातिवाद की निन्दा करता है। उस सभा मे दुर्योधन कर्ण के गुणो का सम्मान करता है और उसके सिर पर राजमुकुट रख कर अंगदेश का स्वामी बना देते हैं। किन्तु संध्या हो जाने के कारण सभी योद्धा लौट आते हैं। अर्जुन और द्रोणाचार्य चितातुर चल देते हैं। कर्ण को कौरव शंख बजाते हुए ससम्मान ले जाते। रनिवास जब राजभवन को लौटता है तो कुन्ती चिन्तातुर दिखाई देती है।

द्वितीय सर्ग—कर्ण महेन्द्र गिरि पर्वत पर जाकर अपने को ब्राह्मण बताकर परशुराम से शस्त्रास्त्र एवं युद्ध विद्या की शिक्षा लेता है। एक दिन परशुराम

---

१ श्री उमेशचन्द्र मिश्र : दैत्यवंश—प्रस्तावना, पृ० ६–७

कर्ण की जंघा पर सिर रखकर शयन कर रहे थे, उसी समय एक विष कीट ने कर्ण की जाघ कुरेदकर रक्त प्रवाहित कर दिया, किन्तु गुरू की निद्रा भग न हो, अत कर्ण कष्ट सहन कर मौन बैठा रहा। रक्त की गर्म धार का शरीर से स्पर्श होते ही परशुराम जगे और क्रोध मे कर्ण की जाति पूछी, क्योकि वे मानते थे कि ब्राह्मण कुमार इतना सहनशील नही हो सकता। कर्ण के सूत पुत्र कहने पर परशुराम ने रण मे सब विद्या भूल जाने का शाप दे दिया। किन्तु यह ज्ञात होने पर कि कर्ण ने अर्जुन को परास्त करने के लिये छद्मवेष धारण किया है, उसका क्रोध शात हुआ। कर्ण की गुरु भक्ति, निष्ठा और वीरत्व से प्रसन्न होकर परशुराम ने कहा कि वह शाप मुक्त तो नही हो सकता किन्तु भारत का इतिहास उसके चरित्र की गाथा से उज्ज्वल होगा। कर्ण गुरु के चरणो की धूल लेकर चला आया।

तृतीय सर्ग—पाडव १३ वर्ष का अज्ञातवास समाप्त कर लौटे और उन्होने श्री कृष्ण को दूत बनाकर सधि प्रस्ताव के लिय दुर्योधन के पास भेजा। दुर्योधन ने अज्ञानवश श्री कृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयत्न किया। वहा कृष्ण ने अपने विराट् रूप का प्रदर्शन करके सबको सशकित कर दिया। वे युद्ध की घोषणा करके चल दिये। मार्ग मे कर्ण सकुचित भाव से मिला। कृष्ण ने कर्ण को रथ पर बैठकर उसे पाडवो से मिलने की बात कही। श्री कृष्ण ने कर्ण को उसके जन्म की बात भी बतादी। किन्तु कर्ण ने बडी विनम्रता और मानवोचित तर्कों के द्वारा कृष्ण के परामर्श को अस्वीकार कर दिया और कहा कि अब युद्ध-भूमि मे ही आपके दर्शन होगे। श्री कृष्ण कर्ण को रथ से उतार कर लौट आये।

चतुर्थ सर्ग—दोपहर के समय कर्ण गगा के तट पर ध्यान लीन था तभी इन्द्र ने ब्राह्मण वेश मे आकर कर्ण से कवच और कुडल माग लिये। कर्ण ने सच्चे दानी की भाति अपने शरीर से काटकर जन्मजात कवच और कुडलो को दे दिया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर कर्ण को अमोघ वस्त्र दिया।

पञ्चम सर्ग—कुन्ती छिपकर कर्ण के पास आई और उसे जन्म की घटना से अवगत कराया। उसने भाइयो से मिलने का भी अनुरोध किया। किन्तु कर्ण अपने कर्त्तव्य और दुर्योधन को दिये गये वचन के प्रति दृढ़ रहा। अन्ततः कुन्ती ने अर्जुन को छोड सब पाडव पुत्रो को न मारने की प्रतिज्ञा लेकर प्रस्थान किया।

षष्ठ सर्ग—इस सर्ग मे महाभारत के युद्ध का वर्णन है कौरवो के सेनानायक भीष्मपितामह घायल होकर शरशैया पर जब शयन करने लगे तो द्रोणाचार्य सेनापति हुए। तभी कर्ण ने युद्ध मे भाग लेना प्रारम्भ किया। भीष्म पितामह ने शैय्या पर पडे ही कर्ण को युद्ध बद करने का परामर्श दिया किन्तु कर्ण ने अस्वीकार

कर दिया। कर्ण के पराक्रम से पांडवो की सेना मे हाहाकार मच गया। कर्ण अर्जुन को ढूंढ रहा था तभी श्री कृष्ण ने घटोत्कच को युद्ध मे बुला लिया। उस महामानव के वध हेतु कर्ण को इन्द्र द्वारा दिये गये एकघ्नी अस्त्र का प्रयोग करना पडा। घटोत्कच के वधोपरान्त शक्ति इन्द्र लोक को लौट गई। घटोत्कच के वध से कौरव बडे प्रसन्न थे किन्तु कर्ण के पास अमोघ अस्त्र न रहने के कारण वह निराश था।

सप्तम सर्ग—द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् कर्ण कौरवो का सेनानायक बना। कर्ण ने अद्भुत पराक्रम दिखाया। अतत. युद्ध क्षेत्र म कर्ण के रथ का एक पहिया फस गया। जब वह पहिया निकाल रहा था तब श्री कृष्ण के आदेश से अर्जुन ने अनीतिपूर्वक कर्ण का निरस्त्र अवस्था म वध कर दिया। पाडवो म प्रसन्नता की लहर दौड गई परन्तु प्रकृति बडी उदास थी। सर्वत्र निजनता एव शोक सन्तप्त वातावरण छा गया। श्री कृष्ण स्वय कर्ण के निधन पर क्षुब्ध थे। उन्होने कहा कि कर्ण के निधन से मनुजता का नेता खो गया। वह महादानी और जगत् की ज्योति था।

कथाचयन का आधार एव सृजन प्रेरणा—

रश्मिरथी काव्य की रचना का मुख्याधार 'महाभारत' है। कथावस्तु का आधार पौराणिक होते हुए भी रश्मिरथी की सृजन प्रेरणा नितात नवीन और युगीन है। आज के युग मे जाति एव कुल का दर्प व्यक्ति के गुणात्मक विकास के मार्ग मे अवरोध है जिसका प्रतिकार आवश्यक है। वस्तुत इतिहास के ऐसे आख्यान और चरित्र प्रस्तुत करने अनिवार्य हैं, जिससे सामाजिक जीवन की अधोगत मान्यताओ का बहिष्कार हो और मानवीय गुणों की महत्ता को स्वीकृति मिले। रश्मिरथी काव्य सृजन की मूल प्रेरणा मे यही विचारधारा कार्यरत रही है। दिनकर जी ने स्वय भूमिका मे लिखा है कि, "हमारे समाज मे मानवीय गुणों की पहचान बढने वाली है। कुल और जाति का अहकार विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नही, जो उसके माता पिता या वश की देन हैं। इसी प्रकार, व्यक्ति अपने निजी गुणों के कारण जिस पद का अधिकारी है, वह उसे मिलकर रहेगा? यहा तक कि उसके माता–पिता के दोष भी इसमे बाधा नहीं डाल सकेंगे। कर्ण चरित का उद्धार एक तरह से, नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।"[1]

---

1 रामधारीसिंह दिनकर रश्मिरथी, पृ० घ

कथानक समीक्षा

रश्मिरथी एक कथा काव्य है, जिसमे कर्ण चरित्र से सम्बन्धित महाभारत की घटनाओं का कथात्मक सयोजन किया गया है। रश्मिरथी के कथानक की विशेषता यह है कि कवि ने कर्ण के चरित्र से सम्बन्धित घटनाओं की पुनरावृत्ति मात्र नही कर दी है, वरन् आवश्यकतानुसार अनेक स्थलो को सशोधित करके नवीन रूप मे प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है।

प्रस्तुत काव्य मे चिन्तन पक्ष की प्रबलता और चरित्र-विश्लेषण पर दृष्टि केन्द्रित होने के कारण कथा-विधान मे नवीन प्रसंगोद्भावनाओ की ओर कवि ने विशेष ध्यान नही दिया है। काव्य के कथाचयन मे घटनाओं के अभाव को कवि ने स्थान स्थान पर प्राकृतिक वातावरण की सृष्टि एव वस्तु वर्णनों की पृष्ठभूमि निर्मित करके दूर कर दिया है।

कथावस्तु का विकास स्वाभाविक एवं समगति से हुआ है। दूसरे शब्दों में 'रश्मिरथी' की कथा मे पर्याप्त गतिशीलता है। सर्ग विधान की दृष्टि से आरम्भ से अन्त तक सभी सर्गों के कथानक मे स्पष्ट घटना क्रम और प्रसगो की पूर्वापर अन्विति है।

दिनकर ने यद्यपि 'रश्मिरथी' के कथानक मे नवीन मार्मिक प्रसगो की सृष्टि नही की है, किन्तु प्रचलित और पुरातन प्रसंगो को मार्मिकता प्रदान करने मे वे पीछे नही रहे है। उदाहरण के लिये प्रथम, द्वितीय और पचम सर्गों को इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहा जा सकता है।

उर्मिला

कथासार

प्रथम सर्ग—उर्मिला महाकाव्य का प्रथम सर्ग अनेक उपशीर्षको मे बंटा हुआ है। काव्य का आरम्भ 'प्रोत्साहन' नामक उपशीर्षक से होता है जिसमें लेखनी को उर्मिला की करुण कथा कहने का प्रोत्साहन है। इसी मे कवि ने वाल्मीकि और तुलसी की उर्मिला विषयक उदासीनता का भी सकेत किया है। 'प्रार्थना' नामक द्वितीय उपशीर्षक मे उर्मिला की वन्दना की गई है। इसे दूसरे शब्दों मे मंगलाचरण भी कह सकते हैं। तीसरा उपशीर्षक 'ध्यान' है जिसमें उर्मिला का ध्यान केवल चार पंक्तियो की चतुष्पदी मे किया गया है।

'पुर प्रदक्षिणा' उपशीर्षक के अन्तर्गत जनकपुर नगर का वर्णन है 'जनकपुर प्रदेश' मे जनकपुरी के वैभव एव सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन है। 'प्रसा प्रागणं मे जनक की दुहिताओ का वर्णन किया गया है।

सीता और उर्मिला का सौन्दर्य वर्णन करते हुए कवि उनकी केलि क्रीडाओ तथा आहार-विहार का सजीव चित्र अकित करता है। उपवन मे सीता और उर्मिला दोनो परस्पर कपोत-कपोती और आर्य बाला की कहानियां सुनाती है। इन कहानियो मे सीता और उर्मिला के भावी जीवन का आभास है। सीता की कहानी मे एक राजा दूसरे राजा की कन्या के अपहरण के लिये आक्रमण करता है। किन्तु उसकी चेष्टा विफल हो जाती है। वह पराजित होता है। उर्मिला की कहानी मे एक कपोत आत्मज्ञान के लिये वन मे चला जाता है कपोती विरह विदग्ध होती है और एक दिन उसका प्राणान्त भी हो जाता है। दोनो कपोत की कहानी पर विवाद भी करती है। सीता कहती है कि यदि वह कपोती होती तो कपोत के साथ वन मे अवश्य चली जाती किन्तु उर्मिला कहती है कि ऐसे अवसर पर हठवादी होना उचित नही।

दोनो फूल चुनकर चली जाती है जनक और उनकी पत्नी पुत्रियों से वात्सल्य एव विनोदपूर्ण बाते करते हैं। जनक पुत्रियो के भविष्यो पर भी विचार करते है।

द्वितीय सर्ग–इस सर्ग मे प्रारभ से लेकर 'राजप्रासाद मे' उपशीर्षक तक धनुष यज्ञ का वर्णन है, जिसमे जनक की चारो पुत्रियो का विवाह महाराज दशरथ के चारो पुत्रो से होता है। "राजप्रसाद मे" उपशीर्षक मे राम और उनके भ्रात के विवाह के उपरान्त छाए आनन्दोल्लास का वर्णन है। सीता और उर्मिला सभी मुक्त कठ से प्रशसा करते हैं। कवि ने विशेषकर उर्मिला के गुणों की भू भूरि प्रशसा की है।

इस सर्ग का दूसरा उपशीर्षक 'मुकलित कुसुमदर्शन" है जिसमे लक्ष्मण औ उर्मिला भ्रमण के लिये विन्ध्याद्रि जाते हैं कवि ने प्रणय के बडे सुन्दर दृश्य अकित 'किये है। नवविवाहित दंपति की प्रणय क्रीडाओ का अकन करते समय वासना का कही वेग नही है बल्कि प्रेम की सरसता का सुन्दर अकन हुआ है। लक्ष्मण और उर्मिला के परस्पर सवादों मे प्रेम के सच्चे स्वरूप और विशेषताओ का भी वर्णन 'है।

तृतीय सर्ग–सर्ग का प्रारम्भ 'आँसू' के सम्बन्ध मे कवि के विचारों से होता है। "आसू" की उत्पत्ति के कारण, प्रयोजन और सार्थक्य पर कवि ने सुन्दर

कल्पनाएं की हैं। इसके अनन्तर सीता राम के वनगमन के अवसर पर लक्ष्मण उर्मिला से विदा मांगने जाते हैं। लगभग सौ पृष्ठों से भी अधिक में दोनों का भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी वाद-विवाद है। उर्मिला आवेश मे यहाँ तक कह देती है कि .—

"यह कैकेयी कौन ? कि जो श्री रामचन्द्र को भेजे वन ?
यह कैकेयी कौन ? उजाडे, जो सीता का सुखद सदन ?
यह कैकेयी कौन उर्मिला का, उपवन जो करे वह न ?
कैकेयी ? लूट ले सुमित्रा, माता की गोदी का धन ?[1]

लक्ष्मण सब प्रकार से उर्मिला को समझाते हैं। दोनो के वार्तालाप के मध्य सीता भी आ जाती है। उनको लक्ष्य करके भी उर्मिला ने बहुत सी बातें अपनी मर्म व्यथा को व्यक्त करने को कहीं। अन्तत. उर्मिला ने कहा कि —

पर, हे आर्य। आत्म आहुति की।
यह घटिका यदि आई है
तो मे बाधा नही बनूंगी।
श्री रघुवीर दुहाई है।[2]

फिर लक्ष्मण माता सुमित्रा से विदा लेने गये। लक्ष्मण ने माता की आज्ञा और आदेशो को शिरोधार्य कर निम्न प्रतिज्ञा से प्रस्थान किया।

"माँ देखोगी दूध तुम्हारा नही लजायेगा लक्ष्मण,
देकर अपने प्राण करेगा, वह आदर्शों का रक्षण।"[3]

चतुर्थ सर्ग—इस सर्ग का नाम विरह मीमासा है। 'उर्मिला' के रचयिता ने विरह का व्यापक स्वरूप विवेचन किया है। उसने विरह की महिमा और ससार मे उसके प्रसार का विस्तार से वर्णन किया है। प्रकृति के एक एक उपादान मे विरह भाव की कल्पना की गई है। संसार की वेदना और करुणा को विरह का ही परिणाम माना गया है।

उर्मिला भी विरह वेदना से व्याकुल है। वह प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा में लम्बी अवधि से वियोग को सह रही है।

पंचम सर्ग—इस सर्ग की रचना दोहो और सोरठो मे की गई है। ७०४ दोहे सतसई का रूप ग्रहण कर लेते है। इसमें ब्रज और खडी बोली का मिश्रित रूप है। एक एक दोहे मे भावो की सुन्दर छटा दर्शनीय है।

---

१. उर्मिला, पृ० १३५
२. उर्मिला, पृ० ३०३
३. वही, पृ० ३३६

सम्पूर्ण सर्ग मे विरहणी उर्मिला की मूक वेदना को साकार किया गया है। विविध ऋतुओ मे पावस ऋतु उर्मिला को अधिक कष्ट देती है। प्रिय की स्मृतिया उसे विह्वल किये रहती है उर्मिला की विरह वेदना विश्व व्यापी है। उसकी व्यथा बडी करुण और हृदय द्रावी है।

षष्ठ सर्ग—यह काव्य का अन्तिम सर्ग है। इस सर्ग का प्रारम्भ रावण वध के उपरान्त राम द्वारा विभीषण को लका के राज्य दिये जाने से होता है। विभीषण के राज्याभिषेक के अवसर पर राम धर्म की महत्ता पर वक्तव्य देते है। फिर पुष्पक विमान मे राम, सीता और लक्ष्मण अयोध्या लौट आते हैं। मार्ग मे लक्ष्मण को ध्यान मग्न देख सीता अपने देवर से वाग्विनोद भी करती है कि कही उर्मिला की स्मृति तो नही हो रही। दोनो के सवाद मे सीता की सहानुभूति भी चित्रित है। राम के अयोध्या आगमन पर सर्ग की समाप्ति हो जाती है।

कथात्मक आधार—

कथानक की दृष्टि से 'उर्मिला' महाकाव्य की रचना का स्थूल आधार राम कथा है। राम-कथा का पुराण ग्रथो मे सविस्तार वर्णन हुआ है। उर्मिला महाकाव्य के घटनात्मक सयोजन मे प्रचलित राम कथा का आधार होते हुए भी काव्य-कलेवर निर्माण मे कवि कल्पना प्रमुख रूप से सहायक रही है। सामान्यत. वाल्मिकि रामायण की कथा को ही उसने यत्र तत्र ग्रहण किया है।

कथानक के सम्बन्ध में कवि की धारणाएं

'उर्मिला' काव्य की भूमिका मे एतद्विषयक कुछ विचार कवि ने व्यक्त किये हैं जो सक्षेप मे निम्न प्रकार से हैः—

(१) "मैं यह नही कहता कि प्रबन्धकाव्य के लिये नये विषय नही मिल सकते या नये विषयो को लेकर प्रबन्ध काव्य की रचना नही हो सकती। मेरा मत-भेद तो उनसे इस सिद्धान्त से है कि पुराने विषयो या व्यक्ति विशेषों पर आजकल प्रबन्ध काव्य लिखना समय गवाने के बराबर है। पुराने विषयो को लेकर भी नवीनता से सुसज्जित किया जा सकता है।"[१]

(२) "............वस्तुत अभिनवता, नवीनता, मौलिकता बहुत अंशो मे कलाकार की अनुभूति पर अवलवित है। अत. काव्य के लिये ऐतिहासिक, पौराणिक

१. उर्मिला, लक्ष्मणार्पणमस्तु, पृ० घ

विषय केवल मात्र चर्वित-चर्वण के तर्क के आधार, पर त्याज्य या वर्ज्य नही हो सकते।" १

(३) "मेरी इस 'उर्मिला' मे पाठको को रामायणी कथा नही मिलेगी। रामायणी कथा से मेरा अर्थ है क्रम से राम लक्ष्मण जन्म से लगाकर रावण विजय और फिर अयोध्या आगमन तक की घटनाओ का वर्णन। य घटनायें भारतवर्ष म इतनी अधिक सुपरिचता हैं कि इनका वर्णन करना मैंने उचित नही समझा।" २

(४) "इसमे जो कुछ कथा भाग है वह गृहीत है—वर्णनात्मक अर्थात् घटना-विवरणात्मक नही।" ३

इस प्रकार स्पष्ट है कि नवीन जी ने 'उर्मिला' महाकाव्य के सृजन मे परम्परित पौराणिक रामकथा को ग्रहण तो किया है किन्तु उसके प्रस्तुतीकरण मे घटनात्मक बाहुल्य न लाकर काल्पनिक कथाप्र सगो की नवीन सृष्टि की है।

सृजन प्रेरणा

उर्मिला की सृजन प्रेरणा पर विचार किया जाय तो इससे पूर्व उर्मिला के चरित्र को लेकर गुप्त जी 'साकेत' महाकाव्य की रचना कर चुके थे। प्रश्न यह है कि नवीन जी ने पुन उसी काव्य उपेक्षित उर्मिला के चरित्र पर काव्य सृष्टि क्या की? यदि 'साकेत' और 'उर्मिला' का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो इस प्रश्न का समाधान हो जाता है। साकेत मे उर्मिला काव्य सृजन की प्रेरिका होकर भी काव्य का सर्वस्व नही बन पाई है। गुप्त जी राम सीता के व्यक्तित्व के समक्ष उर्मिला के व्यक्तित्व को उभार नही सके हैं। दूसरे साकेत म 'राम कथा के सम्पूर्ण चित्रण की आकाक्षा ने भी उर्मिला के जीवन की समग्रता को भी चित्रित नहीं होने दिया। सत्य तो यह है कि राम की महत्ता को सर्वोपरि रत्न ए असम्पूर्ण रामकथा के अ कन का लोभ सवरण न कर सकने के कारण उर्मिला के चरित्र का एक नायिका के रूप में पूर्ण प्रतिफलन नही हो सका है। साकेत के कवि न उर्मिला का सर्वत्र ही उल्लेख किया है किन्तु उसके चरित्र को सर्वोपरिता प्राप्त नही हो पाई है। इसके विपरीत 'उर्मिला' महाकाव्य सब प्रकार से उर्मिला की ही जावन कृति है। साकेत की उर्मिला के दर्शन हमें विवाहोपरान्त होने है। जबकि नवीन जी के काव्य में उर्मिला की बाल्यावस्था मे ही प्रारम्भ हो जाता है। वैस 'उर्मिला 'का

१ वही
२ वही, पृ० च
३ उर्मिला, श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृ० छ

सृजन नवीन जी ने 'साकेत' की प्रकाशन तिथि [1] से बहुत पूर्व प्रारम्भ कर दिया था। जैसा कि उन्होंने काव्य की भूमिका मे कहा है–"माता उर्मिला के स्तवन की लालसा मेरी जीवनसगिनी रही है। मैंने इस कथा का आरम्भ जिस समय किया था, वह समय अब इतिहास मे परिणत हो गया है। क्यो ? इसलिये कि मैंने इस कथा को सैंतीस पूर्व आरम्भ किया था। सन् १९२१–२३ के डेढ वर्ष के कारावास–काल मे मैंने इसे लिखना प्रारम्भ किया। ....प्रथम सर्ग लखनऊ कारावास मे प्रायः एक सवा मास मे लिखा गया।" [2] इस प्रकार 'उर्मिला' काव्य की प्रेरणा का मूल आधार देवी उर्मिला के चरित्र का ही स्तवन है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही कवि ने काव्य की कथावस्तु मे तदानुरुप परिवर्तन–परिवर्द्धन किया है।

कथाविधान की मौलिकता एवं नवीन प्रसंगोद्‌भावनाए

(१) 'उर्मिला' काव्य की रचना का मुख्य उद्देश्य उपेक्षित उर्मिला के चरित्र को व्यापक रूप मे उपस्थित करना है। अस्तु, कवि ने आद्यांत काव्य मे उर्मिला को ही कथा का केन्द्र बिन्दु मानकर घटनात्मक सयोजन किया है। प्रथम सर्ग मे बालिका उर्मिला और उसकी बहन सीता की बालक्रीडाएं सर्वथा कवि कल्पना प्रसूत हैं। उर्मिला के बाल्यरूप वर्णन मे कवि ने जिन विविध कल्पना चित्रो को अंकित किया है वह रामकथा मे सभवतः प्रथम बार ही आये है। सीता और उर्मिला का कहानी कहना कवि की निजी उद्‌भावना है। [3] उर्मिला के जिस चरित्र का विकास काव्य के आगामी सर्गो मे होता है अथवा 'साकेत' आदि काव्यो मे हुआ है, उसकी पृष्ठभूमि अंकित करने में नवीन जी सफल हुए हैं।

(२) द्वितीय सर्ग मे लक्ष्मण उर्मिला के मिलन दृश्यो का अंकन करने मे सयोग शृ गार की शताधिक भांकियां प्रशसनीय हैं। प्रेमालाप के सुन्दर दृश्यों और प्रिय–प्रियतम के मिलन प्रसगो का निर्माण कवि ने कल्पना से ही किया है। लक्ष्मण और उर्मिला के दाम्पत्य जीवन सुख सौभाग्य को वर्णित करने में कवि ने अद्‌भूत काव्य कौशल का परिचय दिया है। नवविवाहित दम्पत्ति की प्रणय लीलाओं, आहार–विहार, केलि-क्रीड़ा, भ्रमण और मनोरजन, पारस्परिक प्रेमालाप के मनोरम दृश्य अंकित किये है। बीच बीच मे लक्ष्मण–उर्मिला के वार्तालाप मे ही कवि–प्रेम के सच्चे स्वरूप और लक्षणों का भी विवेचन करता गया है।

---

१. उर्मिला श्री गणमणपरमार्णमस्तु, पृ० क, ख
२. साकेत–प्रकाशन १९३१
३. ऊर्मिला–प्रथम सर्ग, पृ० ४० से ४४ और ४६ से ५२

(३) तृतीय सर्ग में राम वन गमन आदि के प्रसंग तो प्रचलित राम कथा के ही हैं किन्तु राम कथा को कवि ने एक नवीन ढंग से देखा है। राम की वन यात्रा एक आध्यात्मिक संकल्प के रूप में चित्रित की गई है। राम वन गमन करते हैं—आर्य संस्कृति के प्रसार के लिये वनवासियों को प्रबोध देने और भौतिकता के अज्ञान को दूर कर आध्यात्मिकता का प्रसार करने के लिये।[1] नवीनजी ने भूमिका में कहा है कि—"मैंने राम वन गमन को एक विशेष रूप में देखने और उपस्थित करने का साहस किया है। राम की वन–यात्रा, मेरी दृष्टि में एक महान अर्थपूर्ण आर्य संस्कृति–प्रसार–यात्रा थी। ...... राम की वन यात्रा भारतीय संस्कृति प्रसारार्थ, एक महान् यज्ञ के रूप में थी।"[2] राम की वन यात्रा को अद्यावधि रामकथा के गायकों ने सत्यव्रत पालन देवी प्रकोप के रूप में ही चित्रित किया था। महाकवि वाल्मिकी ने राम के मुख से यात्रा का कारण बताते हुए स्पष्ट कहलाया है कि—हे सुमित्रातनय ! मेरे वन गमन और प्राप्त प्राय. राज्य के पुनः हाथ से निकल जाने का एक मात्र कारण दैव ही हैं।[3]

(४) अन्तिम सर्ग मे रावण वध के उपरान्त राम–सीता और लक्ष्मण पुष्पक विमान से जब लौट रहे हैं तो भाभी देवर (लक्ष्मण सीता) का परिसम्वाद पर्याप्त मनोरंजक और मर्मस्पर्शी है। इस परिसंवाद की योजना बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। लक्ष्मण को विमान मे चुप और चिंतित देख कर सीता के विनोदपूर्ण प्रश्नों जैसे–"लक्ष्मण ! किसका ध्यान कर रहे हो ? क्या उर्मिला की स्मृति कर रहे हो ? आदि–का उत्तर लक्ष्मण बड़ा गम्भीर और मार्मिक देते हैं।[4]

इस प्रकार कवि ने जितना भी कथांश ग्रहण किया है उसमे नवीन प्रसंगो की उद्‌भावना की है।

कथानक की शास्त्रीय समीक्षा —

ऊर्मिला महाकाव्य का कथानक प्रख्यात है। कवि ने राम कथा के उपेक्षित कथा प्रसंगो एवं उपेक्षित पात्रो को ही उभारने का प्रयत्न किया है। साथ ही पुराने कथा प्रसंगो को नवीन रंग भी दिया है। सम्पूर्ण काव्य का सर्गबद्ध विभाजन भी हुआ है यद्यपि कुल सर्गों की संख्या ६ ही है जो आचार्यों द्वारा निर्धारित संख्या से

---

१. वही–तृतीय सर्ग, पृ० १९६
२. ऊर्मिला–श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृ० छ
३. वाल्मिकी रामायण, अयोध्या कांड, सर्ग २२/१५
४. उर्मिला, सर्ग ६, पृ० ५९३

कम है। कथावस्तु के विकास, मध्य और अन्त की स्थितियाँ भी दिखाई देती है किन्तु कार्यावस्थाओ एव सधियो का स्पष्ट अ कन नही हुआ है। तृतीय सर्ग मे गर्भ सधि प्राप्य है।

कथानक मे वर्णनो की भी प्रचुरता है जो महाकाव्य वस्तु के अनुरूप है। उदाहरण के लिए प्रारम्भ मे ही 'पुर-प्रदक्षिणा' और 'जनकपुर प्रवेश' मे नगर का वर्णन है। प्रकृति का सुन्दर और विस्तृत विवरण भी उपलब्ध है। नगर, पर्वत, उपवन आदि के भी वर्णन यत्र तत्र हुए है।

कवि ने मार्मिक प्रसगो की भी अवतारणा की है। प्रारम्भिक सर्गो के कथा-विधान मे रोचकता और नाटकीय वैषम्य भी है।

कथा विधान की त्रुटिया

'उर्मिला' काव्य की कथावस्तु की अनेक विशेषताओ के बावजूद भी उसम अनेक त्रुटियाँ हैं। यथा—

(१) 'उर्मिला' काव्य का कथानक इतना सूक्ष्म और विरल है कि वह महाकाव्यत्व की गरिमा के अनुरूप नही हो पाया है। घटना विस्तार के अभाव और कथा प्रसगो के सम्बन्ध निर्वाह मे धारावाहिकता नही आ पायी है। प्रथम ३ सर्गो के उपरान्त कथासूत्र छिन्न भिन्न हो गया है। छठा सर्ग अलग सा प्रतीत होता है। चौथे और पाचवे सर्गो मे भी कोई घटना अन्विति नही है।

(२) सम्पूर्ण काव्य मे मात्र उर्मिला के चरित्रांकन की दृष्टि प्रमुख होने के कारण महत्वपूर्ण कथा प्रसग छूट गये है। जिसके कारण कथानक एक पक्षीय हो गया है। उसमे रामकथा का गाम्भीर्य नही आ पाया है।

(३) कवि ने उर्मिला की जीवन कथा को भी पूर्णरुपेण प्रतिफलित नही किया है। उर्मिला-लक्ष्मण के पुनर्मिलन प्रसग का अभाव अन्त मे खटकता है। काव्यांत में लक्ष्मण-उर्मिला का मिलन न दिखाने से उर्मिला की कथा भी अपूर्ण सी लगती है।

(४) सम्पूर्ण काव्य म अनुभूति की प्रधानता के कारण कथानक की प्रबन्ध धारा मे व्याघात उत्पन्न हो गया है। कवि ने अनुभूति के आवेग म कुछ प्रसगों को आवश्यकता स अधिक विस्तार दिया हैं।

इन सब अभावों के होते हुए भी विद्वानों ने 'उर्मिला' के कथानक को महाकाव्य के उपयु क्त माना है। 'उर्मिला में कथानक की प्रधानता न होकर,

अनुभूति की प्रमुखता है। इसका प्रभाव उसके प्रबन्ध शिल्प पर भी प्रतिकूल रूप मे परिलक्षित होता है। ······ प्रबन्धात्मकता का अभाव है। कवि की नूतन अवतारणा सास्कृतिक दृष्टिकोण एव भौतिक कल्पना शक्ति की चकाचौंध के समक्ष यह त्रुटि परिमार्जनीय है। ······ वास्तव मे उर्मिला महाकाव्य है और कवि का परम काव्य।"[१] श्री जगदीशप्रसाद श्री वास्तव ने 'उर्मिला' के कथानक के आक्षेपो का समाधान करते हुए लिखा है कि—"जहा तक कथा की सूक्ष्मता का प्रश्न है, यह समाधान किया जा सकता है कि इस बुद्धिवादी युग म प्रबन्ध काव्य मे घटना को प्रमुखता देना उचित नही, विचारो को प्रमुखता मिलनी चाहिये। रामायणी कथा रहे न रहे, होती भी तो सभव है लोकविश्रुत होने से नयापन न रहता, किन्तु भावो का चित्रण अनिवार्य है जो काव्य को गौरव प्रदान करता है। इस काव्य म पुराने मनोरागो की अभिव्यक्ति मे नवीनता लाने का प्रयत्न है। उर्मिला के चरित्र को लेकर कवि चला है जिसमे पूर्णता है। घटनात्मकता के अभाव की पूर्ति भावो की अभिव्यक्ति और नूतनता के द्वारा की गई है।" [२]

एकलव्य

कथासार

एकलव्य महाकाव्य १४ सर्गो मे विभाजित है। काव्यारम्भ से पूर्व स्तवन है जिसम कवि ने किरातराज शिव और वाल्मिकि का स्तवन किया है।

१ दर्शन—प्रथम सर्ग का प्रारम्भ एकलव्य और उसक मित्र नागदन्त के परस्पर वार्तालाप से होता है। एकलव्य कहता है कि वह नाराच के लिये लौहखण्ड लेने राजधानी गया था, किन्तु वहा सब लौह भडार राजकुमारो के विशिष्ट अस्त्रो के लिये रक्षित थे, अत उसे निराश लौटना पडा। मार्ग मे देखा कि वीटिका के कुए मे गिर जाने के कारण राजपुत्र निराश खडे हैं। द्रोणाचार्य उनसे कहते हैं कि तुम कुरुवशी वीर हो राज्यश्री तुम्हारे बाहुबल की स्वामिनी है और तुम एक क्षुद्र वीटिका नही निकाल सकते हो? तुम अपने स्वजनो को दुख कूप से क्या निकालोगे। लज्जित होकर एक राजपुत्र ने कहा देव हमने सब उपाय किये किन्तु निष्फल हुए। तभी द्रोण ने अभिमन्त्रित करके सीक डाली और वीटिका बाहर आ गई। राजकुमार प्रार्थना करके द्रोणचार्य को भीष्म के पास ले गये। एकलव्य ने धनुर्वेद की शिक्षा द्रोणाचार्य से ही ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की।

---

१ डा० लक्ष्मीनारायण दुबे 'उर्मिला का महाकाव्यत्व' 'गवेषणा' (अर्द्ध मासिक) सन् १९६३

२. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव—नवीन और उनका काव्य, पृ० १०८

२ **परिचय**—इस सर्ग मे हस्तिनापुरा की राजसभा के कलात्मक सौन्दर्य का वर्णन है। राजसभा मे नृप धृतराष्ट्र एव सभासदो के सम्मुख भीष्म द्रोणाचार्य का स्वागत करते हुए उनसे स्व-परिचय देने को कहते हैं। द्रोणाचार्य ने कहा कि वह अ गिराकुल के ऋषि भारद्वाज के अयोनिज पुत्र हैं। महर्षि अग्निवेश के यहां उन्होने शिक्षा प्राप्त की है। महात्मा शरद्वान की कन्या कृपि से उनका विवाह हुआ और अश्वत्थामा पुत्र हुआ। फिर उन्होने धनाभाव के कारण होने वाली यातना और तिरस्कार का वर्णन तथा परशुराम से दिव्यास्त्र की प्राप्ति के विषय मे बताया। अपने मित्र द्रुपदराज यज्ञसेन के द्वारा किये गये घोर अपमान का भी उन्होने वर्णन किया। उनके परिचय से प्रभावित होकर भीष्म ने उन्हे ससम्मान राजकुमारो को शस्त्रास्त्र शिक्षा देने के लिये शिक्षक नियुक्त किया।

२ **अभ्यास**—गुरु द्रोण ने सभी राजकुमारो को विविध प्रकार के शस्त्र अस्त्रो का अभ्यास कराया। धनुर्वेद मे सबको निपुण किया। अर्जुन पर उनका विशेष स्नेह था अत उसे लक्ष्यवेध भी सिखाया। दिव्यास्त्रो की भी शिक्षा दी गई। द्रोणाचार्य ने राजकुमारो को अहकार और द्वेष आदि मानसिक वृत्तियो पर विजयी होने की भी शिक्षा दी। द्रोणाचार्य की दिव्य परीक्षा की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। राजवशो एव अन्य वशो के भी अनेक कुमार भिन्न-भिन्न देशो मे गुरु द्रोण के पास शिक्षा प्राप्त करने आने लगे।

प्रेरणा—एकलव्य ने बाणो की नोक से रेखाए खीचकर पत्थर पर गुरु द्रोणाचार्य का चित्र बनाया। नागदन्त पूछने पर वह कहता है कि गुरु द्रोण का चित्र उसके हृदय पटल पर अ कित है। वह एक दिन का स्वप्न भी बताता है जिसमे उसने गुरु द्रोण को पास खड़े हुए देखा था। वीटिका से उसे प्रेरणा प्राप्त होती है तभी गुरु बादलो मे छिप जाते हैं। तब एकलव्य को मिट्टी के ढेर मे खिले पुष्पो म गुरु द्रोण का मुख दिखाई देता है। वह हाथ बढाता है कि स्त्री उसका अ गूठा काट लेता है। मा उसे बुला ले जाती है। एकलव्य माता के सामने भी नागदन्त से वार्तालाप करते हुए द्रोण का शिष्य बनने का निश्चय प्रकट करता है। तभी एकलव्य का पिता हिरण्यधनु आ जाता है। एकलव्य की माता उसके हठ का वर्णन हिरण्यधनु से करती है। हिरण्यधनु कहता है कि निषाद पुत्र को शस्त्रशिक्षा राजकुल के साथ पसद नही करेंगे। पुत्र के दृढ निश्चय से प्रभावित हो वे उसे हस्तिनापुर ले जाने को सहमत हो जाते हैं जहां राजकुमारो के शस्त्रास्त्रो का प्रदर्शन होना है। वहा सभी जनता प्रदर्शन देखने को आमन्त्रित थी। माता चिंतित होती है कि कहा गुरु द्रोण दीक्षा देना स्वीकार न करें और एकलव्य पर कोई सकट आ जाय।

५ **प्रदर्शन**—नगर के बाहर एक सुन्दर स्थान पर प्रेक्षागार बनाया गया, जहा राजकुमारो के अतुल अस्त्र वैभव को देखने के लिये महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म, गाधारी, कुन्ती तथा अपार जनसमूह उपस्थित था। सभी राजकुमारो ने एक-एक करके अपने अस्त्र शस्त्र ज्ञान का परिचय दिया। सबसे सुन्दर प्रदर्शन अर्जुन का था जिसने दिव्य अस्त्रो के प्रयोग द्वारा उपस्थित जनसमूह को आश्चर्य चकित कर दिया। प्रदर्शनोपरान्त सभा विसर्जित हुई नाना वेश मे तथा देशो से आये हुए राजकुमार गुरु द्रोणाचार्य के प्रति श्रद्धानत थे। उसी समय एकलव्य की दृष्टि भी गुरु द्रोणाचार्य के दिव्य चरणो मे विनय भाव से अवनत थी।

६ **आत्मनिवेदन**—एकलव्य द्रोणाचार्य के पास गया और अपने पितादि का परिचय देकर शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। द्रोणाचार्य ने कहा कि धनुर्वेद का ज्ञान निषादकुल के काम की वस्तु नही, फिर उसकी साधना भी कठोर है। एकलव्य के दृढ निश्चय, एकाग्र साधना और भावपूर्ण उत्तर को सुन कर द्रोण ने कहा कि वे राजगुरु होने के कारण राजपुत्रो के अतिरिक्त अन्य किसी को दीक्षा नही दे सकते। एकलव्य ने श्रद्धाभाव से अपने मन मे द्रोणाचार्य को गुरु मानकर साधना करने का प्रण किया।

७ **धारणा**—घर पहुचने पर एकलव्य के साथियो ने उस पर व्यग्य कसे। उसने कहा कि वह महान साधक और गुरु द्रोण का शिष्य है। उसकी अनन्य निष्ठा को देखकर उसके साथी स्तब्ध रह गये। उसने नागदन्त को अपना निश्चय बताया कि वह धनुर्विद्या सीख कर ही आयेगा। उसने माता को सात्वना देने के लिये भी नागदन्त से कहा और साधना के लिये एकान्त अज्ञात स्थान को चल दिया।

८ **ममता**—इस सर्ग मे एकलव्य की माता के ममतापूर्ण गीत हैं। मातृ हृदय की पुत्र वियोग जन्य वेदना की मार्मिक व्यजना हुई है। पुत्र की पूर्व स्मृतियां और षटऋतुओ के प्रत्यागमन की माता के मन पर प्रतिक्रियाओ का वर्णन भी बडा भव्य है। अ त म माता अपने पुत्र के मगल की कामना करती है।

९ **सकल्प**—एकलव्य वाराणत पर्वत अरण्य मे आकर साधनारम्भ कर देता है वह सोचता है कि राजपुत्र न होने के कारण वह त्याज्य क्यो समझा गया? सब क्षत्रिय-राजनीति की प्रवचना है। गुरु तो विवश हैं, वे क्या करें? उसने गुरु द्रोण की मूर्ति बनाई और धनुर्वेद सीखने का निश्चय किया। तभी एक व्याघ्र टूट पडा जिसे एक ही बाण से एकलव्य ने मार गिराया।

१० साधना—एकलव्य ने गुरू द्रोण की मृण्मयी मूर्ति बनाकर उनके चरणो मे बैठकर धनुर्वेद की साधना का समारम्भ कर दिया। सरसन्धान की प्रेरणा उसे प्रकृति के कण कण से प्राप्त होने लगी। एकलव्य अनेकानेक विधियो से लक्ष्यभेद करने लगा। धनुर्वेध की सभी विधियो—अलीढ, प्रत्यालीढ, विशाख, असम, गरुडक्रम, दुर्दुर क्रम आदि मे एकलव्य पारंगत हो गया। उसकी साधना शुक्ल पक्ष की चन्द्रिका के समान विकसित होने लगी।

११. स्वप्न—ब्राह्ममुहूर्त की वेला मे गुरू द्रोण ने एक स्वप्न देखा कि वे एक घने जगल मे बैठे एक श्यामल वर्ण कुमार को अद्वितीय धनुर्विद्या सिखा रहे है। उन्हे स्वय पर आश्चर्य हुआ कि अद्वितीय धनुर्विद् होने का वरदान तो उन्होने अर्जुन को दिया है। उन्हे ग्लानि होती है तभी पार्थ आते है। गुरू द्रोण उन्हे स्वप्न की बात बताते है। वाराणत वन मे मृगया खेलने का निश्चय किया जाता है।

१२ लाघव—राजकुमार मृगया खेलने जाते है। उनका श्वान एकलव्य की ओर जाता है जिसके मुह को वह सात बाणो से बन्द कर देता है। चोट तो नही आती पर श्वान का भौकना बन्द हो जाता है। अर्जुन एकलव्य के आश्रम मे पहुचता है और उसकी साधना से चकित हो जाता है। एकलव्य अर्जुन का आदर करता है और पूछने पर बताता है कि गुरु द्रोण की मृण्मयी प्रतिमा से उसने दीक्षा प्राप्त की है।

१३, द्वन्द्व—एकलव्य के धनुर्विद्या कौशल से पार्थ के मन मे हीन भावना का जन्म होता है। उसे रात भर नीद नही आती। वह गुरु द्रोण के पास जाकर उनके वचन की याद दिलाता है, जिसमे अर्जुन को अद्वितीय धनुर्धर का वरदान दिया गया था। गुरू द्रोण एकलव्य आश्रम मे जाने का निश्चय करते हैं।

१४. दक्षिणा—द्रोणाचार्य अर्जुन सहित एकलव्य के आश्रम मे आते हैं। एकलव्य श्रद्धाभाव से गुरू का सत्कार करते हैं। गुरू की प्रतिज्ञा के आधार पर एकलव्य अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्विद मान लेता है। अर्जुन के सन्तुष्ट न होने पर वह धनुष बाण तोड देता है और कभी धनुष बाण न चलाने की प्रतिज्ञा करता है। अर्जुन तब भी असन्तुष्ट ही रहा। इस पर एकलव्य अपना दाहिना अगुष्ठ काट कर गुरू दक्षिणा के रूप मे द्रोणाचार्य के चरणो मे अर्पित कर देता है। द्रोण एकलव्य के त्याग से स्तंभित रह जाते हैं और ग्लानि से भर जाते हैं। तभी एकलव्य के माता पिता आ जाते हैं जिन्हे द्रोणाचार्य सारा वृत्तान्त

सुनाते है। एकलव्य की माता दु.खी होती है। द्रोण लज्जा से भर कर चल देते हैं। एकलव्य उन्हे सादर विदा करता है।

आधार ग्रन्थ

एकलव्य काव्य का कथात्मक आधार महाभारत है। महाभारत के सम्भव पर्व मे १३२ वें अध्याय के ३१ वें श्लोक से लेकर ६० व श्लोक तक एकलव्य की कथा कही गयी है। महाभारत की कथा मे निम्नांकित कथा प्रसग है :—

१. द्रोणाचार्य से एकलव्य की दीक्षा के लिये प्रार्थना और उनकी अस्वीकृति।

२ एकलव्य का द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर अद्वितीय धनुर्विद बनना।

३, एकलव्य का राजकुमारो के श्वान का मुख तीरो से बन्द करना और अर्जुन का चकित होना।

४ अर्जुन का गुरू द्रोण से उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराना, जिसमे उन्होने अर्जुन को अद्वितीय धनुर्विद होने का कहा था।

५ द्रोणाचार्य का एकलव्य के पास जाना और गुरु दक्षिणा-रूप मे दाहिने हाथ का अँगूठा मागना—एकलव्य का प्रसन्नता-पूर्वक काट कर दे देना।

महाभारत के उपर्युक्त अल्प कथासूत्र को डा० रामकुमार वर्मा ने अपनी कला कल्पना और काव्यशक्ति से महाकाव्योचित आकार प्रदान किया है।

शास्त्रीय विवेचन

डा० वर्मा ने एकलव्य के आमुख मे कहा है कि—"केवल ३० श्लोको मे यह कथा बडी शीघ्रता से कही गई हैं। सम्भव पर्व की परिचयात्मक कथाओ की अधिकता के कारण महान पुरुषो के चरित्र चित्रण की चारुता तथा वर्णन वैचित्र्य की विशेषताओ के बीच निषाद के चरित्र के लिये यथोष्ट स्थान प्राप्त न हो सका हो, फिर भी, कथाप्रसग मे ऐसे सकेत अवश्य हैं, जिनमे निषाद सस्कृति का उदात्त रूप हमारे सामने आता है। महर्षी व्यास ने एकलव्य की कथा में "व्यास" शैली का अनुसरण नही किया। जिन प्रसगो से एकलव्य की कथा के मनोविज्ञान मे जिज्ञासा की सृष्टि होती है, उनमे तत्कालीन राजनीति, सामाजिक स्थिति, आचार्य

द्रोण का अर्थ सकट और द्रुपद द्वारा अपमान तथा एकलव्य का आशावाद प्रमुख है।"[1]

उपयुक्त कथन से स्पष्ट है कि कवि ने महाभारत के इस कथा प्रसंग को व्यापक दृष्टि से प्रस्तुत काव्य मे सकलित किया है। डा० वर्मा ने एकलव्य के चरित्र मे आर्य सस्कृति के शील युक्त आचरण की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत की है एकलव्य की समस्त कथा १४ सर्गों मे विभाजित है। आत्म-निवेदन, साधना, लाघव द्वन्द्व और दक्षिणा नामक सर्गों की कथा का सीधा सम्बन्ध सभापर्व के ३० श्लोको मे वर्णित कथा प्रसगो से है। इसके अतिरिक्त दर्शन, परिचय, अभ्यास और प्रदर्शन नामक ४ सर्गों की कथा भी महाभारत मे अन्यत्र उल्लिखित है, जिसके घटनात्मक विनियोजन करने मे कवि ने अपनी रचना-शक्ति का परिचय दिया है। दूसरे शब्दो मे इन ९ सर्गों की कथा अनुत्पाद्य अर्थात् प्रख्यात है। शेष सर्गों (प्रेरणा, धारणा, ममता, सकल्प और स्वप्न) की कथावस्तु सपूर्णता मौलिक अर्थात् कल्पना प्रसूत है। इन सर्गों की कथा से सम्पूर्ण काव्य को गति मिली है और घटनाओ की परस्पर अन्विति-स्थिति भी स्पष्ट हुई है।

इस प्रकार एकलव्य की कथावस्तु मे एकलव्य का अपने पिता हिरण्यधनु के साथ राजकुमारो के शस्त्र कौशल को देखने के लिये हस्तिनापुर जाना, धनुर्साधना के लिए गृहत्याग द्रोणाचार्य का स्वप्न देखना और माता का ममत्व भाव प्रदर्शन आदि प्रसग मौलिक और नवीन हैं। इन प्रसगो का सबसे अधिक महत्त्व पात्रो के मनोविज्ञान को स्पष्ट करने मे है। "एकलव्य" महाकाव्यकी की कथा के पाठक के मन मे यह प्रश्न शका के रूप मे पैदा होता है कि गुरु द्रोण से तिरस्कृत होने पर भी एकलव्य ने द्रोणाचार्य को ही क्यो वरण किया? द्रोणाचार्य जैसे मनस्वी ने बिना दीक्षा दिये ही एकलव्य से दक्षिणा क्यो मागी? इन दोनो शकाओं के पार्श्व में अनेक युगीन मनोवैज्ञानिक समस्याएं प्रतिफलित होती हैं, जैसे आर्यसस्कृति के उच्च आदर्शों की असगतिया, सामन्त युगीन शासन व्यवस्था में जातीय आधार पर असमानता का व्यवहार, गुरु शिष्य परंपरा, मानव मूल्यो की उपेक्षा आदि। एकलव्य के वृत्त में इन सभी सभावनाओ पर विचार किया गया है।

एकलव्य के इतिवृत्त की विशेषताएं

(१) एकलव्य का इतिवृत्त महाभारत-आधृत है अत. पौराणिक और प्रख्यात है। अनुत्पाद्य होते हुए भी कवि की कल्पना-शक्ति और मौलिक सृजन

१, डा० रामकुमार वर्मा : एकलव्य, आमुख, पृ० ३

प्रतिभा के कारण वृत्त में वर्तमान युग की विचारधारा का उपयुक्त विकास हुआ। कथाचयन में कवि ने परम्पराओं का अनुमोदन और सम सामयिकता का समर्थन किया है। डा० गोविन्दराम शर्मा के शब्दों में–"मूलकथा के पौराणिक रूप की यथेष्ट रक्षा करते हुए कवि ने आज के युग की मांग के अनुरूप नवदृष्टि से देखा है।"[१]

(२) कथावस्तु शास्त्रीय दृष्टि से भी सफल है। आधिकारिक और प्रासंगिक वस्तुएं स्पष्ट हैं। कथावस्तु का विकास बड़े स्वाभाविक और क्रमिक ढङ्ग से हुआ है। कथाविकास की प्रारम्भ प्रयत्न, प्राप्त्याशा, चरमसीमा, नियताप्ति और फलागम सभी स्थितियां कथावस्तु में प्राप्य हैं। कथावस्तु की समाप्ति नायक के उत्कर्ष में होती है। अर्थ प्रकृतियों की दृष्टि से भी कथापूर्ण है। कथाविधान में नाटकीयता के कारण रोचकता और सजीवता बनी हुई है।

(३) वस्तु में विस्तार का अभाव होते हुए भी, नायक के जीवन की समग्रता का चित्रण है। एकलव्य के जन्म से मृत्यु पर्यन्त की घटनाओं का सांख्यिकी वर्णन न होते हुए भी उसके जीवनकाल के उत्कर्ष का मापांकन हुआ है।

(४) कथावस्तु में अलौकिक और अप्राकृतिक तत्व होते हुए भी उसे कवि ने बुद्धिग्राह्य ढंग प्रस्तुत किया है। अलौकिक घटनाएं भी अविश्वसनीय प्रतीत न होकर अद्भुत रस पोषक लगती हैं।

(५) एकलव्य के कथानक में समसामयिक जीवन चेतना के स्वर मुखरित हुए हैं। उसमें मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। उसमें उच्च जीवनादर्शों को युग जीवन की यथार्थ भूमि पर अंकित किया है।

समष्टि रूप में एकलव्य की कथावस्तु महाकाव्य वस्तु के गुणों से विभूषित है।

१. डा० गोविन्दराम शर्मा : हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४२८

तृतीय अध्याय

चरित्र-तत्त्व

भूमिका

महाकाव्य के रूप विधायक तत्वों में कथातत्त्व के अनन्तर चरित्र-तत्व ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। महाकाव्य चाहे एतिहासिक हो या पौराणिक उनकी रचना के मूल मे कोई न कोई महत् चरित्र अवश्य होता है। महा-काव्य का मुख्य विषय है, मानवीय चेतना का आकलन। इस चेतना की अभिव्यक्ति महाकाव्यों में महिमावान चरित्रों की अवतारणा से होती है। ये चरित्र ही महाकाव्य के घटनाचक्र का सचालन और महत् जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा का माध्यम बनते हैं।

इस अध्याय में आलोच्य महाकाव्यो के चरित्र-तत्त्व का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन क्रम में सर्वप्रथम प्रत्येक महाकाव्य के पात्रों को दो श्रेणियो में बाटा गया है—प्रथम-प्रमुख-पात्र और दूसरे अन्य पात्र। प्रमुख पात्रों म महाकाव्य के नायक नायिका हैं। "अन्य पात्रों' में वे चरित्र परिगणित किये गये है जिनका स्थान अपेक्षाकृत गौण है किन्तु जो नायक नायिका के चरित्रोत्कर्ष म सहायक होते हैं। ये ही पात्र नायक के लिये सघर्ष की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। 'प्रमुख पात्रों' का चरित्र-चित्रण 'अन्य पात्रों' की तुलना में विस्तृत एव सांगोपांग है। चरित्र विश्लेषण में सर्व प्रथम नायक-नायिका के पौराणिक स्वरूप का ऐतिहासिक विकास क्रम बताते हुये उनकी चरित्रगत विशेषताओ का सौदाहरण निरूपण किया गया है। च रत्र-विश्लेषण में मनो वैज्ञानिक एव मानवतावादी दृष्टियो को विशष महत्व दिया गया है। इन्ही दृष्टियो से चरित्रो के कार्यों के औचित्य अनौचित्य का मूल्यांकन किया गया है। आलोच्य महाकाव्यों के पात्र पौराणिक होने के कारण लोकप्रसिद्ध है। उनके सम्बन्ध में लोगो की बद्धमूल धारणायें हैं। किन्तु आधुनिक महाकाव्यकारो ने परम्परा से भिन्न अर्थात वर्तमान युग-जीवन के सन्दर्भों मे किस प्रकार उन्हें प्रस्तुत किया है, यह विशेष रूप से विवेचनीय रहा है। महाकाव्यो के पात्र किन

विशेषताओं के कारण अविस्मरणीय है ? उनके कौन से कार्य मानवता के अनुकरणीय आदर्श बन सकते हैं ? परम्परा प्रचलित रूप से उनका वर्तमान रूप कितना और कहां भिन्न है ? किन चारित्रिक विशेषताओं के कारण वे मानवता की अक्षय विभूति है ? आदि सन्दर्भों को प्रस्तुत प्रकरण मे व्यंजित किया गया है।

चरित्र विश्लेषण की तीन पद्धतियां प्रचलित हैं। प्रथम जिसमे कृतिकार चरित्रों के सम्बन्ध मे प्रशंसा या निंदापूर्ण मंतव्य स्वयं प्रस्तुत करता है। दूसरी पद्धति में चरित्रों का मूल्यांकन उस पात्र विशेष के सम्बन्ध में अन्य पात्रों के कथनों से किया जाता है। तीसरी वह पद्धति है जिसमे पात्र-विशेष के व्यक्तित्व और कृतित्व के आधार पर उसका महत्वांकन किया जाता है। आलोच्य महाकाव्यों के चरित्र विश्लेषण मे मुख्यतः अंतिम पद्धति को अपनाया गया है।

प्रियप्रवास

प्रियप्रवास चरित्र प्रधान काव्य है। किन्तु इस काव्य मे पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। यद्यपि गोप-गोपिकाओं एवं अन्य बालवृद्धों को सम्मिलित करने से पात्रों की संख्या अधिक दिखाई देती है किन्तु इन पात्रों का काव्य मे कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। जिन पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर कवि का विशेष ध्यान रहा है वे पांच हैं—श्रीकृष्ण, राधा, नन्द, यशोदा और उद्धव। इनमे भी श्रीकृष्ण, राधा और यशोदा के चरित्रांकन मे हरिऔधजी ने अपनी प्रतिभा और काव्य-कला का सुन्दर परिचय दिया है। 'प्रियप्रवास' के महाकाव्यत्व का वास्तविक आधार यही पात्र हैं। व्यापक विषयभूमि के अभाव के कारण प्रियप्रवास के कथाशिल्प और प्रबन्ध-कल्पना मे जो शिथिलता आ गई थी, उसका परिमार्जन उत्कृष्ट कोटि की चरित्र-सृष्टि द्वारा हो गया है।

प्रमुख पात्र

श्रीकृष्ण—श्रीकृष्ण इस काव्य के नायक हैं। उनका व्यक्तित्व महाकाव्य के नायक की गरिमा और महिमा के पूर्णतः अनुरूप है। भारतीय धर्म संस्कृति और साहित्य साधना के मूल मे श्रीकृष्ण की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण रही है। कृष्ण शब्द की प्राचीनता को विद्वानों ने स्वीकार किया है। वैदिक काल से आज तक कृष्ण शब्द का निरन्तर प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद मे कृष्ण का ऋषि रूप मे उल्लेख है।[1] महाभारत में कृष्ण का अनेक रूपों में चित्रण हुआ है। वहां उन्हें

---

१. ऋग्वेद, अष्टम मंडल सूत्र सं० ८३, ८६, ८७ तथा दशम मंडल सूत्र सं० ४२, ४३, ४४

वीर, राजनीतिज्ञ, विद्वान् एवं परोक्षरूप मे दैवी अवतार भी स्वीकार किया गया
है। डा० द्विवेदी का कथन है कि "कृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं। एक मे वे
यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, राजा हैं, कंसारि हैं; दूसरे मे वे गोपाल हैं,
गोपीजन वल्लभ है, राधाधर सुधापान शालि वनमाली हैं। प्रथम रूप का पता
बहुत पुराने ग्रंथो से चल जाता है पर दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है। धीरे-धीरे
यह दूसरा रूप ही प्रधान हो गया है और पहला रूप गौण।"[1] सच तो यह है कि
कृष्ण उतने ही प्राचीन है जितनी कि भारतीय साधना मे अवतारवाद की
विचारधारा। अवतारो मे भी राम और कृष्ण दो प्रमुख अवतार रहे हैं। "इनमे
भी कृष्णावतार की कल्पना पुरानी भी है और व्यापक भी।"[2] वेदोत्तर वाङ्मय मे
कृष्ण का उल्लेख ई० पू० चौथी शताब्दी से तो स्पष्ट रूप से मिलने लग जाता
है। पाणिनी (चौथी सदी ई० पू०), मैगस्थनीज (तीसरी ई० पू०) एवं पतजलि
(१५० वर्ष ई० पू०) आदि के ग्रंथो और लेखो मे वासुदेव और कृष्ण की स्पष्ट
चर्चा मिलती है।[3] इस समय तक कृष्ण को आर्य जाति के देवता या धार्मिक नेता
के रूप मे ही माना जाता था। प्राचीन काल से पुराण काल तक कृष्ण सम्बन्धी
जो विवरण मिलता है उसके सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतैक्य नही कि वह एक ही
कृष्ण है। डा० भंडारकर प्रभृति विद्वान ने "गोविन्द" शब्द की व्युत्पत्ति 'गोविद'
से मानी है और कैशिविसूदन को भी इन्द्र का ही विशेषण माना है। उनका मत
है कि पहले यह विशेषण इन्द्र के लिये प्रयुक्त होते थे और बाद में श्रीकृष्ण के साथ
जोड दिये गये हैं।[4] इस सम्बन्ध में डा० हरवंशलाल शर्मा का मत उपयुक्त जान
पडता है—"इन मत्रो मे (ऋग्वेद के मत्रो मे) जो नाम आये है उनका यद्यपि
गोपाल कृष्ण से कोई सम्बन्ध नही है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार
वैदिक कृष्ण का सम्बन्ध महाभारत के कृष्ण से जोड दिया गया, उसी प्रकार इन
सभी नामो का उपयोग पौराणिक युग में कृष्ण से सम्बद्ध कर दिया गया हो।"[5]
कृष्ण सम्बन्धी मान्यताओ के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके दो रूप
थे—एक तो ऐतिहासिक और दूसरा पौराणिक। डा० दिनकर का कथन है कि
"कृष्ण ऐतिहासिक पुरुष हैं, इसमें सन्देह करने की गुंजाइश नही दीखती और वे
अवतार के रूप मे पूजित भी बहुत दिनो से चले आ रहे है। उनका सम्बन्ध फसल

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० १२६
२ वही, पृ० १२६
३ डा० रामधारीसिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ६५
४ डा० भंडारकर—वैष्णवइज्म, शैवइज्म एन्ड माइनर रैलीजस सिस्टम्स, पृष्ठ ५१
५ डा० हरवंशलाल शर्मा : सूर और उनका साहित्य पृ० १९१

भौर गाय से था, यह भी विदित बात है। प्राचीन ग्रंथो में उनके साथ जो प्रेम-कथाए नही मिलती, उससे यह भी प्रमाणित होता है कि वे कोरे प्रेमी और हल्के जीव नही बल्कि देश और धर्म के बडे नेता थे।"[1] विष्णु के अवतार के रूप में कृष्ण का उल्लेख पौराणिक काल से ही मानना चाहिये। कृष्ण की जिन विभिन्न लीलाओ, क्रीडाओ और कार्यों को लेकर आगे साहित्य रचना हुई वे कृष्ण पुराण-काल की ही देन हे। पुराणो में श्रीमद्भागवत महापुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और हरिवश पुराण में कृष्ण की लीलाओ का सविस्तार वर्णन हुआ हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पुराणो (जैसे—वायुपुराण, पद्मपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण आदि में भी कृष्ण—चरित सम्बन्धी वर्णन हं।

कृष्ण काव्य-रचना के विकास क्रम की दृष्टि से जयदेव का 'गीत गोविन्द' (१२ वी शताब्दी) संस्कृत की प्रथम रचना है।[2] इसके अनन्तर १४ वी १५ वी शती मे विद्यापती की पदावली में कृष्ण चरित्र की साहित्यिक अभिव्यक्ति मिलती है। हिन्दी कृष्ण काव्य परम्परा को विकसित करने का श्रेय भक्तिकाल के वैष्णव कवियो को है। अष्टछाप के कवियो ने (जिनमे सूरदास प्रमुख थे) कृष्ण काव्य की धारा को प्रवाहित किया। यही धारा रीतिकाल और आधुनिक काल के कवियो की काव्य रचना का प्रेरणा स्रोत बनी। भक्ति काल के कवियो ने कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति को लेकर प्रेमतत्व की व्यंजना बडी तन्मयता से की। अष्टछाप के कवियो ने श्री कृष्ण के मधुर रूप की सुन्दर झाकी अपने काव्य के माध्यम प्रस्तुत की। रीति-काल के कवियो ने श्री कृष्ण के व्यक्तित्व के श्रृगार पक्ष के उद्घाटन मे अपनी काव्य मेधा का प्रदर्शन किया। आधुनिक काल में हरिऔध से पूर्व तक कृष्ण चरित के भक्ति-भावना, हास-विलास, श्रृंगार—माधुर्य एव भगवत ऐश्वर्य सम्बधित पक्ष ही हमारे समक्ष आते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रियप्रवास की रचना से पूर्व तक हिन्दी कृष्ण काव्य की परम्परा मे श्री कृष्ण के चरित्र के दो पक्ष उपस्थित किये गये थे। एक पक्ष तो वह था जिसमे भक्ति कालीन कवियो ने उन्हे परम ब्रह्म का अवतार मानकर दैवी शक्तियो से सम्पन्न सिद्ध किया था। साथ ही उनके बाल और किशोर रूप की लीलाओ का भी चित्रण किया था। श्री कृष्ण के चरित्र का दूसरा पक्ष वह था जिसमे रीतिकाल के कवियो ने कृष्ण और राधा की सामान्य नायक नायिका के रूप मे परिकल्पना करके वासनात्मक प्रेम की उद्भावना की; तथा प्रेमी,

---

१. डा० रामधारीसिंह दिनकर : सस्कृत के चार अध्याय पृ० ६२

२. हिन्दी साहित्य कोश, कृष्ण काव्य, पृ० २४०

कामुक एव विलासी कृष्ण का रूप अ कित किया। हरिऔध जी कृष्ण-चित्रण के इन रूपो से पूर्णत परिचित थे।

प्रिय-प्रवास की रचना से पूर्व उन्होने श्री कृष्ण-शतक, प्रेमाम्बुवारिधि, प्रेमाम्बुप्रस्रवण और प्रेमाम्बुप्रवाह नामक काव्यो तथा रुक्मिणी-परिणय और प्रद्युम्नविजय नामक दो नाटको एव 'रसकलस' के बहुत से छन्दो की रचना की थी जिसमे श्री कृष्ण को परमब्रह्म, अवतारी आदि रूपो मे चित्रित किया था। इन रचनाओ मे कवि की कृष्ण के प्रति प्रारम्भिक भावना का परिचय मिलता है। 'प्रिय प्रवास' की कृष्ण-भावना मे कवि का सर्वथा नवीन दृष्टिकोण दिखाई देता है। प्रिय प्रवास की भूमिका मे कवि ने लिखा है कि "मैंने श्री कृष्ण चन्द्र को इस ग्रंथ मे एक महापुरुष की भांति अ कित किया है, ब्रह्म करके नही। अवतारवाद की जड मे मैं श्रीमद्भागवत गीता का यह श्लोक मानता हूँ "यद् यद् विभूतिमत् सत्व श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छत्व ममतेजोऽशसभवम्।" अतएव जो महापुरुष है उनका अवतार होना निश्चित है।[१] स्पष्ट है कि प्रियप्रवासकार ने श्री कृष्ण को महापुरुष के रूप मे अ कित किया है न कि ब्रह्म के रूप मे। प्रियप्रवासकार की यह विचारणा समय के अनुरूप भी थी। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे बुद्धिवाद के आधिक्य, वैज्ञानिक,-शिक्षा के विकास एव ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज आदि धार्मिक आन्दोलनो के कारण नवीन चितनधारा का सूत्रपात हो चुका था जिसके कारण कृष्ण का अवतारी रूप मान्य न रह गया था। यूरोपीय शिक्षा एव सस्कृति के सम्पर्क ने जहा रूढिवादी धार्मिक मान्यताओ का उन्मूलन किया वहाँ चिंतन के क्षेत्र मे नवीन बौद्धिक एव तार्किक दृष्टिकोण दिया। प्राचीन आस्थाओ के स्थान पर नये विश्वासो नवीन मानवीय मूल्यो की स्थापना हुई। इसीलिए हरिऔध ने स्पष्ट लिखा था कि—"मैंने कृष्ण चरित्र को इस प्रकार अ कित किया है जिससे आधुनिक लोग भी सहमत हो।"[१] इस प्रकार कृष्ण चरित्र के निरूपण मे कवि ने आधुनिक युग की वैज्ञानिक एव तार्किक दृष्टि का उपयोग किया है। इसलिए प्रिय-प्रवास कृष्ण आदर्श मानव किंवा अनुकरणीय चरित्र के रूप मे प्रस्तुत हुए हैं। प्रिय-प्रवास के प्रथम सर्ग मे श्री कृष्ण का मनोहर एव चित्ताकर्षक रूप है।[२] कृष्ण का रूप सौन्दर्य ही व्रजवासियो के आकर्षण का कारण था। कृष्ण की सुरम्य मूर्ति शील-गुण से सम्पन्न भी थी।[३] श्री कृष्ण का व्यक्तित्व जितना आकर्षण का केन्द्र था, उतना ही उनका व्यवहार भी मृदु एव सुखकारी था। कृष्ण के चरित्र म सौन्दर्य, शक्ति और शील का समन्वय था। अपनी शक्ति और सामर्थ्य

१. प्रिय प्रवास, भूमिका, पृ० ३१
२ प्रिय प्रवास—सर्ग १, १५ से २८ तक
३. वही—सर्ग ५, ४३

'प्यारा वृन्दाविपिन उनको आज भी पूर्व सा है
वे भूले है न प्रिय जननी औ न प्यारे पिता को।
वैसे ही हैं सुरति करते श्याम गोपागना की
वैसे ही है प्रणय प्रतिमा बालिका याद आती।''

इस प्रकार प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण व्रज के प्राण, शील की सुरम्य मूर्ति, मानवता के पुजारी, कठिन पथ के पान्थ, और कर्त्तव्यपरायण लोकप्रिय नेता हैं।[१] प्रियप्रवास मे श्री कृष्ण ने उद्धव के द्वारा जो सन्देश व्रजजनो को प्रसारित किया उसमे योग और ज्ञान का उपदेश नही वरन् कर्त्तव्य पालन की शिक्षा है। श्रीकृष्ण का चरित्र एक कर्त्तव्यनिष्ठ लोकसेवक एव आदर्श महापुरुष का चरित्र है। इसीलिए विद्वानो ने प्रियप्रवास के चरित्र विश्लेषण की मुक्त कठ से प्रशसा की है। प्रियप्रवास मे कृष्ण अपने शुद्ध मानव रूप मे विश्वकल्याण-कार्य निरत एक जननेता के रूप मे अकित किये गये हैं।[२] प्रियप्रवास के कृष्ण-चरित्र की सबसे बडी विशेषता उसका मानवोचित वृत्तियो से सम्पन्न होना है। प्रियप्रवासकार ने बडे कौशल से कृष्ण के ईश्वरावतारी रूप को छोड कर भी उनकी महिमा को अक्षुण्ण रखा है प्रियप्रवास के नायक श्रीकृष्ण मे न तो भक्तिकालीन आध्यात्मिकता है न रीतिकालीन वासनात्मकता। उसमे एक ऐसी नवीनता है जो प्राचीन श्रद्धा-भाव को विकसित और कामुकता को खडित करती है।[३] प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व साहित्यिक लोकप्रियता की दृष्टि से गाधीजी के समान प्रख्यात दिखाई देता है। एक आलोचक के शब्दो मे-"प्रियप्रवास के कृष्ण का चित्रण बरबस महात्मा गाधी की याद दिला देता है। ऐसा दिखता है मानो इस काव्य को लिखते समय कवि की मानस रगभूमि के नेपथ्य मे महात्मा गाधी की मूर्ति झिलमिल झिलमिल झाकती रही हो और वह महात्मा श्रीकृष्ण के वाग्मय के रूप मे प्रतिमूर्त हो उठी हो।'[४] इसके अतिरिक्त कृष्ण चरित्र की लौकिकता सिद्ध करने के लिये कवि ने अलौकिक घटनाओ और अस्वाभाविक कार्यों को भी स्वाभाविक ढग से निरूपित करने का प्रयास किया है। जैसे गोवर्द्धन धारण प्रसग, कालियदमन तथा दावानल आदि प्रसगो के अवसर पर। किन्तु इस दृष्टि से हरिऔध जी को आशिक सफलता ही प्राप्त हुई है। कुछ घटनाओ मे जैसे "कुवलयासममत्त गजेन्द्र' को एक बालक द्वारा पछाडते दिखाते

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद प्रियप्रवास मे काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० १११-११४
२ श्री गिरिदानसिंह चौहान · हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० ४९
३ डा० श्यामनन्दन किशोर आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्पविधान पृ० २१२
४. डा० धर्मेन्द्र शास्त्री महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास, पृ० ९४

करने वाली। इस व्युत्पत्ति से निर्वाण की दात्रि होने के कारण ही वे राधा कहलाती है। रा=रास मे स्थिति, धर=धारण, रास मे विद्यमान रहने तथा भगवान श्रीकृष्ण को आलिंगन देने के कारण ही श्रीमती राधा इस नाम से प्रसिद्ध है।[1] ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के रचनाकाल के सम्बन्ध मे विद्वानो में मतैक्य न होने के कारण इस पुराण की राधा शब्द विषयक व्युत्पत्ति को अति प्राचीन मानना सभव नही। प्रो० विल्सन ने भी राधा की उद्भावना का आधार पुराणो को माना है। उनके मतानुसार ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ही राधा के चरित्र विकास का आधार ग्रन्थ है।[2] डा० शशिभूषणदास का मत है कि "पुराणों, उपपुराणों श्रुतियो, स्मृतियो, तंत्रादि में राधा का उल्लेख है, उनकी प्राचीनता और प्रामाणिकता बिल्कुल उडा देने की हमे हिम्मत न होने पर भी इन तथ्यों, प्रमाणों के आधार पर किसी विशेष ऐतिहासिक निष्कर्ष पर पहुचने मे हम असमर्थ हैं।"[3] आश्चर्य तो यह है कि कृष्णचरित से सबधित श्रीमद्भागवत महापुराण एवं अन्यकृष्ण कथा उल्लेखनीय-महाभारत, हरिवश, ब्रह्मपुराण,विष्णुपुराण आदि में राधा का कही उल्लेख नही है। श्रीमद्भागवत मे एक गोपी का उल्लेख अवश्य मिलता है जो श्रीकृष्ण को सब गोपियों से अधिक प्रिय थी और रासलीला करते हुए अन्य गोपियो का गर्व भंग करने के लिये कृष्ण उसी गोपी के साथ अन्तर्धान हो गये थे। श्रीकृष्ण को ढूंढ़ते हुए जब अन्य गोपियो ने उस युवती के चरण चिन्ह भी देखे तो कहा कि निश्चय ही इस गोपी ने श्रीकृष्ण की आराधना की है जो वह हम सबको छोडकर एकांत में चले गये—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो याम नद रहः॥

विद्वानो ने इसी आराधित शब्द से राधा शब्द की उद्भावना मानी है और इस मुख्य गोपी को राधा माना है। आराधित शब्द से मिलती जुलती व्युत्पत्ति ब्रह्म संहिता मे भी मिलती है—

---

१ श्री बलदेव उपाध्याय: भागवत सम्प्रदाय, पृ० १४३

२ "We must look to the Braham Vaivart Purana as the chief authority of a classical character on which the presentations of Radha are founded".
H. H. Wilson—Hindu Religions, Page 113.

३ डा० शशिभूषणदास—श्री राधा का क्रम विकास, पृ० ११

त्वया प्राऽऽराधितो यस्यां दह भु ज-महोत्सवे ।
राधेतिनाम विख्याता रास लीला विधायका ॥[१]

श्री मद्भागवत पुराण की इस गोपी को ही भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानो ने राधा स्वीकार किया है । डा० फर्कु हर राधा का उद्भव एव राधा-भक्ति का प्रारम्भ श्रीमद्भागवत पुराण से ही मानते हैं ।[२] आगे चलकर वे स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि भागवतपुराण के आधार पर ही राधा का मिथ (?) प्रचलित हुआ और वृन्दावन के बाद राधा का प्रचार बगाल एव अन्य स्थानो पर हुआ ।[३] इसके अतिरिक्त वायुपुराण, वराह पुराण, नारदीय पुराण, मत्स्यपुराण आदि मे भी राधा का उल्लेख मिलता है । इस प्रकार प्राचीन वाग्मय मे उपलब्ध तथ्यो के आधार पर यही कहा जा सकता है कि श्री राधा की उद्भावना पौराणिक काल की देन है ।

राधा की माधुरी मूर्ति का अ कन हमे भक्तकवि जयदेव के 'गीत-गोविन्द' मे मिलता है । जयदेव ने 'उद्दाम प्रेममयी' राधा का चित्रण किया है । उनकी राधा विलासिनी होते हुए भी कृष्ण के प्रे म मे अनन्य भाव से उन्मत्त और आसक्त चित्रित की गई है । जयदेव के बाद विद्यापति की पदावली मे विरहिणी राधा का रूप दिखाई देता है । साथ ही बगाल के वैष्णव कवि चण्डीदास की पदावली मे भी राधा का विरहिणी के रूप मे ही चित्रण मिलता हैं । किन्तु दोनो मे अन्तर यह है कि "चण्डीदास की राधा मे मानस-सौन्दर्य अपनी चरम सीमा तक पहुचता है । विद्यापति की राधा मे शरीर सौन्दर्य उसी प्रकार अपनी परिणति पर पहुंचता है ।" [४]

इन सभी कवियो की कल्पना से सर्वथा पृथक् चित्र सूरदास की राधा का मिलता है जिन्होने राधा के सयोग और वियोग दोनो का ही मर्यादित चित्रण किया है । सूर के अनन्तर तीन चार सौ वर्षों के ब्रज-साहित्य मे राधा का चित्रण सामान्यत सभी कवियो ने अपने ढंग से किया है । ब्रजभाषा काव्य मे राधा-कृष्ण कवियो की भाव-साधना के प्रतीक बन गये थे । इसलिए किसी किसी को छोडकर

---

१ बृहद् ब्रह्मसहिता, द्वितीय पाद, चतुर्थ अध्याय, श्लोक १७४
२ डा० जे० एन० फर्कु हर एन आउटलाइन आफ दि रिलीजस लिटरेचर आफ इ डिया, पृ० २३७
३ डा० जे० एन० फर्कु हर-एन आउट लाइन आव दी रैलीजस लिटरेचर आफ इ डिया, पृ० २३८
४. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० १८३

सभी कवियो ने राधाकृष्ण के चित्रण द्वारा अपनी लेखनी को धन्य किया। "ब्रज-भाषा काव्य के प्रारम्भ काल मे राधा और कृष्ण इतिहास या तत्व की चीज नही रह गये थे। वे सम्पूर्णत भाव जगत की चीज हो गये थे।"[१] यही कारण है कि वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवियो ने श्री वल्लभाचार्य द्वारा राधा का उल्लेख न होने पर भी उसका सभी कवियो ने अपने काव्य मे निरूपण किया। राधा सम्बन्धी भक्ति भावना का मत अष्टछाप के कवियो ने विट्ठलनाथ जी से ग्रहण किया था। डा० दीनदयाल गुप्त ने लिखा है—"श्री वल्लभाचार्य ने गोपियो के प्रकार बताते हुए राधा नाम का स्वामिनी स्वरूपा गोपी का उल्लेख नही किया, उन्होने अन्य किसी ग्रन्थ मे राधा का उल्लेख नही किया है।...... राधा नाम का समावेश श्री विट्ठलदास जी ने अपने सम्प्रदाय मे किया था। अष्टछाप के कवियो ने गोस्वामी विट्ठलदास जी के मत को इस सम्बन्ध मे ग्रहण किया।"[२]

'सूर और नन्ददास आदि कवियो ने भक्तिकाल मे राधा कृष्ण की जिस रूप माधुरी का चित्रण प्रारम्भ किया था उसमे भक्ति और शृ गार का सुन्दर सामजस्य था। आगे चलकर रीतिकालीन कवियों ने दरबारी वातावरण तथा अन्य कुछ कारणो से राधा को नायिका के रूप मे चित्रित करना प्रारम्भ किया। रीतिकालीन राधा मे ऐन्द्रिक शृ गार भावना के कारण विकृति आ गई क्योंकि रीतिकाल के कवियो ने कलुष शृ गार मे डुबोकर राधा को काव्य रचना का विषय बनाया था। आधुनिक काल मे पुन भारतेन्दु से राधा के रमणीय रूप का संयत चित्रण प्रारम्भ होता है। हरिऔध जी ने राधा के चरित्र-विश्लेषण मे सर्वथा नवीन दृष्टिकोण का परिचय दिया है। प्रियप्रवास की राधा जहा परिणय की प्रतिमा है वहाँ लोकसेविका भी है। उनके चरित्र का विकास प्रेम और कर्त्तव्य की पवित्र भूमि पर हुआ है। उन्हे आदर्श भारतीय नारी के रूप मे चित्रित किया गया है।

राधा 'प्रियप्रवास' महाकव्य की नायिका हैं। प्रियप्रवास की रचना मे राधा का विशिष्ट एव महत्वपूर्ण स्थान है। प्रियप्रवास के चतुर्थ सर्ग मे सर्व प्रथम राधा के दर्शन एक अपूर्व छविमयी बालिका के रूप मे होते हैं। उनकी रूपमयी माधुरी का चित्र अ कित करते हुए कवि ने लिखा है —

'रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना,
तन्वगी कल हासिनी सुरसिका, क्रीडा कला पुत्तली।
शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी, लावण्य लीलामयी,
श्री राधा मृदु भाषिणी मृगदृगी, माधुर्य सम्मूर्ति थी॥[३]

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी सूर साहित्य, पृ० २१
२ डा० दीनदयाल गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५०८
३ प्रियप्रवास सर्ग ४–४

इस सर्ग में राधा के नखशिख सौन्दर्य चित्र का अंकन बड़े कलात्मक ढंग से हुआ है। कवि ने राधा को कलामर्मज्ञ, सुकुमार, कमनीय एवं सद्गुण अलंकृता बाला के रूप में चित्रित किया है। इस चित्रण में कवि ने श्री राधा के परम्परित लावण्यमय एवं आकर्षक व्यक्तित्व को संजोया है जिसके चित्रण में जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, सूरदास, नन्ददास एवं रीतिकालीन कवि अपनी प्रतिभा का परिचय दे चुके थे। किन्तु फिर भी प्रियप्रवास की राधा का रूप सर्वथा नवीन है। क्योंकि वह जयदेव की विलासिनी प्रेम विह्वला नारी, विद्यापति की यौवनोन्मत्त मुग्धा नायिका, चण्डीदास की परकीया नायिका, सूर की मर्यादा सन्तुलित नागरी, नन्ददास की तार्किक और रीतिकाल की उच्छृंखल अल्हड़ किशोरी सी नहीं जान पड़ती।[1]जयदेव की राधिका के समान उनमें प्रगल्भ व्याकुलता नहीं है, विद्यापति की राधिका के समान उनमें मुग्ध कौतूहल और अनभिज्ञ प्रेम लालसा नहीं है। चण्डीदास की राधा के समान उनमें अधीर कर देने वाली गलद्वाष्पा भावुकता भी नहीं है पर कोई सहृदय इन सभी बातों को उनमें एक विचित्र मिश्रण के रूप में अनुभव कर सकता है।[2] प्रियप्रवास में राधा के प्रेममय व्यक्तित्व का क्रमिक एवं समुचित विकास चित्रित किया गया है। कृष्ण और राधा दोनो के पिता में स्नेह सम्बन्ध था।[3] इसलिये दोनों बालकों का प्रेम बाल्यावस्था से ही विकसित हुआ था।

राधा कृष्ण के प्रेम का प्रसार बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ था। अतः राधा के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम-भाव दृढ़तर होता गया। यौवनावस्था तक पहुँचते २ दोनों का स्नेह भाव का प्रणय मे परिवर्तन हो गया। राधा के मनमानस मे कृष्ण की मन माधुरी मूर्ति बस गई।[4] प्रणय भाव की तीव्रता मे वे कृष्ण को पतिरूप में वरण करना चाहती थी—"मम पति हरि होवें चाहती मैं यही हूं।" कृष्ण के मथुरागमन से राधा की आकांक्षाओं पर तुषारापात हो गया। उसने पवन-दूत के द्वारा अपना विरह संदेश भेजा। यही से राधा का विरहिणी रूप दिखाई देता है। उनके मानस पर कृष्ण के रूप की छवि अंकित हो गई थी। किन्तु विरह वेदना ही राधा के व्यक्तित्व का उन्मेष करती है। कृष्ण के विलग होने पर राधा के हृदय मे उदात्त भावों की सृष्टि होती है। उसे सारा जगत कृष्णमय प्रतीत होता है। कालिन्दी के जल में उन्हें श्याम के गात की आभा दिखाई देती है। सरों में खिले

---

१. श्री दुर्गाशंकर मिश्र : हिन्दी काव्य मंथन, पृ० २७१

२. हरिऔध अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ४६१

३. प्रियप्रवास, सर्ग ४–६

४. वही, सर्ग ४, छन्द १७, १८

कमलों में कृष्ण के कर पग दिखाई देते है ।[1] ताराओं से खचित नभ और मेघों में मुदित वक पंक्ति में उन्हें श्याम का मुक्तलसित उर दिखाई देता है ।[2] ऊंचे शिखरों में कृष्ण के चित्त की उच्चता,[3] फूली संध्या में परमप्रिय की कांति, रजनी में श्याम के तन का रंग,[4] भृंगमालिका में अलक-सुषमा, मृगों में आंखों की छवि,[5] गगनतल में श्यामगात की नीलिमा, भू में शोभा[6] और खग कूजन में उन्हें श्याम की मोहिनी वंशिका की धुनि सुनाई देती है ।[7] श्याम को विश्वमय देखने से उन्हें दो लाभ हुये :—

हो जाने से हृदय तल का भाव ऐसा निराला ।
मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये ॥
मेरे जी में हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा ।
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में ॥[8]

अब राधा लोकसेविका और विश्व प्रेमिका हो गईं । उनका हृदय विशाल, उदार और मानवीय प्रेम भावना से पूरित हो गया । उन्होंने पीड़ित, पतितों और असहायओं की सेवा का व्रत लिया । राधा ने भगवान की भक्ति का नवीन रूप ग्रहण किया । नवधा-भक्ति की नवीन व्याख्या की । डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा के शब्दों में "कृष्ण से विलग होने पर राधा के प्रेम का उदात्तीकरण मानवजाति एवं समस्त लोक के प्रति प्रेम की भावना के रूप में हो जाता है और वे प्रत्येक प्राणी एवं प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में कृष्ण के ही रूप का दर्शन करती है[9] यहां कृष्ण के अभिन्न बन्धु उद्धव के आगमन पर प्रियप्रवास की राधा उन्हें व्यंग्य या उपालम्भ नहीं देती, न ही मोहनिमग्ना होकर विरह वेदना का प्रलाप करती है । वे शिष्टता-पूर्ण ढंग से उद्धव का स्वागत करके धैर्यपूर्वक श्री कृष्ण का सन्देश सुनती हैं । तदन्तर अपने उर के भावों- संवेदनाओं और जीवनादर्शों को स्पष्ट रूप में उद्धव से

१. प्रियप्रवास , सर्ग १६–७९
२. वही , सर्ग १६–८०
३ वही , सर्ग १६–८२
४. वही , सर्ग १६–८४
५. वही , सर्ग १६–८५
६. वही , सर्ग १६–८७
७. वही , सर्ग १६–८८
८. वही , सर्ग १६–१०४
९. डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा : हिन्दी साहित्य पर आंग्ल-प्रभाव, पृ० १६१

कह देती है। अपनी मर्मव्यथा को व्यक्त करने मे वह अपनी दुर्बलता स्वीकार करती है—

> मैं नारी हू, तरल उर हू, प्यार से वंचिता हू।
> जो होती हू, विकल, विमना, व्यस्त वैचित्र्य क्या है ?[1]

राधा ने स्पष्ट कहा है कि यद्यपि मैं नित्य सयत और निर्लिप्त भाव से रहती हू फिर भी श्याम की याद आते ही व्यथित हो जाती हू। प्रियलाभ की लालसा मेरे उर म जितनी प्रबल है उतनी जगत हित की इच्छा नही।[2] प्रियानुराग एव लोकसेवानुराग का यह द्वन्द्व राधा मे बराबर बना रहता है।[3] यहा कवि ने बडे कौशल से मानव मनोविज्ञान का प्रदर्शन किया है। इस मानसिक सघर्ष ने ही राधा की चरित्र सृष्टि को महान और महत्वपूर्ण बनाया है। अन्तत वह लोकसेवा मे ही समर्पित हो जाती हैं। तभी तो वह यह कहने मे समर्थ होती है—

> "प्यारे जीवें जग हित करें गेह चाहे न आवे॥"[4]

इस प्रकार राधा काव्य के अन्तिम सर्ग मे सच्ची लोकसेविका बन जाती हैं। व्रजजनो के कष्ट निवारण मे सब प्रकार से जुट जाती हैं। वह माता यशोदा को सात्वना देती है, गोपजनो को कर्मठ और परिश्रमी बनने का उपदेश देती हैं। खिन्नमन गोपिकाओ को कृष्ण की मधुर कथाए सुनाकर एव सदुपदेश देकर प्रसन्न करती है। इसीलिये तो कवि ने कहा है कि—

> कगालो की परम निधि थी औषधी पीडितो की,
> दीनों की थी बहिन, जननी थी अनाश्रितो की,
> आराध्या थी व्रज अवनि की प्रेमिका विश्व की थी।[5]

परमार्थ सेवा भाव के कारण राधा अपने दुःख की अपेक्षा व्रजवासियो के दुःख से दुःखी थी, और उन्ही के निमित्त कृष्ण का व्रजागमन चाहती थी। अपने लिये तो उनकी यही कामना थी कि—

१ प्रियप्रवास, सर्ग १६-५०
२ वही, सर्ग १६-५६
३ डा० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यो मे नारी चित्रण, पृ० १०२
४ प्रियप्रवास – सर्ग १६–९८
५ वही – सर्ग १७–५०

"आज्ञा भूलूं न प्रियतम की विश्व के काम आऊं,
मेरा कौमार-व्रत भव मे पूर्णता प्राप्त होवे ॥" [1]

इस प्रकार प्रियप्रवास की राधा हिन्दी कृष्ण काव्य परंपरा की एक अद्भुत सृष्टि है जिसके निर्माण में कवि ने युगचेतना और नवीन जीवना-दर्शों की पूर्ण रक्षा की है। प्रियप्रवास की राधा हमारे युग मे नारी चेतना का सच्चा प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके व्यक्तित्व मे प्रेम, कर्त्तव्य, त्याग, निष्ठा, शील, सौजन्य आदि गुणों का सुन्दर समाहार हुआ है। राधा की चरित्र-कल्पना के द्वारा निश्चय ही हरिऔध जी ने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। प्रणय, विरह और त्याग की त्रिवेणी से स्नात प्रियप्रवास की राधा का चरित्र भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिमा है।

यशोदा—प्रियप्रवास मे राधा के अनन्तर यशोदा सबसे महत्वपूर्ण नारी पात्र है। उसका चरित्र करुणा, वात्सल्य और ममता की त्रिमूर्ति है। उनकी चरित्र-योजना मे भारतीय जननी की आदर्श प्रतिमा साकार हो उठी है। प्रियप्रवास मे यशोदा के दर्शन सर्वप्रथम तृतीय सर्ग मे २८वें छन्द से होते हैं। यहा यशोदा कृष्ण की शैय्या के समीप बैठी आसू बहा रही हैं क्योकि उनके मन मे आशंकाएं व्याप्त हैं जिनके कारण उनका चित्त खिन्न और हृदय व्याकुल है। कृष्ण प्रातः कंस के यहा चले जायेंगे। वह अत्याचारी कंस न जाने क्या बाधा उपस्थित करदे। यशोदा अपने करुण क्रंदन को धीरे धीरे व्यक्त कर रही हैं। उन्हे यह भी भय है कि कही कृष्ण की नीद मे बाधा न पडे। किन्तु जब उनका दुःख न घटा तो सिर झुकाकर चुपचाप श्याम की कुशलता के लिए देवता की आराधना करने लगी। [2] यद्यपि कृष्ण लोकसेवा एवं जनहित के लिए जा रहे थे किन्तु भोले स्वभाव एवं वात्सल्य के कारण ये बातें यशोदा को प्रभावित नही करती। अन्त मे विदाई वेला के समय उनके वात्सल्य का स्रोत फूट पड़ता है। वह अनेक प्रकार से समझा बुझाकर नंद के साथ बालको को भेजती हैं। मार्ग मे इन बालको को दुःख न हो, इसके लिये सभी प्रकार की प्रार्थना नद से करती हैं। वह कहती है कि इन्हें मधुर फल खिलाना, नाना दृश्य दिखाना, प्यास लगने पर मधुर जल पिलाना आदि। [3] यशोदा कृष्ण के क्षणिक वियोग की वेदना सहने मे भी अक्षम थी किन्तु यह वियोग जब सदैव के लिये हो गया तो उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। नंद का मथुरा से अकेले ही लौटकर आने पर यशोदा के धैर्य का

---

१. प्रियप्रवास, १६।१३५.
२. वही, ३।३८ से ८५
३. प्रियप्रवास—५।४९ से ६२

बांध ही टूट जाता है। वह छिन्नामूला लता की भांति महाखिन्नमना होकर नद के पैरो पर गिर पडती हैं।[1] वह विकल भाव से आसू बहाती हुई नद से पूछती है —

"प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहा है,
दुख जलधि निमग्ना का सहारा कहा है,
अब तक जिसको देखकर मैं जी सकी हू
वह हृदय हमारा नेत्र तारा कहां है ?"[2]

विरहावेग मे वह प्रश्न की झडी लगा देती है। वह कहती हैं कि वृद्धा के नेत्रो का तारा, दुख जलधि मे डूबी हुई का सहारा, दुखिया मा का जीवन कहा है ?[3] पुत्र के अभाव मे यशोदा मरने को उद्यत हो जाती है —

"इस कुत्सित हमारे गात को प्राण त्यागो।
अब विवश नही तो नित्य रो रो मरूगी॥
+ + +
हॉ जीऊगी न अब, पर है वेदना एक होती।
तेरा प्यारा वदन मरती बार मैंने न देखा॥"[4]

इस प्रकार अश्रु धारा प्रवाहित करते करते वह सज्ञा शून्य होने लगी। उनकी करुणाद्र दशा को देख सभी भीत थे।[5] नद ने यशोदा को सांत्वना दी कि कृष्ण दो दिन म आ जायेंगे। तत्पश्चात् यशोदा कृष्णागमन की प्रतीक्षा करने लगीं। उनके वियोग म माता का शरीर जीर्ण शीर्ण हो गया था। वह प्रतिदिन द्वार पर आकर बैठती और प्रतिक्षा मे ही दिन बिता देती। आने वाले पथिको से पूछती, देवताओ को मनाती और ज्योतिषियो से कृष्णागमन के विषय मे पूछती थी। बहुत दिवस व्यतीत होने पर भी कृष्ण नही आये। उन्होने उद्धव के साथ सन्देश भेजा। इस समय यशोदा की दशा बडा दयनीय हो गई थी —

'आवेगो से विपुल विकला शीर्ण काया कृशांगी
चिंता-दग्धा व्यथित हृदया शुष्क ओष्ठा अधीरा
आसीना थी निकट पति के अम्बु नेत्रा यशोदा
खिन्ना दीना विनत बदना मोह मग्ना मलीना।"[6]

---

१. प्रिय प्रवास–७।१०
२ वही–७।११
३ वही–७।१२ से १५
४ वही–७।५५ से ५७
५ वही–७।५८
६ वही–१०।१६

ऐसी दशा मे यशोदा बडे व्यथित भाव से कृष्ण के लालन-पालन करने मे उठाये कष्टो की कथा कहती है। साथ ही ब्रज की व्यथा का वर्णन भी करती है।[1] सदगृह मे बैठे उद्धव रात्रि भर यह सारी कथा सुनते रहे। प्रात' होने पर उद्धव नन्द सहित सद्म से चले गये। उद्धव के गृहत्याग से ही वह दुख की कथा परिसमाप्त हुई, किन्तु यह कथा उद्धव के हृदय पर सदा के लिये अ कित हो गई।[2]

इन्ही वियोग जन्य परिस्थितियो मे जहा हमे यशोदा के चरित्र मे वेदना के दर्शन होते हैं, वही उनके चरित्र का उदात्त रूप भी हमारे सामने आता है। एक ओर वह कहती हैं—

'ऊधो कोई न कल छल लाल ले ले किसी का।'[3]

यहा व्यंजना से सकेत देवकी की ओर है। उनके हृदय मे एक कसक सी उठती थी कि—

'हो जाती हूं मृतक सुनती हाय जो यो कभी हूं,
होता जाता मम-तनय भी अन्य का लाडला है।'[4]

वही-उनका मातृत्व यह कह उठता है—

'मैं रोती हूं हृदय अपना कूटती हूं सदा ही
हा ! ऐसी ही व्यथित अब क्यो देवकी को करूगी
प्यारे जीवें पुलकित रहें औ बने भी उन्ही के
धाई नाते बदन दिखला एकदा और देवें।''[5]

इन पक्तियों मे यशोदा सच्ची माता भी है जो स्वार्थ भावना से उठकर केवल अपने लाल को पुलकित देखना चाहती है। वह देवकी को भी अपनी तरह व्यथित करना नहीं चाहती। उन्हें धाय कहलाने मे ही सन्तोष है। ''यही भाव उन्हें विश्व मे श्रेष्ठ और उच्चतम पद प्रदान करने के लिये पर्याप्त है और इसलिए वे वदनीय और श्लाघनीय है।''[6] इस प्रकार यशोदा माता की दृष्टि से 'प्रियप्रवास'

---

१. प्रियप्रवास—१०।२० से ८६
२. वही—१०।९६,९७
३. वही—१०।६६
४. वही—१०।६४
५. प्रियप्रवास—१०।६५
६. डा० प्रतिपाल सिंह : बीसवी शताब्दी के महाकाव्य, पृ० १०८

तो सम्पूर्ण हिन्दी काव्य रचना मे एक अनुपम सृष्टि हैं। "प्रिय-प्रवास मे करुणा की जो सरिता बही है, उनमे सबसे पृथुल धारा यशोदा के शोक की है।" [1] सूर सागर की यशोदा से अनुप्राणित होकर भी प्रियप्रवास की यशोदा, माता की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्यो मे एक अद्वितीय स्थान रखती हैं।" [2]

डा० द्वारिकाप्रसाद ने उन्हें वीर प्रसूति माताओ की कोटि में मानते हुए लिखा है कि–"अन्तकरण की विशालता एव उदारता के कारण यशोदा माता वीर प्रसूति माताओ की कोटि मे भी जा पहुँचती है। यद्यपि कृष्ण उनके औरस पुत्र नही हैं, तथापि वे उन्हे औरस से भी अधिक मानती हैं और उन्हे लोकहित एव लोकसेवा के कार्यों मे लीन देख कर अतीव हर्ष प्रकट करती है। वास्तव मे भारतीय जननी का यही आदर्श रहा है वह ममता एव वात्सल्य से परिपूर्ण होकर भी अपने पुत्र को लोकहित एव लोकसेवा के लिये सहर्ष अग्रसर करती रही है। इस दृष्टि से यशोदा जी, कुन्ती, विदुला, सुभद्रा आदि वीर प्रसूती माताओ से किसी प्रकार कम नही दिखाई देती।" [3]

इस प्रकार यशोदा का चरित्र पर्याप्त मौलिकता ग्रहण किये हुए है। हरिऔध जी ने कृष्ण और राधा की भांति यशोदा के चरित्र-निर्माण मे महाकाव्यात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। यशोदा का चरित्र अविस्मरणीय रूप से पाठक के मन मस्तिष्क पर अ कित हो जाता है। यही इसकी सबसे बडी सफलता है।

अन्यपात्र :

नन्द—प्रियप्रवास मे नन्द के चरित्र के दो रूप मिलते है–पिता और पति। तृतीय सर्ग मे कस द्वारा कृष्ण को बुलाने एव अक्रूर आगमन से उनका मन विचलित हो जाता है। यथा–

"सित हुए अपने मुख लोम को। कर गहे दुख व्यजक भाव से।
विषम सकट बीच पडे हुए। बिलखते चुपचाप अशेष थे॥" [4]

किन्तु व्रजधराधीश होने के कारण उनमे गभीरता, दूरदर्शिता एव धैर्य भी था। अपनी मर्मव्यथा को दबाये, भग्न हृदय एव आशकित से वे कृष्ण को लेकर

१. प्रिय प्रवास, सर्ग ३।२१.
२. विश्वम्भर मानव : खडी बोली के गौरव ग्र थ
३. डा० द्वारिका प्रसाद : प्रियप्रवास मे काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० १३१
४. डा० श्याम सुन्दर व्यास : हिन्दी महाकाव्यो मे नारी चित्रण, पृ० १३९

अक्रूर के साथ मथुरा जाते हैं। वहा कृष्ण को लोकहित मे रत छोड़कर वे दृढ़ चेता एव उदार हृदय पिता की भाति खाली ही लौट आते हैं। यशोदा एव ब्रजजनो की दशा अत्यन्त विकल हो जाती है। इस अवसर पर नन्द एक सफल पति की भाति कृष्ण के पुनरागमन का आश्वासन देकर प्रबोधित करते हैं।[1] दशम सर्ग मे नन्द के हृद्योगारो की मार्मिक व्यजना हुई है–

"राजा हो के न असमय मे पा सका मैं 'सु–साथी'
कैसे ऊधो कु–दिन अवनि मध्य होते बुरे हैं।"[2]

नद स्वय अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहते है कि:—

मैं जैसा ही अति सुखित था लाल पा दिव्य ऐसा।
वैसा ही हूँ दु खित अब मैं काल कौतूहलो से॥[3]

इस अवसर पर नन्द कर्तव्यच्युत नही होते वरन् बडे कौशल से अपने दायित्व का वहन करते हुए चित्रित किये गये है। उनके सन्तोष का सबसे बडा कारण यही है कि उनका पुत्र लोकहित एव जातीय गौरव की रक्षा के कार्यों मे व्यस्त है। नन्द के चरित्र का विकास यद्यपि प्रियप्रवास मे पर्याप्त विस्तार से नही हुआ है तथापि एक गभीर, उदार विचार-सम्पन पिता तथा कर्तव्य-परायण पति के रूप मे उनकी जितनी भी झाकिया काव्य मे दिखाई देती हैं, वे कम महत्वपूर्ण नही है।

उद्धव—'प्रिय प्रवास' मे उद्धव का प्रवेश नवम् सर्ग से होता है जहा वे अभिन्न बन्धु के रूप मे श्री कृष्ण से उनकी खिन्नता का कारण पूछते है और फिर उनके सन्देशवाहक बनकर ब्रज आते है। उनके आगमन से ब्रजवासियो को यह सन्तोष होता है कि कृष्ण उन्हे भूले नही। दूसरे उनके माध्यम से वे अपनी व्यथा को कृष्ण तक भेजने मे भी सफल होते हैं। प्रियप्रवास के उद्धव की विशेषता यह है कि वे श्रीमद्भागवत, सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछाप के कवियो एव कृष्ण-काव्य मे भ्रमरगीत प्रसग के अन्य गायकों के उद्धव की भाति शुष्क ब्रह्मवाद या तत्वज्ञान का उपदेश न देकर जगहित एव विश्व प्रेम का सन्देश देते हैं। यही कारण है कि प्रियप्रवास के उद्धव को सूर, नन्ददास आदि के उद्धव की भाति अवमाननापूर्ण व्यग्य वाक्य नही सुनने पडते, न ही श्रीमद्भागवत के उद्धव की भाति

---

१ 'हा आवेगा प्रिय सुत प्रिये गेह दो ही दिनो मे
ऐसी बातें कथन कितनी और भी नन्द ने की
जैसे तैसे हरि जननी को धीरता से प्रबोधा॥
—प्रियप्रवास, सर्ग ७।६१.

२ प्रियप्रवास, सर्ग १०।८९

३ वही, सर्ग १०।९४

गोपियों की चरण रज को सिर पर लगाते हैं।[1] यहाँ तो उद्धव के संदेश से प्रेरित होकर राधा लोकसेविका बन जाती हैं। वास्तव मे यहाँ उद्धव हरिऔध जी की विचारधारा के सवाहक के रूप मे दिखाई देते हैं। कवि ने अपने विचारो को उनके माध्यम से व्यक्त करने का पूर्ण अवसर पाया है। यही उनके चरित्र का महत्त्व है।

मूल्याकन—

समष्टि रूप मे 'प्रियप्रवास' चरित्र विनियोजन की दृष्टि से पूर्णत सफल रचना है। 'प्रियप्रवास' चरित्र प्रधान महाकाव्य है। विभिन्न पात्रो के चरित्र का समुचित मूल्याकन प्रस्तुत करना भी प्रियप्रवासकार का एक उद्देश्य रहा है।[2] प्रियप्रवास के चरित्र चित्रण मे निम्न लिखित विशेषताए दिखाई देती हैं—

(१) प्रिय प्रवास के प्रमुख पात्र कृष्ण और राधा महाकाव्योचित गरिमा से मंडित हैं।

(२) प्रियप्रवास के राधा और कृष्ण पौराणिक एव परम्परित व्यक्तित्व-अनुकृति ग्रहण किये हुए भी, अपने कृतित्व एव चारित्रिक विशेषताओ के कारण नवीन, युगीन एव मौलिक है। उनके चरित्र मे पौराणिकता और आधुनिकता, ऐतिहासिकता और नवीनता, परम्परा और युगानुरूपता का अद्भुत समन्वय हुआ है।

(३) प्रियप्रवास मे नारी चित्रण का आधार मनोवैज्ञानिक है। कवि ने इन पात्रो की विरह वेदना को ऊहापोह बनाकर अतिशयोक्तिपूर्ण ढग से चित्रित न करके परिस्थिति जन्य एव स्वाभाविक रूप मे प्रस्तुत किया हैं।

(४) प्रियप्रवास के सभी पात्र अपनी शक्ति, सामर्थ्य एव क्षमता के अनुसार लोकहित एव जातीय गौरव की भावना के पोषक दिखाई देते हैं।

साकेत

'प्रियप्रवास' की भाति 'साकेत' भी चरित्र प्रधान काव्य हैं।[3] यद्यपि गुप्त जी ने साकेत मे कथाचयन कौशल का परिचय कथानक की मौलिक प्रसगोद्भावनाओ, प्रस्तुतीकरण एव घटनान्विति के द्वारा दिया है किन्तु साकेत के सक्षिप्त कथानक का विस्तार घटनाओ के घटित रूप मे न होकर पात्रो के चरित्र विश्लेषण

---

१. श्रीमद्भागवत पुराण — १०।४७।३९-६३
२. प्रियप्रवास, भूमिका भाग (ग्रथ का विषय), पृ० २९-३०
३. डा० नगेन्द्र-साकेत : एक अध्ययन, पृ० १०२

द्वारा कथित रूप मे ही अधिक हुआ है। इसलिए साकेत को घटनाप्रधान काव्य न कह कर चरित्र प्रधान काव्य कहना ही अधिक समीचीन है।[१] वस्तुतः साकेत चरित्र प्रधान कथा सृष्टि है। कथा विकास तो उसका पृष्ठाधार मात्र है।[२] साकेत की चरित्र सृष्टि का आधार राम कथा के ही लोक प्रसिद्ध पौराणिक पात्र है। साकेतकार के चरित्र चित्रण कौशल का परिचय इस बात से मिलता है कि उसने देवी और राजवशीय पात्रो के देवत्व और कौलिन्यगर्व का प्रक्षालन करके उन्हे मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया है। केवल राम का चरित्र एक सीमा तक इस कथन का अपवाद हो सकता है। राम कवि के आराध्य देव हैं अत उनके चरित्र को वे सामान्य मानव की कोटि तक चित्रित नही कर सकते थे। इसलिए राम के चरित्र मे दैवी गुणो का ही प्राधान्य है। वस्तुतः राम चरित्र का असाधारण एव आदर्श रूप कवि की आराध्य देव के प्रति पूज्य भावना का ही परिणाम है। अन्य सभी पात्रो के चरित्र विवेचन मे कवि ने प्रसगानुकूल अमानवीय एवं मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा की हैं। साकेत की चरित्र योजना मे रामकथा के सभी पात्र किसी न किसी रूप मे आ गये हैं। इनमे महत्त्व की दृष्टि से उर्मिला, लक्ष्मण, राम, सीता, भरत, कैकेयी और दशरथ एव अन्य पात्रो मे कौशल्या, सुमित्रा, माडवी, मथरा, रावण एवं हनुमानादि उल्लेखनीय हैं।

उर्मिला—'साकेत' महाकाव्य का सबसे महत्वपूर्ण पात्र उर्मिला है। वही इस काव्य की नायिका है। साकेत की सृजन प्रेरणा के मूल मे काव्योपेक्षिता उर्मिला का ही चरित्र है। 'साकेत' की सम्पूर्ण कथा की गति, प्रसार एव सवहन मे उर्मिला का महत्वपूर्ण स्थान है। डा॰ नगेन्द्र का मत है कि—"चरित्र प्रधान काव्य की सफलता के लिए यह वाछित है कि उसके सभी पात्र मुख्य पात्र के चरित्र पर घात-प्रतिघात द्वारा प्रभाव डालें तथा कभी परिस्थिति और कभी पृष्ठभूमि के रूप मे उपस्थित होकर उसको प्रकाश मे लाए।"[३] इस दृष्टि से साकेत का चरित्र चित्रण पूर्णतः सफल कहा जायेगा। उसके सभी पात्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उर्मिला के चरित्र विकास से सबधित हैं। उर्मिला के सम्पूर्ण चरित्र का अध्ययन तीन रूपो मे किया जा सकता है —

१. प्रारम्भिक चरित्र-जिसमे उसे हम नव परिणिता राजवधू एव आदर्श गृहिणी के रूप मे पाते हैं।

---

१. डा॰ द्वारिकाप्रसाद · साकेत मे, काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ॰ १३६
२ डा॰ कमलाकान्त पाठक · मैथिलीशरण गुप्त . व्यक्ति और काव्य, पृष्ठ ४४३
३. डा॰ नगेन्द्र—साकेत : एक अध्ययन, पृ॰ १०२

२. उर्मिला के चरित्र का द्वितीय रूप विरहिणी का है।
३. तृतीय सर्वगुण सम्पन्न आदर्श नारी।

'साकेत' के प्रथम सर्ग मे ही हमे उर्मिला के दर्शन होते हैं जहा उसे अनिद्य-सौन्दर्य शालिनी, दिव्य गुण सम्पन्न नवपरिणिता राजवधू के रूप मे कवि ने प्रस्तुत किया है। गुप्त जी ने 'मूर्तिमती उषा', 'सजीव सुवर्ण की नयी प्रतिमा', 'विधि के हाथो ढली', 'कल्प शिल्पी की कला' कहकर उर्मिला की मनोरम रूपाकृति का चित्र अंकित किया है।[१] उर्मिला को कवि ने 'स्वर्ग का सुमन' कहकर सम्मानित किया है। इसी सर्ग म लक्ष्मण-उर्मिला का पारस्परिक हास्यविनोद चित्रित है जिसमे उर्मिला की परिहास वृत्ति, आदर्श पत्नीत्व एव शुद्ध गभीर प्रेम का परिचय मिलता है। उर्मिला का रमणी हृदय आल्हाद, उत्साह और उमगों से भरा है। वह चित्रकला प्रवीण, वाक्य-पटु, विनयशील और पति को देवरूप मे वरण करने वाली रमणी है।[२] उर्मिला का हास्य व्यग्य, विनोद-वार्ता एव पतिपरायणता के साथ स्वाभाविक सौन्दर्य प्रथम सर्ग मे ही पाठक के हृदय पटल पर उसके व्यक्तित्व की अमिट रूप छवि अकित कर देता है।

राम के राज्याभिषेक की चर्चा लक्ष्मण के "[illegible], [illegible] का अभिषेक है। सब कही आनन्द का अतिरेक है।"[३] [illegible] है। द्वितीय सर्ग मे ही मथरा की कुमन्त्रणा से [illegible] का वरदान मागना उर्मिला के जीवन का [illegible] है। लक्ष्मण राम के साथ वन जाने को उद्यत हो [illegible] है। [illegible] के साथ जाती है किन्तु उर्मिला अपने पति के साथ [illegible] त्याग का परिचय देती है। उर्मिला [illegible] देती। वह अपने स्वार्थ को त्यागकर, [illegible] है। वह अपने मन को विकार एव शोकभार से [illegible]।

दिखाई देती है। [1] उर्मिला की दशा बडी दयनीय हो जाती है। दशरथ का उसे 'रघुकुल की असहाय बहू' [2] कहना उचित ही है। उर्मिला का चरित्र करुणा की साक्षात् प्रतिमा बन जाता है और उसकी विरह-वेदना के उच्छ्वास नवम सर्ग के छन्दो मे करुणा का स्रोत बन कर फूट पडते हैं। साकेत का नवम सर्ग उर्मिला के विरह-विषाद की चरम निदर्शना है। प्रिय के वियोग मे अम्बु, अवनि, अम्बर मे स्वच्छ शरत की पुनीत स्वच्छ क्रीडा, अवधि-पित्त-पीडा सी हो जाती है। [3] भोग रोग हो जाते हैं और उसके हृदय की विराहग्नि तालवृन्त से धधक उठती है। प्रिय के वियोग मे वह उपवन को वन बनाती है, कुलकलक को अश्रु जल से धोती है [4] तथा अपने मन मन्दिर मे प्रिय की प्रतिमा स्थापित कर, सम्पूर्ण भोगो को त्याग कर अपना जीवन योगमय बना लेती हैं:—

"मानस मन्दिर मे सती, पति की प्रतिमा थाप
जलती थी उस विरह मे बनी आरती आप
आखो मे प्रिय मूर्ति थी, भूले थे सब भोग
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।" [5]

स्वामी के ध्यान मे वह आत्म विस्मृत सी हो जाती है। कामवासना से वह पीडित नही वरन् कामदेव को शिव के तृतीय नेत्र के सदृश अपना सिन्दूर बिन्दु दिखाकर भयभीत कर देती है। वह प्रोषित पतिकाओ के दुःख मे समदुःखिनी भी होना चाहती हैं। [6]वह विरह के साथ अभिसार भी स्वीकार करती है। विरह मे भी उसे काल-ज्ञान का विचार रहता है। [7] प्रकृति के उपादानो के प्रति उर्मिला के मन मे अब भी आकर्षण है, वितृष्णा नही। उर्मिला सभी ऋतुओ का स्वागत करती है। प्रकृति के प्रति सवेदना और कृषको के प्रति उसके हृदय मे सद्भाव है। वह तो यहा तक कहती है कि—

'सीचे ही बस मालिने, कलश ले, कोई न ले कर्त्तरी।'

यही नही अपने देश की दशा और उपज के बारे मे उर्मिला शत्रुघ्न से समय समय पर पूछती है। विरह की अग्नि मे तपकर उर्मिला प्रेम की सात्विक मूर्ति बन जाती है। विरह की कठोर परिस्थितियो मे भी उसका यही विश्वास है कि—

---

१. साकेत, सर्ग ६, पृ० १६०-६१
२. वही, सर्ग ६, पृ० १६८
३. वही, सग ९, पृ० ३००
४. वही, पृ० २६८
५. वही, पृ० २६९
६. वही पृ० २७५
७. वही, पृ० २८०

'प्रेम की ही जय जीवन में,
यही आता है इस मन मे ।" [1]

हृदय की उदारता और संवेदनशीलता ही उर्मिला के चरित्र को ऊंचा उठाती है।

उर्मिला के चरित्र का तृतीय पक्ष वह है जब हम उसे अदम्य विश्वास से पूरित वीर क्षत्राणी के रूप मे पाते हैं। लक्ष्मण को शक्ति लगने का समाचार पाकर उर्मिला क्षत्राणी वेश में आकर शत्रुघ्न के समीप उपस्थित हो गई। वह कार्तिकेय के निकट भवानी [2] लग रही थी। उसके आनन पर सौ अरुणों का तेज फूट रहा था। उसके माथे का सिन्दूर सजग अंगार सदृश्य था। [3] उनके दायें कर मे विकट शूल था और वह गर्जना कर रही थी कि—

"धीरो, धन को आज ध्यान मे भी मत लाओ
जाते हो तो मान हेतु ही तुम सब जाओ।
+ + +
विन्ध्य-हिमालय-भाल भला झुक जाय न धीरो
चन्द्र-सूर्य-कुल-कीर्ति कला रुक जाय न वीरो।
+ + +
ठहरो, यह मैं चलूं कीर्ति सी आगे आगे
भोगे अपने विषम कर्म फल अधम अभागे।" [4]

उर्मिला के उक्त कथन मे कितना प्राणवान् उद्‌बोधन है। देश प्रेम की ज्वाला है, पराक्रम और साहस का अद्भुत वेग है। शत्रुघ्न के इस कथन पर कि—

"क्या हम सब मर गये हाय, जो तुम जाती हो।"

वह वीरों के ही घाव धोने को ही जाना चाहती है, जिसमें उसकी सेवा भावना झलकती है। वियोगिनी उर्मिला का ओजमयी वीर क्षत्राणी एवं सेवा भाव पूरित नारी का यह स्वरूप निश्चय ही श्लाघनी है। इसलिए अन्त मे भी राम को उर्मिला की गुण-गीता गानी पड़ी—

---

१. साकेत, पृ० १२४
२. वही, सर्ग १२, पृ० ४७३
३. वही, पृ० ४७३
४. वही, पृ० ४७४-४७५

"तूने तो सहधर्म चारिणी के भी ऊपर
धर्म स्थापन किया भाग्यशालिनी, इस भू पर ।"[१]

अन्त मे प्राण प्रिय लक्ष्मण से मिलकर वह यही कहती है कि—

'स्वामी, स्वामी, जन्म जन्म के स्वामी मेरे ।"[२]

वास्तव मे उर्मिला का लौकिक चरित्र स्वर्गिक गुणों से सम्पन्न है । उसके चरित्र में नारी स्वभाव की दुर्बलताए भी हैं और जातिगत विशेषताएं भी। उर्मिला के चरित्र का विकास परिस्थिति जन्य सन्दर्भो मे हुआ है । उसके व्यक्तित्व में एक ओर रूप का आकर्षण एव शील सौजन्य का सम्मोहन है तो दूसरी ओर साहस, शौर्य स्वाभिमान एव स्वदेश प्रेम का गौरव भी है । वह विरहिणी है किंतु कर्तव्यनिष्ठ एव सयमशील । "काव्य की यह चिर उपेक्षिता, साकेत ही नहीं, हिन्दी महाकाव्यो की चरित्र भूमि मे प्रथम बार जिस वेष मे प्रकट होती है, वह वेष अश्रु विगलित होकर भी ओजमय, आदर्श–प्रधान होकर भी स्वाभाविकता के निकट एव देवी गुणो से मडित होकर भी नारी सुलभ है ।"[३] डा० सत्येन्द्र ने उर्मिला के चरित्र की तुलना दिव्य दीप से करते हुए लिखा है–"उर्मिला, घर मे जलाये गये उस आशापूत दिव्य दीपशिखा की भांति प्रज्ज्वलित है जो दूर देशगामी पुरुषो को प्रकाश प्रदान करने की कामना का प्रतीक है । उर्मिला में जितना रोना है उतना ही गाना है, जितनी अवरुद्ध है उतनी ही मुक्त है, जितनी छिपी है उतनी ही खुली है। फिर भी उसमे वीर रमणीत्व ने तो एक अलौकिक दीप्ति उपस्थित कर दी है। उर्मिला का दीपक घर घर मे जलाया जा सकता है।"[४] इस प्रकार उर्मिला का चरित्र महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है ।

साकेत का नायकत्व

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से साकेत के नायकत्व का प्रश्न कुछ उलझा हुआ है । साकेत के समीक्षक जहा उर्मिला को एक मत से नायिका स्वीकार करते हैं वहा नायक के सम्बन्ध में भी उनमे मतैक्य नहीं । आचार्य नददुलारे वाजपेयी भरत को नायक मानते है[५] तो प्रो० त्रिलोचन पाडेय[६] और विश्वम्भर मानव[७]

---

१ साकेत, पृ० ४९५
२ वही, पृ० ५००
३ डा० श्याम सुन्दर व्यास ' हिन्दी महाकाव्यो मे नारी चित्रण, पृ० १०६
४ डा० सत्येन्द्र–गुप्त जी की कला, पृ० १३३–३४
५ श्री नददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य, पृ० ९८
६. श्री त्रिलोचन पाडेय–साकेत दर्शन, पृ० ९५
७. श्री विश्वम्भर मानव–खडी बोली के गौरव ग्रन्थ

के अनुसार राम साकेत के नायक हैं। डा० प्रतिपाल सिंह के अनुसार लक्ष्मण इस काव्य के नायक हैं।[1] डा० कमलकान्त पाठक के मतानुसार–"साकेत के नायक लक्ष्मण हैं। यद्यपि लक्ष्मण सदैव राम के पार्श्ववर्ती रहे, अप्रधान रहे, पर साकेत की कथावस्तु के केन्द्र वे ही हैं .... प्राधान्य की दृष्टि से वास्तविक नायकत्व उर्मिला का है और औपचारिक नायकत्व लक्ष्मण का।"[2] श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' के अनुसार–"साकेतकार ने लक्ष्मण को साकेत का नायक तो बनाया है किन्तु साथ ही पग पग पर उन्हें रामचन्द्र जी का आश्रित बना दिया है।"[3] डा० श्यामनन्दन किशोर ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "नायक के गुणों का विस्तार वे न तो पूर्णतः उर्मिला में कर सके हैं, न लक्ष्मण में और न राम में ; कई उद्देश्यों के जाल में नायकत्व उलझ कर रह गया है।"[4] वास्तव में साकेत में नायकत्व की समस्या उत्पन्न इसलिये हुई कि एक ओर साकेतकार राम के प्रति अपनी पूज्य भावना के कारण उन्हें काव्य में सर्वोपरि स्थान देने से वंचित नहीं रख सका और दूसरी ओर उर्मिला–पति के रूप में लक्ष्मण को नवीन रूप में उभारने तथा मुख्य कथा संचालक की स्थिति प्रदान करने का लोभ संवरण भी नहीं कर सका। साकेत की रंगस्थली पर लक्ष्मण और उर्मिला काव्यारम्भ से प्रविष्ट होते हैं और काव्यांत भी उन्हीं के संवादों से होता है। सम्पूर्ण कथा की संचालन विधि में लक्ष्मण का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः साकेत का नायक लक्ष्मण और नायिका उर्मिला ही को कहा जा सकता है।

लक्ष्मण—साकेत में लक्ष्मण का चरित्र परम्परित रामकाव्यों की अपेक्षा अधिक उन्नत बन पड़ा है। काव्यारम्भ में लक्ष्मण सुकुमार प्रकृति के विनोद प्रिय एवं ललित नायक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उर्मिला के साथ हास्यपूर्ण वार्तालाप में लक्ष्मण सौम्य स्वभाव के हास–विलास प्रिय राजकुमार चित्रित किये गये हैं। यह उनके चरित्र का कोमल रूप है।

लक्ष्मण के उग्र रूप का चित्रण तृतीय सर्ग में दृष्टिगत होता है जब वनगमन की सूचना से वे क्रोधित होकर कैकेयी और महाराज दशरथ को कटु से कटु वचन कहते हैः—

---

१. डा० प्रतिपालसिंह–बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, पृ० १३४
२. डा० कमलाकान्त पाठक–मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य, पृ० ४४५
३. श्री गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश–गुप्त जी की काव्यधारा, पृ० १४०
४. डा० श्यामनन्दन किशोर–आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ० २२४

'अरे मातृत्व तू अब भी जताती, ठसक किसको भरत की है बताती
भरत को मार डालूं और तुझको, नरक मे भी न रखूं ठौर तुझको।'
+ + +
बुलाले सब सहायक शीघ्र अपने, कि जिनके देखती है व्यर्थ सपने।
+ + +
भला वे कौन है जो राज्य देवें, पिता भी कौन है जो राज्य देवें।" [१]

इस अवसर पर वे राम के समझाने पर भी शांत नहीं होते। यहां तक कि कैकेयी को 'नागिनी', 'हतभागिनी', 'दस्युजा' तक कह देते है। अंततः राम के आदेश से संयमित होते है। लक्ष्मण की सेवा भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण उनका अकेले राम सीता के साथ साग्रह वनगमन है। लक्ष्मण का त्याग और तपस्या-भाव महान है। एक ओर वे राम के सच्चे अनुयायी है तो दूसरी ओर उर्मिला के स्वामी भी। उर्मिला के प्रति सच्चा स्नेह भाव होते हुए भी लक्ष्मण सदैव सीता की सेवा में वीर व्रती बन कर रहते है। लक्ष्मण की चारित्रिक गरिमा का प्रमाण युद्ध क्षेत्र मे मिलता है जहा वे समान-पराक्रमी मेघनाद को पाकर प्रसन्न होते हैं। सच्चे योद्धा की भांति मेघनाद के बल की प्रशंसा करके युद्ध का आह्वान करते हैं। लक्ष्मण में वीरत्व और ओज का भाव काव्य में स्थल स्थल पर दृष्टिगत होता है। सीता हरण के अवसर पर उनका यह कथन श्लाघनीय है:—

"पच सकती है रश्मि राजी क्या महाग्रास के तम से भी।
आर्य उगलवा लूंगा अपनी आर्या को मैं यम से भी॥" [२]

इस प्रकार युद्धोद्यत लक्ष्मण से राम जब विश्राम के लिये कहते हैं तो उनका उत्तर बड़ा ओजपूर्ण है:—

"हाय हाय! विश्राम! शत्रु अब भी है जीता,
कारागृह मे पड़ी हमारी देवी सीता।
+ + +
यदि वैरी को मार न कुल लक्ष्मी को लाऊं.
तो मेरा यह शाप मुझे मैं सुगति न पाऊं॥"

एक अन्य अवसर पर भरत को दल-बल सहित चित्रकूट आते देख उनका अभिमान जाग्रत हो उठता है।

---

१. साकेत—एकादश सर्ग, पृ० ४२६, ४२७
१. वही, सर्ग ३, पृ० ७६, ७७

इस प्रकार लक्ष्मण के चरित्र में स्नेह, संवेदनशीलता, भक्तिभाव, साहस, वीरत्व, पराक्रम आदि गुणों का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। समष्टि रूप में लक्ष्मण के चरित्र के दो पक्ष हैं—एक तो वीर व्रती का और दूसरा भावुक एवं प्रेमी पति का। प्रथम पक्ष में जहाँ उनकी स्वभावगत चंचलता के कारण कहीं कहीं उग्रता आई है। वहीं संयम, सेवा भाव, साधना एवं तपस्या पूर्ण जीवन के कारण उनके चरित्र का दूसरा पक्ष उज्ज्वल बना है। लक्ष्मण का स्वभावगत आवेश और चांचल्य उन्हें मानवीय बनाता है; यही कवि की सफलता है। "गुप्त जी ने परिवर्तन यथेष्ठ किया किन्तु लक्ष्मण का मनुष्योचित रूप ही चित्रित किया। उसमें हमें इस धरती के मनुष्य की प्रवृत्तिया भांकती हुई मिलती हैं।" [1]

राम—राम साकेतकार के आराध्य देव हैं अतः उनका चरित्रांकन करते समय कवि की पूज्य भावना सर्वत्र बाधक रही है। राम को आदर्श मानव या महापुरुष के रूप में ही कवि चित्रित कर सका है। राम-भक्त परिवार की थाती और संस्कार जन्य निष्ठा के कारण गुप्तजी ने एक ओर राम को ईश्वर माना हैं तो युग के प्रभाव और बौद्धिक दृष्टिकोण ने उन्हें मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया है। कवि ने स्वयं कहा है कि—"राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?[2] और—

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है ॥[3]

यही नही गांधीजी को लिखे गये पत्र में गुप्तजी ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि साकेत में मुझे राम को प्रभु कहते ही बना है।[4] गुप्त जी के राम निश्चित रूप से भगवान् हैं।[5] यद्यपि कवि ने विश्वास के बल पर उन्हें अवतार माना है पर बुद्धिवाद के प्रभाव के कारण उन्हें मानव ही रखा है।[6]

वैसे राम के चरित्र में आदर्श मानवोचित गुण हैं। वे माता-पिता के भक्त एवं आज्ञाकारी हैं। कर्त्तव्यपरायणता, त्याग, क्षमा और विनय उनके चरित्र के

---

१. प्रो० त्रिलोचन पांडेय—साकेत दर्शन, पृ० ६१
२. साकेत मुख पृष्ठ
३. साकेत, सर्ग ५, पृ० १५६
४. डा० कन्हैयालाल सहल—साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव, पृष्ठ १४२
५. डा० उमाकांत गोयल—मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ० १६६
६. डा० कमलाकांत पाठक—मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य पृ०

प्रमुख गुण हैं। वनवास की आज्ञा मिल जाने पर भी भरत और कैकेयी के प्रति उनके मन मे कोई दुर्भाव पैदा नही होता। विषम से विषम परिस्थितियो मे भी वे अटूट धैर्य धारण किये रहते हैं। साकेत के राम मानवता के लिये जो संदेश प्रदान करते हैं वह अद्‌भुत है—

"मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया।
सुख शान्ति हेतु मैं क्रांति मचाने आया।
× × ×
भव मे नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश नही मैं यहां स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"[1]

राम शक्ति और तेज के निधान हैं, किन्तु इसका उपयोग वे दक्षिण के बर्बर कौणपो के मद को चूर करने के लिये करते हैं। वे ऋक्ष और वानरो के समान बने मानवो तक को आर्यत्व देने वाले हैं—

"बहुजन बने ऋक्ष वानर से
मैं दूंगा अब आर्यत्व उन्हे निज कर से॥"[2]

परिवारजनो के प्रति स्नेह और औदार्य का भाव स्थान-स्थान पर उनके कथनो मे प्रकट होता है। 'राम की प्रतिमा मे साकेतकार ने अनन्तशील, अनन्त शक्ति और अनन्त सौन्दर्य का समावेश किया है—परन्तु उसमे मानवत्व कुछ अधिक है—साथ ही कुछ नवीनता भी है।"[3] जो भी हो यह तो कहना ही पड़ेगा कि साकेत के राम वाल्मिकि और तुलसी के राम से भिन्न हैं। उनके चरित्र मे युग की सम्भावनाएं साकार हुई है।

सीता—साकेत मे सीता का चित्रण भी नवीनता लिये है। सीता एक ओर भारतीय आदर्श पत्नी है, जिनमे पतिपरायणता, त्याग, सेवा, शील और सौजन्य है तो दूसरी ओर वे युग जीवन की मर्यादा के अनुरूप श्रमसाध्य जीवन-यापन मे गौरव का अनुभव करने वाली नारी हैं। उन्हे वन मे राज्य वैभव का सुख प्राप्त है, वे आत्मनिर्भर और स्वावलम्बन मे विश्वास रखती हैं:—

---

१ साकेत, सर्ग ८, पृ० २३४-२३५
२. वही, सर्ग ८, पृ० २३५
३ डा० नगेन्द्र—साकेत : एक अध्ययन, पृ० ११२

"औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रम वारि बिन्दुफल स्वास्थ्य शुचित फलती हूँ;
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।
तनु लता सफलता-स्वादु आज ही आया,
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया॥"[1]

काव्यारम्भ में हम सीता को एक कुल वधू के रूप में पाते हैं। दशरथ परिवार में वे एक आदर्श गृहिणी दिखाई देती हैं। परिवार-जनों में (विशेषकर लक्ष्मण और उर्मिला से) हास परिहास एवं व्यंग्य विनोद में उनका सहज व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। तदन्तर राम के वनगमन की सूचना पाकर पति के साथ ही वन जाने में अपने को धन्य मानती हैं। सीता सतीत्व की साकार मूर्ति हैं। अपहरण हो जाने के पश्चात रावण जब उन्हें रानी बनाने का प्रलोभन देता है तो वे उसे बुरी तरह फटकारती ही नहीं हैं वरन् अपने सतीत्व बल के प्रभाव से दर्पहीन कर देती हैं। उनकी राम के प्रति जो आस्था और प्रेम है, उसी के बल पर उन्होंने पति वियोग की वेदना को सहा है। सीता में पतिपरायणा और गृहस्थ धर्म का पालन करने वाली आदर्श भारतीय नारी का रूप है।

भरत—'साकेत' के भरत 'रामचरितमानस' के भरत से बहुत भिन्न नहीं हैं। उनकी चरित्र सृष्टि का आधार परम्परित विशेषताएं ही हैं। 'साकेत' में सर्वप्रथम उनके दर्शन उस समय होते हैं जब वे ननिहाल से लौट कर आते हैं। पितृ-मरण और राम-वनगमन की सूचना से वे स्तम्भित रह जाते हैं। अपने राज्याभिषेक की सूचना पाकर वे 'हा हतोऽस्मि' कह कर मूर्च्छित हो जाते हैं। सचेत होने पर वे कैकेयी को 'चण्डी' और 'डिरसने' कहकर उनके कुकृत्य की निन्दा करते हैं। मातृ-स्नेह में विह्वल होकर वे आवेश में राज-पद का ही तिरस्कार कर देते हैं। वे चाहते हैं—"विगत हों नरपति, रहें नर मात्र" इस प्रकार यहाँ भरत समाजवाद और समानता के आदर्श का क्रांतिकारी ढंग से प्रतिपादन करते हुए दिखाई देते हैं। इस अवसर पर भरत जिस प्रकार ग्लानि का अनुभव करके दैन्य की अभिव्यक्ति करते हैं, वह अवर्णनीय है। तदन्तर शंकित हृदय से अपराधी के समान भरत माता कौशल्या के समक्ष जाते हैं। भरत स्वयं को षडयन्त्रकारी, अधम, अपराधी एवं गृह-कलह का मूल कहकर दंड याचना करते हैं। किन्तु माता कौशल्या यह कहकर—

"मिल गया मेरा मुझे तू राम,
तू वही है भिन्न केवल नाम।"

---

१. साकेत, सर्ग ८, पृ० २२३।

भरत के हृदय को शान्त करती हैं।

भरत राज्यसिंहासन को ठुकरा कर राम को ढूंढते चित्रकूट पहुंचते हैं। अपने आंसुओं से उनके चरण पखारते हैं। भरत के लिए राम इष्टदेव तुल्य हैं। चित्रकूट की सभा मे मुनि वशिष्ठ, राम एवं अन्य सभासद भरत के शील एवं स्वभाव की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। भरत के कारण ही राम और सभासद भरत के शील एवं स्वभाव की सराहना करते हुए कहते हैं कि—"सौ बारधन्य वह एक लाल की माई।" इस अवसर पर सभी भरत के धीरता, गंभीरता, मातृ प्रेम, विनम्रता, सदाशयता आदि गुणों की सराहना करते है। भरत राम की चरण पादुकाएं लेकर लौट आते हैं। और उन्हें सिंहासन पर स्थापित कर एक भक्त की भांति चौदह वर्षों तक कठोर साधना, तप एवं संयम का जीवन बिताते हैं। वे नंदीग्राम में तपस्वियों की भांति रहते हुए राज्य व्यवस्था का विधिवत् संचालन करते हैं।

भरत के अद्भुत व्यक्तित्व का परिचय तब मिलता है जब वे हनुमान के मुख से सीता हरण एवं लक्ष्मणशक्ति का समाचार पाकर क्षत्रिय धर्म पालन हेतु वीरत्व भाव को संधारण करते हैं। वे वीरता के दर्प से हुंकार उठते हैं —

"भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन मे,
सिन्धु पार वह विलख रही है व्याकुल मन मे,
बैठा हूं मैं भण्ड साधुता धारण करके
अपने मिथ्या भरत नाम को धारण धरके।
+ + +
मेटूं अपने आज भूत जीवन की लज्जा।
उठो, इसी क्षण शूर, करो सेना की सज्जा।
+ + +
सजे अभी साकेत, बजे हां जय का डंका,
रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लंका।"[1]

भरत चरित्र की यह विशेषता साकेतकार की निजी सूझ की परिचायक है। राम काव्यों की परम्परा में इस रूप में भरत पहली बार चित्रित किये गये हैं।

कैकेयी—'साकेत' के पात्रों में कैकेयी के चरित्र निरूपण मे गुप्त जी सबसे अधिक सफल हुए हैं। राम कथा के पात्रों में कैकेयी के कलंकित एवं तिरस्कृत चरित्र को गुप्त जी की लेखनी ने धन्य किया है। सर्वप्रथम 'साकेत' के द्वितीय सर्ग मे हम कैकेयी को सौजन्य से पूर्ण माता के रूप मे पाते हैं। जिसे राम के राज्या-

---

१. साकेत, सर्ग १२, पृ० ४५४

भिषेक की प्रसन्नता है, क्योंकि राम और भरत उसके लिए समान है। मथरा के कुमन्त्रणा से उसके मन म सन्देह विष-बीज वपन हो जाता है। मथरा का निम्न कथन उसे मर्मान्तक आघात पहुचाता है—

"भरत से सुत पर भी सन्देह ।
बुलाया तक न उसे जो गेह ।"[१]

कैकेयी ईर्ष्या और प्रतिशोध की ज्वाला मे दग्ध होकर दशरथ से वर मागती है जिसके परिणामस्वरूप उसे वैधव्य का दु ख और पुत्र से विमुखता का क्लेश सहना पड़ता है। भरत का राज्य सिंहासन के प्रति उपेक्षा भाव देखकर कैकेयी का हृदय निराशा, ग्लानि, परिताप और पश्चाताप से विदग्ध हो जाता है। कैकेयी अपना सवस्व लुटाकर और ससार की अवमानना सहकर भी मातृत्व की अभिलाषिनी है। तभी तो वह चित्रकूट की सभा मे कहती है, कि—

"थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यो, चूके ?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझ से,
रे राम, दुहाई करू और क्या तुझ से ।[२]

कैकेयी के इस कथन मे कितना विषाद है, कितनी अथाह आत्म व्यथा है। वह अपने को धिक्कारती हुई कहती है कि—

'युग युग तक चलती रहे यह कठोर कहानी—
रघुकुल मे भी थी एक अभागिन रानी ।
निज जन्म जन्म मे जीव सुने यह मेरा—
धिक्कार ! उसे था महास्वार्थ ने घेरा ।"[३]

कैकेयी के इन उद्‌गारो से उसके समस्त पापो का प्रक्षालन हो जाता है। राम सहित चित्रकूट की सारी सभा एक स्वर से कहती है कि—

'पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई,
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई ॥'[४]

---

१ साकेत, सर्ग २, पृ० ४९
२ वही, सर्ग ८, पृ० २४९
३ वही, सर्ग ८, पृ० २४९
४ वही, सर्ग ८, पृ० २५०

इस प्रकार युग युग से कलंकित चरित्र 'साकेत' मे बडा भव्य और उज्ज्वल बन जाता है। पश्चाताप की अग्नि मे तप कर और आत्मग्लानि के अश्रु प्रवाह से प्रक्षालित होकर कैकेयी का हृदय निष्कलुष किंवा पवित्र हो जाता है। जिस स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता की पृष्ठभूमि पर कैकेयी का चरित्र अंकित हुआ उसके कारण वह पाठक को सहानुभूति एव करुणा का पात्र बन जाती है। इस चरित्र परिवर्तन का श्रेय गुप्त जी को है जिन्होने चित्रकूट की सभा मे उपस्थित होने का अवसर प्रदान कर कैकेयी को मातृत्व की मगलमयी महिमा से अलकृत किया है। भारतीय साहित्य के चिर कलंकित पात्रो मे कैकेयी की तो उन्होने कायापलट दी है। साकेत के अध्ययन के पश्चात कैकेयी के प्रति युगान्तर का घनीभूत मालिन्य निःशेष रह जाता है।[1]

अन्य पात्र

साकेत मे रामकथा के अन्य सभी पात्रो का भी यथाप्रसंग चित्रण हुआ है। महाराज दशरथ को कवि ने धीर, गभीर नरेश के अतिरिक्त वात्सल्यपूर्ण पिता के रूप मे चित्रित किया है। राम की माता कौशल्या उदारमनः पुत्रवत्सला जननी के रूप मे प्रतिष्ठित की गई हैं। सुमित्रा के चरित्र मे क्षत्रियोचित वीरता एव मातृत्व का सफल समन्वय हुआ है। माण्डवी पति परायणा एव साध्वी नारी के रूप मे अंकित की गई है। उनके चरित्र मे अनुराग–विराग एवं आशा–निराशा का विचित्र द्वन्द्व है। वह सयोगिनी होकर भी वियोगिनी का जीवन व्यतीत करती हैं। मथरा जहाँ नीच दासी है वही स्वामिभक्त एवं कर्तव्य परायणा भी है। शत्रुघ्न कुशल राज्य प्रबधक एव आज्ञाकारी भ्राता और हनुमान राम के अनन्य भक्त एव अतुल पराक्रमी योद्धा हैं; किन्तु उनके चरित्र मे वह विशदता नही आ पाई जो 'मानस' मे है। रावण एक ओर पराक्रमी एव वैभव सम्पन्न सम्राट है तो दूसरी ओर नीच कर्मी, अत्याचारी एवं लोकपीडक है। इस प्रकार 'साकेत' के प्रायः सभी पात्रो का चरित्र परिस्थितियों के अनुरूप अंकित किया गया है।

मूल्यांकन :

(१) साकेत के पात्र रामकथा के पात्र हैं और इस दृष्टि से उनका व्यक्तित्व पूर्व निर्धारित है पर गुप्त जी ने उनके निर्माण में युग-चेतना और सामयिक आदर्शों को व्यंजित किया जाता है।

---

१. डॉ॰ उमाकान्त गोयल—मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ॰ १७१

(२) साकेत के नारी पात्रों मे उपेक्षिता उर्मिला और कलंकिता कैकेयी के चरित्र निर्माण में गुप्त जी ने मौलिकता एव नवीनता का पूर्ण परिचय दिया है। पुरुष पात्रो में भरत का चरित्र इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

(३) साकेतकार ने दशरथ-परिवार के पात्रो के मध्यम से जो चरित्र चित्रण किया है, उसमे वर्तमान युग की परिवार व्यवस्था का सुन्दर रूप दिखाई देता है। "साकेत के पात्र न तो वाल्मिकी रामायण के चरित्रो की भाँति लोक-प्रतिनिधि और वीर चरित्र हैं, न वे मानस की भाँति उदात्त और आदर्श हैं। उनमे एक सामान्य पारिवारिक भावना का विकास है, जो वर्तमान युग की सम्मिलित परिवार व्यवस्था का आभास लिये हुए है।"[1]

(४) साकेत के कवि का प्रयत्न यद्यपि पात्रो को यथार्थवादी भूमिका पर प्रस्तुत करने का रहा हैं किन्तु वे यथार्थ की उपेक्षा आदर्श की ओर ही अधिक उन्मुख रहे हैं।

(५) साकेत के चरित्र-चित्रण की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसका आधार मानवीय और मनोवैज्ञानिक है। "साकेत का चरित्र चित्रण मानस के चरित्र चित्रण से कम सफल नही है। उसके चरित्रो का मनोवैज्ञानिक आधार तो अधिक पुष्ट है ही। साथ ही साकेत के पात्र अधिक सजीव हैं। वे असाधारण व्यक्तित्व के मनुष्य हैं। परन्तु हैं मनुष्य ही, अत हमारे निकट है।"[2]

कामायनी

'कामायनी' की पात्र सृष्टि अति अल्प है। 'कामायनी' मे कुल आठ पात्र हैं। जिनमें प्रमुख तीन हैं—मनु, श्रद्धा और इडा। इसके अतिरिक्त तीन अन्य पात्रों मे असुर-पुरोहित, आकुलि किलात और मनु-श्रद्धा का पुत्र कुमार मानव हैं। काम और लज्जा अशरीरी पात्र हैं, जिनका कथा विकास और घटनाचक्र को प्रभावित करने की दृष्टि से विशेष महत्व नही है।

प्रमुख पात्र

मनु—मानवता के जनक मनु कामायनी महाकाव्य के नायक हैं। काव्य शास्त्रीय दृष्टि से महाकाव्य के नायक मे जो धैर्य, औदात्त, शौर्य, साहस, पराक्रम और अदम्य उत्साह होना चाहिये, उसका उनके चरित्र मे अभाव ही है। फिर भी सम्पूर्ण काव्य के कथा सचालन और उद्देश्य (फल) की प्राप्ति मे वे आद्यात कार्यरत चित्रित किये गये हैं मनु का चरित्र इतिहास और कल्पना की समन्वित पृष्ठभूमि

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृ० १०१
२ डा० नगेन्द्र, साकेत एक अध्ययन पृ० ११४

पर अंकित किया गया है। कामायनी मे मनु के अनेक रूप दिखाई देते हैं। डा० फतहसिंह ने तीन रूपो[1], डा० द्वारिका प्रसाद ने चार रूपो[2] और डा० श्याम-नन्दन किशोर ने मनु के पाच रूपो[3] की प्रधानता स्वीकार की है। मनु के सम्पूर्ण चरित्र का विकास का अध्ययन निम्नाकित चार रूपों के अन्तर्गत किया जा सकता हैं। —

(१) प्रलयकाल के अनन्तर देव सृष्टि के ध्वसावशेष के रूप मे बचे हुए मनु, जो पुष्ट शारीरिक गठन एव देव अशीय व्यक्तित्व धारण किये हुए चिन्ताग्रस्त दिखाई देते हैं।

(२) श्रद्धा को जीवन सगिनी बनाकर गृहस्थ निर्माण करते हुए मनु, जो वासनातिरेक मे अविवेकी बनकर, श्रद्धा को निर्जन प्रदेश मे छोडकर चले जाते हैं।

(३) सारस्वत प्रदेश मे इडा के सम्पर्क मे प्रजा पालन करते हुए मनु, जो कालातर मे विलासी प्रवृत्ति के कारण असफल हो जाते हैं।

(४) श्रद्धा के पुनर्सम्पर्क से आनन्द की खोज मे रत मनु, जिन्हे अन्तत सफलता मिलती है।

कामायनी का प्रारम्भ मनु के ही अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के निरूपण से होता है। उनके व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं एक ऐतिहासिक और दूसरा साकेतिक। ऐतिहासिक दृष्टि से मनु का चरित्र वैदिक वाग्मय एव पौराणिक ग्रथो मे उपलब्ध हैं। यहा वैवस्त मनु को प्रजापति, पृथ्वी पति, श्रद्धादेव, प्रथम पाकयज्ञकर्त्ता एव सृष्टि-कर्त्ता आदि कहा गया है। साकेतिक दृष्टि से मनु को मन का प्रतीक मानकर उन्हे इन्द्रियो का स्वामी, सकल्प-विकल्प शील, बलिष्ठ, चचल एव अभीष्ट कार्य का सपादन कर्त्ता बताया गया है प्राचीन भारतीय ग्रथो मे मनु का चरित्र अत्यन्त एव विशद रूप

---

१ "मनु का पहला प्रजापति रूप हैं—दूसरा वैदिक कर्मकाडी ऋषि का रूप है—मनु का एक तीसरा रूप और भी है जो मनु–इडा युग के अन्त होने पर आनन्द पथ को खोजते हुए मनु मे देखा जा सकता है।"

—डा फतहसिंह—कामायनी सौन्दर्य, पृ० १४७

२ डा० द्वारिकाप्रसाद—कामायनी मे काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० १०५ से १०८। (अ) ऋषि मनु, (आ) गृहस्थ मनु, (इ) प्रजापति मनु, (ई) आनन्द के अधिकारी मनु

३. डा० श्यामनन्दन किशोर—आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो मे शिल्प विधान पृष्ठ २२७—२२८

तरुण तपस्वी, चिन्तक, गृहस्थ, बुद्धिवादी और आनन्द तत्वदर्शी

मे अंकित किया गया है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' के मनु का निर्माण करते समय ऐतिहासिक मनु का आंशिक रूप ही ग्रहण किया, शेष चरित्र-विकास उनकी निजी कल्पना पर आधारित है। काव्यारम्भ मे ही मनु के सम्पुष्ट शरीर गठन का परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व मे दैवीय अंश की अवतारणा की गई है। पौरुष और यौवन से ओतप्रोत होकर भी मनु चिन्ता-कातर है।[1] उनकी चिन्ता का कारण अकस्मात की जलप्लावन द्वारा महान् देव सृष्टि का ध्वस है। मनु देव-जाति के विनाश के कारणो की चिन्ता मे डूबे हुए सोचते हैं:—

आज अमरता का जीवित हूँ,
मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का
अधम पात्र मय-सा-विष्कम।[2]

इस स्थिति में श्रद्धा के सम्पर्क से मनु के हृदय मे आशा का सचार होता है। मनु श्रद्धा पर आसक्त हो जाते हैं। श्रद्धा नारी का समर्पण भाव लेकर उनके जीवन मे प्रविष्ट होती है। श्रद्धा और मनु प्रणय सूत्र मे बध यज्ञादि कर्मो को सम्पन्न करते हुए गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होते हैं। यहाँ हम मनु को चंचल, कामुक, वासनाप्रिय, हिंसक एवं स्वार्थी व्यक्ति के रूप में देखते हैं। वे आकुलि और किलात के परामर्श से श्रद्धा के पालित पशु की बलि दे देते हैं। इन कार्यो मे श्रद्धा का प्रतिरोध उन्हे अच्छा नही लगता। वे गर्भवती श्रद्धा से अपनी उद्दाम कामवासना की तृप्ति चाहते हैं। मनु कहते हैं.—

"तुच्छ नही है अपना सुख भी,
श्रद्धे ! वह भी कुछ है;
दो दिन के इस जीवन का तो
वही चरम सब कुछ है।"[3]

मनु इन्द्रिय-जन्य अभिलाषाओ की तृप्ति को ही जीवन का ध्येय मान लेते हैं। श्रद्धा की भावी संतति के प्रति प्रेम के कारण उनके मन मे ईर्ष्या भाव उत्पन्न होता है। और एक दिन 'लो चला आज मे छोड यही सचित सवेदन भार पुंज'[4] कहते हुए श्रद्धा को निर्जन प्रात मे अकेली छोड कर चले जाते हैं।

---

१. कामायनी, चिन्तासर्ग, पृ० ४
२. वही, पृष्ठ १८
३ वही, कर्म सर्ग, पृ० १३०
४. वही, ईर्ष्या सर्ग, पृ० १५४

श्रद्धा से विमुख होकर मनु सारस्वत प्रदेश पहुँचते हैं। वहा इडा के रूप सौंदर्य पर रीझ कर सारस्वत प्रदेश के शासन का सचालन करते हैं। किन्तु यहीं भी इडा पर एकाधिकार की भावना उन्हें सकटपूर्ण स्थिति में डाल देती है। इडा पर निरकुश अधिकार की कामना से मनु बलात्कार करने का प्रयत्न करते हैं, परिणामस्वरूप सारस्वत प्रदेश की प्रजा विद्रोह कर देती है और मनु घायल हो जाते हैं। इस प्रसग मे युद्ध करते हुए यद्यपि मनु का प्रजापति, योद्धा एव कुशल प्रशासक-रूप भी हमारे समक्ष आता है किन्तु इन्द्रिय-लिप्सा, कामुकता एव अतृप्त वासना से वह मुक्त नही है।

श्रद्धा के पुनर्मिलन से मनु के चरित्र मे आपातिक परिवर्तन आ जाता है। श्रद्धा के मनु ससार से पराङ्मुख होकर आनन्द की खोज मे चल पडते हैं। श्रद्धा के पुन सपर्क से उनके वासनापूर्ण जीवन की इति हो जाती है। सारस्वत प्रदेश के कटु अनुभवो के कारण उनका सम्पूर्ण अहकार और मिथ्यादम्भ समाप्त हो जाता है। काव्य के प्रारभ से जिस मनु को हम स्वार्थी, इन्द्रिय लिप्सु, भौतिकता प्रिय, ईर्ष्यालु पाते हैं, वे अब निवृत्ति-मार्गी होकर अखड आनन्द की खोज मे चल देते हैं। अपने पुत्र कुमार और इडा को सारस्वत प्रदेश मे छोडकर श्रद्धा के साथ हिमालय प्रस्थान करते हैं। वहा नर्तित नटेश (शिवताण्डव) के दर्शन से उनका हृदय पवित्र हो जाता है, तभी मनु पुकार उठते हैं—

'यह क्या श्रद्धे! बस तू ले चल, उन चरणो तक दे निज सम्बल,
सब पाप पुण्य जिसमे जल-जल, पावन बन जाते हैं निर्मल,
मिटते असत्य से ज्ञान लेश, समरस अखड आनन्द वेश।'[1]

श्रद्धा मनु को इच्छा, ज्ञान और क्रिया प्रदेशा का भ्रमण कराती हुई अपनी स्मिति मात्र से त्रिकोण को एकाकार कर, अर्थात् समरसता का सचार कर उन्हे अभेद स्थिति का बोध कराती है। मनु का अहम् भाव इदम् मे समाविष्ट हो जाता है। उन्हें सम्पूर्ण विश्व अखड चेतना का विलास प्रतीत होता है। मनु को अखड आनन्द की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार कामायनी के नायक मनु का चरित्र यथार्थ और आदर्श की समन्वित भूमिका पर अवतरित हुआ है। मनु के चरित्र मे उत्थान-पतन का सभी रेखाए उभरी हैं। मनु के चरित्र विकास मे प्रसादजी ने मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का पूर्ण परिचय दिया है। मनु के चरित्र मे जिस चिन्ता, निराशा, वासना जन्य कुठा, अहम् वादिता और पराजयवादी प्रवृत्तियो का चित्रण किया गया है उनके कारण

१. कामायनी, दर्शन सर्ग, पृ० २५४

वे यथार्थ की भूमिका पर आसीन होकर सामान्य मानव की श्रेणी मे आते है। इन्ही दुर्बलताओ के कारण मनु का चरित्र युगानुरूप और अनुकरणीय बनता है। उनके चरित्र का दूसरा पक्ष वह है जिसमे उन्हे निवृत्ति मार्गी किंवा आनन्द पथ के खोजो के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। काव्य के अन्तिम तीन सर्गों मे मनु ऐतिहासिक और पौराणिक परिसन्दर्भों के अनुरूप उदात एव महान व्यक्ति दिखाई देते हैं। मनु का यह रूप उन्हे महत् चारित्रिक गरिमा प्रदान करता है। मनु के चरित्र का एक अन्य पक्ष भी है—वह है मनोवृत्तिमूलक। मनु को मन का प्रतीक मानकर उनके कार्य व्यापार एव गतिविधियो का अध्ययन किया जाय, तो कोई असगति नही मिलती। मनु का चरित्र एक ओर मन की अहकार जन्य, व्यक्तिवादी और वासना लिप्सु प्रवृत्तियो का प्रतीक है तो वही दूसरी ओर संयमशील, आनन्द-वादी और निवृत्तिमूलक स्थितियो का सुन्दर रूपक प्रस्तुत करता है। चरित्र की मूल व्यजना यह है कि "बुद्धि के वशीभूत होकर मानव जीवन मे सघर्ष, विप्लव एव अतृप्त आकाक्षाओ के इतिहासो का जन्म होता है।"[1]

महाकाव्य के नायक की दृष्टि से विचार करें तो 'कामायनी मे चित्रित मनु-चरित्र को हम पूर्ण विकसित महाकाव्य के अनुरूप चरित्र नही कह सकते। प्रसाद ने मनु के जिस रूप को प्रस्तुत किया है, वह समर्थ एव सफल नायक की परिभाषा मे पूरी तरह नही आता है।[२] प्रथम तो मनु के चरित्र मे नायक के अनुरूप गुणात्मक उत्कर्ष का अभाव है। वे सर्वत्र ही श्रद्धा के सम्पर्क—सान्निध्य से उत्थान मूलक गति को प्राप्त करते हैं। दूसरे काव्य के मुख्यफल (अखण्ड आनन्द) की प्राप्ति के लिये भी अपनी पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य से रत नहा होते है। उनके चरित्र मे न तो देव-सम्भूत उदात्त भावनाओ का उत्कर्ष हुआ है और न सत्य शील, त्याग, सयम, समर्पण आदि मानवीय गुणो की सफल प्रतिष्ठा हो पायी है। काव्य के आरम्भ मे मनु चतुर्दिक वातावरण के प्रभाव से चिन्ताग्रस्त हैं, मध्यमभाग मे जीवन की विकृतियो से आक्रात हैं और अन्तिम भाग मे ससार की विडम्बनाओ और सघर्ष से विमुख होकर कल्पित आनन्द (?) की खोज मे रत हैं। मानव सभ्यता के सस्था-पक के रूप मे मनु के चरित्र मे जिस पौरुषेय विराटत्व और उत्थान मूलक चारित्रिक गरिमा की अपेक्षा थी, उसे प्रसाद जी कामायनी के मनु मे नही ला पाये हैं।

श्रद्धा

श्रद्धा 'कामायनी' की सबसे महत्वपूर्ण पात्र-सृष्टि है। वह काव्य की नायिका है। काव्य की सभी प्रमुख घटनाएं उसी से परिचलित होती हैं। कामा-यनी' महाकाव्य के फल (आनन्द) की प्राप्ति मे वही मनु की सहायक होती है।

---

१ प्रो० शिवकुमार मिश्र—कामायनी और प्रसाद की कविता गगा, पृ० ५९

२. डा० विजयेन्द्र स्नातक—कामायनी दर्शन, पृ० १५५

नायकत्व के अधिकांश गुणों का सघात श्रद्धा का चरित्र है। श्रद्धा के चरित्र मे नारीत्व के आदर्श की सम्पूर्ण उदात्त कल्पनाओं का सुन्दर समाहार हुआ है।

काव्य मे 'श्रद्धा' का आगमन तृतीय सर्ग से होता है। यहा श्रद्धा को 'उदार हृदय की बाह्य अनुकृति' कहा गया है उसकी उन्मुक्त लम्बी काया, गान्धार देश के नील रोम वाले मेघो के चर्म के बीच, यौवन को नित्य छवि से दीप्त है। वह विश्व की करुण कामना की मूर्ति सी दिखाई दे रही है।[1] श्रद्धा का शरीर स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण है। उस मे भी स्फूर्ति सचार करने की क्षमता रखती है।[2] श्रद्धा के मन मे ललित कलाओ का ज्ञान प्राप्त करने का नवीन उत्साह है, जिसके कारण वह गधर्वों के देश से आकर हिमालय पर इधर-उधर भटकने लगती है और तभी मनु से श्रद्धा का साक्षात्कार होता है।[3] श्रद्धा अज्ञात जटिलताओ का अनुमान करके दु ख से डरे मनु जीवन मे प्रवेश करके भविष्यत् से अनजान और काम से झिझक रहे मनु को एक दिव्य सदेश देती है। श्रद्धा मनु को आश्वस्त करते हुए कहती है कि जिसे तुम अभिशाप समझ रहे हो वही ईश्वर का वरदान है।[4] तदनन्तर वह दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास सहित अपने रत्ननिधि स्वच्छ हृदय को मनु के समक्ष समर्पित कर देती है। श्रद्धा का यह समर्पण भारतीय नारीत्व की गरिमा का परिचायक है। श्रद्धा मनु को शक्तिशाली और विजयी बनने के लिये भी उत्साहित करती है।

मनु के जीवन में श्रद्धा का प्रवेश उनके जीवन की निराशा, कुठा और चिन्ता को दूर कर देता है। श्रद्धा और मनु गृहस्थ जीवन मे प्रविष्ट होते हैं। यहाँ से श्रद्धा का नारीत्व और मातृत्व रूप विकसित होता है। वह एक पतिपरायणा आदर्श पत्नी के रूप मे दिखाई देती है। उसमे नव-परिणिता-वधू की लज्जा का अपूर्व भाव है छवि के भार से दबी श्रद्धा लज्जा और उल्लास का आकर्षण है ऐसी श्रद्धा पाकर मनु की कामवासना उद्दीप्त होती है। किन्तु श्रद्धा मनु की वासना-जन्य प्रवृत्तियों का अन्धानुकरण नही करती। श्रद्धा को मनु के सोमपान और हिंसा कार्यों (यज्ञ मे पशु बलि आदि) से भी अरुचि है। सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये वह मनु से कहती है कि :—

"औरों को हसते देखो मनु,
हसो और सुख पाओ।

---

१ कामायनी—श्रद्धा सर्ग, पृ० ४६, ४७
२. वही, „ पृ० ५१–५२
३ वही „ पृ० ५३
४. वही „ पृ० ५६

अपने उर को विस्तृत करलो
सबको सुखी बनाओ।"[1]

इन कथनो मे श्रद्धा की उदात्त भावना प्रकट हुई है।

श्रद्धा के चरित्र मे नारी का मातृत्व रूप भी सुन्दर ढग से अ कित हुआ है। गर्भिणी श्रद्धा का भावी सतति के लिये कुटोर बनाना, पशुओ की ऊन से वस्त्र के लिये तकली पर सूत कातना, पुआलो का छाजन और वेतसी लता के झूले का निर्माण करना श्रद्धा के नारी सुलभ मातृ रूप का प्रमाण है। श्रद्धा गृहलक्ष्मी है जिसके गृह विधान को देखकर मनु चकित हो जाते है।[2] श्रद्धा के मन मे भावी शिशु के मुख चूमने, झूले पर झुलाने, मीठी रसना से मधुर बोल सुनने की लालसाएं हैं जिन्हे वह हृदय मे सजोये कुशल गृहिणी की भाति गर्भावस्था मे केतकी सा पीला मुख आखो मे अलस-स्नेह और मातृत्व बोध से झुके पीन पयोधर बाधे गृह कार्यों मे भावी सतति के प्रति ईर्ष्यालु होकर मनु को निर्जन प्रदेश मे अकेली छोडकर चले जाते हैं। इस परित्यक्तावस्था मे भी वह मातृत्व का भार सहन करती है। वियोग और वात्सल्य के दुःख-सुख को सहती हुई श्रद्धा बडी व्यग्र दिखाई देती है। वह प्रश्न करती है —

"जीवन में सुख अधिक या दुःख मदाकिनी कुछ बोलोगी ?
× × ×
या दोनो प्रतिबिम्ब एक के इस रहस्य को खोलोगी।"[3]

इसी अवस्था मे श्रद्धा एक दिन स्वप्न देखती है जिसम मनु की दुर्दशा का चित्र दिखाई देता है। प्रिय के अनिष्ट की आशका से व्यग्र होकर पुत्र सहित वह मनु खोज मे चल देती है और मनु को घायलअवस्था म पाकर उनका समुचित उपचार करती है। मनु, जिन्होंने उसे त्याग दिया था, के प्रति भी श्रद्धा के मन म घृणा का भाव उत्पन्न नही होता। श्रद्धा यहा पतिपरायणा एव साध्वी नारी का परिचय देती है जिसकी चरित्रमहिमा के सम्मुख इडा और मनु दोनो नत मस्तक हो जाते हैं। मनु कहते हैं कि —

"तुम अजस्र वर्षा सुहाग की, और स्नेह की मधु रजनी,
चिर अतृप्ति जीवन यदि था, तुम उसमे सतोष बनी।
कितना है उपकार तुम्हारा, आश्रित मेरा प्रणय हुआ।"[4]

---

१ कामायनी, कर्म सर्ग, पृ० १३२
२ ईर्ष्या सर्ग, पृ० १५०
३- वही, स्वप्न सर्ग, पृ० १७६
४ वही, निर्वेद सर्ग पृ० २२६

क्षमायाचना करती हुई इडा कहती हैं कि—

"हे देवि ! तुम्हारा दिव्य राग,
× ×
दो क्षमा, न दो अपना विराग।"[1]

श्रद्धा इडा से भी ईर्ष्या नही करती। वह मानवता के भाग्योदय एव समरसता के प्रचार के लिये कुमार को इडा के पास छोडकर मनु के साथ अखण्ड आनन्द की उपलब्धि के लिये कैलाश की ओर प्रस्थान करती है। अ तत श्रद्धा मनु के आनन्द पथ की प्रदर्शिका बन कर उन्हे भगवान शिव के ताडव नृत्य का दर्शन कराती है और इच्छा ज्ञान व क्रिया के त्रिपुर का समन्वय करके मनु को अखण्ड आनन्द की प्राप्ति कराती है। त्रिपुर समन्वय के कारण समरसता के सात्विक भाव का सचार मनु के हृदय मे होता है। वह उन्हें राग-द्वेष से मुक्त कर सच्चे सुख की प्राप्ति कराती है।

इस प्रकार कामायनी की श्रद्धा नारी आदर्श की साकार प्रतिमा बन कर हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। उसके चरित्र मे भारतीय नारी की अपूर्व व्यजना हुई है। वह सच्ची प्रेमिका, आदर्श पत्नी, मातृत्व की अनुपम विभूति, प्रेम और त्याग की अनुपम आदर्श है। श्रद्धा की चरित्र-रचना प्रसाद जी की नारी कल्पना के उच्चतम सास्कृतिक आदर्शों को व्यजित करती है। प्रसाद जी के मन मे ही नारी जाति के प्रति श्रद्धासिक्त भावना थी। "नारी का सांस्कृतिक निरूपण उनकी साहित्यिक साधना का मुख्य विषय बना है।[2]

प्रसाद ने श्रद्धा के व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि मे जहा ऐतिहासिक प्रमाणों की पुष्टता प्रदान की है वही श्रद्धा के चरित्र की प्रतीकात्मक व्यजना मे भी वे सफल रहे हैं। प्रतीक रूप मे श्रद्धा नारी हृदय की सम्पूर्ण उदात्त वृत्तियो का प्रतिनिधित्व करती है। कामायनी के अप्रस्तुत पक्ष में हृदय का सच्चा प्रतिनिधित्व करने की उसमे (श्रद्धा) पूर्ण क्षमता है। विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति रूपी श्रद्धा का जैसा विकास कामायनी में हुआ है प्रसाद के किसी अन्य नारी चरित्र मे नहीं हुआ है।[3] श्रद्धा के चरित्र की सबसे बडी विशेषता उसका सोर्वकल्याणकारी स्वरूप है। मनु ने स्पष्ट स्वीकार किया है :—

"हे सर्वमगले ! तुम महती,
सबका दुख अपने पर सहती,

१. वही, दर्शन सर्ग पृ० २४०
२ डा० देवेश ठाकुर : प्रसाद के नारी चरित्र, पृ० ४०८
३ डा० विश्वंभर स्नातक—कामायनी दर्शन, पृ० १६२

कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय मे हो रहती।"[1]

कवि ने स्वयं कामायनी को काव्यान्त में जगत की मंगल कामना कहा है—

"वह कामायनी जगत की
मंगल कामना अकेली ।"[2]

इस प्रकार नारी के आदर्श रूप मे जितने दिव्य गुणों की कल्पना को सकती है, श्रद्धा के चरित्र में वे सभी सहज रूप मे प्राप्य है। हिन्दी के महाकाव्यों की चरित्र भूमि मे श्रद्धा का व्यक्तित्व और मनोभावो के अन्तर्गत व्यक्त उसका स्वरूप अपने आप मे अद्वितीय है।[3] प्रसाद काव्य के एक समीक्षक का मत है कि "हिन्दी की साहित्यिक परम्परा में कामायनी का यह उदात्त, महान चित्रांकन एक नवीन प्रयोग है।"[4] कामायनी की श्रद्धा उस आदर्शमयी शाश्वत नारी का प्रतीक है जो युगों तक नारी जाति की प्रेरणा का स्रोत रहेगा।

इड़ा—कामायनी महाकाव्य के घटना चक्र में इडा का प्रवेश यद्यपि नवम् सर्ग से होता है तथापि महत्वपूर्ण कथासूत्रों के विकसित करने में उसका योगदान उल्लेखनीय है। इसलिए 'इडा' कामायनी की प्रमुख पात्र सृष्टि के अन्तर्गत ही समाहित की जाती है। मनु और श्रद्धा की भांति इडा का भी ऐतिहासिक एवं प्रतीकात्मक व्यक्तित्व है। सांकेतिक दृष्टि से वह बुद्धि तत्त्व की प्रतीक है। इड़ा के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की पुष्टि के लिए प्रसाद जी ने 'कामायनी' के 'आमुख' में महत्वपूर्ण संकेत दिये हैं। ऋग्वेद के अनुसार वह प्रजापति मनु की पथ-प्रदर्शिका, मनुष्यो का शासन करने वाली कही गई है।.........ऋग्वेद में इड़ा को धी, बुद्धि का साधन करने वाली, मनुष्य को चेतना प्रदान करने वाली कहा है।........ बुद्धि का विकास राज्य-स्थापना इत्यादि इड़ा के प्रभाव से ही मनु ने किया।[5] किन्तु 'कामायनी' के 'आमुख' मे प्रसाद ने उसके (इड़ा) ऐतिहासिक अस्तित्व का परिचय देने के लिये शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद तथा अमर कोष के जो संकेत दिये हैं उनका उपयोग इड़ा के चरित्र विकास मे उन्होने नहीं किया है। ये संकेत केवल इडा के अस्तित्व का इतिहास से सम्बन्ध मात्र जोड़ते हैं; इनके सिवा उनकी ओर

---

१. कामायनी, दर्शन सर्ग, पृ० २४९
२. वही , आनन्द सर्ग, पृ० २९०
३. डा० श्यामसुन्दर व्यास–हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण, पृ० १०८
४. डा० प्रेमशंकर–प्रसाद का काव्य, पृ० ४०८
५. कामायनी, आमुख, पृ० ८, ९

कोई उपयोगिता नहीं।"[1] वास्तव मे प्रसाद जी ने इडा के चरित्र मे आधुनिक युग की बौद्धिक क्षमता से युक्त एवं ऐसी सबल नारी का व्यक्तित्व खडा किया है जो आज के वैज्ञानिक युग की समस्त शक्तिमत्ता एवं दुर्बलता का एक साथ पूरा पूरा आभास देने म समर्थ है "आधुनिक युग की नारी जिसे हम 'अल्ट्रा-माडर्न' के विशेषण से विभूषित करते हैं, और जो अपनी बौद्धिकपूर्णता के साथ पुरुष के साथ रहकर छलना करती है, इडा के व्यक्तित्व मे कुछ कुछ देखी जा सकती है।[2] इडा का बुद्धिवादी रूप नारी श्रद्धा के चरित्र का एक प्रकार से पूरक भी है।

इडा सारस्वत प्रदेश की रानी है। वह 'नयन महोत्सव की प्रतीक' एवं अम्लान नलिन की नवमाला के समान दृष्टिगोचर होती है।[3] उसकी तर्कजाल सी बिखरी अलकें, शशिखण्ड के समान स्पष्ट भाल, अनुराग-विराग ढालते पद्म-पलाश, चषक के समान दृग, त्रिगुणात्मक त्रिवली, चरणो की ताल भरी गति एवं वक्षस्थल पर एकत्र संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान, अरुण आलोक वसन लपेटे वह एक ओर बुद्धिवाद के अतिरेक की प्रतीक है तो दूसरी ओर आधुनिका (नारी) के समान दिखाई देती है।[3] इडा प्रतिभा प्रसन्न मुख से क्लेश सह रहे मनु का स्वागत करती हुई उन्हे सारस्वत प्रदेश का शासन प्रबन्ध सौंप देती है। वह मनु को बुद्धि और विज्ञान के द्वारा सारस्वत प्रदेश का शासन करने को कहती है।

इडा ने केवल प्रदेश की भौतिक समृद्धि के लिए ही मनु को प्रेरित नहीं किया वरन् आसव के चषक पिला कर उसे विलासोन्मुख भी किया—

इडा ढालती थी वह आसव, जिसकी बुझती प्यास नहीं,
तृषित कंठ को, पी पी कर भी, जिसमे है विश्वास नहीं।[4]

यहा तक हम इडा के चरित्र मे बौद्धिकता का अतिरेक पाते हैं। उसके रूप सौन्दर्य से आकर्षित होकर अतृप्त, विलासी मनु उससे बलात्कार करना चाहते हैं जिसके परिणामस्वरूप जन विद्रोह हो जाता है। संघर्ष के पश्चात इडा ग्लानि भाव से पूरित होकर विगत बातो पर विचार करने लगती है कि मनु का स्नेह —

---

१ डा० विजयेन्द्र स्नातक, कामायनी दर्शन, पृ० १६३

२. डा० इन्द्रनाथ मदान द्वारा संकलित--जयशंकर प्रसाद चिंतन व कला, पृ० १०३

३ कामायनी, इडा सर्ग, पृ० १६८

४. वही, स्वप्न सर्ग पृ० १८३।

उसके लिए अनन्य नहीं रह पाया।[1] उपकारी मनु आज अपराधी हैं[2] इड़ा विचित्र उलझन में पड़ जाती है कि जिसे वह दण्ड देने बैठी है उसी की रखवाली कर रही है।[3] इड़ा इसी मानसिक द्वन्द्व मे पड़ी थी कि मनु को ढूंढ़ती हुई श्रद्धा आ पहुंची। उसे देखकर इड़ा का हृदय भी द्रवीभूत हो गया :—

'इड़ा आज कुछ द्रवित हो रही,
दुखियो को देखा उसने
पहुंची पास और फिर पूछा
तुमको बिसराया किसने ?'[४]

यहां से इड़ा के चरित्र मे नारी सुलभ स्वभाव परिवर्तन होता है। मनु के पुनः चले जाने पर इड़ा अपने को सबसे अधिक अपराधी समझती है।[५] श्रद्धा के जीवन को दुःखमय बनाने मे अपना योग मानकर वही दुःखी होती हुई श्रद्धा से क्षमायाचना भी करती है :—

तिस पर मैंने छीना सुहाग। हे देवि ! तुम्हारा दिव्य राग;
मैं आज अकिंचन पाती हूं। अपने को नहीं सुहाती हूं।[६]

इड़ा के जीवन मे परिवर्तन आता है। वह श्रद्धा के आदेश पर कुमार के साथ अपने हृदय मे कोमल वृत्तियो का विकास करके सारस्वत प्रदेश के शासन सूत्र को संभाल कर नगर की अपूर्व वैभव वृद्धि करती है। अन्त मे कुमार और प्रजा सहित श्रद्धा और मनु के दर्शनो के लिए वह कैलाशगिरि की यात्रा करती है। वहां पहुच कर इड़ा वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव को ग्रहण करती है।

"हे देवी ! तुम्हारी ममता, बस मुझे खींचती लायी।
+ + +
हम एक कुटुम्ब बनाकर, यात्रा करने हैं आये।"[७]

वास्तविकता का ज्ञान होने पर इड़ा स्वार्थ और भौतिकता की संकुचित सीमाओं का अतिक्रमण कर आनन्द की अधिकारिणी बन जाती है।

---

१. कामायनी, निर्वेद सर्ग, पृ० २०८
२. वही, पृ० २१०
३. वही, पृ० २११
४. वही, पृ० २१३
५. वही, पृ० २३०
६. कामायनी, दर्शन सर्ग, पृ० २४०
७ वही, आनन्द सर्ग, पृ० २८६/२८७

इस प्रकार इडा के चरित्र मे एक ओर विप्लव और सघर्ष है तो दूसरी ओर त्याग और प्रेम। श्रद्धा के सम्पर्क मे आने से उसके चरित्र मे निखार आ जाता है। प्रतीकात्मक दृष्टि से इडा व्यवसायित्मिका बुद्धि का प्रतिनिधित्व करती है। इडा के चरित्र से प्रमाणित हो जाता है कि श्रद्धारहित बुद्धि सकट और सघर्ष मे उलझती है; श्रद्धा समन्वित होने पर ही बुद्धि को सफलता मिलती है। इडा के चरित्र के माध्यम से कवि ने नारी चरित्र की जिन रेखाओ को अ कित करना चाहा है वह पूर्णत. नही उभर पाई है क्योकि इडा के व्यक्तित्व की पूर्ण व्यजना काव्य मे नही हुई है। हा, इडा के चरित्र से प्रसाद की इस भावना को पूर्ण अभिव्यक्ति अवश्य मिल गई है कि केवल प्रबुद्ध मस्तिष्क लेकर ही समाज की कल्याणमयी भूमिका की नीव सुदृढ नही की जा सकती।[१] समष्टि रूप मे "प्रसाद जी ने इडा के चरित्र चित्रण मे आधुनिक युग की बौद्धिक क्षमता से युक्त एक ऐसी सबल नारी का व्यक्तित्व खडा किया है जो आज के वैज्ञानिक युग की समस्त शक्तिमत्ता और दुर्बलता का एक साथ पूरा पूरा आभास देने मे समर्थ है।"[२]

अन्य पात्र

श्रद्धा-मनु पुत्र कुमार (मानव) के दर्शन हमे स्वप्न सर्ग मे होते हैं। उसके चरित्र का विशेष विस्तार 'कामायनी' मे उपलब्ध नही है। वह विपत्ति मे मा का अवलम्ब है। मूर्च्छित पिता को देखकर उसके रोएं खडे हो जाते हैं और वह मा से पिता को पानी देने के लिए कहता है।[३] कुमार के मन में अपनी मा (श्रद्धा) के प्रति अनन्य प्रेम है। मा की आज्ञा से वह इडा के साथ रहते हुए सारस्वत प्रदेश की श्री सम्पन्नता को बढाता है। मानव के चरित्र मे पिता मनु की मननशीलता, माता की उदारचेता वृत्तियो और इडा के सहवास के कारण बौद्धिकता का अद्भुत सामजस्य हुआ है। आकुलि और किलात असुर पुरोहित हैं जो प्रतीक रूप मे आसुरी वृत्तियो के प्रतिनिधि है। 'कर्म' सर्ग मे ये मनु को असद् परामर्श देकर उनके द्वारा श्रद्धा के पालित पशु की बलि करा देते हैं। 'सघर्ष' सर्ग मे यही पुरोहित सारस्वत नगर की जनक्रांति का प्रतिनिधित्व करते हुए मनु के विरुद्ध हो जाते हैं। मनु के द्वारा इनका वध होता है।[४] कुमार, आकुलि और किलात आदि पात्रो की चरित्र योजना का पूर्ण विकास 'कामायनी' मे नही हो पाया है।

---

१ डा० देवेश ठाकुर—प्रसाद के नारी पात्र, पृ० १२४
२ डा० विजयेन्द्र स्नातक—कामायनी दर्शन, पृ० १६८
३ कामायनी, निर्वेद सर्ग, पृ० २१५, २१६
४. वही, संघर्ष सर्ग, पृ० २०१

युगो तक नारी चेतना के इतिहास मे प्रेरणा का अमर प्रतीक बनकर स्थिर रहेगा ।

कुरुक्षेत्र

हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यो मे 'कुरुक्षेत्र' शिल्प की दृष्टि से एक अभिनव प्रयोग है । काव्य मे कथा और पात्र की नही बल्कि चिन्तन की प्रधानता होने के कारण यह एक विचार प्रधान महाकाव्य कहा जाता है । कथानक और घटना विधान की क्षीणता के कारण कुरुक्षेत्र मे चरित्र विकास की सम्भावनाए शून्य के बराबर हैं । काव्य मे केवल दो ही पात्र हैं—युधिष्ठर और भीष्म । जिनके सवादो के माध्यम से कवि ने युद्ध की समस्या पर विचार किया है । इन दोनो पात्रो के उपलब्ध स्वरूप को देखते हुए यह निर्णय करना कठिन है कि इनमे नायक कौन हैं ? कुरुक्षेत्र के कुछ समीक्षक युधिष्ठिर को नायक मानते हैं, किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर न युधिष्ठर नायक ठहरते हैं न भीष्म । वास्तव मे कवि ने दोनो मे से किसी भी पात्र को नायकत्व प्रदान नही किया है । काव्य के 'निवेदन' मे कवि ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसके समक्ष मुख्य समस्या युद्ध की है जो कि मानव जाति की सारी समस्याओ की जड है । भीष्म और युधिष्ठिर को तो कवि ने इसी समस्या को प्रस्तुत करने के लिये आलम्बन रूप मे ग्रहण किया है । अस्तु प्रतीक रूप से युद्ध की समस्या को ही 'कुरुक्षेत्र' का नायकत्व प्रदान किया जा सकता है, क्योकि काव्य का कथानक, विचारतत्त्व, पात्र और जितनी दार्शनिक वृत्तिया है उन सबका ध्येय इसी समस्या को प्रस्तुत करना है । वैसे युद्ध की समस्या चिरन्तन है, उसका सम्पूर्ण मानव जाति और जीवन से सम्बन्ध है । सृष्टि रचना के प्रारम्भ से लेकर आज तक यह भीष्म और दुर्दान्त समस्या के रूप में मानवता के समक्ष एक चुनौती के रूप मे खडी रही है । अस्तु, कुरुक्षेत्र का नायक प्रतीक दृष्टि से यदि युद्ध को स्वीकार किया जाय तो कोई असगति नही लगती । इस प्रतीक का आकार स्वरूप युद्ध भूमि कुरुक्षेत्र को माना जा सकता है । डा० नगेन्द्र का विचार है कि 'इस काव्य मे कुरुक्षेत्र का युद्ध प्रतीक है.......युधिष्ठिर अहिसा के प्रतीक हैं जो युद्ध को किसी भी परिस्थिति मे उचित नही समझते और भीष्म न्याय भावना के प्रतीक हैं जो अन्याय के दमन के लिए युद्ध को उचित ही नही वरन् आवश्यक भी मानते हैं ।''[1] वास्तव मे नायकत्व का प्रश्न काव्य मे प्रच्छन्न ही रह जाता है ।

युधिष्ठर और भीष्म के अतिरिक्त महाभारत मे २६ अन्य पात्र सूच्य रूप मे आदे हैं और उनमे से प्राय सभी का आगमन वर्ण्य प्रसग मे एक विचित्र मार्मिकता

१. डा० नगेन्द्र—विचार और विश्लेषण, पृ० १२८ ।

का समावेश कर देता है। कृष्ण और व्यास आदि द्वारा भीष्म का अपनी बातों का समर्थन कराना, द्रोणाचार्य, दुर्योधन, अभिमन्यु तथा भीष्म इत्यादि का इस धर्म युद्ध में अन्यायपूर्वक मारा जाना, अश्वत्थामा, शकुनि तथा भीम आदि के जघन्य कर्म, धृतराष्ट्र और गान्धारी की सन्तान हीनता आदि अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो भावोत्तेजना मे निर्विवाद रूप से सहायक सिद्ध होते हैं। कवि का महत्व इस बात में है कि उसने इनकी महत्ता का मूल्य आंका है और उनका सफल उपयोग किया है।[1] जहा तक भीष्म और युधिष्ठिर के चरित्र का सम्बन्ध है उनके व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास बहुत कम हुआ है। कुरुक्षेत्र के कथानक मे घटनाचक्र की नगण्यता के कारण इन पात्रो के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की चरित्रगत विशेषताओ की महत्वपूर्ण व्यजना नही हो पाई है। यह दोनो पात्र कवि की चिन्तनधारा के संवाहक बनकर ही हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं फिर भी इन दोनो पात्रो की कुछ ऐसी चारित्रिक विशेषताए अवश्य हम काव्य मे पाते है जिनके आधार पर दिनकर के चरित्र चित्रण कौशल का परिचय प्राप्त होता है।

युधिष्ठिर:—'कुरुक्षेत्र' के प्रथम सर्ग के आरम्भ मे ही हम युधिष्ठिर को महाभारत के युद्ध के परिणामो की चिन्ता से ग्रस्त पाते है। उनकी चिन्ता का मूल कारण विजय के पीछे छिपा हुआ ध्वन्स और विनाश है। युधिष्ठिर उस महान व्यक्तित्व से सम्पन्न पुरुष है जो सारे पाडवो के हर्ष मे डूब जाने पर भी विनाश के परिणाम सोचकर चिंतित और विकल है।[2] उनके मन मे एक अपार वेदना का भाव है कि पाच ही असहिष्णु नरों के द्वेष के कारण पूरे देश का सहार हो गया।[3] वे सोचते हैं कि रक्त से सने राज्य का भोग कैसे कर सकूगा।[4] वे भीष्म के पास जाते है। प्रथम परिचय मे ही हम युधिष्ठिर को एक विचारवान व्यक्ति के रूप मे पाते है जिसके हृदय मे युद्ध की भयकर स्मृतियो का अन्तर्द्वन्द्व व्याप्त है।

---

१. श्री कान्ति मोहन शर्मा–कुरुक्षेत्र मीमासा, पृ० १६५
   २६ पात्रों की सूची–

   पुरुष पात्र– अभिमन्यु, अर्जुन, अश्वत्थामा, कर्ण, कृतवर्मा, कृपाचार्य, जरासन्ध, दुःशासन, द्रुपद, द्रोण, धृतराष्ट्र, नकुल, धृष्टद्युम्न, भीम, राम, विदुर, व्यास, शकुनि, शिशुपाल, श्रीकृष्ण, सहदेव, सात्यकि

   स्त्री पात्र– उत्तरा, गान्धारी, द्रौपदी, सीता

२. कुरुक्षेत्र, प्रथम सर्ग, पृ० १३

३. वही, पृ० १४

४. वही, पृ० १५

भीष्म पितामह के पास जाकर वे मर्मस्पर्शी शब्दों में अपनी हृदय वेदना को प्रस्तुत कर देते है। युधिष्ठिर के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व निम्नाकित शब्दों मे व्यक्त हुआ है:—

"एक ओर सत्यमयी गीता भगवान की है;
एक ओर जीवन की विरति प्रबुद्ध है;
जानता हूँ, लड़ना पड़ा था हो विवश, किन्तु,
लोहू—सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है;
ध्वंसजन्य सुख ? याकि, साश्रु दुःख शान्ति जन्य ?
ज्ञात नहीं कौन बात नीति के विरुद्ध है;

जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुण्य,
या महान पाप यहां फूटा बन युद्ध है।" [१]

यहीं से काव्य की मूल विचारधारा (युद्ध की समस्या) पर युधिष्ठिर और भीष्म में विचार विमर्श प्रारम्भ हो जाता है। भीष्म पितामह अनेक प्रकार की युक्तियों से युद्ध का समर्थन करते हैं किन्तु शान्ति और प्रेम के पुजारी युधिष्ठिर सन्तुष्ट नहीं हो पाते हैं। पितामह की बात सुनते सुनते पंचम सर्ग पर आकर धर्मराज रो उठते हैं। महाराज युधिष्ठिर स्वयं पर नर-नाश का दायित्व ठहराते हैं। उन्हे दुःख है कि *लोग यही कहेंगे कि युधिष्ठर दम्भ के कारण साधुता का व्रतधारी बना रहा।* उन्हें सुयोधन के समान ही युद्ध के विष-कीच मे नहीं गिरना चाहिये था। इसी प्रकार के विचार संघर्ष मे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लोभ ही युद्ध का कारण है। अस्तु, पंचम सर्ग की अन्तिम पंक्तियो मे वे लोभ से रण करने की ठानते हैं:—

"यह होगा महारण राग के साथ,
युधिष्ठिर हो विजयी निकलेगा;
नर संस्कृति की रण-छिन्न लता पर,
शान्ति-सुधा-फल दिव्य फलेगा;
कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति,
पन्थ की मानव ऊपर और चलेगा;

१. कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग, पृ० १८, १९

मनु का यह पुत्र निराश नही,
नव-धर्म-प्रदीप अवश्य जलेगा ।'' १

इस प्रकार युधिष्ठिर के चिन्तन क्रम मे जो महान् परिवर्तन आता है, वह उनके चरित्र की दृढ़ता का परिचायक है। युधिष्ठिर का आशावादी दृष्टिकोण काव्य के अन्तिम सर्गों मे व्यक्त होता है, जहा भीष्म भी उनके हृदय के प्रेम और करुणा से पूर्ण भावो का समर्थन करते हुए युधिष्ठिर को लोककल्याणकारी उपदेश देते हैं। इस प्रकार युधिष्ठिर के चरित्र मे कवि ने उदात्त चिन्तन पक्ष को प्रतिष्ठित किया है। उनका अहिंसात्मक दृष्टिकोण गाधीवाद से प्रभावित है। युधिष्ठिर का चरित्र कवि के सहज मानवतावादी दृष्टिकोण का जीवन्त प्रतीक है।

भीष्म—भीष्म 'कुरुक्षेत्र' के ऐसे पात्र हैं जो कवि की चिन्तन-धारा के यथार्थवादी पक्ष का समर्थन करते हैं। भीष्म का चरित्र महान पराक्रमी, दृढप्रतिज्ञ नीतिज्ञ एव तत्त्वज्ञानी का चरित्र है। 'कुरुक्षेत्र' मे उनके चरित्र के तीन पक्ष हमारे सम्मुख आते हैं—वीर, नीतिज्ञ और चिंतक। द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ मे कवि ने उन्हें अजेय भीष्म कहा है जो मृत्यु योग का अवसर न आने के कारण मृत्यु को पास ही रुको रह-कहकर बाणो की शैया पर लेटे हुए हैं। मृत्यु समीप ही विनीत भाव से खडी रहती है। २ भीष्म पितामह मे अपार शक्ति और शौर्य था। वे अर्जुन के बाण से नही स्नेह से पराजित हुए थे। ऐसे पराक्रमी भीष्म के समक्ष युद्ध के भयकर परिणामो से भयाक्रान्त युधिष्ठिर अपनी मानसिक वेदना व्यक्त करते हैं। तब भीष्म पितामह कहते हैं कि—

'शूर धर्म है अभय दहकते अगारो पर चलना,
शूर धर्म है शोणित असि पर धरकर चरण मचलना,
शूर धर्म कहते है छाती तान तीर खाने को,
शूर धर्म कहते हैं हसकर हलाहल पी जाने को।'३

भीष्म की दृष्टि मे—

'सबसे बडा धर्म है नर का सदा प्रज्ज्वलित रहना,
दाहक शक्ति समेट स्पर्श भी नही किसी का सहना।४

१. कुरुक्षेत्र, पंचम सर्ग, पृ० ९४
२. वही, द्वितीय सर्ग, पृ० १६
३. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६०
४. वही, पृ० ६१

भीष्म पितामह ऐसी शान्ति को त्याज्य समझते हैं जो क्लीवता और निर्जीवता को जन्म देती है। वे मानव की शक्ति पर विश्वास करते हैं। उनका मत है कि अत्याचार का दमन करना मानव का धर्म है। उनकी धारणा है कि पशुबल के आगे आत्मबल का वश नहीं चलता है—

"कौन केवल आत्मबल से जूझकर,
जीत सकता देह का संग्राम है?
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा
आत्मबल का एक वश चलता नहीं।"[1]

उनकी यह भी मान्यता है कि पाप को स्वीकार करने वाला ही पातकी है।[2]

भीष्म पितामह मे गांधीवादी युधिष्ठिर के विपरीत क्रांतिकारी विचारणा मिलती है। जब वे कहते हैं कि सहज मे ही कोई किसी से लड़ना नहीं चाहता, न कोई किसी को मारना या स्वयं ही मरना चाहता है, किन्तु शान्ति प्रियता की नीति केवल मनुज को ही रोक सकती है, दनुज कभी भी शिष्ट मानव को नहीं पहचान सकता। विनय तो उसके लिये कायर की नीति है—

दनुज क्या शिष्ट मानव को कभी पहचानता है।
विनय को नीति कायर की सदा वह मानता है।"[3]

भीष्म पितामह के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उनका मानवतावादी दृष्टिकोण है। वे कर्मयोगी है। भाग्यवाद की तो उन्होंने कटु भर्त्सना की है—

'भाग्यवाद आवरण पाप का,
और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन,
भाग दूसरे जन का।"[4]

उनका दृढ़ विश्वास है कि मनुज ब्रह्मा से कुछ भी लिखाकर नहीं लाया है, अपने भुजबल से ही संसार मे उसने सब कुछ प्राप्त किया है। भीष्म पिता सच्चे कर्मयोगी और लोककल्याण चिंतक हैं। युधिष्ठिर जब सन्यास की बात कहते हैं तो वे स्पष्ट कह देते हैं कि सन्यास की खोज कायरता है, मानव का धर्म वैयक्तिक सुख की उपलब्धि नहीं वरन् कोटि कोटि जनों को सुखी बनाना है—

---

१ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० २८
२ वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ४७
३. वही, पृ० ४६
४. वही, सप्तम सर्ग, पृ० ११५

"धर्मराज सन्यास खोजना, कायरता है मन की,
है सच्चा मनुजत्व ग्रंथियां, सुलझाना जीवन की
दुर्लभ नहीं मनुज के हित, निज वैयक्तिक सुख पाना,
किन्तु कठिन है कोटि कोटि मनुजों को सुखी बनाना।"[1]

अंतत: वे धर्मराज को गीता के कृष्ण की भांति कर्ममार्ग में प्रवृत्त होने का ही उपदेश देते हैं। वे चाहते हैं कि धर्मराज असंख्य नरों के जीवन की आशा बन कर दग्ध भूतल को पीयूष से अभिषिक्त करो।

युधिष्ठिर की भांति भीष्म पितामह के चरित्र मे भी कवि ने अन्तर्द्वन्द्व की अवतारणा की है। उनके अंतर मे भी धर्म और स्नेह का संघर्ष चला था। पाडवों से प्रेम करते हुए भी उन्हें दुर्योधन का ही पक्षधर बनना पड़ा। वे धर्म और प्रेम दोनों का ही निर्वाह करना चाहते थे, किन्तु अंत में विजय स्नेह की ही हुई, धर्म पराजित हुआ। वे अर्जुन से खुलकर युद्ध न कर सकने के कारण ही पराजित हो गये :–

"धर्म, स्नेह, दोनों प्यारे थे, बड़ा कठिन निर्णय था,
अतः. एक को देह, दूसरे को दे दिया हृदय था।
+ + +
धर्म पराजित हुआ, स्नेह का डंका बजा विजय का,
मिली देह भी उसे, दान था, जिसको मिला हृदय का।
भीष्म न गिरा पार्थ के सर से, गिरा भीष्म का वय था।"[2]

भीष्म पितामह के चरित्र-निरूपण में कवि ने आदर्श और यथार्थ गुणों का अद्भुत समन्वय किया है। स्वयं कवि ने उन्हें ब्रह्मचर्य व्रती, धर्म का महा-स्तम्भ, बल का आगार, परम विरागी पुरुष कहा है। भीष्म के समान संसार में अन्य कौन विक्रमी होगा, जिन्होंने धर्म हित और प्रेम के कारण अपने प्राणों का विसर्जन कर दिया।[3]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र के चरित्र चित्रण में भारतीय इतिहास के दो महान पात्रों का नितान्त नवीन रूप प्रस्तुत किया गया है। कवि ने यद्यपि इन पात्रों को निजी विचार-अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर ही उद्धृत किया है, किन्तु कहीं भी उनकी चरित्र गरिमा में न्यूनता नहीं आई है। विशेषता यह है कि हमारे युग की

१. कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग, पृ० १२७
२. कुरुक्षेत्र, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६५, ६६
३. वही, पृ० ४

विचार वीथी मे विचरण करते हुए भी ये पात्र इतिहास के मार्ग से नही भटके हैं। काव्य मे दोनो पात्रो के जीवन का एक अंश ही हमारे सामने आया है किन्तु वह इतना महत्वपूर्ण है कि उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की एक अमिट छाप पाठक के मन मस्तिष्क पर अंकित हो जाती है। धर्मराज युधिष्ठिर और भीष्म पितामह के ऐतिहासिक व्यक्तित्व, मनोविज्ञान और कल्पना के संस्पर्श से 'कुरुक्षेत्र' मे निश्चय ही मौलिकता लिये हुए हैं, यही कुरुक्षेत्र के चरित्र निरूपण की प्रमुख विशेषता है।

साकेत सन्त

'साकेत सन्त' चरित्र प्रधान महाकाव्य है। जैसा कि काव्य के नामकरण से विदित होता है—साकेत के सन्त भरत का चरित्र निरूपण इस काव्य का मुख्य उद्देश्य है। उपेक्षित पात्रो के चरित्र को लेकर वर्त्तमान युग मे हिन्दी मे अनेक महाकाव्य लिखे गये हैं। 'साकेत सत' भी उनमे से एक है। भरत का चरित्र इतना उपेक्षित तो नही कहा जा सकता जितना उर्मिला का, जिसको आधार बनाकर श्री गुप्त जी ने 'साकेत' और श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन ने 'उर्म्मिला' नामक महाकाव्यो की रचना की; और एक उपेक्षिता के चरित्र का उद्धार किया। भरत के चरित्र का पर्याप्त विस्तार और विश्लेषण रामकाव्यो मे, विशेष रूप से तुलसी के 'मानस' में हुआ है, किन्तु भारत के महत् चरित्र की प्रतिष्ठा महाकाव्य के नायक के रूप मे अद्यावधि किसी ने नही की थी। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'साकेत सन्त' मे प्रथम बार भरत को नायक पद पर प्रतिष्ठित किया है। इस दृष्टि से उनका यह प्रयास सराहनीय है। काव्य मे माण्डवी का चरित्र नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भरत और मांडवी के अतिरिक्त कैकेयी के चरित्र मे भी कुछ नवीनता का प्रदर्शन है। अन्य सब पात्र 'मानस' के अनुरूप ही चित्रित किये गये हैं।

भरत—भरत 'साकेत सन्त' महाकाव्य के नायक हैं। उनका चरित्र आदर्श गुणो का सघात है। सर्व प्रथम हम उन्हे प्रेमी नवयुवक के रूप मे पाते है। भरत और माण्डवी नवविवाहित दम्पत्ति है, जिनके जीवन में नयी उमग और उल्लास है :—

'नया परिणय था, नयी उमग,
माण्डवी का था नूतन सग,
नित्य नवरग नित्य नवतान,
नित्य उत्सव के नये विधान।'[1]

---

१. साकेत सत, प्रथम सर्ग, पृ० २०

भरत के चरित्र में अहिंसा, त्याग, दया, क्षमा, शील सेवा आदि उदार गुणों का ही आधिक्य है। द्वितीय सर्ग मे कैकेय देश मे मामा युधाजित के साथ वे आखेट खेलने जाते हैं जहा वे एक मृग पर शर प्रहार करते हैं। आहत मृग के समीप पहुचने पर उसकी दयनीय दशा से द्रवीभूत हो जाते है —

"कुछ ऐसी कातरता थी, मृग की आखों मे व्यापी।
शुद्धात्मा भरत कुंवर की करुणा पूरित हो कापी॥"[1]

इस अवसर का लाभ उठाकर युधाजित भरत को सत्ताधारी और नीति-परायण बनने को कहते है किन्तु भरत हिंसा और युद्ध की नीति का दृढता से विरोध करते हुए राज्य के प्रति भी उदासीनता का भाव दिखाते हैं। उनकी करुणा भाव पर बडी आस्था है।[2] इसी सर्ग में हम भरत के मन मे प्रकृति के प्रति आकर्षण-भाव भी पाते हैं।[3]

भरत के चरित्र का उज्ज्वल स्वरूप उस समय प्रकट होता है, जब ननिहाल से लौटकर पिता के मरण और राम के बनगमन की सूचना पाकर उनका हृदय पश्चाताप की ज्वाला में विदग्ध होने लगता है। तृतीय-चतुर्थ और पचम सर्गों मे भरत के मानसिक सताप और हृदयगत द्वन्द्व की बडी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुस्थिति को समझने पर वे कैकेय की भूमि को धिक्कारते है। जिसने कुचक्र करने वाली मन्थरा के समान नागिनी को पाला[4] वे अपने को कुटिल, अधम, पापी और कालकेतु कहते हुए धिक्कारते हैं, वे कहते है कि मुझसे विषम हत्यारे से सर्प भी भय खाते है। मेरे डर से निशाचर भी भाग जायेगे। मैं जगत का सचित पाप बनकर प्रकट हुआ हू, क्योंकि

'मेरे कारण ही अवध राम ने छोडा,
मेरे कारण तनबन्ध पिता ने तोडा।
मेरे कारण यह दशा तुम्हारी माता,
दानव हू दानव विपुल व्यथा का दाता।'[5]

वे कहते है कि—

---

१. साकेत सत, द्वितीय सर्ग, पृ० ३२
२. वही , द्वितीय सर्ग, छन्द सख्या ५९–६१
३ वही , वही , पृ० ४०-४२
४. वही , तृतीय सर्ग, पृ० ४५
५. वही , तृतीय सर्ग, पृ० ५१

'किस मुख से माग़ूं, क्षमा सफाई क्या दूं ?
किस तरह चीर कर हृदय तुम्हें दिखलाद़ूं ।'[1]

भरत के हृदय में यही कसक रह जाती है कि यदि वे कैकेय न जाते तो यह सब न होता—

न चलता यदि कैकेय का चक्र,
बोलती यदि न मन्थरा वक्र ।
न मा यदि खो देती सब ज्ञान,
न देते यदि नरेश वरदान ।
+ +
न मैं ही यदि तजता यह देश,
न रहता विषय क्लेश का लेश ।'[2]

अन्ततः भरत भाग्य को ही प्रबल मानकर दोष देते हैं किन्तु भाग्यवाद की मान्यता में वे कर्त्तव्य और पौरुष का परित्याग नहीं करते। क्योंकि उनका विश्वास है कि—

'यत्न ही हो जीवन का ध्येय,
कर्म की गीता सबकी गेय ।
भाग्य की बात भाग्य के हाथ,
पुरुष का है पौरुष से साथ ।'[3]

संकटपूर्ण स्थिति में भरत यही निर्णय करते हैं कि पिता तो गये, वे तो लौट कर आ नहीं सकते। अतः बन्धुओं को वन से बुलाकर राज्य सौंप दूं। इस सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिये उन्होंने परिषद् की बैठक बुलवाई।[4] यहां हम भरत के चरित्र में धैर्य और विवेक का अपूर्व परिचय पाते हैं। सभा में गुरु वशिष्ठ और मंत्री आदि के परामर्श पर भी वे राम को वन से लौटाने के निर्णय पर दृढ़ रहते हैं। चित्रकूट की सभा में राम जब उनसे राज्यभार को ग्रहण करने के लिये पूछते हैं तो भरत किंकर्त्तव्यविमूढ होकर यही कहते हैं कि—

---

१. साकेत संत, पृ० ५१
२. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ५९
३. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६२
४. वही , वही , पृ० ६४

'आया था अपनी इच्छा से, जाऊँगा प्रभु इच्छा लेकर।
मैंने क्या क्या आज न पाया, इस वन में अपनापन देकर।
राज्य उन्हीं का यहां वहा भी, मैं तो केवल आज्ञाकारी।'[१]

और भरत राम की आज्ञा को शिरोधार्य करके अवध लौट आते हैं। उनके चरित्र की महिमा से प्रभावित होकर राम कहते हैं कि —

'बोले राम धर्म संकट से आज भरत ने जगत उबारा,
सब का दु:ख अपने मे लेकर सब को सुख का दिया सहारा।
× × ×
आज भरत खोकर भी जीते और जीतकर भी मैं हारा।'[२]

चौदह वर्षों की दीर्घावधि तक राम की आज्ञा का अनुपालन करते हुए, भरत ने नन्दिग्राम मे तपस्वियो का सा जीवन बिताया। इस प्रकार भरत के चरित्र मे त्याग के अनुपम आदर्श की महान अभिव्यंजना हुई है। चौदह वर्षों की दीर्घावधि मे राम और लक्ष्मण वन मे रहते हुए भी उस महत् त्यागमय आदर्श के प्रतीक नही बन पाते हैं, जिसके भरत अयोध्या के भोगो मे रहकर भी योगी का सा जीवन बिताते हुए बन जाते हैं। कवि ने उन्हें साकेत का सन्त उचित ही कहा है।

माडवी—भरत-पत्नी मांडवी इस काव्य की नायिका हैं। भरत के चरित्रोत्थान मे माडवी का योग महत्वपूर्ण है, क्योकि भरत के त्याग और योगमय जीवन की सफलता माडवी के प्रयत्नो मे ही निहित है। वह आदर्श भारतीय नारी है। वह सती साध्वी है, जिसके जीवन का चरम ध्येय पति परायणा बनने मे ही है।

प्रथम सर्ग मे मिश्रजी ने मांडवी के चरित्र का सुन्दर चित्र अंकित किया है। वह अनिन्द्य सुन्दरी है, जिसके रूप पर रीझकर भरत प्रकृति की सम्पूर्ण सौदर्य सुषमा के उपमान उसके अंग प्रत्यगो को बताते हैं, भरत उन्हें अवनि का प्यार, ऊषा, तारकगति और नन्दनवन की पुनीत सुरभि कहते हैं।[3] माडवी कुल वधु की मर्यादा भली भांति जानती हैं। तभी तो वह कहती हैं—

'कुल वधु मन रहती स्वच्छन्द, उसे बस अपना भवन पसद।'[४]

---

१. साकेत सत, नयादेश सर्ग, पृ० १७७
२. वही, नयादेश सर्ग, पृ० १७९-१८०
३. वही , प्रथम सर्ग, पृ० २६
४. वही, प्रथम सर्ग, पृ० २२

भरत के प्रति मांडवी का अनन्य निष्ठाभाव इन शब्दो मे व्यक्त हुआ है :—

'और मैं तुम्हें हृदय मे आप, बनूंगी अर्घ्य आरती आप।
विश्व की सारी कांति समेट, करूंगी एक तुम्हारी भेंट॥'[१]

माडवी भरत के सुख-दुःख की समभागिनी है। पति की व्यथित दशा को देखकर वह कह उठती है कि—

'नम्र स्वर मे वह बोली 'नाथ'! बटाऊं कैसे दुःख मे हाथ,
बतादो यदि हो कही उपाय, टपाटप गिरे अश्रु असहाय।'[२]

भरत ने उसे उर्मिला को धैर्य बंधाने का कार्य दिया। माडवी की दशा यद्यपि उर्मिला और सीता से कही अधिक व्यथित थी, किन्तु फिर भी पूर्ण निष्ठा एव धैर्य के साथ पति की आज्ञा का पालन किया। राज भवन मे रह कर भी उसने तपस्विनी का सा जीवन बिताया।[३] माडवी की दशा अवध परिवार के नारी-पात्रो मे सबसे अधिक दयनीय थी, क्योकि—

'अहह! माडवी को तो आहो का भरना भी वर्जित था।'[४]

इस प्रकार माडवी के चरित्र मे पति परायणता, सेवा भाव, त्याग और तपश्चर्या के जीवन की सुन्दर झांकी कवि ने अंकित की है, किन्तु नायिका के अनुरूप माडवी के चरित्र का स्वतंत्र विकास नही हो पाया। माडवी का चरित्र भरत के चरित्र का पूरक बनकर पृष्ठभूमि के रूप में ही अंकित हुआ है, किन्तु माडवी तापसी जीवन के कारण एक विशिष्ट व्यक्तित्व को ग्रहण किये हुए है और इसलिये हिन्दी महाकाव्यो के नारी पात्रो के मध्य में उसे अलग से ही खोजा जा सकता है।[५]

अन्य पात्र

अन्य पात्रो में राम और सीता के चरित्र-चित्रण में कवि ने विशेष नवीनता का परिचय नही दिया है। 'साकेत संत' के राम वाल्मीकि रामायण

---

१. साकेत संत, वही, पृ० २६
२. वही , चतुर्थ सर्ग, पृ० ५५
३. वही , चतुर्दश सर्ग, पृ० १९०
४. वही , चतुर्दश सर्ग, पृ० १८१
५. डा० श्याम सुन्दर व्यास—हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण, पृ० ११५

के राम की भांति आदर्श मानव हैं। 'साकेत संत' के राम आर्य संस्कृति के उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा, दलित वर्गों के उद्धार और देश की एकता की रक्षा के प्रयत्न में लगे हुए हैं। इस दृष्टि से उनका चरित्र युग की प्रवृत्ति के अनुरूप कहा जा सकता है। सीता का उल्लेख काव्य में एकाध स्थल पर ही हुआ है। जैसे भरत-मिलाप के अवसर पर भवन भोगों की अपेक्षा विपिन भोगों को श्रेष्ठ बताने एवं भरत के जल-पान की व्यवस्था आदि करने में उनका नारी सुलभ रूप अंकित हुआ है।[१]

काव्य में कौशल्या की चरित्र सृष्टि इसलिये उल्लेखनीय है कि उसके कथनों द्वारा भरत के चरित्र का उत्कर्ष होता है। कौशल्या के कोमल मातृ हृदय में भरत के प्रति भी राम के समान ही स्नेह भाव है। तभी तो वह कहती है—

'खींचा उनको, ले गोद, हृदय लिपटाया,
बोली तुमको पा पुनः राम को पाया।'[२]

'साकेत संत' की नारी सृष्टि में कैकेयी के चरित्र सृजन में कवि ने नवीनता का परिचय दिया है। यद्यपि कैकेयी की चरित्र-रचना पर श्री गुप्त जी के 'साकेत' का पर्याप्त प्रभाव है फिर भी कुछ अंशों तक मौलिकता अवश्य है। कैकेयी के हृदय में अपने-पुत्र के प्रति असीम वात्सल्य भाव है। इसलिये वह अनिष्ट सहकर भी भरत के लिये राज्य प्राप्त करती है, किन्तु भरत राज्य का ही तिरस्कार नहीं करते वरन् उसे डाकिन और कुटिल की आकृति भी कहते हैं।[3] भरत का मन्तव्य जान लेने पर कैकेयी को अपनी भूल ज्ञात होती है—

'तेरे हित मैंने हृदय कठोर बनाया,
तेरे हित मैंने राम विपिन भिजवाया।
तेरे हित मैं बनी कलंकिनी नारी,
तेरे हित समझी गई महा हत्यारी।'[४]

मानसिक संताप की असह्य वेदना के कारण वह पति के साथ सती होने का निश्चय करती है। वह कहती है "व्यथा में प्राण रखकर मैं क्या करूंगी,

---

१. साकेत संत, एकादश सर्ग, पृ० १३१
२. वही, तृतीय सर्ग, पृ० ५१
३. वही, वही, पृ० ४७-४८
४. वही, वही, पृ० ४९

मरूंगी पुत्र छोडो मैं मरूंगी।"[1] किन्तु भरत के यह कहने पर कि "हूं आज तुम से धन्य माता"[2] वह सती होने के निश्चय को त्यागती है। तदन्तर कैकयी राम को वन से लौटा लाने का प्रयत्न करती है। चित्रकूट पहुंचने पर आसुओं की धार बहाती हुई अवरुद्ध कंठ से सिसकियां लेती हुई और अपनी ही उष्मा में जलती हुई उसकी दशा बडी दयनीय है[3] राम को लौटाने के लिये भी वह प्रबल आग्रह करती है।[4] जब वह राम को लौटाने मे सफल नही होती तो अयोध्या राज्य का पश्चिमी नाका साधने का भार स्वयं ग्रहण कर लेती है।[5] वह किसी प्रकार अपने पाप का प्रायश्चित करना चाहती है।

इस प्रकार कैकेयी के चरित्र मे कवि ने एक स्नेहशीला माता और परित्यक्ता नारी के रूप को भली प्रकार अंकित किया है। 'साकेत सन्त" की कैकयी अयोध्या के पश्चिमी नाके को साधने की जो बात कहती है वह नितान्त नवीन है क्योंकि "मानस" और "साकेत" की कैकेयी भांति उसमे केवल मानसिक संताप या पश्चाताप ही नही है। मिश्रजी की कैकेयी क्रियात्मक पश्चाताप द्वारा अपने कलक को धोकर चरित्र का परिष्कार करती है।

'साकेत सन्त' की सम्पूर्ण पात्र सृष्टि मे केवल भरत का चरित्र ही पूर्ण विकसित और नवीन रूप मे प्राप्त होता है। काव्य के अन्य पात्र भरत के चरित्र को ही उत्कर्ष प्रदान करने मे सहायक सिद्ध होते हैं।

दैत्यवंश

दैत्यवंश महाकाव्य की रचना महाकवि कालिदास के 'रघुवंश' के आधार पर हुई है। 'रघुवंश' मे जिस प्रकार दिलीप, अज, दशरथ, राम, अग्नि वर्ण आदि राजाओं को नायक बनाया गया है उसी प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य मे श्री हरदयालु सिंह ने हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु, विरोचन, बलि बाणासुर और स्कन्द को नायक बनाया है। हिन्दी की महाकाव्य परम्परा मे श्री हरदयालु सिंह प्रथम कवि हैं जिन्होने दैत्यों को महाकाव्य का नायकत्व प्रदान किया। वैसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देव और दानव दोनो मानवीय प्रवृत्तियो के प्रतीक हैं।

---

१. साकेत सत, षष्ठ सर्ग पृ० ८१
२. वही , वही , पृ० ८२
३. वही , एकादश सर्ग, पृ० १३३
४. वही , त्रयोदश सर्ग, पृ० १६२
५. वही , त्रयोदश सर्ग, पृ० १८२

'मानव का अविकसित रूप दैत्य हैं और सुविकसित रूप देव हैं, जिसमे शारीरिक बल प्रचुर मात्रा मे मौजूद है, क्योकि वह प्रकृति की सीधी देन है, परन्तु मस्तिष्क बल अधिक नही हैं। शारीरिक और मानसिक शक्तिया प्राय एक से अनुपात मे किसी वर्ग मे नही पायी जाती हैं। विकास क्रम मे यह भी देखा गया है कि किसी वर्ग में जैसे-जैसे मस्तिष्कीय शक्तियो का विकास होता है, शारीरिक बल का ह्रास भी होता है। छल प्रपच, धूर्तता, विश्वासघात आदि मस्तिष्क के विकास के अ वश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल मे बढे-चढे हैं तो उनमे सरल विश्वास, सत्य निष्ठा और सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर बल मे निर्बल हैं पर चतुर अधिक हैं वे बात-बात मे दैत्यो को धोखा देते हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हे छल लेते हैं।.... देव और दैत्य अर्थात् मस्तिष्कीय और शारीरिक प्रवृतियो के सघर्ष मे मनुष्य की सहानुभूति देवो के प्रति होना स्वाभाविक है, क्योकि वह भी मस्तिष्क के बल पर ही शेष सृष्टि पर शासन करता है। और अपने लाभ के लिये सृष्टि के इतर प्राणियो पर किय गये अत्याचारो को नही गिनता।''[1]

इस प्रकार मानवतावादी दृष्टि से विचार करने पर देव और दैत्यो मे कोई अन्तर दिखाई नही देता। महाकाव्य के चरित्र निरूपण का आधार मानवीय गुण और दोष होते हैं, जो दैत्यो के चरित्र मे देवो की अपेक्षा किसी प्रकार कम नही हैं। जहा तक नायक के सद्वशीय होने का प्रश्न है—देव और दैत्य दोनो कश्यप ऋषि की सन्तान हैं। कश्यप ऋषि की पत्नियो मे दिति नाम की पत्नी की सन्तान दैत्य कहलायी और अदिति की देव। देव सतोगुण एव दैत्य तमोगुण प्रधान थे। इसलिये प्रारम्भ से ही दोनो मे सघर्ष और प्रतिद्वन्द्विता हो गई। महाकाव्यकार ने युग-जीवन की व्यापक चिन्तन पद्धति को अपना कर दैत्यो के चरित्र मे भी शालीनता, दानशीलता, शौर्य, पराक्रम, तेजस्विता, तपश्चर्या, पूजार्चन एव प्रशासकीय गुणो की प्रतिष्ठा की है।

प्रस्तुत महाकाव्य मे प्रमुख रूप से छ दैत्य-वशीय राजाओ का वर्णन है किन्तु सर्वप्रमुख चरित्र राजा बलि का है। काव्य मे उसके क्रिया कलापो का विवेचन इतने व्यापक ढग से हुआ है कि बलि दैत्य वश के अन्य नायको मे सर्वप्रमुख बन जाते है। देवताओ की स्थिति इस काव्य मे प्रतिनायक की है।

बलि—बलि की स्थिति दैत्यवश के नरेशो मे सबसे प्रधान एव भव्य नायक की है। राज्यासीन होने के पश्चात् ही बलि सैनिक सगठन और प्रजाहित के लिय कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। वह प्रजा के लिये स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि आदि

---

१. दैत्यवश, भूमिका लेखक उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० ७

आकाश-पाताल और पृथ्वी को नाप लिया। तृतीय पग के लिये बलि ने अपना शरीर अर्पित कर दिया और हिमगिरि के समान उच्च और दर्पित शीश को झुका दिया। उसकी दानशीलता की आज तक प्रशंसा की जाती है।

इस प्रकार बलि के चरित्र में हमें अनेक दिव्य गुण मिलते हैं। वह प्रजापालक, कुशल प्रशासक, शिवपूजक, गुरु भक्त, पिता का आज्ञाकारी, योद्धा पराक्रमी, दानी और नीतिज्ञ था। बलि के चरित्र का विकास बडे स्वाभाविक ढंग से हुआ है। दैत्य कुल में उत्पन्न होकर भी बलि का व्यक्तित्व उन महान गुणों से युक्त है जो उसके चरित्र को महाकाव्य के नायकत्व की गरिमा से मण्डित करते हैं।

बाणासुर—बलि के पश्चात् बाणासुर दैत्यवंश का उल्लेखनीय नायक है। बाणासुर जब विश्व विजयी होकर लौटता है तो नगर को उजडा हुआ पाकर आश्चर्य करता है। जब उसे माता और गुरु से वामन के छल का पता लगता है तो वह आक्रमण करके सोनपुर नगर बसाता है जहां सभी दैत्य रहने लगते हैं। बाण के उषा नाम की असाधारण सुन्दर कन्या हुई, जिसका श्री कृष्ण-पुत्र अनिरुद्ध से विवाह हुआ।

पिता के समान बाण भी महान पराक्रमी और साहसी था। उसने अपनी शक्ति और साहस के बल पर ही अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में दिग्विजय यात्रा की और विजयी हुआ। बाण न्यायप्रिय था। युद्ध में षडानन को पराजित करने के उपरान्त भी वह उनके घर जाकर प्रेमपूर्वक मिला। अन्त में बाणासुर ने अपने पुत्र अस्कन्द कुमार को राज्य सौंप कर कठोर तप करते हुए शिव लोक गमन किया अपने जीवन के अन्तिम काल में तप और साधना की प्रवृत्ति बाणासुर के चरित्र की उच्चता को प्रमाणित करती है, क्योंकि यह तपश्चर्या बाण ने किसी भौतिक सुख की प्राप्ति के लिये नहीं की, जैसा कि प्राय दैत्य और राक्षस किया करते थे। उसकी साधना शुद्ध और सात्विक थी। कठोर साधना के पश्चात् उसे शिवत्व की प्राप्ति हुई :—

"यो तनु जोग की आगि में जारि,
गयो शिव धाम बनो हर मेखी।"[1]

अस्कन्द—दैत्यवंश के राजाओं में अस्कन्द का चरित्र भी महत्वपूर्ण है। अनेक पूर्वजों की भांति स्कन्द भी न्यायप्रिय, प्रजाहित रक्षक, वीर हुआ।

---

१. दैत्यवंश, सप्तदश सर्ग, पृ० २५१

की सुविधाएँ उपलब्ध कराता है। बलि ने अपने पौरुष और पराक्रम से सम्पूर्ण राज्य का विधिवत सगठन किया। उसने ९९ अश्वमेघ यज्ञ किये।[1] शिवराधन से उसके बाण नामक पुत्र हुआ।

बलि के राज्योत्कर्ष को देखकर देव मन ही मन खिन्न रहते थे। एक दिन वे सब मिलकर गये और बलि से सन्धि प्रस्ताव किया। यद्यपि शुक्राचार्य ने देवो की कुटिलता के रहस्य को समझकर सधि-प्रस्ताव को अस्वीकृत करने का परामर्श दिया किन्तु बलि ने उदार हृदय से यही कहा कि—

"अभिलाष करि आये इते इनको निराश न कीजिये,
प्रस्ताव के अर्धांश को स्वीकार ही कर लीजिये।"[2]

बलि ने यह भी कहा कि देवो के सन्धि प्रस्ताव को स्वीकार करने से शत्रुता भाव दूर होगा और बन्धु बन्धुओ से मिल जायेंगे। बलि के इस कथन मे उसकी उच्चाशयता और उदार प्रकृति का स्पष्ट परिचय मिलता है।

सागरमथन के पश्चात् प्राप्त होने वाले अमृत को छलपूर्वक देवता अकेले ही पी गये। यद्यपि सागर मथन मे दैत्यो ने ही अधिक परिश्रम किया था। बलि ने इस घटना से क्रोधित होकर देवताओ से सग्राम किया। बलि अपनी वीरता और युद्ध कौशल से इन्द्र से भिड जाता है और अन्त मे वही विजयी होता है। सुरलोक का सिंहासनाधिकारी नहुष को बनाकर स्वय पुर को प्रस्थान करता है।[3] पुर आगमन पर विजयी बलि का शुक्राचार्य एव प्रजा द्वारा भव्य अभिनन्दन किया जाता है। शुक्राचार्य[4] और पिता[5] से, उसे आशीर्वाद प्राप्त होता है।

बलि वीर सेनानी की भाति बलिदानी भी था। इन्द्रासन का अधिकारी बनने के लिये उसने सौवा अश्वमेघ यज्ञ किया था। बाणासुर अश्व को लेकर चला ही था कि रावणपुत्र अक्षयकुमार ने अश्व को पकड लिया और मेघनाद युद्ध के लिय प्रस्तुत हो गया। सायकाल का समय होने के कारण युद्ध स्थगित हुआ। उधर अदिति के पुत्र वावन जो विष्णु के अवतार थे, वटु का वेष,बना कर बलि की यज्ञशाला मे तीन पग पृथ्वी का दान लेने पहुँचे। शुक्राचार्य के समझाने पर भी बलि ने तीन पग पृथ्वी देना अस्वीकार नही किया। बावन ने दो पग मे ही

१ दैत्यवश, द्वितीय सर्ग, पृ० २६
२ वही, तृतीय सर्ग, पृ० ३२
३ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ९९
४. वही, अष्टम सर्ग, पृ० १२४
५ वही, वही, पृ० १३०

आकाश-पाताल और पृथ्वी को नाप लिया। तृतीय पग के लिये बलि ने अपना शरीर अर्पित कर दिया और हिमगिरि के समान उच्च और दर्पित शीश को झुका दिया। उसकी दानशीलता की आज तक प्रशंसा की जाती है।

इस प्रकार बलि के चरित्र मे हमे अनेक दिव्य गुण मिलते हैं। वह प्रजापालक, कुशल प्रशासक, शिवपूजक, गुरु भक्त, पिता का आज्ञाकारी, योद्धा पराक्रमी, दानी और नीतिज्ञ था। बलि के चरित्र का विकास बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ है। दैत्य कुल में उत्पन्न होकर भी बलि का व्यक्तित्व उन महान गुणों से युक्त है जो उसके चरित्र को महाकाव्य के नायकत्व की गरिमा से मण्डित करते हैं।

बाणासुर—बलि के पश्चात बाणासुर दैत्यवंश का उल्लेखनीय नायक है। बाणासुर जब विश्व विजयी होकर लौटता है तो नगर को उजड़ा हुआ पाकर आश्चर्य करता है। जब उसे माता और गुरु से वामन के छल का पता लगता है तो वह आक्रमण करके सोनपुर नगर बसाता है जहां सभी दैत्य रहने लगते हैं। बाण के उषा नाम की असाधारण सुन्दर कन्या हुई, जिसका श्री कृष्ण-पुत्र अनिरुद्ध से विवाह हुआ।

पिता के समान बाण भी महान पराक्रमी और साहसी था। उसने अपनी शक्ति और साहस के बल पर ही अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध मे दिग्विजय यात्रा की और विजयी हुआ। बाण न्यायप्रिय था। युद्ध मे षडानन को पराजित करने के उपरान्त भी वह उसके घर जाकर प्रेमपूर्वक मिला। अन्त मे बाणासुर ने अपने पुत्र अस्कन्द कुमार को राज्य सौंप कर कठोर तप करते हुए शिव लोक गमन किया अपने जीवन के अन्तिम काल मे तप और साधना की प्रवृत्ति बाणासुर के चरित्र की उच्चता को प्रमाणित करती है, क्योंकि यह तपश्चर्या बाण ने किसी भौतिक सुख की प्राप्ति के लिये नही की, जैसा कि प्रायः दैत्य और राक्षस किया करते थे। उसकी साधना शुद्ध और सात्विक थी। कठोर साधना के पश्चात् उसे शिवत्व की प्राप्ति हुई :—

"यो तनु जोग की आगि मे जारि,
गयो शिव धाम बनो हर मेखी।"[1]

अस्कन्द—दैत्यवश के राजाओ मे अस्कन्द का चरित्र भी महत्वपूर्ण है। अनेक पूर्वजो की भांति स्कन्द भी न्यायप्रिय, प्रजाहित रक्षक, वीर हुआ।

---

१. दैत्यवंश, सप्तदश सर्ग, पृ० २५१

प्रजाहित के लिये उसने राज्य का भार मंत्रियों को सौंपकर नगरो एवं ग्रामों का भ्रमण किया[1] पशुओं और बीजो का वितरण किया तथा कृषि की उन्नति का भरसक प्रयास किया :—

'खेती सारे ग्राम की, सब निरख्यो नर नाह।
कृषिकन की दु:ख सुख सुन्यो मन मे अमित उछाह।।'[2]

वन मार्ग मे सिंह और वराह के वध मे नृप के महान कौशल का भी परिचय मिलता है।[3]

अस्कन्द ने गुरुकुलो, यज्ञशालाओ, राजमार्गों, वन-वीथियों, समाज के व्यवसायी, कृषक एव अन्य वर्गों के कार्यों का पर्यवेक्षण किया। वह शिव का भी उपासक था। इस प्रकार अस्कन्द के चरित्र मे एक सफल नरेश के सभी गुण दिखाई देते हैं।

स्त्री पात्रो में यद्यपि दिति, दैत्य राजाओं की पत्नियां, शचि, सिन्धु, उषा चित्ररेखा आदि के नाम यथाप्रसंग आये हैं किन्तु उल्लेखनीय चरित्र केवल उषा का है।

उषा-उषा बाण की पुत्री है। वह असाधारण सुन्दरी है। त्रयोदश सर्ग में वह एक भोली भाली बालिका रुप मे मिलती है, जो अंकों और अक्षरों का ज्ञान कर रही है।[4] कवि ने उषा के बाल स्वभाव का सुन्दर वर्णन किया है। वह समय बीतने पर गुरुपत्नी का शासन स्वीकार करती है। षोड़सी होने पर उसके सौन्दर्य का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :—

'अंजन रंजन कीन्हो नही, चल काजर रेख लगी दरसै लागी।
बाल के आनन सौं मुसकानि सुधा घनसार घनि बरसै लागी।[5]

उसने चौदह कलाओ को अच्छी तरह सीखा। संगीत मे दक्षता प्राप्त की। एक दिन स्वप्न मे उसने कल्पित प्रिय को देखकर सखी चित्ररेखा से उसे प्राप्त

१. दैत्यवंश, अष्टादश सर्ग, पृ० २५२
२. वही, पृ० २५५
३. वही, अष्टादश सर्ग, पृ० २६०
४. वही, त्रयोदश सर्ग, पृ० १९६
५. वही, वही, पृ० १९६

करने को कहा । चित्ररेखा ने मन्त्रबल से अनिरुद्ध को द्वारिका बुला लिया । जहा वे दोनो प्रेम विहार करने लगे । अन्तत. विधिपूर्वक उषा का अनिरुद्ध के साथ विवाह सम्पन्न होता है ।[१]

उषा के चरित्र मे जहा राजकन्याओ का सा स्वभाव, चातुर्य एव विलास व्यजित हुआ है, वही उसके चरित्र का एक सबसे बडा दोष यह है कि उसने अविवाहित कुमारी होते हुए भी अनिरुद्ध का अपहरण कराकर प्रेम किया । यद्यपि अपहरण के लिये वैसे चित्ररेखा ही अधिक दोषी है ।

मूल्याकन

'दैत्यवश' के चरित्र–विधान मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है । दैत्य कहे जाने वाले पात्रो के चरित्र मे जिन मानवोचित गुणो का विकास कवि ने दिखाया है, वह सराहनीय है । एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि दैत्यो के चरित्र निरूपण मे कवि ने क्रातिकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया है । राक्षसो और दैत्यो को महाकाव्य के नायकत्व पद पर आसीन करना निश्चय ही प्रशसनीय है । वर्त्तमान युग की मान्यताओ और आदर्शों की दृष्टि से भी यह बडा आवश्यक है कि इतिहास-पुराण के तिरस्कृत, कलकित एव उपेक्षित पात्रों का पुनर्मूल्याकन प्रस्तुत किया जाय । 'दैत्यवश' के कवि ने इस कार्य को बडी सफलता के साथ किया । दैत्य नरेशो का चरित्र अकित करते समय वह भावुक और पूर्वाग्रही नही है, वरन् चरित्र विश्लेषण मे उसकी दृष्टि बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी रही है । 'दैत्यवश' के पात्रो मे बलि का चरित्र मानवता के महान आदर्शों पर प्रतिष्ठित है । उसकी दानवीरता भारतीय इतिहास के पृष्ठो पर स्वर्णाक्षरो से अकित करने योग्य है । दैत्यकुल मे उत्पन्न होकर भी बलि ने जिस न्यायप्रियता और दानवीरता का परिचय दिया है तथा प्रवाहित किया है, उसके कारण हिन्दी महाकाव्यों मे महत्वपूर्ण नायक के रूप मे उल्लेखनीय रहेगा ।

रश्मि थी

'रश्मिरथी' चरित्र प्रधान महाकाव्य है, जिसकी रचना का मुख्य उद्देश्य महाभारत के महान तेजस्वी पात्र कर्ण के चरित्र का नवीन मूल्यांकन करना है । कर्ण के चरित्र को कवि ने मानवतावादी दृष्टि मे निरूपित किया है । दिनकर जी के शब्दों मे "कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह मे नयी मानवता की स्थापना का

---

१. दैत्यवश, षोडश सर्ग, पृ० २३६ ।

प्रयास है।'[1] कर्ण के अतिरिक्त काव्य मे अर्जुन, कृष्ण और परशुराम के चरित्र पुरुष-पात्रो मे तथा कुन्ती का स्त्री पात्रो मे उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इन्द्र, भीष्म, धर्मराज, युधिष्ठिर और दुर्योधन आदि के चरित्र अपेक्षाकृत गौण हैं। इन पात्रो की रचना कथा-प्रवाह को गति प्रदान करने और मुख्य पात्र के चरित्र को विकसित करने की दृष्टि से हुई है।

प्रमुख पात्र

कर्ण–कर्ण प्रस्तुत काव्य का नायक है। उसके चरित्र मे गुरु भक्ति, आदर्श-मैत्री, वीरता, महान त्याग और दानशीलता आदि उदात्त गुणो की सुन्दर व्यजना हुई है। महाभारत के पात्रो मे कर्ण अकेला पात्र है जो अपने पुरुषार्थ और पराक्रम के बल पर यशस्वी बनता है। कर्ण की महानता सस्कार जन्य, सद्वशीय अथवा राजपुत्र होने के कारण नही, वरन् त्याग, पुरुषार्थ एव दानशीलता आदि मानवीय गुणो के कारण भी है। कर्ण का काव्य मे सर्वप्रथम प्रवेश उस रगभूमि मे होता है जहां अर्जुन अपनी धनुर्विद्या के प्रदर्शन द्वारा जन समूह को प्रभावित करके अपनी जय-जय कार सुनता है। उसी अवसर पर कर्ण आगे बढकर अपने शौर्य तथा पराक्रम का अद्भुत परिचय देता है। वह अर्जुन को द्वन्द्व युद्ध के लिये भी ललकारता है। किन्तु कृपाचार्य के नाम, कुल, जाति आदि पूछने पर कर्ण वीरोचित स्वाभिमान के साथ उत्तर देता है कि—

'पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि-समान दीपित ललाट से, और कवच कुण्डल से।
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमे तेज-प्रकाश,
मेरे रोम-रोम मे अकित है मेरा इतिहास।'[2]

कर्ण के इस उत्तर मे उसके चरित्र की दृढता और व्यक्तित्व की गरिमा का परिचय मिलता है। कर्ण जातिवाद की कटु निन्दा करता है और उसे केवल पाखडियो की पूजी मानता है। कर्ण के साहस को देखकर दुर्योधन अगदेश का मुकुट उसके सिर पर रखकर अधिपति बना देता है। दुर्योधन के इस स्नेह को देखकर कर्ण का हृदय द्रवित हो जाता है और वह इस उपकार का बदला प्राणो की बाजी लगाकर चुकाता है। तृतीय और पचम सर्गो मे क्रमश कृष्ण और कुन्ती जन्म की बात बताकर उसे पांडवों से मिल जाने को कहते हैं, पर कर्ण अपने वचन पर दृढ़ रहता है और स्पष्ट कहता है कि उसका रोम रोम दुर्योधन

---

१ रश्मिरथी, भूमिका, पृ० ध
२ रश्मिरथी, प्रथम सर्ग, पृ० ५

के प्रति ऋणी है।[1] वह सच्चे मित्र की भांति दुर्योधन के लिये सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार है—

'मित्रता बडा अनमोल रतन,
कब इसे तोल सकता है धन?
धरती की तो क्या बिसात?
आ जाय अगर बैकुण्ठ हाथ,
उसको भी न्योछावर करदूं,
कुरुपति के चरणो पर धर दूं।'[2]

कुन्ती को भी वह उसी प्रकार उत्तर देता है—

'दे छोड भले ही कभी कृष्ण अर्जुन को,
मैं नही छोडने वाला दुर्योधन को।
कुरुपति का मेरे रोम रोम पर ऋण है,
आसान न होना उससे कभी उऋण है।'[3]

कर्ण के चरित्र की तीसरी विशेषता दानवीरता है, जिसका परिचय काव्य के चतुर्थ सर्ग मे मिलता है। सूर्य की उपासना करते समय इन्द्र छद्मवेश मे आकर कर्ण से कवच और कुण्डल माग लेता है। कर्ण एक सच्चे दानवीर की भांति अपने शरीर के जन्मजात कवच और कुण्डलो को काट कर इन्द्र को दे देते हैं। उन्हें इसी में गौरव है, क्योंकि—

'धन्य हमारा सुयश आपको खींच मही पर लाया,
स्वर्ग भीख मागने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।'[4]

दानी कर्ण की महिमा सुन कर कुन्ती भी अपने पुत्रो का जीवनदान मागने उसके पास जाती है। कर्ण उसे भी अर्जुन को छोड शेष चार पाडव पुत्रो का जीवन-दान देकर सन्तुष्ट करता है।

कर्ण की गुरु भक्ति का परिचय उस समय तब मिलता है, जब वह युद्ध विद्या की शिक्षा ग्रहण करने ब्राह्मण कुमार बन कर परशुराम के पास जाता है, जहां एक दिन परशुराम उसकी जंघा पर सिर रखकर शयन कर रहे होते हैं

---

१. रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, पृ० ४०
२. वही, तृतीय सर्ग, पृ० ५१
३. वही , पचम सर्ग, पृ० ९९
४. वही , चतुर्थ सर्ग, पृ० ६९

और उसी समय एक विष कीट के काटने पर जघा मे से रक्त प्रवाहित होने लगता है पर गुरु की निद्रा भग न हो, वह इस असह्य वेदना को सहता रहता है।[1] इस घटना के कारण कर्ण परशुराम का कोप–भाजन बनकर भी विश्व मे महान कहलाने का वरदान प्राप्त करता है—

'अच्छा, लो वर भी कि विश्व मे तुम महान कहलाओगे,
भारत का इतिहास कीर्ति से और धवल कर जाओगे।'[2]

कर्ण का वीरत्व रूप हम प्रथम और अन्तिम दो सर्गों मे पाते हैं। कर्ण के अद्भुत पराक्रम से पाडव सेना त्रस्त हो जाती है, युद्ध मे हाहाकार मच जाता है।[3] कृष्ण भी कर्ण के पौरुष और पराक्रम की मुक्तकठ से प्रशसा करते हैं।[4] अन्तत अर्जुन अधर्म और अनीतिपूर्वक निशस्त्रावस्था मे कर्ण का वध करता है।

इस प्रकार 'रश्मिरथी' के कर्ण का चरित्र महान मानवीय गुणो का सघात दिखाई देता है। युधिष्ठिर भी मानता है कि विजय तो सौभाग्य से ही प्राप्त हुई है। यदि कर्ण की मृत्यु नही होती तो न जाने समर मे क्या होता ?[5] कर्ण के गुणो की प्रशसा करते हुए अन्त मे कृष्ण ने यह कहा :—

'मगर, जो हो, मनुज सुवरिष्ठ था वह,
धनुर्धर ही नही, धर्मिष्ठ था वह,
तपस्वी, सत्यवादी था, व्रती था,
बडा ब्रह्मण्य था, मन से यती था।
+ +
बडा बेजोड दानी था, सदय था,
युधिष्ठिर ! कर्ण का अद्भुत हृदय था।
+ +
जगत के हेतु ही सर्वस्व खोकर,
मरा वह आज रण मे नि स्व होकर।[6]

---

१ रश्मिरथी, द्वितीय सर्ग, पृ० १८
२. वही, पृ० २४
३ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० १५०
४ वही, सप्तम सग, पृ०१८३–१८४
५ वही, सप्तम सर्ग, पृ० २००–२०१
६ वही, पृ० २०२

और कर्ण का सम्मान द्रोण और पितामह की तरह करना चाहिये, क्योंकि-

'मनुजता का नया नेता उठा है,
जगत से ज्योति का जेता उठा है ।'[1]

कर्ण में जहां वीरत्व और पुरुषार्थ है, वहीं वह भाग्यवादी भी है । इन्द्र को कवच-कुण्डल देने के बाद वह कहता है कि—

'सबको मिली स्नेह की छाया, नई-नई सुविधाएं,
नियति भेजती रही सदा पर, मेरे हित विपदाएं ।'[2]

घटोत्कच के वध के समय वह अपने ही भाग्य को कोसता है—

'मन ही मन बोला कर्ण, पार्थ !
तू वय का बड़ा बली निकला ।
या यह कि आज फिर एक बार
मेरा भाग्य ही छली निकला ।'[3]

कर्ण के चरित्र मे भाग्यवाद की प्रवंचना एक असंगति सी लगती है, पर भाग्य पर लांछना पूर्ण शब्द कर्ण के मुंह से विशेष परिस्थितियों मे ही निकले हैं । इसी कारण उसका चरित्र सहज मानवीय है । श्री आनन्दकुमार ने अपने प्रबंध काव्य 'अंगराज' में कर्ण के चरित्र को आदर्शवादी ढङ्ग से प्रस्तुत किया है । पर 'रश्मिरथी' के कर्ण का चरित्र आदर्श और यथार्थ की समन्वित भूमिका पर प्रतिष्ठित है । दिनकर कर्ण के चरित्र की उस महार्घता को उद्घाटित करने में सफल रहे हैं, जिसके कारण कर्ण का चरित्र महाकाव्य का विषय बन सका है ।

कुन्ती—'रश्मिरथी' के स्त्री पात्रों मे केवल कुन्ती का चरित्र ही उल्लेखनीय है । कवि दिनकर कर्ण-चरित्र के पौरुष और पराक्रम का प्रदर्शन करने मे इतने अधिक तल्लीन रहे कि उसके गृहस्थ जीवन का चित्र-अंकित करने के लिये, कर्ण की पत्नी के रूप में किसी नायिका की कल्पना भी नहीं की है । 'महाभारत' के ऐतिहासिक कथानक मे भी कर्ण के गृहस्थ जीवन का कोई चित्र अंकित नहीं किया गया है । 'रश्मिरथी' का प्रणेता चाहता, तो इस प्रकार की कल्पना कर सकता था, किन्तु उसने कथाकाव्य के ऐतिहासिक महत्व को कम करना उचित नहं

---

१. रश्मिरथी, वही, पृ० २०३
२. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७२
३. वही, षष्ठ सर्ग, पृ० १४८

समझा। नारी चित्रण की दृष्टि से कुन्ती ही हमारे समक्ष आती है, जिसके चरित्र मे एक विवश माता की करुणा और अन्तर्व्यथा को व्यक्त करने का कवि ने प्रयास किया है।

कुन्ती एक मा है, जिसका पूर्ण मातृत्व काव्य के पचम सर्ग में चित्रित किया गया गया है, जब कि वह छिपकर कर्ण के पास आकर उसके जन्म की सारी घटना बताती है कि अपने कुमारी जीवन मे ही सूर्य के प्रसाद से कर्ण का जन्म हुआ था। यह सामाजिक दृष्टि से एक भयकर अपराध था और वही कुन्ती के लिये अभिशाप बन गया। कुन्ती ने वज्र की छाती बनाकर अपने पुत्र को काष्ठ मंजूषा मे रखकर नदी की धारा मे प्रवाहित कर दिया था, जिसका सूत-पत्नी राधा ने पालन-पोषण किया; इसलिये कर्ण 'सूतपुत्र और राधेय' कहलाया था। वस्तुत कर्ण कौन्तेय था। कुन्ती के जीवन मे इस घटना के कारण मानसिक अशाति और सघर्ष था, किन्तु अपनी विवशता किसके समक्ष व्यक्त करती? क्योंकि—

'बेटा धरती पर बडी दीन है नारी,
अबला होती सचमुच योषिता कुमारी।
है कठिन बन्द करना समाज के मुख को,
सिर उठा न पा सकती पतिता निज सुख को।'[1]

महाभारत युद्ध मे अपनी ही कोख से उत्पन्न पुत्रो मे युद्ध देखकर उसका नारी हृदय समाज से विद्रोह करने को प्रस्तुत हो जाता है:—

'उस जड समाज के सिर पर कदम धरूंगी,
डर चुकी बहुत, अब और न अधिक डरूंगी।'[2]

कुन्ती नही चाहती कि पाचो पाडवो का अग्रज कर्ण अपने ही पाचो अनुजो का सहार करे, पर कुन्ती की दीनता और करुण भावना कर्ण को कर्त्तव्य पथ से विचलित नही कर सकती। कुन्ती की दशा बडी विचित्र थी.—

'क्या कहे और यह सोच नही पाती थी,
कुन्ती दुरसा से दीन मरी जाती थी।'[3]

और अन्त मे वह अपने को पापिनी और सापिनी तक कहने लगती है.—

१. रश्मिरथी, पंचम सर्ग, पृ० ८६
२. वही, पृ० ८७
३. वही, १००

'बेटा ! सचमुच ही, बडी पापिनी हूँ मैं,
मानवी-रूप में विकट साँपिनी हूँ मैं।'[1]

पश्चाताप की अग्नि में जलकर उसका हृदय कर्ण-जन्म के समय जितना कठोर था, वह अब उतना ही पवित्र एवं कोमल बन जाता है। कुन्ती का मातृत्व उमड़ पड़ता है और वह कर्ण को छाती से लगा लेती है। कुन्ती की अब एक ही कामना शेष है कि संसार कर्ण को कुन्ती-पुत्र के रूप में पहचाने। कुन्ती के मातृत्व की विजय होती है, कर्ण पैरों पर गिर जाता है और अर्जुन के अतिरिक्त चारों पाडवो पुत्रो के जीवन का हरण नही करने का प्रण करता है।

इस प्रकार "रश्मिरथी" में कुन्ती के चरित्र का स्वतंत्र अस्तित्व है। यद्यपि कथा-विकास के क्रम में उसे काव्य में अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाया है, तथापि मातृत्व का आदर्श स्थापन करने मे कुन्ती 'रश्मिरथी' का महत्व पूर्ण चरित्र है।

अन्य पात्र

परशुराम एक आदर्श गुरु हैं। उनका बाह्य रूप जितना कठोर, उग्र और तेजस्विता से परिपूर्ण है, वहा मानस नवनीत के समान कोमल और दयार्द्र है। कवि के शब्दो मे-

'कहता है इतिहास, जगत में हुआ एक ही नर ऐसा
रण में कुटिल काल-सम क्रोधी तप में महा सूर्य जैसा।
मुख मे वेद, पीठ पर तरकस, कर मे कठिन कुठार विमल
शाप और शर, दोनो ही थे, जिस महान् ऋषि के सम्बल।'[2]

यह ज्ञात हो जाने पर कि कर्ण सूतपुत्र है, वे उसे ब्रह्मास्त्र विद्या भूल जाने का शाप देते है, किन्तु तुरन्त ही उन्हे अपने निर्णय पर खेद होता है और वे एक विचित्र संघर्ष की स्थिति मे पड़ जाते हैं। यहा उनके चरित्र मे स्वभाविक अन्तर्द्वन्द्व की योजना हुई:-

---

१. रश्मिरथी, पंचम सर्ग, पृ० १०१
२. वही, द्वितीय ,, पृ० १२

'आह, बुद्धि कहती कि ठीक था, जो कुछ किया, परन्तु हृदय
मुभसे कर विद्रोह तुम्हारी मना रहा, जाने क्यो, जय ?
अनायास गुण, शील तुम्हारे, मन मे उगते आते हैं,
भीतर किसी अश्रु-गगा मे मुझे बोर नहलाते है।'[1]

और परशुराम ने शापित कर्ण को भी विश्व मे महान् कहलाने का वरदान दिया। भारत का इतिहास उसकी कीर्ति से धवल होगा।[2] अर्जुन को कवि ने कर्ण के प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे चित्रित किया है। प्रथम और अन्तिम सर्गो मे हम उसकी धनुर्विद्या और युद्ध कौशल को देखते हैं पर उसका चरित्र अशक्त एव निस्तेज है। कृष्ण को कवि ने कुशल राजनीतिज्ञ रूप मे अकित किया है। महाभारत के युद्ध को कूटनीतिज्ञ दृष्टि से परिचालित कराने और पाण्डवो को जयी बनाने मे उनका महत्वपूर्ण योगदान है। स्वयं कर्ण एक स्थान पर उनके लिये कहते हैं कि–

"स्वय भगवान मेरे शत्रु को ले चल रहे हैं,
अनेको भाति से गोविन्द मुझको छल रहे हैं।'[3]

विरोधी होते हुए भी कृष्ण युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर से कर्ण की मुक्त कठ से प्रशसा करते हैं।[4]

इस प्रकार 'रश्मिरथी' काव्य के चरित्र-विश्लेषण में कर्ण और कुन्ती के चरित्र ही कवि की चरित्र-कल्पना के उत्कृष्ट प्रतीक हैं। कर्ण के चरित्र को कवि ने मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर निरूपित किया है अतः उसमे युगानुरूपता और मौलिकता है।

ऊर्म्मिला

श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन रचित 'उर्मिला' महाकाव्य एक चरित्र-प्रधान रचना है। क्योकि इस काव्य का मुख्य उद्देश्य उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र को पूर्ण-रूपेण प्रकाशित करना है। रामकथा पर आधृत होने के कारण इस काव्य मे आवश्यक पात्रो का चरित्र ही उभरा है। शेष पात्रो का या तो पृष्ठभूमि के रूप में वर्णन हुआ है या उल्लेख मात्र।

---

१. रश्मिरथी, द्वितीय सर्ग, पृ० २४
२. वही , पृ० २४
३. वही , सप्तम सर्ग, पृ० १५६
४. वही , पृ० २०२

'उर्मिला' महाकाव्य के प्रमुख पात्रो मे उर्मिला, लक्ष्मण और राम-सीता है। गौण पात्रो मे सुमित्रा, शान्ता, जनक-पत्नी, जनक, शत्रुघ्न, सुग्रीव एव विभीषण आदि है। अन्य पात्रो मे कैकेयी, कौशल्या, रावण, भरत, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति आदि का केवल उल्लेख मात्र हुआ है।

नायकत्व

'उर्मिला', 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' की भाति नायिका प्रधान महाकाव्य है। इस काव्य में नायकत्व का पद ऊर्मिला को प्राप्त हुआ है। ऊर्मिला के चरित्र का इतनी प्रमुखता एव स्पष्टता से प्रतिपादन हुआ है कि नायकत्व के सम्बन्ध मे कोई भ्राति उत्पन्न नही होती। ऊर्मिला-पति लक्ष्मण इस काव्य के नायक हैं। अपने चारित्रिक अस्तित्व की सार्थकता के लिये लक्ष्मण यहा पर्याप्त सक्रिय, साधनारत एव मुखर चित्रित किये गये हैं। 'साकेत' के लक्ष्मण की तरह वे राम के अनुयायी एव मात्र परोपजीवी पात्र नही हैं। सम्पूर्ण काव्य मे ऊर्मिला-लक्ष्मण की ही कथा प्रमुख है। अन्य पात्र इन्ही के चरित्र-विकास मे सहायक हुए हैं।

ऊर्मिला–रामकाव्यो की परपरा मे श्री नवीन की उर्मिला सर्वथा नूतन चरित्र सृष्टि है। इस काव्य मे प्रथम बार उर्मिला का स्वभाविक गति से स्वतत्र और पूर्ण चरित्र-विकास हुआ है।

काव्यारम्भ उर्मिला की बाल्यावस्था की घटनाओ से होता है। बालिका उर्मिला चचल स्वभाव एव विनोदप्रिय प्रकृति की है। बहन सीता के साथ उपवन मे खेलते कूदते एव कहानी सुनने-सुनाने मे वह आनन्दित दिखाई देती है। कपोत-कपोती की जो कहानी उर्मिला सीता को सुनाती है उसमे उर्मिला के भावी जीवन का प्रत्यक्ष आभास मिल जाता है। जनक पत्नी बाल्यावस्था मे ही अपनी दोनो पुत्रियो को पतिव्रत धर्म की सुन्दर शिक्षा देती है। उर्मिला के चरित्र निर्माण मे उसकी माता के स्नेह एव शिक्षाओ का विशेष महत्त्व है।

विवाहोपरान्त पतिगृह मे उर्मिला को हम गुणशालिनी राजवधू के रूप मे पाते हैं, जिसका विनम्र व्यवहार, रूप सौन्दर्य, वाक्चातुर्य, मधुर हास–परिहास, एव लज्जाशील स्वभाव सहज मे ही पाठको को आकर्षित कर लेते हैं। अयोध्या की ललनाए, राजमाताए और ननद शान्ता सभी मुक्त कठ से उर्मिला की प्रशसा करती हैं।[1] लक्ष्मण और उर्मिला का पारस्परिक प्रेम एक दूसरे को पूर्णता की ओर अग्रसर करता है। इस युगल का प्रेम शुद्ध, सात्विक और आत्मिक

---

१. ऊर्म्मिला, द्वितीय सर्ग, पृ० ८५

है। उसमें कहीं उच्छृंखल विलासिता और पार्थिवता की दुर्गन्ध नहीं है। तभी तो संयोग की अपूर्व वेला में उर्मिला लक्ष्मण से पूछती है कि—

" प्रेम के शुद्ध रूप कहो—सम्मिलन है प्रधान या गौण ?
कौन ऊंचा है ? भावोद्रेक ? या कि नत आत्म-निवेदन मौन ?" [1]

लक्ष्मण ने बड़े सुन्दर ढंग से उर्मिला की जिज्ञासा को शान्त करते हुए कहा कि प्रेम के शुद्ध रूप में पार्थिवता की चाह या कटु वियोग का दाह कहां हैं ? वहां तो ऐसा चिरकालीन मिलाप है जिसमें प्रेम-प्रेमी और प्रियतम सबका लोप होकर भेदभाव मिट जाता है। और—

"इसी आदर्श प्राप्ति के लिये—
उर्मिले, मुझ में तुम आ मिली
प्रेम की मृदु पूजा के हेतु ,
कली—सी तुम हिय में खिली ;"[2]

उर्मिला चिंतनशील एवं चित्रकला प्रवीण है। अपनी गुण गरिमा के कारण वह राज्य परिवार के सभी सदस्यों का सहज स्नेह प्राप्त करने में सफल होती है। लेकिन उर्मिला के संयोग सुख का क्रम एकदम रुक जाता है। राम—सीता के साथ लक्ष्मण का वनगमन उसके जीवन की दोपहरी में सन्ध्या का आभास दे देता है। उर्मिला के स्नेह-सागर में वियोग की ज्वाला भड़क उठती है, जिसके परिणाम स्वरूप—

"तड़फे प्राण—मीन, अकुलाए—
हिय—मन्थर, मन मथित हुआ ;
प्यार—प्रशान्त—महासागर का
विकल—विचल जल व्यथित हुआ;[3]
+ + +
शब्द दीनता, रूद्ध कण्ठ ध्वनि ,
हिचकी सिसक निराशा की ,

---

१. ऊर्म्मिला पृ० १३५
२. वही, द्वितीय सर्ग, पृ० १४०
३. वही , तृतीय सर्ग, पृ० १७७

कल कण्ठो मे ये भर आई ;
लिए पीर गत आशा की ;[1]

लेकिन फिर भी वह पति को वन जाने से रोकती नही:—

'आग लगा, सुख-बाग जलाए-
राग सुहाग लुटाते से ,
मेरे प्रिय, तुम विपिन पधारो,
ममता मोह छुटाते-से ।'[2]

इसी अवसर पर वह अपने विवेक और वीरत्व से दशरथ के निर्णय की भी तर्क पूर्ण आलोचना करती है:—

कह दो आज पिता दशरथ से
कि यह अधर्म नही होगा ,
कह दो, लक्ष्मण के रहते यह
यह घोर कुकर्म नही होगा ;
राज नही कैकेयी का यह ,
दशरथ का न स्वराज्य यहा ,
जन-गण-मन-रंजन कर्त्ता ही
होता है अधिराज यहा ।'[3]

उर्मिला के इसी कथन से मिलते-जुलते भाव 'साकेत' मे लक्ष्मण ने भी व्यक्त किये हैं। उर्मिला विवेकशील एवं पतिपरायणा नारी होने के नाते पति के परामर्श को मानकर उन्हें वन-गमन की अनुमति देकर त्याग और भाव-समर्पण का आदर्श प्रस्तुत करती है ।

चतुर्थ और पचम सर्ग मे उर्मिला के विरह की मार्मिक दशाओ का अनूठा चित्रण है । लक्ष्मण के वियोग मे उसका प्रेम निखरता है । चौदह वर्षो की दीर्घावधि मे वह अपने प्रिय के साथ विताये गये जीवन की मधुर स्मृतियो को संजोये पुनर्मिलन-बेला की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करती है । वियोग की यह स्थिति उर्मिला को उच्चतम त्यागमयी भूमिका प्रदान करती है । कवि लक्ष्मण-उर्मिला के पुनर्मिलन

---

१. ऊर्म्मिला, तृतीय सर्ग, पृ० १८२
२. वही, पृ० २३५
३. वही, पृ० २४४

का दृश्य तक अंकित नही कर पाता है, क्योकि 'यह मिलन नही, पूर्ण आत्म दर्शन है, और कवि के शब्दो मे "कल्पने असभव है दिखलाना हिय का स्पदन।" उर्मिला के उत्सर्ग पूर्ण जीवन की राम भी भूरि भूरि प्रशसा करते हैं।[1] सीता एव अन्य पात्रो ने भी उर्मिला के स्वभाव, शील एव त्याग की सराहना की है।

इस प्रकार 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे उर्मिला के चरित्र को अत्यन्त व्यापक फलक पर प्रस्तुत किया गया है। उसके बालिका, कुलवधू एव विरहिणी तीनो रूपो का अकन करने मे कवि को पूर्ण सफलता मिली है। उर्मिला के चरित्र-निर्माण मे नवीन जी ने साकेतकार से प्रभावित होकर भी नवीनता और मौलिकता का परिचय दिया है।

लक्ष्मण—लक्ष्मण धीरोदात्त नायक है। वे आदर्श पति, कर्तव्यनिष्ठ पुत्र, आज्ञाकारी भाई एव तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले रामभक्त के रूप मे इस काव्य मे प्रस्तुत किये गये है।

सर्व प्रथम हम लक्ष्मण को उर्मिला-पति के रूप मे पाते हैं। उनका जीवन दाम्पत्य स्नेह की पीयूष धारा से आर्द्र है। उर्मिला को पाकर वे धन्य है। द्वितीय सर्ग मे उनका सौन्दर्य प्रेमी रूप अकित है। लक्ष्मण के इस रूप मे कही कही रोमास वादी भावनाए भी दिखाई देती है, किन्तु उर्मिला के पूछने पर प्रेम के जिस स्वरूप का विश्लेषण वे करते हैं, उसमे कवि का दृष्टिकोण दिखाई देता है। लक्ष्मण का प्रेम विलासिता की सीमा का सस्पर्श नही कर पाता। उसमे अनुराग की वेगपूर्ण स्नेह सलिला ही प्रवाहित रहती है। उनका स्नेह मज कर सत्य, शिव, सुन्दरम् का अनूप रूप ग्रहण कर लेता है।[2] उर्मिला के ससर्ग से लक्ष्मण विदेह-अनग हो गये जिनकी कल्पना-सुरति उर्मिला हो गई। यही नही लक्ष्मण उर्मिलामय और उर्मिला सौमित्र रूप होजाती है—

'हुए यति-गति-रति-मति-पति लखन,
बनी अति गति-मति-यति उर्मिला ;
बन गये लखन विदेह अनत —
बनी कल्पना सुरति ऊर्म्मिला।
+ + +

---

१ ऊर्म्मिला, तृतीय सर्ग, पृ० २७८
२. ऊर्म्मिला, द्वितीय सर्ग, पृ० १५२

ऊर्म्मिला–लक्ष्मण मय हो गई —
हुए ऊर्मिला–रूप सौमित्र ।[1]

लक्ष्मण, ऊर्म्मिला को समझा–बुझाकर वन–गमन की अनुमति प्राप्त करके जाने को उद्यत होते हैं । 'साकेत' के लक्ष्मण की भांति ये चुपचाप राम के अनुयायी बनकर वन को नही जाते । उनकी वनयात्रा का उद्देश्य आर्य संस्कृति और धर्म का प्रसार करना है । उनकी दृष्टि मे प्रेम से कर्त्तव्य ऊंचा है, तभी तो प्राण-प्रिया को छोडकर चौदह वर्षों के लिये निर्जन वन को वे प्रस्थान करते हैं। यहा कवि ने लक्ष्मण के मस्तिष्क मे प्रेम और कर्त्तव्य के द्वन्द्व का सच्चा एव सजीव चित्र अंकित किया है । वन मे उर्मिला की स्मृति लक्ष्मण के हृदयपटल पर अंकित है, फिर भी वे विरह वेदना से विदग्ध एव भ्रांत नही हैं । उनकी धारणा है:—

'नही ऊर्म्मिला हैं अब मेरी',
वह मे एक स्वरूप हुआ ,
+ + + +
सीता–राम, ऊर्म्मिला–लक्ष्मण ,
एक रूप बन गये सभी ।'' [2]

चौदह वर्षो की अवधि के उपरान्त अवध लौटते हुए लक्ष्मण और सीता के सम्वादो मे लक्ष्मण की मानसिक वृत्तियो का सुन्दर स्वरूप देखने को मिलता है । प्रारम्भ के साधक लक्ष्मण – ऊर्मिला, प्रेम और कर्त्तव्य की साधना मे सफल होकर सिद्ध बन जाते हैं:—

'अब जब मिले, सिद्ध थे दोनो,
आरम्भिक चांचल्य न था ।'' [3]

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य मे लक्ष्मण का केवल एक प्रेमी रूप ही चित्रित नही हुआ है । [4] वे एक चिन्तक, आदर्श पति, रामभक्त तथा तपस्वी के रूप मे भी आते हैं । [5] कवि की सब से बडी सफलता यह है कि लक्ष्मण के चरित्र के कतिपय पक्षो का स्वतन्त्र विकास दिखाने मे वह सफल रहा है । यही उसकी मौलिकता है ।

---

१. ऊर्म्मिला, पृ० १५२
२. वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ६०४
३. वही, पृ० ६१९
४ श्री जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, 'नवीन' और उनका काव्य, पृ० ११२
५ डा० लक्ष्मीनारायण दुबे बालकृष्ण शर्मा नवीन, कर्म एव काव्य पृ० ३१४

तो दूसरी ओर उन्ही के सरक्षण एव सद्शिक्षा के कारण ऊर्मिला और सीता शील-गुण सम्पन्न आर्य ललनाए बनी हैं। महाराज जनक का चरित्र परम्परागत ही है। वे करुण हृदय, चिन्तक एव वात्सल्य से परिपूर्ण हैं।

अन्य स्त्री पात्रो मे लक्ष्मण की माता सुमित्रा का चरित्र सुन्दर बन पडा है। इस काव्य मे सुमित्रा का चरित्र ऊर्मिला लक्ष्मण दोनो के पार्श्व मे विकसित हुआ है। वे मातृत्व एव वात्सल्य की प्रतिमूर्ति हैं। राम ने उन्हें निष्ठुर जग की कोमलता, स्नेह की दीपशिखा, वत्सलता, की स्रोतस्विनी, जीवन-मगलाम्बिका और 'मा' शब्द मूर्तिमती महिमा' तक कहा है।[१] 'ऊर्मिला' महाकाव्य के स्त्री पात्रो मे एक नवीन सृष्टि राम की बहिन शान्ता है। वह विनोदी स्वभाव की है। वह भाभी से व्यग्य विनोदपूर्ण वार्त्तालाप करके ऊर्मिला के गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने मे योग देती है। काव्य के अन्य पात्रो मे विभीषण, हनुमान, कैकेयी, कौशल्या, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति आदि का उल्लेख मात्र हुआ है, उनका चरित्र विकास नही हो पाया है।

समष्टि रूप मे 'ऊर्मिला' महाकाव्य की चरित्र योजना मे सबसे महत्वपूर्ण एव उल्लेखनीय लक्ष्मण ऊर्मिला का ही चरित्र है। वास्तव मे कवि का उद्देश्य भी ऊर्मिला के पुनीत चरित्र का बखान करना है[२] और कवि को इस उद्देश्य की प्राप्ति मे पूर्ण सफलता भी मिली है। अन्य पात्रो मे लक्ष्मण के अतिरिक्त अन्य किसी पात्र का चरित्र पूर्णत अकित नही हो पाया है। सम्पूर्ण काव्य के कथा विकास एव चरित्राकन मे ऊर्मिला की ही महत्ता प्रतिपादित हुई है। काव्य की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि ऊर्मिला का ही चरित्र है, जो निश्चय ही नवीन, युगीन एव मौलिक है।

एकलव्य

महाभारत के असख्य पात्रो मे निषाद पुत्र एकलव्य का चरित्र उपेक्षित प्राय है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसी पात्र का महत्व प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुत काव्य की रचना की है। कवि के शब्दो मे—' राजनीति और समाज के अन्तराल मे आचार्य द्रोण और शिष्य एकलव्य के चरित्र की व्याख्या बडी मनोवैज्ञानिक होगी, इसी विचार से मैंने इस काव्य की रचना की।"[३] एकलव्य' मे न घटना बाहुल्य है और न पात्रों की अधिकता। उसमे कथा प्रसग के अनुसार पात्र सृष्टि अल्प है किन्तु चरित्र विश्लेषण की दृष्टि महत्वपूर्ण है। 'एकलव्य' में प्रमुख चरित्र

१ ऊर्मिला, तृतीय सर्ग, पृ० ३११
२ वही, 'श्री लक्ष्मण चरणार्पणमस्तु', पृ० 'क'
३ एकलव्य, आमुख पृ० ६

केवल दो ही है—एकलव्य और आचार्य द्रोण। इनके अतिरिक्त एकलव्य के पिता निपादराज हिरण्यधनु, अर्जुन और एकलव्य जननी के चरित्र भी उल्लेखनीय हैं।

एकलव्य—एकलव्य निपादराज हिरण्यधनु का पुत्र है। उसके चरित्र मे निपाद जाति की वीरता, विनय, सेवा आदि विशेषताएं सहज रूप मे प्राप्य हैं। काव्य मे सर्वप्रथम हम उसे एक जिज्ञासु शिष्य के रूप मे पाते हैं जो गुरु द्रोण से धनुर्वेद की शिक्षा पाने को समत्सुक हैं। उसके जीवन की सबसे बडी आकांक्षा धनुर्वेद मे निपुणता प्राप्त करने की है, किन्तु निपाद-पुत्र होने के कारण राजगुरु द्रोण उसे शिष्य बनाने के लिये तैयार नही होते एकलव्य द्रोण की विवशता समझता है, अतः मन मे बिना कोई दुर्भाव पैदा किये वह निष्ठापूर्वक अपनी साधना मे लग जाता है। लेकिन वर्ग-भेद की व्यवस्था के प्रति उसके मन मे आक्रोश अवश्य है। वह शूद्र भले ही हो, परन्तु अपने गुणो के कारण द्रोण को भी आकर्षित कर लेता है। उसके विषय मे द्रोण कहते हैं :—

गुरु द्रोण चौंक उठे—यह शिष्य कैसा है ?
है तो शूद्र, किन्तु जैसे निष्कलंक द्विज है।
बालक निपाद का है, किन्तु तेजोमय है,
जैसे मणिरत्न है विशाल विषधर का।
अन्य राजपुत्रो से विशेष श्रद्धावान है,
जैसे यह अंकुर है प्रस्तर के पार्श्व मे।[1]

एकलव्य के आकर्षक व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

पारावत-पंख शीश मे विचित्र हैं कसे,
लंबा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है।
+ + +
है प्रशस्त भाल घने केश उठे भौंहो मे,
बीच मे मिले हैं जैसे कर्षित धनुष है
नासा-रेख उन्नत कपोल सौम्य, कर्णों मे
विलुलित हैं कुण्डल सुरम्य स्फटिक के।
सम्पुटित नील पद्म-जैसे बन्द नेत्र हैं,
लीन जिनमे है दिव्य मूर्ति गुरु द्रोण की।
हृष्ट-पुष्ट विग्रह है, ब्रह्मचर्य-तेज से,
कसा पीत वल्कल है, वल्लरी के रज्जु से।[2]

---

१. एकलव्य, आत्मनिवेदन सर्ग, पृ० १२५
२. वही, साधना सर्ग, पृ० १९४

एकलव्य का जीवन एकान्त साधक की साधना से परिपूर्ण है। गुरु द्रोण के मुख से 'धनुर्वेद' पवित्र शब्द सुनकर ही वह उसे दीक्षा मान लेता है और माता-पिता तथा मित्र नागदत्त के मना करने पर भी वह धनुर्म्यास की कठोर साधना करने का दृढ संकल्प कर निर्जन वन म चल देता है। भयकर परिस्थितियो के मध्य अपनी साधना के बल पर लक्ष्य प्राप्ति करने मे वह अन्तत सफल होता है। अदम्य उत्साह एव धैर्य उसके चरित्र के दो विशेष गुण हैं जिनके बल पर वह वन के सकटो का सामना करता है। गुरु द्रोण की मूर्ति उसकी प्रेरक शक्ति है। लेकिन उसकी साधना अर्जुन के लिये ईर्ष्या का कारण बनती है। एकलव्य के बाण विद्या-कौशल के सम्मुख अर्जुन हतप्रभ हो जाता है। द्रोण एव एकलव्य के लाघव की प्रशसा करते हुए कहते हैं :—

> 'किन्तु जानता हूँ धनुर्वेद, कहता हूँ मैं
> तुम सा कुशल धन्वी दूसरा नही हुआ।
> \+ \+ \+
> और तुम आज के अजेय धनुधारी हो।'[१]

महान् त्यागी एकलव्य कठोर साधना से अर्जित कौशल को क्षण भर मे ही गुरु दक्षिणा के रूप मे समर्पित कर देता है। पार्थ को धनुर्धर के रूप मे अद्वितीयता प्राप्त कराने मे गुरु के प्रण की रक्षा हेतु वह धनुष बाण को फेंक देता है[२] और दक्षिणा स्वरूप अपना दाहिना अ गुष्ठ काट कर गुरु के चरणो मे रख देता है।[३]

इस प्रकार एकलव्य त्याग और बलिदान का एक उच्च आदर्श प्रतिष्ठित करता है जिसके कारण उसका चरित्र महाकाव्य के नायक की गरिमा से युक्त हो जाता है। उसके त्याग की महिमा से प्रभावित होकर द्रोण यहा तक कह देते हैं कि—

> 'तुम विप्र हो, हे शिष्य कह गुरु द्रोण शुद्र हैं।
> हा, तुम्हारी गुरुता मे गुरु हुआ लघु है।'[४]

और अर्जुन ने भी क्षमा-याचना करते हुए कहा—

> 'क्षमा करो, गुरु-भक्ति सीखी आज तुम से।
> मैंने राजवश की अहम्–भावनाओ से।

---

१. एकलव्य, दक्षिणा सर्ग, पृ० २८७
२ वही, पृ० २९१
३ वही, पृ० २९६
४ वही, दक्षिणा सर्ग, पृ० २९६

गुरु को था हीन माना । तुमने निषाद हो,
गुरु का महत्व सिखलाया इस विश्व को ।[1]

एकलव्य गुरुभक्त होने के साथ-साथ मातृभक्त भी है। अपने आत्मबल से उसे साधना म सफलता मिलती है और वह भूमिपतियो की चुनौती का उत्तर देता हुआ कहता है —

'सावधान भूमिपति हम मे भी शक्ति है,
+ + +
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है,
आत्मबल की हमारे पास सीमा है नही ।'[2]

निष्कर्ष रूप मे एकलव्य में महाकाव्य के नायक के अधिकांश गुण विद्यमान है। वह अपने महत् गुणो के कारण ही पाठको की सहानुभूति प्राप्त करता है। प्रस्तुत महाकाव्य में 'एकलव्य के चरित्र का जितना उदात्त रूप आया है वह उसके प्रति युग युग की अटूट श्रद्धा सुरक्षित रखने वाला है।'[3] उसके चरित्र का अप्रतिम त्याग मानवता की अक्षय विभूति है।

द्रोणाचार्य—महर्षि भारद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य ने परशुराम से वेद वेदागो एव धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। परशुराम से उन्हे दिव्य अस्त्र भी मिला था। उच्चकुल मे जन्म लेकर, उच्च शिक्षा प्राप्त करके आचार्य द्रोण उच्च सस्कारो से सम्पन्न थे। कवि ने उनके व्यक्तित्व का अत्यत प्रभावशाली चित्र अकित किया है —

'श्वेत जटा, विस्तृत ललाट, कसी भौहे हैं
नेत्र हैं विशाल, रक्तवर्ण, उठी नासिका
श्वेत श्मश्रु बीच ओठ, जैसे शुभ्र अभ्रो की
ओट सध्याकाल मध्य दुर्ग का कलश है।'[4]

---

१ एकलव्य, पृ० २९७
२ वही, सकल्प सर्ग, पृ० १७७
३ डा० श्यामनन्दन किशोर—आधुनिक हिन्दी काव्यों का शिल्प विधान, पृ० २४१
४ एकलव्य, दर्शन सर्ग, पृ० १२

ऐसे तेजस्वी द्रोणाचार्य, आर्थिक अभाव के कारण राजा द्रुपद के पास धन के लिये जाते हैं, किन्तु उनका तिरस्कार ही होता है। अंततः वे भीष्म द्वारा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, दुर्योधन आदि राजपुत्रों को धनुर्विद्या एवं शास्त्रास्त्रों की शिक्षा देने हेतु नियुक्त किये जाते हैं। अर्जुन को वे अधिक सत्पात्र जानकर उसे लक्ष्यवेध और शब्द वेध का भी अभ्यास कराते हैं। साथ ही वे राजकुमारों को शास्त्रों का ज्ञान कराकर रीति-नीति सहित धर्म और राजधर्म की दीक्षा देते हैं। एक स्थल पर वे अहंकार और द्वेष पर विजय पाने का भी वे उपदेश देते हैं।

एकलव्य दीक्षा के लिये गुरु द्रोण के पास आता है, किन्तु जातीय नियमों एवं राजधर्म की मर्यादा के कारण वे उसे शिष्य बनाना स्वीकार नहीं करते। साथ ही वे एकलव्य को युक्तिपूर्वक संतुष्ट भी करते हैं कि निषाद पुत्र के लिये धनुर्वेद की क्या उपयोगिता है। एकलव्य के निष्ठाभाव से प्रभावित होते हुए भी विवशतावश उन्हें यही कहना पड़ता है कि—

'किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी,
जो कि भूमि-पुत्र नहीं, किन्तु भूमिपति हैं।
× ×
राजगुरु हूँ, विशेष पद की मर्यादा है।
शिक्षा-नीति राजनीति के पदों है चलती।
शारदा की वाणी यहां बोलती है स्वर्ण में।'[1]

अन्ततः उन्हें यही कहना पड़ता है कि—

'जाओ, हे निषादपुत्र! तुम हो अस्वीकृत।'

यहाँ हम द्रोण को मर्यादाओं के कठोर अनुपालनकर्ता राजगुरू के रूप मे पाते हैं, किन्तु द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व मे सहज मानवीय दुर्बलताओं का भी अंकन कवि ने किया है। आर्थिक अभाव के कारण जब वे अपने पुत्र के लिए एक घूंट दूध भी उपलब्ध नहीं करा पाते। तब उनका पुरुषत्व उन्हें धिक्कारता है—

कुत्सित रे द्रोण! सब तेरो शक्ति व्यर्थ है,
मारे चन्द्रमंडल मे एक बाण क्यों न तू।
चू पड़े सुधा की धार, पुत्र पीले नाच के।'[2]

---

१. एकलव्य, आत्मनिवेदन सर्ग, पृ० १२६
२. वही, परिचय सर्ग पृ० ३८

और दूसरी तरफ एकलव्य को शिष्यत्व प्रदान न करने के कारण उनके मन मे एक द्वन्द्व उठता है कि शिक्षा तो सरस्वती को वह धारा है जो अनन्त और प्रशात है और मैं केवल राज्यगुरु बनकर क्यो रहूं ? अंत मे वे इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं :—

जाति-भेद नही, वर्ग-वंश-भेद भी नही,
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं।[1]

उनका मानसिक द्वन्द्व इस सीमा तक पहुच जाता है कि वे अपनी साधना मे न ी मिथ्यात्व का आभास पाते हैं —

धिक् द्रोण ! तेरी सब साधनाएं मिथ्या हैं,
तेरा धनुर्वेद सूम की संपत्ति-जैसा है।[2]

वस्तुतः स्वप्न सर्ग मे हम द्रोण के व्यक्तित्व का वास्तविक किंवा मानवीय रूप पाते हैं, जो उनके चरित्र को निश्चय ही ऊंचा उठाता है।

लेकिन अंत मे अर्जुन के स्वार्थ के कारण वे एकलव्य से जो गुरु दक्षिणा स्वीकार करते हैं, उसमे उनका चरित्र उच्चादर्शों से स्खलित हो जाता है। एकलव्य के द्वारा अंगुष्ठ समर्पण से वे हतप्रभ हो जाते हैं और मर्मव्यथा के भार को सहन न कर पाने के कारण तत्क्षण चले जाते हैं। द्रोणाचार्य के चरित्र मे कवि ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अन्तर्द्वन्द्व की बडी भव्य योजना की है।

अन्य पात्र

काव्य के अन्य पात्रो मे हिरण्यधनु, एकलव्य जननी और अर्जुन के नाम उल्लेखनीय हैं। हरिण्यधनु को कवि ने जातीय गुणो के अनुसार वीर और साहसी ही नही, एक कर्तव्यपरायण पिता के रूप मे भी चित्रित किया है। उन्हे अपने जातीय गौरव का पूर्ण अभिमान है। एकलव्य की माता को कवि ने वीर जननी के रूप मे चित्रित किया है। जिसके हृदय मे वात्सल्य का अक्षय स्रोत विद्यमान है। धनुर्विद्या की साधना के लिये एकलव्य के निर्जन वन मे चले जाने पर उसका हृदय व्याकुल हो उठता है। एकलव्य जननी के मातृत्व भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति के

१. एकलव्य, स्वप्न सर्ग, पृ० २२२
२. वही , वही , पृ० २२३

लिये कवि ने महाकाव्य का 'ममता' नामक पूरा सर्ग ही समर्पित कर दिया है। वह अपने पुत्र की बाल सुलभ क्रीडाओं की स्मृति को सजोये उसके वियोग को सहती है, किन्तु उसकी भावनाए बडी उदात्त हैं —

'गुण कथन ही तो मेरा गान है।
+ +
लाल तुम्हारी कठिन तपस्या ही तो मेरा गुणगान है।'[1]

पुत्रवियोग की तीव्र वेदना को सहती हुई एकलव्य-जननी पुत्र की साधना की सफलता की सूचना पाकर आनंदित होती हुई वन मे पहुचती है, वहा पुत्र के खडित अगुष्ठ को देखकर उसका हृदय खड खड हो जाता है। वह द्रोणाचार्य से कहती है कि आपके विधान में यदि शिष्य-माता से भी दक्षिणा लेने का नियम हो तो, मैं भी अपने नेत्रो को आपकी सेवा मे समर्पित करदू। एकलव्य जननी के इस मर्मस्पर्शी कथन को सुनकर सभी स्तब्ध हो गये। आकाश मे श्यामता छा गई और दिशाए धूमिल हो गयी।[2] 'एकलव्य' महाकाव्य मे अर्जुन का चरित्र बहुत गिरा हुआ दिखाया गया है। महाभारत के इस आदर्शवीर में यहा स्वार्थ की भावना ही अधिक दिखाई देती है। काव्य के प्रारम्भ म उसे हम एक निष्ठावान शिष्य पाते हैं। इसीलिये गुरू द्रोण उसे अद्वितीय धनुर्धारी बनाने का निश्चय करते है। वह लक्ष्यवेध, शब्दवेध तथा दिव्यास्त्रो मे भी निपुणता प्राप्त करता है, जिसे देखकर जनसमुदाय विस्मय-विमुग्ध रह जाता है। गुरू के प्रति अर्जुन के मन मे विनय और श्रद्धा का भाव है, किन्तु दूसरी ओर एक महत्वाकाक्षी राजपुत्र होने के कारण वह अद्वितीय धनुधर होने के लोभ का सवरण भी नही कर सकता। यही महत्वाकाक्षा उसके चरित्र को हीन बना देती है। उसी के आग्रह पर एकलव्य को अपनी महान साधना का उत्सर्ग करना पडता है, यद्यपि एकलव्य के इस महान त्याग से अर्जुन को ग्लानि भी होती है। इसके अतिरिक्त नागदन्त, भीष्मपितामह, दुर्योधन, अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पाण्डव कुमारों के भी चरित्र यथाप्रसग उभरे हैं किन्तु ये सभी पात्र कथानक के घटनाचक्र को विकसित करने की दृष्टि से ही उल्लेखनीय हैं। चरित्र की दृष्टि से इनका कोई महत्व नही है।

इस प्रकार 'एकलव्य' महाकाव्य के चरित्र-चित्रण मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है, एकलव्य और द्रोण की चरित्र-सृष्टि मे तो कवि ने मौलिकता और नवीनता का भी परिचय दिया है। एकलव्य का चरित्र निषाद सस्कृति का उज्ज्वल प्रतीक बनकर काव्य मे चित्रित हुआ है। आचार्य द्रोण के चरित्र मे जिस

---

१ एकलव्य, ममता सर्ग, पृ० १६३

१ वही, दक्षिण सर्ग, पृ० ३०४

अन्तर्बहिर्द्वन्द्व की योजना कवि ने की है वह चरित्र-विश्लेषण की दृष्टि से बडी महत्वपूर्ण हैं। द्रोण इस काव्य का सबसे अधिक गतिशील चरित्र है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वास्तव मे "आचार्य द्रोण के मनोविज्ञान की कक्षा मे ही एकलव्य रूपी उपगृह भ्रमण करता है, द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व की उष्ण रश्मियो मे एकलव्य का चरित्र—कमल विकसित होकर अपनी सुगन्धि समस्त दिशाओ मे व्याप्त कर रहा है। अन्ततः—संघर्ष के अन्तराल मे बहिर्द्वन्द्व की यह योजना महाकाव्यकार की अनोखी सूझ है।"[1] एकलव्य के चरित्र को कवि ने अपनी प्रतिभा और कल्पना शक्ति के द्वारा इतना सशक्त बनाया है कि वह एक अनुकरणीय आदर्श चरित्र बन गया है। एकलव्य मे जिस शील, गुरुभक्ति, साधना और त्याग आदि के गुण-समूह का सयोजन किया गया है, उसके कारण वह अनार्य होकर भी आर्य बन गया है। सद्वश मे उत्पन्न न होने पर भी उसमे महाकाव्य के नायक बनने की गरिमा और शक्ति आगयी है। कवि ने चरित्र-नियोजन में मनोवैज्ञानिक आधार को ग्रहण करते हुए भी पात्रो की भावगत मान्यताओ को महाभारत के सास्कृतिक दृष्टिकोण से भी समर्थित रखा है। यह एकलव्य' के चरित्र विश्लेषण की सबसे बडी सफलता है।

---

१. डा० मोहन अवस्थी : "जीवन्त महाकाव्य : एकलव्य" नामक लेख, वीणा, फरवरी १९६१

——

चतुर्थ अध्याय

रसयोजना तथा शिल्प तत्त्व

भूमिका—

इस अध्याय मे आलोच्य महाकाव्यों की रसयोजना तथा शिल्प तत्त्व का विवेचन किया गया है। यो तो साहित्य की प्रत्येक कृति का निश्चित शिल्प होता है जिसके आधार पर उसका रचयिता रचना को रूपाकृति प्रदान करता है। किन्तु महाकाव्य मे शिल्पविधि के तत्त्वो तथा रचनात्मक उपकरणो का स्वरूप वैशिष्ट्य-पूर्ण होता है। शिल्पगत वैशिष्ट्य के लिये महाकाव्यकार को शिल्पविधायक तत्त्वो की योजना विशेष विधि से करनी पड़ती है। महाकाव्य के रचना-विधान मे अन्तरंग और बहिरंग दोनो पक्षो की समृद्धि आवश्यक है।

प्रस्तुत शोधप्रबंध की 'भूमिका' मे महाकाव्य के बहिरंग और अन्तरंग से सम्बन्धित जिन उपकरणो और तत्त्वो का विवेचन किया गया है वे इस प्रकार है :—

(१) वर्णन कौशल; जिसके अन्तर्गत प्रकृति वर्णन, मनोवैज्ञानिक निरूपण और सौन्दर्य-चित्रण का समाहार किया जाता है।

(२) रसपरिपाक और भाव-चित्रण-कौशल।

(३) नामकरण, सर्ग संयोजन, भाषा-शैली, अलंकार-विधान, छन्द-योजना आदि।

अस्तु, उपर्युक्त शीर्षकों एवं उपशीर्षकों के अन्तर्गत ही आलोच्य महाकाव्यों मे से प्रत्येक के शिल्प तत्त्व का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। इस मूल्यांकन मे शिल्प तत्त्व का महाकाव्योचित गरिमा की दृष्टि से महत्वांकन करते हुये प्रत्येक महाकाव्य की शिल्पगत उपलब्धियों एवं अभावों का विवेचन किया गया है।

प्रियप्रवास

१. प्रकृति वर्णन

प्रियप्रवास मे प्रकृति-चित्रण कवि ने सकौशल किया है। प्रकृति के अनेक रूपो की सुन्दर झाँकिया काव्य मे आद्यांत चित्रित हैं। काव्य का प्रारम्भ ही सन्ध्या वर्णन से हुआ है —

"दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल वल्लभ की प्रभा।।"[1]

प्रियप्रवास के अधिकाश सर्गों का आरम्भ प्रकृति वर्णन से ही हुआ है। नीचे सर्ग क्रमानुसार प्रत्येक सर्ग की प्रथम पंक्ति उद्धृत की जा रही है :—

सर्ग १ — 'दिवस का अवसान समीप था।'
सर्ग २ — 'गत हुई अब थी द्विघटी निशा।'
सर्ग ३ — 'समय था सुनसान निशीथ का।'
सर्ग ५ — 'तारे डूबे तम टल गया छा गयी व्योम लाली।'
सर्ग ७ — 'ऐसा आया एक दिवस जो था महामर्म भेदी।'
सर्ग १० — 'त्रिघटिका रजनी गत थी हुई।'
सर्ग ११ — 'एक दिन छविशाली अर्कजा कूलवाली।'
सर्ग १२ — 'सरस सुन्दर सावन मास था।' (द्वितीय पद्य)
सर्ग १४ — 'कालिन्दी के पुलन पर थी एक कुंजातिरम्या।'
सर्ग १५ — 'छायी प्रात सरस छवि थी पुष्प औ पल्लवों में।'
सर्ग १७ — 'विमुग्धकारी मधु मंजु मास था।'

प्रकृति और मानव का आदि सम्बन्ध है। मानवीय भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति से अधिक आकर्षण माध्यम क्या हो सकता है। प्रियप्रवासकार ने प्रकृति का चित्रण इस प्रकार किया है कि मानवीय भावनाओ की सफल अभिव्यक्ति भी हुई है और प्रकृति सुन्दरी का रूपांकन भी। प्रकृतिचित्रण की प्राय समस्त प्रणालिया प्रस्तुत काव्य मे देखी जा सकती हैं।

(अ) आलम्बन रूप में—आलम्बन रूप मे प्रकृति चित्रण दो प्रकार से किया जाता है—एक स्वतत्र रूप मे, जिसके अन्तर्गत बिम्बग्रहण प्रणाली का आश्रय लेकर प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र अकित किये जाते हैं। दूसरे अर्थ-ग्रहण प्रणाली जिसमे प्राकृतिक वस्तुओं के नामो की केवल गणना मात्र ही करा दी जाती है।

---

१. प्रिय प्रवास, प्रथम सर्ग, पृ० १ (सवत् २०११)

हरिऔध जी ने दोनो ही प्रकार से प्रकृति-चित्रण किया है। बिम्ब ग्रहण प्रणाली द्वारा उन्होने प्रकृति के भव्य और भयकर रूप चित्रित किये हैं। जैसे–

अचल के शिखरो पर जा चढ़ी।
किरण पादप-शीश विहारिणी।
तरणि-बिम्ब तरोहित हो चला।
गगन-मण्डल मध्य शनैः शनैः ॥[1]
तिमिरलीन कलेवर को लिये।
विकट-दानव पादप थे बने।
भ्रममयी जिनकी विकरालता।
चलित थी करती पवि-चित्त को ॥[2]

परिगणन शैली का उदाहरण इस प्रकार है :—

जम्बू अम्ब कदम्ब निम्ब फलसा जम्बीर औ आवला।
लीची दाड़िम नारिकेल इमली औ शिंशपा इ गुदी।
नारगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी।
श्रेणी-बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े।[3]

हरिऔध जी ने आलम्बन रूप मे ही ऋतुओ का भी सजीव वर्णन किया है जिनमें ग्रीष्म, वर्षा, शरद और बसन्त ऋतुओ के वर्णन प्रमुख है। ग्रीष्म ऋतु वर्णन एकादश सर्ग मे छंद ५६ से ९४ तक, वर्षा वर्णन द्वादश सर्ग मे छन्द २ से ७१ तक, शरद वर्णन चतुर्दश सर्ग में छन्द ७० से १४१ तक और बसत वर्णन षोडश सर्ग मे छन्द १ से २८ तक है।

(आ) उद्दीपन रूप में— *प्रियप्रवास मे वियोग की प्रधानता होने के कारण कवि ने प्रकृति को उद्दीपन रूप मे भी चित्रित किया है। कृष्ण-वियोग में राधा की वेदना को प्रकृति और भी अधिक उद्दीप्त करती है। इसी प्रकार बसत आदि की शोभा भी ब्रज के लिये प्रतिकूल प्रभावकारी है। यथा -*

वसंत शोभा प्रति कूल थी बड़ी।
वियोग-मग्ना ब्रज-भूमि के लिये।

---

१. प्रियप्रवास, पृ० २
२. वही, तृतीय सर्ग, पृ० २३
३. वही, नवम सर्ग, पृ० १००

मयी ।
बना रही थी उसको व्यथा...ली ।।[1]
विकास पाती वन-पादपा...

(इ) वातावरण निर्माणरूप में—कवि ने आने वाली परिस्थितियों की पृष्ठभूमि के रूप में भी प्रकृति का चित्रण किया है । तृतीय सर्ग के प्रारम्भ का प्राकृतिक वातावरण ब्रजमंडल में व्याप्त हो जाने वाली निराशा एवं वेदना का ही सूचक है :—

समय था सुनसान निशीथ का ।
अटल भूतल में तम-राज्य था ।
प्रलय-काल समान प्रसुप्त हो
प्रकृति निश्चल, नीरव, शान्त थी ।[2]

(ई) संवेदनात्मक रूप में—ब्रजजनों के दुःख में प्रकृति को भी दुःखी चित्रित किया गया है । जिस प्रकार गोपियों के पास कृष्ण नहीं आते उसी प्रकार चम्पा के पास भ्रमर नहीं आता :—

चम्पा तू है विकसित मुखी रूप औ रंगवाली
पाई जाती सुरभि तुझमें एक सत्पुष्प सी है ।
तो भी तेरे निकट न कभी भूल है भृंग आता ।
क्या है ऐसी कसर तुझ में न्यूनता कौन सी है ।[3]

(उ) मानवीकरण रूप में—'प्रियप्रवास' में अनेक स्थलों पर प्रकृति को मानवोचित व्यापारों से युक्त करके चित्रित किया गया है । ब्रज के गोवर्द्धन पर्वत को निम्न प्रकार से चित्रित किया गया है :—

ऊँचा शीश सहर्ष शैल करके था देखता व्योम को
या होता गति ही स-गर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से ।
या वार्ता यह था प्रसिद्ध करता सामोद संसार में ।
मैं हूँ सुन्दर मानदण्ड ब्रज की शोभामयी भूमि का ।[4]

(ऊ) आलंकारिक रूप में—कवि ने प्रकृति के उपमानों को कृष्ण के रूप सौन्दर्य के प्रतिमान बनाकर चित्रित किया है । उदाहरण के लिये उनके रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्हें जलद तन, वृषभ जैसे सजीले कन्धों से युक्त, कलभ कर

---

१. प्रिय प्रवास, षोडशसर्ग, पृ० २३९
२. वही, तृतीय सर्ग, पृ० २१
३. वही, पंचदश सर्ग, पृ० २१९
४. वही, नवम सर्ग पृ० ९८

जैसी भुजाओ वाले, कम्बुकण्ठ से सुशोभित, ताराओ के बीच
सुसज्जित कहा गया है। [१]

उपर्युक्त प्रमुख प्रकृतिचित्रण की प्रणालियो के अ
ने दूत दूती रूप मे [२] उपदेशिका के रूप मे [३] रहस्यात्मक
मे [४] दार्शनिक रूप मे [५] भी प्रकृति चित्रण किया है। यद्यपि
अधिकाशत प्राचीन और परम्परितहैं किन्तु जहा जहा कवि ने
और भावनाओ के माध्यम के रूप मे प्रकृति का निरूपण
और युगानुरूपता भी दिखाई देती है। 'प्रियप्रवास' के प्रकृति-
यह है कि कविने प्रकृति चित्रण के लिये ही प्रकृति-चित्रण न
खानापूर्ति और काव्य का कलवर वृद्धि के लिये भी यह प्रयत्न
कतिपय स्थलो पर कवि ने प्रकृति का बाह्य स्थूल रूप ही अ कि
के सूक्ष्म निरीक्षण एव अन्तरगदर्शन के परिज्ञान का परिचय नहीं
वर्णन करते समय कवि ने कल्पना के आधार पर ही सागोप
का वर्णन कर दिया है। किन्तु करील के कुजो की चर्चा तक
प्रकृति के अनेक रूपों का विभिन्न प्रणालियो द्वारा कवि ने
वह निश्चय ही महत्वपूर्ण है। प्रकृति के कारण 'प्रियप्रवा
महिमा वृद्धि भी हुई है। डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के शब्दो
हिन्दी काव्य के क्षेत्र मे मानवेतर प्रकृति के चित्रण और नि
औध अग्रदूत समझे जायगे, और प्रियप्रवास की गणना नव
इतिहास मे एक महत्व पूर्ण मील स्तम्भ के रूप मे होगी।" [६]
के विराट रूप को चित्रित करने का जो महत्वपूर्ण प्रयास हु
छायावादी कवियो के लिये भी अधिक मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। [७]

२. मनोवैज्ञानिक निरूपण

हरिऔध जी ने प्रियप्रवास मे यथास्थान मनोवैज्ञा
मनोवृत्तियो का निरूपण किया है। प्रियप्रवास के अन्तिम

१, प्रियप्रवास, पचम सर्ग, छद २६ से ९० तक
२ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ६४
३ वही, नवम सर्ग, पृ० १०१
४ वही, द्वितीय सर्ग, पृ २०
५ वहीं, षोडश सर्ग, पृ २५५-२५६
६ डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी महाकवि हरिऔध, पृ० ९७-
७, डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - प्रियप्रवास में काव्य,

का परिष्कार होकर उसकी व्यष्टि चेतना समष्टि का रूप ग्रहण कर लेती हैं। राधा का शोक-भाव लोकसेवा मे परिणत हो जाता है और वह व्यक्तिगत दु ख को भूलकर समाज मे दु खी जनो के उद्धार में लग जाती हैं। राधा की वृत्तिया इतनी उदात्त हो जाती हैं कि प्रकृति के प्रत्येक उपादान मे एवं सृष्टि के कण-कण मे उसे प्रियतम का स्वरूप दिखाई देने लगता है। उसे कालिन्दी मे प्रियतम के गात की श्यामता, रजनी मे श्याम तन रग, आदित्य मे वरवदन का ओप, खजनो और मृगो मे आखो की सुछवि, दाडिमो मे दातो की झलक, गुलो मे गुल्फो की सी ललित सुषमा दृष्टिगोचर होती है। वे सम्पूर्ण विश्व की वस्तुओ मे अपने प्यारे कृष्ण के ही अमित रूपरग को देखती है —

भू मे शोभा, सुरस जल मे, वह्नि मे दिव्य-आभा
मेरे प्यारे-कुंवर वर सी प्रायश है दिखाती।।[1]

और इसी कारण उनके हृदय मे विश्व का प्रेम जाग्रत होता है।[2] इस प्रकार राधा की मानसिक वृत्तियो और शोकाकुल भावनाओ का परिष्कार करके जिस उदात्त रूप मे उन्हें अंकित किया गया है, वह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ही कहा जायेगा। इस परिवर्तन को भी कवि ने आकस्मिक रूप से प्रस्तुत न कर, परिस्थितियो एव वातावरण के सन्दर्भ मे स्वाभाविक ढग से उपस्थित किया है।

१. रस-परिपाक और भाव-चित्रण :—

'प्रियप्रवास' विप्रलम्भ शृंगार रस प्रधान महाकाव्य है। काव्य का मुख्य विषय राधा की विरह व्यथा का ही निरूपण है। अन्य रसो मे सयोग शृगार, करुण, भयानक, वीर, रौद्र, अद्भुत रसो एव वात्सल्य भाव की सुन्दर व्यजना प्रसगानुकूल हुई है।

राधा की विरह दशा का वर्णन करते हुए कवि ने विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर चित्र अंकित किया है :—

रो रो चिन्ता-सहित दिन को राधिका थी बिताती।
आखो को थी सजल रखती उन्मना थी दिखाती।
शोभा वाले जलद-वपु की हो रही चातकी थी।
उत्कण्ठा थी परम प्रबला वेदना वर्द्धिता थी।[3]

१. प्रियप्रवास, षोडश सर्ग, पृ० २५१
२. वही, वही, पृ० ५५४
३. वही, षष्ठ सर्ग पृ० ६३

राधा के अतिरिक्त अन्य गोपियों की भावनाओं के निरूपण में भी विप्रलम्भ शृ गार का चित्रण हुआ है।[१]

काव्य के आरम्भ में ही संयोग शृ गार के दृश्य कवि ने अंकित किये हैं, उदाहरण के लिये —

बहु-विनोदित थी व्रज बालिका।
तरुणियां सब थी तृण तोड़ती।
बलि गईं बहु बार वयोवती।
छवि विभूति विलोक व्रजेन्दु की।[२]

इसी प्रकार गोकुल ग्राम की जन मण्डली मुदित मन होकर कृष्ण की मुख-छवि को इस प्रकार निरखती थी जैसे तृषित चातक घन की घटाओं को देखता है।[३] कृष्ण की बाल लीलाओं में वात्सल्य का सुन्दर वर्णन हुआ है। :—

ठुमुकते गिरते पड़ते हुए।
जननि के कर की उँगली गहे।
सदन में चलते जब श्याम थे।
उमड़ता तब हर्ष-पयोधि था।[४]

वात्सल्य रस का सजीव एवं मार्मिक चित्रण उस समय हुआ हैं, जब नंद मथुरा से अकेले लौट आते है यशोदा विलाप करती हुई कहती हैं–

'प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहां है,
दु:ख जलधि निमग्ना का सहारा कहां है।[५]

कृष्ण के लोकोपकारक उत्साह पूर्ण कार्यों में वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। कवि ने उन्हें युद्धवीर, दयावीर, दानवीर और धर्मवीर के रूप में चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त कालिय नाग–दमन, दावानल दमन, गोवर्द्धन धारण प्रसंग, व्योमासुर आदि राक्षसों के संहार की घटनाओं में वीर रस का ही निरूपण हुआ है। कालिय नाग के दमन में रौद्ररस की भी अभि-व्यक्ति हुई है। त्रयोदश सर्ग में भयानक सर्प को देखकर गोपमण्डली के भयभीत होने में भयानक रस है।[६] यशोदा

---

१ प्रियप्रवास, पंचदश, पृ० २२५–२६
२ वही, पृ० ६
३ वही, पृ० ५
४. वही, पृ० ९१
५ वही, पृ० ७५
६ वही, पृ० १७८

के शोकाकुल हृदय की व्यंजना मे करुण रस को निष्पत्ति हुई हैं। कृष्ण के लौटने की आशा न देख यशोदा शोक मे डूब जाती है : –

ऐसी आशा ललित लतिका होगई शुष्क-प्राय.।
सारी शोभा सु-छविजनिता नित्य है नष्ट होती।
जो आवेगा न अब ब्रज मे श्याम-सत्कातिशाली।
होगी हो के विरस वह तो सर्वथा छिन्न मूला।[1]

इस प्रकार प्रियप्रवास मे वियोग शृ गार की प्रधानता होते हुई भी अन्य रसो का निर्वाह अपेक्षित रूप मे यथा स्थान हुआ है।

कलापक्ष

नामकरण- 'प्रियप्रवास' के नामकरण के सम्बन्ध मे हरिऔध जी ने लिखा है कि-मैंने पहले इस ग्र थ का नाम 'ब्रजागना विलाप' रखा था, किन्तु कई कारणो से मुझको यह नाम बदलना पडा, जो इस ग्र थ के समग्र पढ जाने पर आप लोग स्वय अवगत होगे।[2] वस्तुत 'ब्रजागना विलाप' नाम महाकाव्योचित नही है। इस नाम से ध्वनित होता है कि मानो काव्य मे ब्रज की किसी अ गना के ही विलाप का वर्णन होगा। दूसरे इस शीर्षक से रीतिकालीन काव्य-विषयो की व्यजना ही अधिक होती है 'प्रियप्रवास' नाम अपेक्षाकृत व्यापक और जिज्ञासावद्धक भी है। समवत. काव्य का 'प्रियप्रवास' नामकरण होन के कारण ही कवि को कृष्णजन्म से लेकर प्रवास काल तक की समस्त घटनाओं का वर्णन करना पडा है, जिसके कारण विष-अवस्तु व्यापक बनगयी है। अस्तु, वर्ण्य विषय से सम्बन्धित एव आकर्षक होने के कारण 'प्रियप्रवास' का नामकरण सर्वथा उपयुक्त है।

सर्ग सयोजन- 'प्रियप्रवास' मे २७ सर्ग हैं। यद्यपि सर्गों का सयोजन कथाविकास की दृष्टि से किया गया है किन्तु 'कामायनी' की भाति सर्गो का नाम करण नही हुआ है। प्रथम से पचमसर्ग तक को कथा का सम्बन्ध गोकुल से है, जिसके अन्तर्गत अक्रूर कृष्ण को लेकर मथुरा चले जाते हैं और ब्रजवासी वियोग मे डूब जाते हैं। षष्ठ सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक ब्रजजनो के वियोग को दशा का मार्मिक वर्णन है। चतुर्दश से अ तिम अर्थात् सप्तदश सर्ग तक उद्धव द्वारा कृष्ण के सन्देश का प्रसारण हैं। कथानक के सूत्रो और कथा विकास की गति को सयोजित करने की दृष्टि से 'प्रियप्रवास' की सर्ग योजना सफल रही है। प्रत्येक सर्ग में पूर्वापर अन्विति विद्यमान है।

---

१. प्रियप्रवास, दशम सर्ग, पृ० १३२
२. वही, भूमिका, पृ० २

भाषा शैली

'प्रियप्रवास' को खडी बोली का प्रथम महाकाव्य होने के नाते भाषा की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है। प्रियप्रवास' जिन वर्णिक वृत्तो मे लिखा गया है, उसके लियेसस्कृत निष्ठ खडी बोली ही उपयुक्त भी थी। भाषा के इस रूप को अपनाने मे हरिऔध जी का विशिष्ट दृष्टिकोण भी था, जिसे स्वय 'भूमिका' मे स्पष्ट करते हुए उन्होने लिखा है कि—" कुछ सस्कृत वृत्तो के कारण और अधिकतर मेरी रूचि से इस ग्रन्थ की भाषा सस्कृत गर्भित है। क्योकि ग्रन्थ प्रातवालो मे यदि समादर होगा तो ऐसे ही ग्रन्थो का होगा। भारतवर्ष भर मे सस्कृत भाषा आद्दत है।" [१] स्पष्ट है कि 'प्रिय- प्रवास' की भाषा के स्वरूप निर्माण के पीछे एक निश्चित विचारधारा कार्य रत रही है।

वास्तव मे 'प्रियप्रवास' की भाषा के दो रूप हैं। एक तो शुद्ध सस्कृतनिष्ठ रूप और दूसरा साधारण बोलचाल की भाषा का। प्रथम का उदाहरण निम्न पक्तियो मे द्रष्टव्य हैं—

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय-कलिका राकेन्दु-बिम्बानना।
तन्वगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीडा-कला पुत्तली।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य-लीला-मयी।
श्रीराधा-मृदु भाषिणी मृगदृगी-माधुर्य की मूर्ति थी।[२]

इन पक्तियो मे दीर्घ समासमयी और सन्धियुक्त पद-योजना के कारण भाषा का रूप सहज एव बोधगम्य नही। इस प्रकार की समास बहुला क्लिष्ट पदावली के प्रयोग के कारण भाषा के स्वाभाविक रूप को आघात भी पहुचा है। किन्तु ऐसे स्थल काव्य मे बहुत कम है। अधिकतर स्थलो पर भाषा का रूप सहज एव बोधगम्य है। यथा—

सब पथ कठिनाई नाथ हैं जानते ही।
अब तक न कही भी लाडिले हैं पधारे।
मधुर फल खिलाना दृश्य नाना दिखाना।
कुछ पथ-दुःख मेरे बालको को न होवे।[३]

भाषा का यह रूप सरल, सहज एव बोलचाल के निकट है। भाषा को सरस एव रोचक बनाने के लिये हरिऔधजी ने सभी प्रयास किये हैं। मुहावरे एव

१. प्रियप्रवास, भूमिका, पृ० ९
२. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ३६
३. वही, पचम सग पृ० ५३

लोकोक्तियो के प्रयोग से भाषा मे पर्याप्त सरसता आई है। उदाहरण के लिये निम्नांकित पंक्तियां दृष्टव्य हैः—

१, "हां ! हा मेरे हृदय पर यों साप क्यो लोटता है।"
२. "प्रियतम ! अब मेरा कठ मे प्राण आया।"
३. "जी होता हैं विकल मुंह को आ रहा है कलेजा।"
४, "मै आऊंगा कुछ दिन गये बाल होगा न बाका।"

भाषा को शक्ति प्रदान करने के लिए सुभाषितो और सूक्तियो का भी प्रयोग किया गया हैं। 'प्रियप्रवास' की भाषा मे लोक प्रचलित उर्दू—फारसी शब्दो का भी प्रयोग हुआ है जेसे गरीबिन, जुदा, ताब आदि। ब्रजभाषा के शब्दो का भी प्रयोग कम नही है। कही-कही सस्कृत वृत्तों के उपयुक्त सगठन के लिये कवि ने शुद्ध शब्दो को तोडा मरोडा भी है। जैसे 'मर्म' को मरम, 'समय' का समै और 'यद्यपि' का 'यदपि' आदि। छन्द आयोजन के लिए दीर्घान्त शब्दो को ह्रस्व ह्रस्व को दीर्घ तो अनेक स्थानो पर किया गया है।

'प्रियप्रवास' की शैलो प्रवाह पूर्ण है। सस्कृतमयी शैली होने के कारण कही-कही दुरूहता और कृत्रिमता अवश्य आ गई है। किन्तु प्रियप्रवास की शैली कही भी समास बहुला होने के कारण व्यजना शक्ति मे अक्षम नही है। सम्प्रेषणीयता, तो इस काव्य की शैली का विशेष गुण है। 'प्रियप्रवास' मे काव्य-शैलियो के तीन रूप मिलते हैं—सरल शैली, अलकृत शैली और गुम्फित शैली। अ तिम शैली मे अवश्य कही कही जटिलता दिखाई देती है, किन्तु शब्द शक्तियो की समुचित व्यजना भाषा के सुन्दर प्रयोगो एव मुहावरेदार पदावली आदि के कारण शैली आकर्षक एव प्रवाहपूर्ण बनी रही है।

इस प्रकार भाषागत कतिपय दोषों के होते हुए भी 'प्रियप्रवास' भाषा-शैली की दृष्टि से सफल एव सक्षम रचना है। 'प्रिय प्रवास' की भाषा का माधुर्य और लावण्य पाठक को बरबस आकर्षित कर लेता है। चित्रोपमता, व्यंजना, प्रसंगानुकूलता, सम्प्रेषणीयता आदि 'प्रियप्रवास' की भाषा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं।

अलंकार विधान

'प्रियप्रवास' मे शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनो का ही प्रयोग हुआ है। अधिकतर कवि ने प्राचीन अलंकारो का ही प्रयोग किया है। अलंकार प्रयोग मे,

कवि कहीं भी प्रयत्न–साध्य दिखाई नही देता। इसके अतिरिक्त अलकारो के प्रयोग से काव्य के भाव-सौन्दर्य मे कही भी व्याघात उत्पन्न नही हुआ है। हरिऔध जी की अलकार योजना काव्य की सरसता एव स्वाभाविकता के रक्षण मे विशेष सहायक रही हैं। विशेष रूप से अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलकारो का ही अधिक प्रयोग हुआ है। कुछ प्रमुख अलकारो के उदाहरण नीचे दिये जा रहे है। —

अनुप्रास —

विमुग्ध– कारी मधु मजु मास था।
वसुधरा थी कमनीयता–मयी ।
विचित्रता - साथ विराजिता रही ।
बसत वासतिकता वनान्त मे ।।[1]

यमक —

विलसित उर मे जो है सदा देवता सा।
वह निज उर मे ठौर भी क्यो न देता।
नित वह कलपाता है मुझे कान्त हो क्यो।
जिस बिन कल पाते है नही प्राण मेरे ।

यहा 'कलपाता' और 'कलपाते' शब्द समान होते हुए भी भिन्न अर्थों के द्योतक है।

उपमा — 'नीले फूले कमल दल सी गात की श्यामता है।'

रूपक — 'रूपोद्यान प्रफुल्ल–प्राय –कलिका राकेन्दु–बिम्बानना
तन्वगी कल हासिनी सुरसिका क्रीडा– कला पुत्तली।'[2]

उत्प्रेक्षा — 'क्षितिज निकट कैसी लालिमा दीखती है।
वह रुधिर बहा है कौनसी कामिनी का ?
विहग विकल हो हो बोलने क्यो लगे है ?
सखि! सकल दिशा मे आग सी क्यो लगी है ?[3]

अपन्हुति

विपुल नीर बहाकर नेत्र से।
मिस कालिन्द कुमारी–प्रवाह के
परम कातर हो रह मौन ही।
रूदन थी करती ब्रज की धारा।

---

१. प्रियप्रवास, षोडश सर्ग, पृ० २३७
२. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ३६
३ वही, पृ० ४४

इसी प्रकार स्मरण, दृष्टांत, सन्देह, भ्रांतिमान, प्रतीप, स्मरण, परिकर, निदर्शना, व्यतिरेक आदि अलकारो के प्रयोग भी 'प्रियप्रवास' मे हुए है। अलंकारो के प्रयोग से 'प्रियप्रवास' के कलात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि ही हुई है।

छन्द योजना

'प्रियप्रवास' वर्णिक छन्दों मे लिखा गया अतुकान्त एवं अन्त्यानुप्रास-हीन काव्य है। 'प्रियप्रवास' में विशेषरूप से द्रुतविलंबित, मालिनी, मन्दाक्रांता, बसन्ततिलका, वंशस्थ और शिखरणी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। छन्द-विधान की दृष्टि से हरिऔधजी की सबसे बड़ी सफलता यह है कि उन्होने वर्णिक वृत्तो की दुरूहता को उपयुक्त प्रसंगों के अनुरूप प्रयुक्त करके सुगम बनाया है। संस्कृत वृत्तों में एक सफल महाकाव्य की रचना हरिऔध जी ने ही की है। छन्दों का प्रथम और द्वितीय सर्गो के अतिरिक्त सर्गान्त में छन्द परिवर्तन भी हुआ है, जो महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो के अनुरूप है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्णन-कौशल, प्रकृति-चित्रण, रस परिपाक, भाषा-शैली, अलंकार-विधान, छन्द-योजना आदि सभी दृष्टियों से 'प्रियप्रवास' का शिल्प समुन्नत है।

साकेत

१. प्रकृति-वर्णन

'साकेत' में गुप्त जी ने महाकाव्य की प्रकृति-चित्रण परम्परा का सफल निर्वाह किया है। प्रकृति का स्वतंत्र रूप मे चित्रण कम होते हुए भी प्रसंगानुसार इनमे सजीवता एवं मार्मिकता का समावेश है।

(अ) आलम्बन रूप में—प्रथम सर्ग में अयोध्या नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रांकन किया है :—

है बनी साकेत नगरी नागरी,
और सात्विक-भाव से सरयू भरी।
पुण्य की प्रत्यक्ष धारा बह रही,
कर्ण-कोमल कल-कथा सी कह रही।[1]

साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २२

चित्रकूट का वर्णन करते समय कवि ने प्रकृति के संश्लिष्ट रूप की झाकी प्रस्तुत की है —

मू दे अनन्त मे नयन धार वह झांकी,
शशि खिसक गया निश्चित हसी हस बाकी।
द्विज चमक उठे, हो गया नया उजियाला,
हाटक-पट पहने दीख पडी गिरिमाला।[1]

परिगणन 'शली के द्वारा भी गुप्त जी ने प्रकृति चित्रण किया है। यथा —

नचो मयूर, नाचो कपोत के जोडे,
नाचो, कुरग, तुम लो उडान के तोडे।
गाओ दिवि, चातक, चटक, भृ ग भय छोडे।[2]

गुप्त जी ने आलम्बन रूप से प्रकृति चित्रण करते हुए ग्रीष्म,[3] वर्षा, शरद,[4] हेमन्त,[5] शिशिर[6] और बसत[7] आदि षटऋतुओ का भी वर्णन किया है।

(आ) उद्दीपन रूप मे—उर्मिला के विरह का निरूपण करते समय प्रकृति के उन चित्रो को भी अ कित किया गया है, जो उसकी भावनाओ को उद्दीप्त करते हैं। उर्मिला की वियोगावस्था मे पक्षी भी उडान भूल जाते हैं।

विहग उडना भी ये हो बद्ध भूल गये, अये,
यदि अब उन्हे छोडू तो और निर्दयता दये।[8]

उर्मिला की मानसिक दशा का चित्रण करते हुए कवि कहता है —

लिखकर लोहित लेख, डूब गया है दिन अहा!
व्योम-सिन्धु सखि, देख, तारक, बुद्बुद दे रहा।[9]

---

१ साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २६४
२, वही, पृ० २२५
३ वही, नवम सर्ग, पृ० २८७
४ वही, पृ० २९९
५ वही, पृ० ३०४
६ वही, पृ० ३०९
७ वही, पृ० ३१२
८, वही, पृ० २७९
९ वही, पृ० २८१

(इ) अलंकार रूप में—चित्रकूट मे सीता के सौन्दर्य निरूपण करते समय कवि ने प्रकृति का उल्लेख आलंकारिक रूप मे किया है—

अचल-पट कटि मे खोस, कछोटा मारे,
सीता माता थी आज नई ध्वज धारे।
+ +
मुख धर्म-बिन्दु-मय ओस-भरा अम्बुज-सा,
पर कहा कंटकित नाल सुपुलकित मुख-सा ?
+ +
तनु गौर केतकी-कुसुम-कली का गाभा,
थी अंग-सुरभि के संग तरंगित आभा।[1]

(ई) संवेदनात्मक रूप में—उर्मिला की विरह वेदना को देखकर प्रकृति को भी कवि ने संवेदनात्मक रूप मे अंकित किया है। उर्मिला के दु:ख मे बसन्त भी दु:खी होकर क्षीण हो रहा है—

ओहो ! मरा वह बराक बसन्त कैसा ?
ऊंचा गला रुंध गया अब अन्त जैसा।
देखा, बढ़ा ज्वर, जरा-जड़ता जागी है,
लो, ऊर्ध्व साँस उसकी चलने लगी है।[2]

(उ) मानवीकरण रूप में—प्रथम सर्ग मे ही कवि रात्रि का मानवीकृत रूप चित्रित करते हुए कहता है कि—

सूर्य का यद्यपि नही आना हुआ।
किन्तु समझो, रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चले,
रम्य-रत्ना भरण ढीले पड़ चले।
+ +
वेषभूषा साज उषा आ गई,
मुख कमल पर मुस्कराहट छागई।[3]

---

१. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २२१-२२२
२. वही, नवम सर्ग, पृ० २८६
३. वही, प्रथमपृ० २४

उपर्युक्त प्रमुख रूपों के अतिरिक्त कवि ने प्रतीकात्मक रूप मे, दूत-दूती रूप मे, उपदेशिका रूप मे तथा परम्परागत रूप मे भी प्रकृति का चित्रण किया है। 'नवम सर्ग' का प्रकृति चित्रण परम्परागत एव रूढिवादी अधिक है, मौलिक और नवीन कम। छायावाद युग की काव्य रचना मे प्रकृति-चित्रण की जो सश्लिष्ट योजना एव नवीन प्रयोगो की अपेक्षा की जा सकती है, उसका 'साकेत' में प्राय अभाव है।

२ विरह वर्णन

'साकेत' की रचना का एक उद्देश्य उपेक्षित उर्मिला के जीवन की झाकी प्रस्तुत करना है। लक्ष्मण के वन गमन के पश्चात् उर्मिला का जीवन विरह का ही जीवन है। इस दृष्टि से विचार करने पर उर्मिला का विरह साकेत' की सबसे महत्वपूर्ण घटना है।[1]

'साकेत' मे उर्मिला के विरह का आरम्भ उस अवसर पर होता है, जब उसके पति धर्म और कर्त्तव्य पालन के लिये राम और सीता के साथ वनगमन करते है। निरालम्ब उर्मिला अपनी मर्म व्यथा किससे कहती ? उसे तो अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही था–तभी तो उसने कहा '—

'कहा उर्मिला ने– हे मन !
तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन।'[2]

उसके समक्ष स्वार्थ और त्याग का सघर्ष है। उसकी दयनीय दशा को देखकर सीता भी कहती है —

'आज भाग्य है जो मेरा,
वह भी हुआ न हा ! तेरा।'[3]

और लक्ष्मण के चले जाने पर उर्मिला की दशा बडी कातर हो जाती है —

'मुख–कान्ति पडी पीली–पीली,
आँखें अशान्त नीली–नीली।
क्या हाय ! यही वह कृष काया,
या उसकी शेष सूक्ष्म छाया।'[4]

---

१ डा० नगेन्द्र–साकेत एक अध्ययन, पृ० ४२
२ साकेत, चतुर्थ सर्ग पृ० ११०
३ वही, पृ० १२१
४. वही, षष्ठ सर्ग, पृ० १६१

चित्रकूट के क्षणिक मिलन मे उर्मिला की कृशकाया देखकर लक्ष्मण निश्चय नही कर पाते कि वह उर्मिला ही है या उसकी छाया-मात्र। लक्ष्मण को इस स्थिति मे देखकर उर्मिला ही अन्ततः कह उठती है :—

'मेरे उपवन के हरिण, आज बनचारी,
मैं बाध न लूंगी तुम्हे, तजो भय भारी।'[1]

मिलन के समय वह अपने पति से कुछ भी नही कह पाती, यह भी कर्मों का दोष स्वीकार करती है। कवि के शब्दो मे :—

'मानस मन्दिर मे सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती–सी उस विरह मे, बनी आरती आप।
आखो मे प्रिय–मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।'[2]

उर्मिला के लिये अब खाने–पीने और पहनने मे कोई रस नही रह गया था। वह केवल अवधि–अर्णव को किसी प्रकार तर रही थी।[3] कभी उसे चित्रकूट मे मा की झाकी मिलती थी तो कभी उसे यह पीडा होती थी कि चित्रकूट मे—

'न कुछ कह सकी अपनी,
न उन्हीं की पूछ मैं सकी भय से।'[4]

बाल्यकाल और प्रिय मिलन की स्मृतियां उसे झकझोर देती हैं और वह विस्मृतावस्था मे प्रलाप भी करने लग जाती है। उसकी आहो से आकाश मे फफोले पड जाते है, तालवृन्त की हवा से उसकी विरह ज्वाला भडकती है उसके विरह-विदग्ध शरीर का स्पर्श कर मलयानिल भी लू मे परिणित हो जाता है और जल की बूंदें उसके विरह ताप से भाप बन जाती हैं। ऐसे अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनो में रीतिकालीन प्रभाव स्पष्ट है। किन्तु गुप्त जी ने उर्मिला के विरही जीवन के मार्मिक चित्र भी कम अंकित नही किये हैं। उसके विरह मे प्रकृति के कण-कण की सहानुभूति है। उर्मिला सूर की गोपियो या 'पदमावत' की नागमती की भांति प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर ईर्ष्यालु नही बनती और न ही वह प्रकृति को कोसती

---

१. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २६५
२. वही , नवम सर्ग पृ० २६८–२६९
३. वही , वही, पृ० २७२
४. वही, नवम सर्ग, पृ० २७३

है। प्रकृति के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए वह कहती है :—

'सींचे ही बस मालिनें, कलश ले, कोई न ले कर्तरी,
शाखी फूले फलें यथेच्छ बढ के, फैले लताएं हरी।'[१]

उर्मिला औरों को अपने दुःख से दुखी न कर नगर की अन्य दुखनियों के दुःख में भी समभागिनी होना चाहती है।[२] वेदना भी उसे भली लगती है।

नवम सर्ग के निम्न गीतों में उर्मिला की उदात्त भावनाएं अभिव्यक्त हुई हैं :—

१. वेदने, तू भी भली बनी।[३]
२. विरह सम अभिसार भी,
   भार जहां आभार भी।[४]
३. दोनों ओर प्रेम पलता है।[५]
४ मेरी ही पृथ्वी का पानी।[६]
५. सखि, निरख नदी की धारा।[७]
६. प्रश्न जो प्रियतम को पाऊं।[८]

उर्मिला की भावनाओं का निरन्तर परिष्कार होता जाता है। अन्त में वह विरह के अभिशाप को भी भगवान का वरदान मानती है :—

सिर-माथे तेरा यह दान,
हे मेरे प्रेरक भगवान।

+ +

दहन दिया तो भला सहन क्या होगा तुझे प्रदेय।
प्रभु की ही इच्छा पूरी हो, जिसमें सबका श्रेय।

---

१. साकेत, वही, , पृ० २७०
२. वही, वही, , पृ० २७६
३. वही, पृष्ठ २८०
४. वही, पृ० २८०
५ वही, पृ० २८१
६. वही, पृ० २९२
७. वही, पृ० ३०२
८. वही, पृ० ३२४

यही रुदन है मेरा गान,
हे मेरे प्रेरक भगवान।[1]

इस प्रकार उर्मिला कवि के शब्दो मे अवधि की शिला का गुरु भार हृदय पर रखे हुए दृगो से जलधार बहाती हुई तिल-तिल समय को काट रही थी। उर्मिला का यह विरह 'साकेत' की विभूति है। विरह की वेदना मे विदग्ध होकर उर्मिला का चरित्र कचन हो जाता है। आचार्यों ने विरह की जो दस अवस्थाए (अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मरण) स्थिर की है और विरह-वर्णन की जो प्रणालिया साहित्य-शास्त्रियो ने उल्लिखित की है, उन्हे भी कवि ने यथास्थान निरूपित किया है। वर्णनो मे कही कही अतिशयोक्ति होते हुए भी साकेत का विरह वर्णन ऊहात्मक नही हुआ हैं। उर्मिला के विरह मे एक गरिमा है और वह है उदात्त भावनाओ की। विरह की वेदना उर्मिला के सहानुभूति और प्रेम का भाव जाग्रत करती है। उसे उन्मादिनी और ईर्ष्यालु नही बनाती। साकेत के विरह-वर्णन को सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि डा० नगेन्द्र के शब्दो मे 'उर्मिला के विरह मे मानवता की पुकार है।'[2]

रस परिपाक और भाव चित्रण :

'साकेत' के प्रधान रस के सम्बन्ध मे विद्वानो के दो मत हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'साकेत' मे न करुण रस प्रधान है, न विप्रलम्भ शृगार ही। किन्तु विप्रलभ ही 'उत्तर रामचरित' की भाति इस काव्य का अगीरस है।[3] डा० प्रतिपालसिंह के अनुसार 'इस काव्य मे शृगार तथा करुण रस प्रधान है।'[4] डा० श्यामनन्दन किशोर के अनुसार 'साकेत मे शृगार और करुण रस की प्रधानता है।'[5]

वास्तव मे 'साकेत' मे विप्रलम्भ शृगार ही प्रधान है। काव्य मे करुण रस की प्रधानता सम्भवतः समीक्षको ने 'साकेत' के नवम सर्ग की निम्न पक्तिया के आधार पर स्वीकार की है :—

---

१. साकेत, पृ० ३४०
२ डा० नगेन्द्र—साकेत एक अध्ययन, पृ० ६०
३. डा० कमला कांत पाठक, मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य, पृ० ४९५ से उद्धृत
४ डा० प्रतिपालसिंह—बीसवी शताब्दी के महाकाव्य, पृ० १४४
५ डा० श्यामनन्दन किशोर—आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का शिल्प विधान, पृ० ५७

'करुणे, क्यो रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई—
मेरी विभूति है जो, उसको 'भवभूति' क्यो कहे कोई '[1]

विप्रलम्भ शृ गार के अतिरिक्त साकेत मे वीर, रौद्र, करुण हास्य, अद्भुत शान्त आदि रसो की भी यथास्थान निष्पत्ति हुई है ।

विप्रलम्भ शृगार

इधर उर्मिला मुग्ध निरी, कहकर 'हाय' धडाम गिरी ।
लक्ष्मण ने दृग मूद लिए सबने दो दो बूद दिये ।
\+ \+ \+
"बहन ! बहन !" कहकर भोता, करने लगी व्यजन सीता ।
आज भाग्य जो है मेरा, वह भी हुआ न हा ! तेरा ।' [2]

करुण रस

दशरथ-मरण के अवसर पर काव्य में साकेत का परिवार शोक मे डूब जाता है —

'अर्द्धा ग रानिया शोककृता, मूर्च्छिता हुई या अर्द्धमृता ?
\+ \+ \+
"हा स्वामी", कह ऊचे रव से, दहके सुमन्त्र मानो दव से ।
\+ \+ \+
उर्मिला सभी सुध बुध त्यागे, आ गिरी कैकेयी के आगे ।[3]

वीर रस

वीर रस का सुन्दर परिपाक राम-रावण युद्ध के अवसर पर हुआ है । इसके अतिरिक्त द्वादश सर्ग मे उर्मिला के ओजस्वी स्वरो मे तथा शत्रुघ्न की प्रतिज्ञा मे भी वीर रस के सुन्दर चित्र मिलते हैं —

'धनन धनन बाज उठी गरज तत्क्षण रण-भेरी ।
काप उठा आकाश, चौंक कर जगती जागी,
छिपी क्षितिज मे कही, सभय निद्रा उठ भागी ।
\+ \+ \+

---

१ साकेत, नवम सर्ग, पृ० २६७
२ वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० १२०—२१
३ वही, अष्टम सर्ग, पृ० १७८—१७९

घरर मरर खुल गये अरर वह रवस्फुटो से,
क्षणिक रूद्ध थे तदपि विकट भर उर-पुटो से,
बाधे थे जन पाच पाच आयुध मन भाये,
पचानन गिरी-गुहा छोड ज्यो बाहर आये।
+ + +
चचल जल-थल बलाध्यक्ष निज दल सजते थे,
झनझन घनघन समर वाद्य वहु विध बाजते थे।[1]

उपर्युक्त रसो के अतिरिक्त 'साकेत' के प्रथम सर्ग मे लक्ष्मण-उर्मिला प्रेमपूर्ण वार्तालाप मे, सयोग शृंगार, अष्टम सर्ग मे जावालि मुनि और राम वार्तालाप मे व्यग्य और विकृत वाणी द्वारा हास्य की व्यजना तथा सप्तम सर्ग शान्तरस की व्यजना हुई है। गुप्त जी की भक्ति भावना के माध्यम से भक्ति और कौशल्या के कथनो मे वात्सल्य रस की भी अभिव्यक्ति हुई है।

रस-परिपाक के साथ काव्य मे अनेक ऐसे मार्मिक एव भावपूर्ण स्थलो योजना भी हुई है, जिनके द्वारा कवि के भाव-चित्रण-कौशल का पूर्ण परिच मिलता है। ऐसे प्रसगो मे दशरथ मरण, चित्रकूट मे राम-भरत मिलन, उर्मि की विरह-वेदना, साकेतवासियो की रण सज्जा और काव्यात मे लक्ष्मण उर्मि पुनर्मिलन आदि उल्लेखनीय हैं।

कलापक्ष

नामकरण—'साकेत' की रचना उर्मिला के चरित्रोत्थान के लिए हुई है। सर्वप्रथ कवि ने इस काव्य का नाम 'उर्मिला काव्य', अथवा 'उर्मिला उत्ताप' रखा था। किन्तु कुछ समय पश्चात् गुप्त जी ने इस महाकाव्य का नाम 'साकेत' रखा। क उर्मिला के साथ अपने इष्टदेव राम के महत्व को भी गौण बनाना नही चाहता साकेत के नामकरण का आधार काव्य की कथावस्तु एव घटनाए हैं। काव्य सम्पूर्ण घटनाओ का केन्द्र अयोध्या को ही बनाया गया हैं। लेकिन इनके साथ सा उर्मिला का सम्पूर्ण विरही जीवन भी साकेत म घटित हुआ है। राम कथा के अ प्रसगो को उर्मिला के मुख से ही सूर्यवशी राजाओ की यशगाथा, सीता और रा की बाल क्रीडाए धनुष यज्ञ एव विवाहादि का वर्णन करा दिया हैं। इसके आ की कथाए; जैसे—पचवटी मे खरदूषण से युद्ध आदि शत्रुघ्न के मुख से कहलवा हैं। लक्ष्मण आदि से सम्बन्धित सभी प्रसग हनुमान कहते हैं और राम-रावण यु

१ साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ४६३–६४,६५

२. डा० द्वारिकाप्रसाद—साकेत म काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० ५१

तथा पुष्पक विमान पर राम के पुनरागमन आदि वशिष्ट जी योग शक्ति के द्वारा साकेत मे खडे ही साकेतवासियो को देखा देते हैं। इस प्रकार काव्य की सम्पूर्ण घटनाओ का सम्बन्ध साकेत से है। केवल चित्रकूट की कुछ घटनाए अयोध्या से बाहर घटित हुई हैं, जिनके सम्बन्ध मे कवि ने स्वय कहा है कि--

'सम्प्रति साकेत-समाज वही है सारा,
सर्वत्र हमारे सग स्वदेश हमारा।'[1]

सर्ग योजना

सम्पूर्ण काव्य १२ सर्गों मे विभक्त है। सर्गों का सयोजन इस प्रकार किया गया है कि काव्य की कथावस्तु समान रूप से विभाजित होकर विकसित हो। केवल नवम सर्ग के अतिरिक्त सभी सर्ग आकार की दृष्टि से प्रायः समान हैं। 'साकेत' के सर्ग-सयोजन की विशेषता यह है कि उनके द्वारा सम्पूर्ण काव्य की कथावस्तु समन्वित और सुव्यवस्थित है। एक सर्ग की समाप्ति पर कथा जिस सीमा पर पहुचती है, आगामी सर्ग के प्रारम्भ में वह उस सीमा से सुसम्बद्ध होती हुई आगे बढती है। नवम सर्ग के अतिरिक्त सर्ग क्रम की दृष्टि से साकेत की कथा वस्तु मे कही भी कोई व्याघात नही आया है। 'रामचरित मानस', 'कामायनी', 'एकलव्य' आदि महाकाव्यो की भाति साकेत के सर्गों का नामकरण भी नही हुआ है बल्कि सर्गों की केवल सख्या ही दी गई है।

भाषा शैली

'साकेत' की रचना शुद्ध खडी बोली मे हुई है। कवि ने भाषा के स्वरूप को आद्यात परिष्कृत एव तत्सम बनाये रखने का पूर्ण प्रयास किया है। वास्तव मे भाषा विषयक आदर्शों की प्रेरणा गुप्त जी को अपने काव्य-गुरू आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से मिलती रही थी। 'साकेत' मे भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार दिखाई देता है। यद्यपि सस्कृत के शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग हुआ है, तो भी भाषा क्लिष्ट और कृत्रिम नही हुई है। 'साकेत' की भाषा का सबसे बडा गुण उसकी सप्रेषणीयता है। साधारणतया भाषा का रूप सरल एव प्रसाद गुण समन्वित है। 'साकेत' की भाषा मे जो विशेष गुण मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं :--

, भाषा मे भावो के अनुरूप ही शब्दो का प्रयोग हुआ है। गभीर भावो की अभिव्यक्ति के समय कवि ने भाषा मे समस्त पदो की योजना मे सार्थक शब्दो के

१. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २२०

प्रयोग का आश्रय लिया है और सामान्य स्थलो पर भाषा का रूप अपेक्षाकृत स्वाभाविक एव गतिशील है। भाषा का प्रथम रूप चित्रकूट सभा मे भरत के कथनो मे एव प्रथम सर्ग मे अयोध्या नगरी के वर्णन मे दूसरा रूप देखा जा सकता है। शब्दो की उचित योजना के द्वारा कवि ने भाषा की चित्रोपमता, लाक्षणिकता, दृश्य-विधान एव प्रतीकात्मकता का भी परिचय दिया है।

भाषा मे सजीवता उत्पन्न करने के लिए लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए 'लगे इस मेरे मुंह मे आग',[1] 'कौन छेड़े ये काले साप'[2], 'आर्य ! छाती फट रही है हाय !'[3] 'करके मीन-मेख सब ओर'[4], 'किसने सोता हुआ यहा का साप जगाया'[5] आदि द्रष्टव्य है।

'साकेत' की भाषा मे प्रान्तीय एवं ब्रजभाषा के चलते शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। जैसे–धाड़, धड़ाम, धिक्कार, पेट, लेखना, हेरना आदि। संस्कृत के कुछ अप्रचलित शब्दो का भी प्रयोग गुप्त जी ने यत्र-तत्र किया है। जैसे–अरुन्तुद, आज्य जिष्णु, लालमण्य आदि। कुछ शब्दो का निर्माण गुप्त जी ने स्वयं भी किया है, किन्तु वे व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रतीत होते है। जैसे–पात्रता, औदास्य, राहित्य, उत्कर्णता आदि। 'जुदा' और 'खुदा' जैसे फारसी शब्द भी आगये है–

मूर्तिमय विवरण समेद जुदे जुदे।
ऐतिहासिक वृत्त जिनमे है खुदे-खुदे।[6]

लम्बे-लम्बे समास वाले पदो का भी प्रयोग गुप्त जी ने किया है, जो सस्कृत भाषा की दृष्टि से तो उचित है, किन्तु हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल नही है। जैसे–

"नृप-भावाम्बु-तरंग-भूमि मे।[7]
अथवा,
"कवि की मानस-कोष-विभूति-विहारिणी।[8]

---

१. साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ० ४६
२. वही वही, पृ० ६१
३. वही, सप्तम सर्ग, पृ० २०३
४. वही, नवम सर्ग पृ० ३०७
५ वही, द्वादश सर्ग पृ० ६३
६. वही, प्रथम सर्ग, पृ० २१
७. वही, दशम सर्ग, पृ० ३७४
८. वही, पंचम सर्ग, पृ० १४४

अथवा

"तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया।"[1]

गुप्त जी की भाषा का एक दोष उनका तुकान्तता के प्रति व्यामोह है। तुकबन्दी के लिए गुप्त जी ने शब्दो का ऐसा चयन किया है कि कविता के प्रवाह मे आघात उत्पन्न हो गया है। जैसे—

अयि दयामयि देवी, सुखदे, सारदे,
इधर भी निज वरद-पाणि पसारदे।[2]

अथवा

तम फूट पडा, नही घटा,
यह ब्रह्माड फटा, फटा, फटा।[3]

अथवा

अहा ! समाई नही अयोध्या फूली-फूली,
तब तो उसमे भीड अमाई ऊली-ऊली।[4]

वैसे गुप्त जी ने शब्द-शक्तियो, रीतियों, वृत्तियों एव माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि गुणो के उचित प्रयोग द्वारा भाषा मे सजीवता उत्पन्न करने का पूर्ण प्रयास किया है।

साकेतकार ने काव्य की शैली को सुसज्जित करने मे अनेक उपायो को अपनाया है। डा० नगेन्द्र के अनुसार साकेत की शैली और उसके प्रसाधन इस प्रकार है—वृत्त—वर्णन, कथा-वर्णन मे वाक् संयम, कथावर्णन के उपकरण, इतिवृत्ति रोचकता एव उत्सुकता, नाटकीय विषमता, घटनाओ की सकारणता और पूर्वापर सम्बन्ध, अभिव्यक्ति कौशल, प्रसग गर्भत्व आदि।[5]

वस्तुत: जिन गुण का ऊपर उल्लेख किया गया है उनके कारण 'साकेत' की शैली मे एक आकर्षण अवश्य दिखाई देता है। आधुनिक युग के नवीनतम काव्यो की तुलना मे यद्यपि 'साकेत' की शैली प्रभावकारी और उत्कृष्ट नही दिखाई देती, किन्तु जिस युग मे 'साकेत' लिखा गया था, उस दृष्टि से 'साकेत' की शैली सर्वोत्कृष्ट है। शैली के स्वरूप को गुप्त जी ने नाटक और गीत-तत्वो से सज्जित

१. साकेत, अष्टम सर्ग, पृष्ठ २२३
२. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ १७
३. वही, दशम सर्ग पृष्ठ ३४४
४. वही, द्वादश सर्ग, पृष्ठ ९३
५. डा० नगेन्द्र—साकेत एक अध्ययन, पृ० १४४ से १५६

किया है। प्रसाद गुण एव कोमलकात पदावली के कारण शैली मे लालित्य भी है। भावपूर्ण स्थलो एव उन मार्मिक प्रसगो में जहा सवादो की आयोजना करते है (जैसे—कैकेयी-मथरा संवाद, चित्रकूट सभा मे कैकेयी, भरत और राम के सवाद एव द्वादश सर्ग मे उर्मिला के आह्वान पर साकेतवासियों को सैनिक साज सज्जा के वर्णन मे) शैली का रूप शक्तिमत्ता एव प्राणवत्ता-पूर्ण हो गया है।

साकेत की सवाद-योजना के कारण भी शैली मे गत्यात्मकता, प्रवाह एव गभीरता आई है। वास्तव मे जिन कलात्मक उपकरणों के द्वारा शैली परिपक्व गभीरतापूर्ण एव सजीव बनती है, गुप्त जी ने उन सभी का 'साकेत' मे प्रयोग किया है। शैली की दृष्टि से विचार करते हुए यह उल्लेखनीय है कि—' 'साकेत' की शैली का महत्व इस रूप मे देखा जायेगा कि वह अपने युग की सर्वोत्कृष्ट शैली है। पुनरुत्थान युग की शैलीगत देन है साकेत का रचना-विधान।" [1]

अलंकार–विधान

'साकेत' मे शब्दालकार एवं अर्थालकार दोनो का ही प्रयोग हुआ हैं। 'साकेत' की अलकार योजना के द्वारा काव्य के कलापक्ष के सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई है। साकेतकार ने अलकारो का प्रयोग प्रयत्न साध्य होकर नही किया है 'साकेत' मे अलकार कलापक्ष की पुष्टता के अतिरिक्त भाषा मे सजीवता उत्पन्न करने और भावाभिव्यजना मे भी सहायक हुए हैं। काव्य-शास्त्रीय अलकारो के अनेक उदाहरणो मे से कुछ प्रमुख निम्नांकित प्रकार है :—

अनुप्रास—झोके झिल-मिल झोल रहे थे दीप गगन के,
खिल खिल, हिल हिल खेल रहे थे दीप गगन के।[2]

रूपक—सखि, नील नभस्सर मे उतरा, यह हस अहा! तरता तरता,
अब तारक-मौक्तिक शेष नही, निकला जिनको चरता-चरता,
अपने हिमबिन्दु बचे तब भी, चलता उनको धरता-धरता,
गड जाय न कटक भूतल के, कर डाल रहा डरता-डरता।[3]

श्लेष—उस रूदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह विक्षेप से,

---

१ डा० कमलाकात पाठक—मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य, पृ० ५१५
२. साकेत, द्वादश सर्ग, पृष्ठ ४६२
३. वही, नवम सर्ग, पृष्ठ २८६

वर्ण-वर्ण सदैव जिनको हो विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?[१]

मुद्रा—करुणे, क्यों रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई—
'मेरी विभूति है जो, उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई ?'[२]

यमक—'अंगराज पुरांगनाओं के धुले,
रंग देकर नीर में जो है घुले।[३]

उपमा—निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।[४]

उत्प्रेक्षा—मेरी दुर्बलता क्या, दिखा रही तू अरी, मुझे दर्पण में ?
देख, निरख मुख मेरा, वह तो धुंधला हुआ स्वयं ही क्षण में ?[५]

भ्रांति—नाक का मोती अधर की कांति से, बीज दाड़िम का समझ कर—भ्रांति से।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है, सोचता है, अन्य शुक यह कौन है ?[६]

अतिशयोक्ति—ठहर अरी, इस हृदय में लगी विरह की आग,
तालवृन्त से और भी धधक उठेगी जाग।[७]

अपन्हुति—पाकर विशाल कच-भार एड़ियां धसती,
तब नखज्योति-मिष, मृदुल अंगुलियां हसती।[८]

विरोधाभास—हो गया निर्गुण सगुण-साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।[९]

मानवीकरण—अरुण सध्या को आगे ठेल, देखने को कुछ नूतन खेल,
सजे विधु की बेंदी से भाल', यामिनी आ पहुची तत्काल।[१०]

---

१. साकेत, पृष्ठ २६९
२ वही, नवम सर्ग, पृ० २६७
३. वही, प्रथम सर्ग, पृ० २१
४. वही, नवम सर्ग, पृ० २९९
५. वही, वही , पृ० ३०६
६. वही, प्रथम सर्ग, पृ० २९
७. वही, नवम सर्ग, पृ० २९०
८. वही, अष्टम सर्ग, पृ० २२१
९. वही, प्रथम सर्ग, पृ० १८
१०. वही, द्वितीय सर्ग, पृ० २१

व्यतिरेक—स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहां,
किन्तु सुर सरिता कहां, सरयू कहां ?
वह मरों को मात्र पार उतारती,
यह यहीं से जीवतों को तारती।[1]

उपर्युक्त अलकारो के अतिरिक्त दृष्टांत, निदर्शना, विभावना, विषम, अर्थान्तरन्यास, समासोक्ति आदि का भी 'साकेत' मे प्रयोग हुआ हैं।

छन्द योजना

महाकाव्य मे शास्त्रीय परम्परानुसार 'साकेत' के प्रत्येक सर्ग मे एक प्रमुख छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्ग के अन्त मे छन्दपरिवर्तन भी किया गया है काव्य के नवम सर्ग मे विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया गया है। 'साकेत' के प्रथम सर्ग मे विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया है। 'साकेत' के प्रथम सर्ग मे पीयूष वर्ष, द्वितीय मे शृ गार, तृतीय मे सुमेरू, चतुर्थ मे हाकलि, पचम मे तिलोकी, षष्ठ मे पादापुलक नामक छन्दो का प्रयोग हुआ है। सप्तम सर्ग मे एक नवीन छन्द का प्रयोग हुआ है जो पीयूष वर्ष के ही समान है। अष्टम सर्ग मे 'राधिका' छन्द को अपनाया है। नवम सर्ग मे एक ओर हिन्दी के दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया जैसे छन्दो का प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर सस्कृत के मन्दाक्राता, द्रुतविलबित, शार्दूल विक्रीडत, बसत तिलका, शिखरिणि, मालिनी आदि वर्णिक छन्दो का भी प्रयोग हुआ है। साकेत के दशम सर्ग मे वियोगिनी, एकादश सर्ग मे वीर तथा द्वादश सर्ग मे रोला नामक छन्द का प्रयोग हुआ हैं। निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि कवि का छन्दो के प्रयोग पर पूर्ण अधिकार है। 'साकेत' मे छन्दो का प्रयोग लय और गीत के पूर्णतः अनुरूप है।

इस प्रकार साकेत का शिल्प वर्णन-कौशल, चित्रण-पद्धति, भाषा-शैली विषयक आयोजन, छन्द विधान, सर्गबद्धता आदि सभी दृष्टियो से प्रौढ, पुष्ट एव महत्वपूर्ण है।

कामायनी

प्रकृति वर्णन

कामायनी छायावाद की एक सर्वोत्तम कृति है। छायावाद की एक प्रमुख विशेषता प्रकृति निरूपण है। प्रसाद जी प्रकृति के चतुर चितेरे कलाकार हैं।

---

१. साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २१

यद्यपि ऽसुमन काल (छायावाद) के कवियो मे प त को ही प्रकृति का कवि कहा जाता है किन्तु पन्त प्रकृति के कोमल और सुकुमार रूपो के ही कलाकार हैं प्रसाद जी प्रकृति के भव्य और भयकर, निर्माणकारी और विनाशकारी सूक्ष्म और विशद् सभी क्षेत्रो के कवि है। वस्तुत 'प्रकृति' प्रसाद साहित्य की निजी सस्कृति है लगता है जैसे उनका सारा साहित्य इसी प्रकृति-सस्कृति मे ढलकर निकला हो।[1] कामायनी मे प्रकृति चित्रण की काव्य प्रचलित सभी प्रणालियो के अतिरिक्त कवि ने कितने ही ऐसे रूपो मे भी प्रकृति चित्रण किया है, जो उनके मौलिक प्रकृति दर्शन प्रदर्शन का परिचायक है।

(अ) आलम्बन रूप मे—आलम्बन रूप मे प्रकृति चित्रण की दो प्रणालिया हैं—बिम्ब ग्रहण प्रणाली तथा नाम परिगणन प्रणाली। प्रसाद जी ने "कामायनी" मे प्रथम को ही अधिकाशत ग्रहण किया है। आलबन रूप मे उन्होने प्रकृति के विकराल और रम्य दोनो रूप अ कित किये है। काव्य के प्रथम सर्ग मे प्रकृति का भयकर रूप अ कित हुआ है। यथा—

हा हा कार हुआ क्रदनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर,
हुए दिगत बधिर, भीषण रव
बार बार होता था क्रूर
+ +
धसती धरा, धधकती ज्वाला,
ज्वाला मुखिया के निश्वास,
और सकुचित क्रमश उसके
अवयव का होता था ह्रास।[2]

प्रकृति के सुरम्य रूप का चित्रण भी हुआ है—

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हसने फिर स,
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि म
शरद विकास नये सिर से
नव कोमल आलोक बिखरता
हिम ससृति पर भर अनुराग,

१ डा० नगेन्द्रनाथ यतीन्द्र : कामायनी दिग्दर्शन, पृ० १८४

२ कामायनी, चिता सर्ग, पृ० १३,१४

सित सरोज पर क्रीडा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग ।[1]

(आ) उद्दीपन रूप में–

संध्या नील सरोरूह से जो श्याम पराग बिखरते थे,
शैल-घाटियों के अंचल को वे धीरे से भरते थे,
तृण गुल्मों से रोमांचित नग सुनते उस दुख की गाथा,
श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे।[2]

(इ) आलंकारिक रूप में–

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ-वन बीच गुलाबी रंग ।[3]

(ई) मानवीयकरण रूप में–

उषा सुनहले तीर बरसती, जय-लक्ष्मी-सी उदित हुई,
उधर पराजित काल- रात्रि भी, जल में अन्तर्निहित हुई ।[4]

(उ) उपदेश रूप में

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्यक्त नील घनमाला में,
सौदामिनी-संधि-सा सुन्दर, क्षण भर रहा उजाला में ।[5]

उपर्युक्त प्रमुख रूपों के अतिरिक्त प्रसाद जी ने प्रकृति को संवेदनात्मक, प्रतीकात्मक, दार्शनिक, रहस्यात्मक एवं पृष्ठभूमि के रूप में भी चित्रित किया है। "कामायनी" में रीतिकालीन रूढ़ि के अनुसार कवि ने न तो षट्ऋतु एवं बारहमासा के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है और न दूत-दूती के रूप में। आशा सर्ग के अन्त में केवल एक स्थल पर कवि ने अवश्य रजनी को संबोधित करते हुए कहा है कि मेरी प्रेम भावना, वेदना या भ्रान्ति तुझे कहीं मिल जाय तो यों ही मत लौटाना क्योंकि तुझे भी तेरा भाग अवश्य मिलेगा।[6]

---

१. कामायनी, आशा सर्ग, पृ० २३
२. वही, स्वप्न सर्ग, पृ० १७६
३. वही, श्रद्धा सर्ग, पृ० ४६
४. वह, आशा सर्ग, पृ० २३
५. वही, चिंता सर्ग, पृ० १६
६. वही, आशा सर्ग, पृ० ४०, ४१

साराश यह है कि 'कामायनी' मे प्रकृति का केवल सौन्दर्य निरूपण ही नही हुआ है, वरन् प्रस्तुत और अप्रस्तुत विधान द्वारा कवि ने मानवीय चेतना और अनुभूति को भी प्रकृति के उपादान प्रतीको द्वारा व्यजित किया है। काव्य का प्रारम्भ प्रकृति-वर्णन से हुआ और उसका अन्त भी प्रकृति की गोद मे ही होता है। काव्य के चरम उद्देश्य अर्थात् आनन्द एव समरसता की प्राप्ति भी प्रकृति के पुनीत प्रागण कैलाश मे ही हुई है।

२. सौन्दर्य-चित्रण

प्रसाद जी ने प्रकृति, पुरुष, पदार्थ और आत्मा सभी के सौन्दर्य को अनुभूति और चेतना की दृष्टि से देखा हैं। इसलिए 'कामायनी मे स्थूल और सूक्ष्म दोनो ही दृष्टियो से सौन्दर्य का चित्रण हुआ हैं।

(अ) मानवीय रूप सौन्दर्य—जहा तक व्यक्ति सौन्दर्य का प्रश्न है प्रसाद जी ने श्रद्धा और मनु के व्यक्तित्व चित्रण मे बाह्य सौन्दर्य-दृष्टि का परिचय[1] दिया है। श्रद्धा के शारीरिक सगठन का वर्णन करते हुए प्रसाद ने उसे हृदय की बाह्य अनुकृति कहा है। उसके मुखमडल की शोभा इस प्रकार दिखाई देती है जैसे साय-काल के समय नीलम के पहाड की चोटी पर वासर रजनी मे एक लघु दग्ध लपटो वाला ज्वालामुखी हो। श्रद्धा के लम्बे घुघराले बालो का मुख पर गिरना ऐसा प्रतीत होता है जैसे नीले मेघ शावक चन्द्रमा की सुधा का पान करने आये हो उसकी मुस्कान बालार्क की उज्ज्वल रश्मि के समान विश्राम करती हुई प्रतीत होती है। ऐसी श्रद्धा नक्षत्र की आशा किरण और कोमल हृदय कवि की काति के समान कल्पना की दिव्य लघु लहरी बनकर मानस की हलचल को शान्त कर रही थी।[1] प्रसाद जी ने श्रद्धा के सौन्दर्य निरूपण मे आध्यात्मिक एव अपार्थिव सौन्दर्यदृष्टि का परिचय दिया है। श्रद्धा का सौन्दर्य निरूपण हिन्दी साहित्य मे अद्वितीय हैं। इसी प्रकार मनु को भी पराक्रमी, तेजस्वी, बलिष्ठ रूप मे अ कित किया है, जो आदि मानव के अजेय रूप का परिचायक है।[2] मनु पुत्र मानव को भी कवि ने तेजस्वी किशोर के रूप मे चित्रित किया है।[3]

(आ) प्राकृतिक रूप-सौन्दर्य—प्रकृति के रूप सौन्दर्य को अ कित करते हुए प्रसाद जी ने अनेक रम्य और सश्लिष्ट भाव-चित्र खीचे हैं। "चिता सर्ग', मे

---

१ कामायनी श्रद्धा सर्ग, पृ० ४६–५०

२ वही, चिंता सर्ग, पृ० ४

३. वही, आनन्द सर्ग, पृ० २७७

सागर के प्रलयकालीन रूप का कुछ ही छंदो मे ऐसा रूप प्रसाद जी ने अंकित किया है, जो प्रकृति के विकराल स्वरूप को स्पष्ट करता है। सिन्धु मे लहरियां व्याल के समान फन फैलाये चली जा रही हैं विलास के आवेग के समान जल संघात चढने लगता है। यह कच्छप सी धरणी ऊभ-चूभ होकर विचलित हो जाती है। उदधि मर्यादाहीन होकर धरा को डुबा देता है। करुण क्रंदन होता है और सम्पूर्ण सृष्टि मे पंचभूत के ताडव नृत्य का दृश्य दिखाई देता है।[1]

इसी प्रकार का संश्लिष्ट चित्र 'आशा सर्ग' मे हिमालय पर्वत का कवि ने अंकित किया है। उसे विश्व कल्पना के समान उन्नत सुख शीतलता एवं संतोष का निधान, डूबती हुई अचला का अवलम्बन और मणिरत्न-निधान कहा है। उसके चरणो मे नीरवता की विमल विभूति है, झरनो की धारा मे जीवन की अनुभूतियां बिखर रही हैं और पर्वत की शिला संधियो से टकरा कर पवन गुञ्जार कर रहा है, जो ऐसा प्रतीत होता है मानो चारण कवियो की भांति हिमालय की दुर्भेद्य अचल दृढता का प्रचार कर रहा है। सायंकालीन घनमालाओ के बीच की गगनचुम्बी श्रेणियां ऐसी दिखाई देती है कि मानो वे पर्वतराज हिमालय की रानियां हैं, जा तुषार किरीट धारण किये बादलो की रंग बिरंगी छींट के वस्त्र ओढे हैं।[2]

(इ) भाव सौन्दर्य—भाव सौन्दर्य का अंकन करने मे भी कवि सिद्धहस्त। इस दृष्टि से 'लज्जा' का रूप विधान अन्यतम है। लज्जा नारी के अन्तस के आकर्षण विकर्षण से युक्त प्रवृत्तिमूलक भाव है। उसका भाव चित्र अंकित करते हुए कवि ने कहा है कि—लज्जा के कारण नारी मे स्पर्श की हिचक और देखते समय पलको पर आखें झुक जाती हैं। परिहास की गूंज अधरो तक सहम कर रुक जाती है। संकेत की भाषा बनकर वह हृदय की परवशता के समान नारी के सौन्दर्य पर नियंत्रण करती है। लज्जा को कवि ने रति की प्रतिकृति कहा है। नारी के चंचल और किशोर सौन्दर्य की संरक्षिका कहा है। वह चेतना का उज्ज्वल वरदान है। लज्जा का एक सुन्दर भावचित्र द्रष्टव्य है—

लाली बन सरल कपोलो मे, आंखों मे अंजन सी लगती,
कुंचित अलको सी घुंघराली, मन की मरोर बनकर जगती।
चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ, जो बनती कानो की लाली।[3]

---

१ कामायनी, पृ० १४-१५
२ वही, आशा सर्ग, पृ० २९, ३०
३ वही, लज्जा सर्ग, पृ० [illegible]

लज्जा के अतिरिक्त 'चिन्ता सर्ग' मे चिन्ता का और 'वासना सर्ग' में वासना का चित्रांकन करते समय कवि ने भाव सौन्दर्य चित्रण का अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया हैं। इन सूक्ष्म अमूर्त भावो को सुन्दर प्रतीको के द्वारा मानवीय कृत-रूपो मे प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार व्यक्ति, प्रकृति और भाव-सौन्दर्य का भव्य चित्र-विधान कवि की सूक्ष्म-सौन्दर्य-चेतना, अनुभूति एव अन्तर्दृष्टि का परिचायक है।

३. मनोवैज्ञानिक निरूपण

'कामायनी' की कथावस्तु मे रूपक तत्त्व की प्रतिष्ठा होने के कारण काव्य के नायक मनु मन के, श्रद्धा हृदय की तथा इडा बुद्धि की प्रतीक है। अत काव्य मे पात्रो को मनोवृत्तियो के रूप मे चित्रित करने तथा कथाक्रम को तदनुरूप सयोजित करने मे 'कामायनी' मे मनस्तत्त्व का विवेचन स्वाभाविक रूप से हो गया है। 'कामायनी' के मनोवैज्ञानिक निरूपण को निम्न रूपो मे उल्लिखित किया जा सकता है :—

१, सर्ग क्रम मे

२, पात्रो के मानसिक वृत्तियो के रूप मे चित्रण मे

३ घटनात्मक-नियोजन मे

'कामायनी' के सम्पूर्ण सर्गों का नामकरण मानसिक वृत्तियो के आधार पर हुआ है। काव्य मे उनका क्रम भी इसी प्रकार आयोजित है जिस प्रकार मानव के मन मे वृत्तियो का जन्म होता है। प्रथम सर्ग मे प्रलयकाल की भयकर प्रतिक्रियाओ के कारण मनु का मन चिंतित है। अस्तु, इस सर्ग का नाम 'चिन्ता' रखा गया है। 'चिन्ता के पश्चात् हृदय मे 'आशा' नामक भाव का उदय होता है। 'आशा' से जीवन मे प्रेरणा जाग्रत होती है और मन हृदय के प्रतीक रूप श्रद्धा को कोमल वृत्ति के रूप मे पाकर 'काम और वासना' के अधीन होता है हृदय की प्रतीक श्रद्धा वासनाजन्य उच्छृंखला के कारण 'लज्जा' का अनुभव करती है, किन्तु वासना से उत्तेजित मनु का मन वासना तृप्ति के लिये कर्म जगत मे प्रवेश करता है। मनु ईर्ष्यावश श्रद्धा को छोड बुद्धि (इडा) के पाश मे बध जाते हैं। 'इडा' के पश्चात् 'स्वप्न' सर्ग का आयोजन है, जिसमे श्रद्धा आपदाग्रस्त मनु की दशा को देखती है। यह हृदय के उस भाव का सक्षण है, जिसमे वह मन का साथ पूरी तरह नही छोड पाता। बुद्धि के विरोध के फलस्वरूप 'सघर्ष' उत्पन्न होता है। 'सघर्ष' मे परास्त होने पर मनु के मन मे 'निर्वेद' भाव उत्पन्न होता है। श्रद्धा के पुनः संपर्क से मनु का व्याकुल मन आनन्दलोक के दर्शन हेतु

व्यग्र होता है, इच्छा, ज्ञान और क्रिया के त्रिपुर रहस्य को समझ लेने पर मनु को 'आनन्द' की प्राप्ति होती है। सर्गों के नामकरण और उपर्युक्त संयोजन क्रम से स्पष्ट है कि कवि ने मनोवैज्ञानिक आधार पर ही सर्गों के शीर्षक और क्रम का आयोजन किया है।

'कामायनी' के मुख्य पात्र हैं—मनु, श्रद्धा और इडा। 'कामायनी' के मनु मन के प्रतीक हैं। भारतीय विचारधारा के अनुसार मन को भौतिक रूप प्रदान किया गया है। उसे चंचल, दृढ एवं शक्तिशाली इन्द्रिय के रूप मे भी माना गया है। वह सम्पूर्ण इन्द्रियो का राजा है, जिसका कार्य संकल्प-विकल्प का मनन करना है। भारतीय विचारानुसार शुद्ध, शात एव नियन्त्रित मन ही आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। पाश्चात्य विचारधारा के अनुसार मनु को एक ठोस द्रव्य माना गया है जो सम्पूर्ण सचेतन प्राणियो मे विद्यमान रहता है। फ्रायड के अनुसार मन के चेतन व अचेतन दो रूप हैं। इनमे अचेतन मन को ही अधिक महत्व दिया गया है। क्योंकि उसके द्वारा काम नामक प्रवृत्ति का सचालन होता है। सक्षेप में मन शरीर का सचालक, नियामक एव प्रेरक है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' मे मन के प्रतीक मनु के चरित्र को जिस रूप मे विकसित किया है। उसमे उपर्युक्त दोनो दृष्टिकोणो का किसी न किसी रूप मे समावेश होते हुए भी मन के सम्बन्ध मे उनकी निजी धारणा रही है, जो उनके साहित्य मे (कामायनी के अतिरिक्त भी) व्यक्त हुई है।

भारतीय विचारधारानुसार प्रसाद जी ने मन अर्थात् मनु के हृदय और बुद्धि (श्रद्धा और इडा) से सचालित माना है। मात्र बुद्धि का अनुसरण करके मन भटक सकता है। हृदय का सबल पाकर ही वह वास्तविक आनन्द की उपलब्धि कर सकता है। अत मनु सम्पूर्ण सकल्प-विकल्प से मुक्त होने के लिये श्रद्धा का सबल चाहते हैं।

> यह क्या ? श्रद्धे बस तू ले चल, उन चरणो तक, दे निज सबल,
> सब पाप-पुण्य जिसमे जल-जल, पावन बन जाते हैं निर्मल ॥[1]

श्रद्धा हृदय की प्रतीक है।[2] इस दृष्टि से मन (मनु) पर उसका प्रभाव स्पष्ट ही है। वह मानसिक वृत्तियो के सचालन मे महत्वपूर्ण योगदान देती है। इड़ा को कवि ने बुद्धि का प्रतीक माना है।[3] 'कामायनी' की इडा के चरित्र

---

१. कामायनी, दर्शन सर्ग, पृ २५४
२. 'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार' —कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ४६
'बिखरी अलकें ज्यो तर्क जाल —कामायनी, इड़ा सर्ग, पृ० १३८

मे तर्क-वितर्क और ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित भौतिक उपलब्धियाँ आदि जो भी मस्तिष्क या बुद्धि के गुण हैं, विद्यमान हैं। मनु पुत्र कुमार नव मानव का और किलात आकुली तामसी वृत्तियो के प्रतीक हैं। इनके अतिरिक्त लज्जा और काम जैसी मनोवैज्ञानिक वृत्तियो को अशरीरी पात्रो के रूप मे अ कित किया है। भारतीय ग्र थो मे काम का विभिन्न रूपो मे उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद मे काम को एकदेवता के रूप मे, उपनिषदो मे आध्यात्मिक शक्ति, वात्सायन के कामसूत्र मे जीवन की अनिवार्य प्रवृत्ति, पुराणो में वासना के प्रतीक एव शैवागमो मे सौन्दर्य एव प्रेम के प्रतीक रूप मे उल्लिखित किया गया है। फ्रायड ने काम को 'लिबिडो' कहा है, जो वासना का ही प्रतीक नही वरन् व्यापक प्रेम का भी प्रतीक है। सक्षेप मे काम के तीन रूप मिलते हैं :—

१. आध्यात्मिक
२ सृजनात्मक
३ वासनात्मक

प्रसाद जी ने कामायनी मे मुख्य रूप से सृजनात्मक काम का ही वर्णन किया है —

'काम मगल से मडित श्रेय, सर्ग, इच्छा का है परिणाम,
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल, बनाते हो असफल भव धाम।'[1]

प्रसाद जी की काम सम्बन्धी विचारधारा अत्यन्त व्यापक है, क्योकि यहां काम का स्वरूप अशरीरी एव धर्म अविरुद्ध है।

इस प्रकार 'कामायनी' मे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सुन्दर चित्रण हुआ है। प्रसाद जी ने बडे कौशल से काव्य और मनोविज्ञान का समाहार किया है। प्रस्तुत काव्य में मनोविज्ञान का इतना सूक्ष्म एव गूढ विवेचन है कि डा० नगेन्द्र प्रभृति विद्वान 'कामायनी' को मनोविज्ञान का ट्रीटाइज कहते हैं।[2] इस उक्ति मे 'कामायनी' की गहन दार्शनिकता और अगाढ मनस्तत्व की ही व्यजना होती है। वस्तुतः कामायनी मे–'मनोविज्ञान मे काव्य और काव्य में मनोविज्ञान एक साथ दिखाई देते है। मानस (मन) का ऐसा विश्लेषण और काव्यात्मक निरूपण हिन्दी मे शायद शताब्दियों न बाद हुआ है।'[3]

---

१. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५१
२. डा० नगेन्द्र : कामायनी एक अध्ययन, पृ० १५६
३. श्री नन्ददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य, पृ० ११३

४. रसपरिपाक और भाव-चित्रण

भारतीय साहित्य-शास्त्रियो केअनुसार महाकाव्य, मे सभी रसों की निष्पत्ति होनी चाहिये और शृंगार, वीर एवं शान्त रस मे से किसी एक की प्रमुखता होनी चाहिये। क्योकि महाकाव्य का एक लक्ष्य रस-सिद्धि भी होती है। कामायनीकार ने जीवन के व्यापक धरातल को लेकर समस्याओ का समाहार करते हुए जहां भाव-निरूपण किया है वही रस निष्पत्ति हुई है। 'कामायनी' मे श्रृंगार और शांत दोनो रसो की प्रधानता दिखाई देती है। वास्तव मे काव्य की प्रस्तुत कथा मे श्रृंगार रस की एवं अप्रस्तुत कथा मे शान्त रस की प्रधानता है। इनके अतिरिक्त करुण, रौद्र, भयानक, वीर, वात्सल्य आदि रसो की भी काव्य मे योजना हुई है।

संयोग शृंगार

शृंगार रस के सयोग और वियोग दोनों रूप कामायनी मे मिलते हैं। श्रद्धा और मनु के मिलन प्रसंग मे शृंगार-रस के सयोग पक्ष को सुन्दर व्यंजना हुई है। यथा—

झुक चली सव्रीड वह सुकुमारता के भार,
लद गई पाकर पुरुष का नर्ममय उपचार।
+ +
मधुर व्रीडा मिश्र चिन्ता साथ ले उल्लास,
हृदय का आनन्द कूजन लगा करने रास।
गिर रही पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू-लता थी नाक तक चढती रही बे टोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदंब-सा था भरा गदगद बोल।[१]

वियोग शृंगार

श्रद्धा को त्यागकर मनु जब चले जाते हैं, तो उनके हृदय की आकुलता के निरूपण मे विप्रलम्भ का वर्णन हुआ है। यह कहती है कि :—

वन बालाओ के निकुंज सब भरे वेणु के मधु-स्वर से,
लौट चुके थे आने वाले सुन पुकार अपने घर से,

---

१. कामायनी, वासना सर्ग, पृष्ठ ९४

किन्तु न आया वह परदेशी युग छिप गया प्रतीक्षा म,
रजनी की भीगी पलकों से तुहिन-बिंदु कण-कण बरसे।[1]

वीर रस

'संघर्ष सर्ग' मे सारस्वत प्रदेश की प्रजा के विद्रोह कर देने पर किलात और आकुलि नामक पुरोहितो से युद्ध करते समय मनु के वीरत्व भाव की व्यजना हुई है —

यो कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सम्हाला,
देव 'आग' ने उगली त्योंही अपनी ज्वाला।
छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले,
टूट रहे नभ धूम केतु अति नीले-पीले।
+ +
तो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि,
रण यह यज्ञ पुरोहित! ओ किलात ओ अकुलि।
और धराशायी थे असुर पुरोहित उस क्षण,
इडा अभी कहती जाती थी 'बस रोको रण।[2]

वीभत्स रस

'कर्म सर्ग' मे मनु द्वारा श्रद्धापालित पशु की यज्ञ मे बलि देने के अवसर पर वीभत्स का दृश्य मिलता है —

यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी, धधक रही थी ज्वाला,
दारुण दृश्य! रुधिर के छींटे, अस्थि खड की माला।
वेदी की निर्मम प्रसन्नता, पशु की कातर वाणी।
मिलकर वातावरण बना था, कोई कुत्सित प्राणी।[3]

भयानक रस

'स्वप्न सर्ग' की इन पक्तियो मे भयानक रस दृष्टव्य है—
आलिंगन, फिर भय का क्रदन! वसुधा जैसे कॉप उठी।
वह अतिचारी, दुर्बल नारी परित्राण पथ नाप उठी।

---

१ वही, स्वप्न सर्ग, पृ० १७८
२ कामायनी, संघर्ष सर्ग, पृष्ठ २००–२०१
३ वही, कर्म सर्ग, पृ० ११६

> अंतरिक्ष में हुआ रुद्र हुंकार भयानक हलचल थी,
> अरे आत्मजा प्रजा । पाप की परिभाषा बन शाप उठी ।।[1]

करुण रस

'कामायनी' के चिन्ता सर्ग के प्रारम्भ में देव जाति के विनाश को देखकर मनु की दशा बड़ी करुणाजनक है —

> निकल रही थी मर्म वेदना,
> करुणा विकल कहानी सी ।[2]

चिन्ताग्रस्त मनु सोच रहे थे कि—

> चिन्ता करता हूँ मैं जितनी, उस अतीत की, उस सुख की ।
> उतनी ही अनन्त में बनती, जाती रेखाएँ दुःख की ।[3]

वात्सल्य रस

'ईर्ष्या सर्ग' में गर्भवती श्रद्धा भविष्य के सुन्दर स्वप्नों मे उलझी हुई मातृत्व की प्रतिमूर्ति बनकर वात्सल्यपूर्ण भावों की व्यंजना करती है—

> मैं उसके लिए बिछाऊँगी, फूलों के रस का मृदुल फेन ।
> झूले पर उसे झुलाऊँगी, दुलरा कर लूँगी बदन चूम ।
> मेरी छाती से लिपटा इस, घाटी में लेगा सहज घूम ।[4]

शान्त रस

शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है । प्रसाद ने काव्य का बारहवाँ सर्ग (निर्वेद) इसी के लिए लिखा है । निर्वेद का सुन्दर उदाहरण मनु के निम्न कथन में दृष्टव्य है—

> विश्व, कि जिसमें दुःख की आँधी, पीड़ा की लहरी उठती,
> जिसमें जीवन मरण बना था, बुदबुद की माया नचती ।
> वही शांत उज्ज्वल मंगल सा, दिखता था विश्वास भरा,
> वर्षा के कदम्ब कानन सा, सृष्टि-विभव हो उठा हरा ।[5]

---

१. कामायनी, स्वप्न सर्ग, पृ० १८५
२. वही , चिन्ता सर्ग, पृ० ४
३. वही , वही , पृ० ६
४. वही, ईर्ष्या सर्ग, पृ० १५२
५. वही, निर्वेद सर्ग, पृ० २२३

उपर्युक्त रसो के अतिरिक्त 'कामायनी' के 'संघर्ष' सर्ग मे रौद्र रस का, 'रहस्य' और 'आनन्द' सर्ग के त्रिपुर-मिलन और नटराज शिव के ताडव-नर्तन मे अद्भुत रस का भी आभास मिलता है। हास्य रस का 'कामायनी' मे अभाव ही है। इसका कारण कवि का चिन्तनशील एव गभीर स्वभाव है। इस प्रकार 'कामायनी' मे रस गाभीर्य एव उदात्त भाव-सृष्टि का परिचय स्थान स्थान पर मिलता है। 'कामायना' की रस निष्पत्ति के लिए अनेक स्थलो पर तो विभाव, अनुभाव सचारी भावो आदि रस अवयवो की कवि ने आवश्यकता ही अनुभव नही की है। प्रसाद जी ऐसे रससिद्ध कवि हैं कि अनेक स्थानो पर मात्र आलम्बन, उद्दीपन आदि विभावो अथवा सचारी भावो की सम्यक् योजना से ही रस व्यजना हो गयी है। उदाहरण के लिए 'लज्जा, नामक सचारी भाव को कवि ने इतने मार्मिक ढ ग से प्रस्तुत किया कि वह अकेला ही रसोद्रेक मे समर्थ दिखाई देता है। 'कामायनी' की रस निष्पत्ति इतनी प्रखर और पुष्ट ह कि कवि की अनुभूतियों से पाठक का सहज मे ही साधारणीकरण हो जाता है।

कलापक्ष

नामकरण–'कामायनी' का नामकरण पात्रगत आधार पर हुआ है। कामायनी' महाकाव्य की नायिका श्रद्धा है। श्रद्धा काम की पुत्री होने के कारण कामायनी कही गई है। जैसा कि प्रसाद जी ने स्वय लिखा है–'कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका' श्रद्धा कामगोत्र की बालिका है इसलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामायनी भी कहा जाता है।[1] यद्यपि काव्य के नायक मनु हैं किन्तु उनके चरित्र को सामान्य कोटि के एक मानव के रूप मे ही चित्रित किया गया है। श्रद्धा का चरित्र बहुत ऊ चा है वह मनु की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की प्रेरणा का स्रोत है अस्तु श्रद्धा के चरित्र की प्रमुखता और महत्ता की दृष्टि से काव्य का नामकरण 'कामायनी'' सर्वथा उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त काव्य म सर्वत्र 'श्रद्धा' शब्द का प्रयोग होते हुए भी कवि ने 'कामायनी' नामकरण इसलिए भी किया कि 'कामायनी' शब्द से श्रद्धा की अपेक्षा अधिक कमनीयता, रमणीयता और नवीनता का परिचय मिलता है। इस सम्बन्ध मे प्रसाद जी के पुत्र श्री रत्नशकर ने लिखा है कि–"कुछ लोग कहते हैं कि प्रसाद जी ने इस काव्य का नाम पहले श्रद्धा रखा था, ऐसा नहीं। पाण्डुलिपि के मुखपृष्ठ पर कामायनी (श्रद्धा) अ कित है। श्रद्धा के नाना स्वरूपों मे उसका काम गोत्रिय स्वरूप ही कवि को अभिहित रहा, इसलिए यह गोत्रवाची नाम कामायनी विहित हुआ है सृष्टिमूल काम के वृत्तिमचार समग्रता का निदर्शन यथावाचन जैसा कि काव्य मे हुआ है, 'कामायनी' द्वारा ही ध्वनित हो सकता था।

---

[1] कामायनी, आमुख, पृ० ७

अतः 'काम काव्य' का नाम 'कामायनी' कवि की दृष्टि से उसकी कल्पना के साथ ही साकार हुआ, किन्तु 'कामायनी' की तत्त्व-शक्ति श्रद्धा है अतएव कोष्ठक मे श्रद्धा लिखा गया।"[1] इस प्रकार काव्य का नामकरण पात्र एवं काव्य की मूल भावना पर आधृत होने के कारण सर्वथा उपयुक्त है।

२. सर्ग-संयोजन

'कामायनी' की सम्पूर्ण कथा १५ सर्गों मे विभक्त है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है जैसे चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इडा, स्वप्न, निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनन्द। 'कामायनी' के सर्ग-क्रम की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनके द्वारा कथानक के रूपक तत्त्व का विकास बडी सफलता से हुआ है। प्रत्येक सर्ग का मनोवैज्ञानिक आधार होते हुए भी कवि ने उनकी पूर्वापर अन्विति को बनाये रखा है। कथा का जो सूत्र एक सर्ग में समाप्त होता है, उसी का विकसित रूप आगामी सर्गों मे मिलता है। प्रवृत्तिमूलक विकास की दृष्टि से तो सर्गों का क्रम और भी अधिक उपयुक्त दिखाई देता है। सर्गों के नामकरण और संयोजन के प्रति 'कामायनी' का रचयिता कितना सजग रहा है, इसका अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि कवि ने सर्गों के नाम निश्चित करने के उपरान्त भी उनमे परिवर्तन किया था। उदाहरण के लिए 'कामायनी' के 'कर्म' 'संघर्ष' और 'निर्वेद' सर्गों के पूर्व नाम थे क्रमशः 'यज्ञ', 'युद्ध' और 'स्वीकृति' (सन्धि)।[2] इस परिवर्तन मे निश्चय ही कवि का कुछ उद्देश्य रहा होगा। जैसे 'यज्ञ' शब्द कर्म काण्ड का बोधक है और उसका एक सीमित अर्थ ही लगाया जा सकता है अतः कवि ने यज्ञ के स्थान पर व्यापक भाव वाले 'कर्म' शब्द का प्रयोग किया। इसी प्रकार 'युद्ध' शब्द बाह्य व्यापार का ही परिचायक है जब कि 'संघर्ष' शब्द के द्वारा अन्तर बाह्य दोनों प्रकार के संघर्षों की व्यंजना होती है। युद्ध की परिणति संधि मे होती है इसलिये सभवतः कवि ने पहले 'स्वीकृति' या 'सन्धि' नाम रखा था किन्तु कालान्तर मे उसने सोचा होगा कि 'संघर्ष' की समाप्ति के पश्चात् मानव जिस शांति भाव से पूरित होता है उसके आधार पर 'सन्धि' की अपेक्षा निर्वेद नाम ही उपयुक्त है। 'कामायनी' की सर्ग-संख्या काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी उचित है।

---

१. जनभारती, वर्ष १२, अंक १, सं० २०२१, पृ० ५
२. जनभारती (त्रैमासिक) वर्ष १२ अंक १ मे श्री रत्नशंकर प्रसाद का लेख- 'कामायनी मे सर्गों का नामपरिवर्तन, पृष्ठ ४

उपर्युक्त रसो के अतिरिक्त 'कामायनी' के 'रहस्य' और 'आनन्द' सर्ग के त्रिपुर-मिलन और नटर अद्भुत रस का भी आभास मिलता है। हास्य रस का है। इसका कारण कवि का चिन्तनशील एव गभी 'कामायनी' मे रस गाभीर्य एव उदात्त भाव-सृष्टि का मिलता है। 'कामायनी' की रस निष्पत्ति के लिए अ अनुभाव सचारी भावो आदि रस अवयवो की कवि ने की है। प्रसाद जी ऐसे रससिद्ध कवि हैं कि अनेक उद्दीपन आदि विभावो अथवा सचारी भावो की सम्यक हो गयी है। उदाहरण के लिए 'लज्जा, नामक स मार्मिक ढ ग से प्रस्तुत किया कि वह अकेला ही रसोद्रे 'कामायनी' की रस निष्पत्ति इतनी प्रखर और पुष्ट ह पाठक का सहज मे ही साधारणीकरण हो जाता है

कलापक्ष

नामकरण-'कामायनी' का नामकरण पात्रगत आ महाकाव्य की नायिका श्रद्धा है। श्रद्धा काम की पु कही गई है। जैसा कि प्रसाद जी ने स्वय लिखा है-' श्रद्धा कामगोत्र की बालिका है इसलिए श्रद्धा नाम के जाता है।'[1] यद्यपि काव्य मे नायक मनु हैं किन्तु उ मे एक मानव के रूप मे ही चित्रित किया गया है। है वह मनु की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की मे चरित्र की प्रमुखता और महत्ता की दृष्टि से काव्य सर्वथा उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त काव्य म हुए भी कवि ने 'कामायनी' नामकरण इसलिए भी श्रद्धा की अपेक्षा अधिक कमनीयता, रमणीयता और है। इस सम्बन्ध मे प्रसाद जी के पुत्र श्री कहते हैं कि प्रसाद जी ने इस काव्य का नाम पह पाण्डुलिपि के मुखपृष्ठ पर कामायनी (श्रद्धा) अ मे उसका काम गोत्रिय स्पष्ट हो कवि को अभिहित नाम कामायनी विहित हुआ है सृष्टिमूल काम के पलायन जैसा कि काव्य म हुआ है, 'कामायनी'

---

[1] कामायनी, आमुख, पृ० ७

का भी प्रयोग किया गया है; जैसे गैल, बयार, दाँव पिछला पहर, परछाई आदि। कुछ शब्दों को मधुर बनाने के लिये उनके रूप को भी विकृत किया है जैसे तीर का तीरे. मुस्कान का मुस्क्यान, आलस्य का आलस और निर्बल का निबल आदि। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा मे सजीवता उत्पन्न करने का कामायनीकार ने प्रयास किया है, जैसे—जीवन का दाँव हार बैठना, बीत गया खटका, मच जावेगी फिर अंधेर, उसके रोए खड़े हुए, छूट गया हाथ से आह तीर आदि।

कामायनी मे विदेशी शब्द प्रयोग का एकदम अभाव है। केवल 'आशा सर्ग' मे 'जीवन की छाती के दाग' नामक पंक्ति मे फारसी के 'दाग' शब्द का प्रयोग हुआ है। कही कही कामायनी की भाषा क्लिष्ट भी हो गई है। ऐसा वही हुआ है जहा कवि को गूढ़ भावो की रहस्यमय अभिव्यक्ति के लिए नवीन और अपरिचित प्रतीको का प्रयोग करना पड़ा है। 'कामायनी' की भाषा का विशिष्ट गुण उसकी भाव-सप्रेषण शक्ति हैं। सम्पूर्ण काव्य मे कही भी भाषा शिथिल नही हुई है। 'कामायनी' की भाषा प्रसादजी की ही नही सपूर्ण छायावाद की भाषा-शक्ति एव सामर्थ्य का प्रतिनिधित्व करती है।

भाषा की भाति 'कामायनी' की शैली मे छायावादी काव्य-शैली की प्राय. सभी विशेषताए विद्यमान हैं। प्रसाद जी की शैली मे अलकारो का बाहुल्य है, किन्तु उनके कारण शैली कही क्लिष्ट नही हुई है क्योंकि लाक्षणिक प्रयोगो के कारण शैली मे सजीवता आई है और मधुर शब्दो ने उसमे चमत्कार उत्पन्न किया है। कही कही 'कामायनी' मे गुंफित लम्बे लम्बे एव सयुक्त वाक्यो का भी प्रयोग है, जैसे 'लज्जा' सर्ग की ५० पक्तिया मिलकर एक वाक्य का निर्माण करती हैं। ऐसे स्थलो पर अर्थबोध मे बाधा उपस्थित होती है। प्रसाद जी ने प्रसगो के अनुरूप ही विभिन्न शैलियो का प्रयोग किया है। 'चिन्ता' सर्ग मे यदि गुम्फन शैली है तो 'लज्जा' सर्ग मे अलकृत, और 'इडा' सर्ग मे शैली का रूप प्रगीतात्मक हो गया है। 'कामायनी' की शैली की उल्लेखनीय विशेषता उसकी अभिव्यजना प्रणाली है कामायनीकार सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियो का सरलता के साथ अभिव्यक्त कर सका है। इसी मे कामायनी की भाषा-शैली की सफलता का रहस्य निहित है। निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि कामायनी की भाषा-शैली प्रसाद जी की स्वय की शैली है। उन्होने किसी परम्परागत काव्य शैली या पद्धति का अनुसरण न करके अपनी प्रतिभा और सामर्थ्य के बल पर शैली को भव्य, उदात्त एव गरिमापूर्ण बनाया है। डा० प्रेमशकर के शब्दो मे "भाषा-शैली सभी मे 'कामायनी' एक मौलिकता से अनुप्राणित है। उसकी काव्यात्मक शैली में छायावाद की समस्त विभूतियो को कवि ने एक महान कलाकार की भांति

३ भाषा-शैली

'कामायनी' में भाषा और शैली का उदात्त रूप मिलता है। 'कामायनी' की भाषा सम्पूर्ण काव्य गुणों से अलंकृत और शास्त्रीय दृष्टि से सम्पन्न है। उसमें गम्भीर भावों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य है 'कामायनी' में प्रसाद जी की भाषा का प्रौढतम रूप मिलता है। प्रसादजी ने शब्दों के सुन्दरचयन, अलकारों के उचित प्रयोग, व्यजनाशक्तिकी सार्थक अभिव्यक्ति और शैली की रमणीयता आदि के द्वारा भाषा को सब प्रकार से सुन्दर और सशक्त किया है। प्रसाद जी की भाषा की कतिपय विशेषताएं इस प्रकार हैं.—

'कामायनी' की भाषा का मुख्य गुण उसकी लाक्षणिकता है। इसके अतिरिक्त ध्वन्यात्मकता, चित्रमयता, गीतात्मकता, आलकारिता आदि अन्य विशेषताएं भी विद्यमान हैं। 'कामायनी' की भाषा में मूर्त भावों के अमूर्त चित्र अकित करने की अपूर्व क्षमता है; उदाहरणके लिये रजनी को 'इन्द्रजाल जननी' चिन्ता के लिये 'अभाव की चचल बालिका', आदि विशेषण पूर्ण प्रयोग भाषा सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं। छायावादी भाषा-पद्धति के अनुकूल प्रतीकात्मक प्रयोग भाषा की व्यजना शक्ति की अभिवृद्धि में सहायक हुए हैं। यथा—

'मधुमय बसत जीवन बन के, वह अंतरिक्ष की लहरों में।
कब आये थे तुम चुपके से, रजनी के पिछले पहरों में।
तुम्हे देखकर आते यों, मतवाली कोयल बोली थी।
उस नीरवता में अलसाई कलियों ने आखें खोली थी।'[1]

इन पक्तियों में बसत यौवन का, रजनी का पिछला पहर किशोरावस्था का, मतवाली कोयल सौन्दर्य की और कलिया प्रेम की प्रतीक हैं। 'चिन्ता' और 'लज्जा' के रूपचित्रों में भाषा की विचित्रमयता द्रष्टव्य है। आलकारिक प्रयोग तो 'कामायनी' में सर्वत्र प्राप्य हैं। 'कामायनी' की भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुणों की ही प्रधानता है। किन्तु 'सघर्ष' और 'ईर्ष्या' आदि सर्गों में ओज गुण भी दिखाई देता है। जहा तक शब्द चयन का सम्बन्ध है, प्रसाद जी ने खड़ी बोली भाषा के तत्सम परिष्कृत और शुद्ध रूपों को ही प्रयुक्त किया है।

अधिकाश स्थलों पर प्रसाद जी ने तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है जैसे सध्या का 'साझ' स्वप्न का 'सपना', किरण' का 'किरन', 'पीडा' के लिये 'पीर' आदि। परम्परागत साधारण बोलचाल के शब्दों

---

१ कामायनी काम सर्ग, पृ० ६३

का भी प्रयोग किया गया है; जैसे गैल, बयार, दांव पिछला पहर, परछाईं आदि। कुछ शब्दों को मधुर बनाने के लिये उनके रूप को भी विकृत किया है जैसे तीर का तीरे, मुस्कान का मुस्क्यान, आलस्य का आलस और निर्बल का निबल आदि। लोकोक्तियो और मुहावरो के प्रयोग द्वारा भाषा मे सजीवता उत्पन्न करने का कामायनीकार ने प्रयास किया है, जैसे—जीवन का दाव हार बैठना, बीत गया खटका, मच जावेगी फिर अधेर, उसके रोए खड़े हुए, छूट गया हाथ से आह तीर आदि।

कामायनी मे विदेशी शब्द प्रयोग का एकदम अभाव है। केवल 'आशा सर्ग' मे 'जीवन की छाती के दाग' नामक पक्ति मे फारसी के 'दाग' शब्द का प्रयोग हुआ है। कही कही कामायनी की भाषा क्लिष्ट भी हो गई है। ऐसा वही हुआ है जहा कवि को गूढ भावो की रहस्यमय अभिव्यक्ति के लिए नवीन और अपरिचित प्रतीको का प्रयोग करना पड़ा है। 'कामायनी' की भाषा का विशिष्ट गुण उसकी भाव-सप्रेषण शक्ति है। सम्पूर्ण काव्य मे कही भी भाषा शिथिल नही हुई है। 'कामायनी' की भाषा प्रसादजी की ही नही सम्पूर्ण छायावाद की भाषा-शक्ति एव सामर्थ्य का प्रतिनिधित्व करती है।

भाषा की भाति 'कामायनी' की शैली मे छायावादी काव्य-शैली की प्राय: सभी विशेषताए विद्यमान हैं। प्रसाद जी की शैली मे अलकारो का बाहुल्य है, किन्तु उनके कारण शैली कही क्लिष्ट नही हुई है क्योकि लाक्षणिक प्रयोगो के कारण शैली मे सजीवता आई है और मधुर शब्दो ने उसमे चमत्कार उत्पन्न किया है। कही कही 'कामायनी' मे गुम्फित लम्बे लम्बे एव सयुक्त वाक्यो का भी प्रयोग है, जैसे 'लज्जा' सर्ग की ५० पक्तिया मिलकर एक वाक्य का निर्माण करती हैं। ऐसे स्थलो पर अर्थबोध मे बाधा उपस्थित होती है। प्रसाद जी ने प्रसगो के अनुरूप ही विभिन्न शैलियो का प्रयोग किया है। 'चिन्ता' सर्ग मे यदि गुम्फन शैली है तो 'लज्जा' सर्ग मे अलकृत, और 'इडा' सर्ग मे शैली का रूप प्रगीतात्मक हो गया है। 'कामायनी' की शैली की उल्लेखनीय विशेषता उसकी अभिव्यजना प्रणाली है कामायनीकार सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियो को सरलता के साथ अभिव्यक्त कर सका है। इसी मे कामायनी की भाषा-शैली की सफलता का रहस्य निहित है। निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि कामायनी की भाषा-शैली प्रसाद जी की स्वय की शैली है। उन्होने किसी परम्परागत काव्य शैली या पद्धति का अनुसरण न करके अपनी प्रतिभा और सामर्थ्य के बल पर शैली को भव्य उदात्त एव गरिमापूर्ण बनाया है। डा० प्रेमशकर के शब्दो मे "भाषा-शैली सभी मे 'कामायनी' एक मौलिकता से अनुप्राणित है। उसकी काव्यात्मक शैली में छायावाद की समस्त विभूतियो को कवि ने एक महान कलाकार की भाति

सग्रहित कर दिया। वह उस युग का प्रतीक बन गई, जो कला और जीवन के सामजस्य मे प्रयत्नशील रहा है।'[1]

४ अलकार योजना

कामायनी' की भाषा-शैली के प्रसाधनो मे अलकारो का महत्वपूर्ण स्थान है। 'कामायनी' मे विभिन्न प्रकार के शब्दार्थालकारो का प्रयोग हुआ है। कामायनीकार ने अलकारो का प्रयोग केवल बाह्य सौन्दर्य की वृद्धि के लिये नही किया, अपितु अपनी गूढ सौंदर्यानुभूतियो को अभिव्यक्ति देने के लिये ही किया है। कुछ प्रमुख अलकारो के उदाहरण निम्न प्रकार है —

अनुप्रास

क्षितिज-भाल का कु कुम मिटता मलिन कालिमा के कर से,
कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियो पर मडराती।[2]

यमक

तुम फूल उठोगी लतिका-सी, कम्पित कर सुख-सौरभ तरग,
मै सुरभि खोजता भटकू गा, बन बन बन कस्तूरी-कुरग।[3]

श्लेष

इ द्रनील मणि महा चषक था, सोमरहित उल्टा लटका।
आज पवन मृदु सास ले रहा, जैसे बीत गया खटका।[4]

उपमा

उषा सुनहले तीर बरसती,
जय लक्ष्मी सी उदित हुई।[5]

उत्प्रेक्षा

बार बार उस भीषण रव से, कपती धरती देख विशेष,
मानो नीड व्योम उतरा हो, आलिगन के हेतु अशेष।[6]

---

१. डा० प्रेमशकर-प्रसाद का काव्य, पृ० ४२५
२ कामायनी, स्वप्न सर्ग, पृ० १७५
३ वही, ईर्ष्या सर्ग, पृ० १५३
४ वही, आशासर्ग, पृ० २४
५ वही वही ,पृ० २३
६ वही, चिता सर्ग, पृ० १४

रूपक

सध्या-घनमाला सी सुन्दर, ओढ़े रग-बिरंगी छीट,

गगन-चुम्बिनी शैल श्रेणिया, पहने हुए तुषार किरीट।[1]

विरोधाभास

लाली बन सरल कपोलोमे, आखो मे अजन-सी लगती[2]

अथवा

जागृत था सौन्दर्य यद्यपि वह, सोती थी सुकुमारी।[3]

मानवीकरण

'मृत्यु, अरी चिर-निद्रे! तेरा अक हिमानी-सा शीतल,[4]

अथवा

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का, आज लगा हसने फिर से।[5]

उपर्युक्त अलकारो के अतिरिक्त सन्देह दृष्टात, विषम, उल्लेख, वीप्सा आदि अनेक अलकारो का प्रयोग काव्य मे हुआ है। मूर्त्त के लिये अमूर्त्त और अमूर्त्त के लिये मूर्त्त उपमान भी कामायनीकार ने प्रस्तुत किये हैं। 'कामायनी' के अलकारो मे कही भी कृत्रिमता नही है। वे रमणीय, सरस और काव्य के कला-पक्ष की अभिवृद्धि मे सहायक हैं।

५. छन्द-विधान

'कामायनी' मे प्राचीन और नवीन दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग हुआ है। प्राचीन छन्दो मे ताटक, पादाकुलक, रूपमाला, सार, रोला आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है। 'कामायनी' का सबसे प्रमुख छद ताटक है। 'चिन्ता' 'आशा,' 'स्वप्न' और 'निर्वेद' सर्गो मे इसी का प्रयोग हुआ है। 'श्रद्धा' सर्ग मे शृगार

---

१ कामायनी, आशा सर्ग, पृ० ३०
२ वही , लज्जा सर्ग, पृ० १०३
३ वही , कर्म सर्ग, पृ० १२५
४ वही , चिंता सर्ग, पृ० १८
५ वही , आशा सर्ग , पृ० २३

तथा 'काम' और' लज्जा' सर्ग मे पादाकुलक छन्दो का प्रयोग हुआ है। 'वासना' मे रूपमाला, 'सघर्ष' मे रोला तथा 'कर्म' मे मार छन्द का प्रयोग है। कुछ सर्गो मे मिश्रित छन्दो का भी प्रयोग है। उदाहरण के लिये 'ईर्ष्या' सर्ग के प्रथम चरण मे पादाकुलक और द्वितीय चरण मे पद्धरि छन्द का प्रयोग हुआ है। पादाकुलक और पद्धरि दोनो मे सोलह मात्राए होती है और दोनो के सयोग से प्रसाद जी ने मिश्रित छन्द का निर्माण किया है। जैसे

पल भर की उस चपलता ने, खो दिया हृदय का स्वाधिकार।
श्रद्धा की अब वह मधुर निशा, फैलाती निष्फल अधकार।[1]

'आनन्द' सर्ग मे प्रसाद जी के 'आसु' काव्य की भाति एक सगीतात्मक छन्द का प्रयोग हुआ है। इसमे कुल मिलाकर २८ मात्राए होती है जिनमे १४-१४ के अन्तर का विराम दिया जाता है। जैसे

'चलता था धीरे धीरे, वह एक यात्रियो का दल,
सरिता के रम्य पुलिन मे, गिरि पथ से, ले निज सम्बल।'[2]

'कामायनी' के छन्द-विधान मे प्रसाद जी ने सामान्यत प्राचीन मधुर छन्दो को प्रयोग मे लिया है। प्रसाद जी ने प्रत्येक सर्ग के अन्त मे छन्द परिवर्तन करने की शास्त्रीय पद्धति का अनुपालन नही किया है। उनके छन्द-विधान की विशेषता यह है कि वह भाषा, भाव एव विषयानुरूप है। आलकारिक भाषा के कारण अनेक स्थलो पर छदो मे सगीतात्मकता के गुण का भी समावेश हो गया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप मे शिल्प तत्व की दृष्टि से 'कामायनी' सम्पूर्ण हिन्दी काव्य-धारा की श्रेष्ठतम काव्यकृति है। कलात्मक उपलब्धियो की दृष्टि से उसे हिन्दी की या भारतीय काव्य कृतियो मे ही नही, वरन् विश्व-काव्य की श्रेष्ठ कृतियो के साथ रखकर देखा-परखा जा सकता है। सर्ग-सयोजन, वस्तु-वर्णन, भाव-चित्रण, सौन्दर्य-निरूपण, प्रकृति-चित्रण भाषा-शैली की रूप सज्जा, मनस्तत्व की प्रतिष्ठा, अलंकार-योजना, छन्द-विधान आदि सभी दृष्टियो से 'कामायनी' के शिल्प तत्व का सुन्दर सगठन हुआ है। 'कलात्मक काव्य सौष्ठव की व्यापकता

---

१. कामायनी, ईर्ष्या सर्ग, पृ० १३९
२. वही , आनन्द सर्ग, पृ० २७०

और महत्ता के कारण 'कामायनी' महाकाव्यो के इतिहास मे एक सर्वथा नवीन एव स्मरणीय अध्याय जोडती हुई विश्वकाव्य की सीमा मे प्रवेश करती है।'[1]

'कामायनी' का कला-शिल्प इतना उन्नत और उदात्त है कि वह कभी भी धूमिल नही हो सकता। प्रसाद जी ने काव्य की विस्तृत पट भूमि पर उस विराट सधी तूलिका से अपने (कामायनी के) चित्र आके हैं, जिनके रग न कभी धु धले हो सकते है और न कभी रेखाए ही मिट सकती है।[2]

अस्तु, कहा जा सकता है कि कामायनी के समान काव्य-गौरव और कलात्मक गरिमा लेकर रची जाने वाली काव्य-कृति की हिन्दी मे आज भी प्रतीक्षा है।

कुरुक्षेत्र

प्रकृति-चित्रण

'कुरुक्षेत्र' एक विचार प्रधान महाकाव्य है। प्रस्तुत काव्य का समस्त भावात्मक सौन्दर्य उसकी विचार कल्पना को ही लेकर है। काव्य मे प्रकृति चित्रण किसी विशेष पद्धति या प्रणाली को आधार बनाकर नही हुआ है। न ही प्रकृतिनिरूपण कवि का ध्येय ही है। प्रसगवश काव्य मे प्रकृति के कतिपय चित्र अवश्य आगये हैं, जिनमे कवि के प्रकृति-चित्रण-कौशल का साकेतिक परिचय अवश्य मिल जाता है। काव्य मे चित्रित प्रकृति का स्वरूप भीषण और शान्तिमय ही है। द्वितीय सर्ग मे भीष्म पितामह युधिष्ठिर से झझा (तूफान) के प्रलयकारी रूप का वर्णन निम्नाकित शब्दो मे करते हैं :—

'औ' युधिष्ठिर से कहा—तूफान देखा है कभी ?
किस तरह आता प्रलय का नाद वह करता हुआ,
काल-सा वन मे द्रुमो को तोडता, झकझोरता,
और मूलोच्छेद कर भू पर सुलाता क्रोध से
उन सहस्रो पादपो को जो कि क्षीणाधार हैं ?
रुग्ण शाखाए द्रुमों की हरहरा कर टूटती,
टूट गिरते शावको के साथ नीड विहंग के,
अ'ग भर जाते वनानी के निहित तरु, गुल्म से,
छिन्न फूलो के दलो से, पक्षियो की देह से।[3]

---

१. गगाप्रसाद पाडे—बीसवी शती की श्रेष्ठतम काव्य-कृति कामायनी पृ० २५
२. शची रानी गुर्टु—वैचारिकी, पृ० ११६
३ कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग, पृ० २१

पचम सर्ग के प्रारम्भ मे कवि ने प्रकृति के रौद्र रूप का एक और चित्र अ कित किया है —

'पर, हाय, यहाँ भी धधक रहा अम्बर है,
उड रही पवन मे दाहक, लोल लहर है,
कोलाहल-सा आ रहा काल, गह्वर से,
वाडव का रोर कराल क्षुब्ध सागर से।
सघर्ष-नाद वन-दहन-दारू का भारी,
विस्फोट वह्नि गिरि का ज्वलन्त भयकारी।'[१]

प्रकृति के सवेदनात्मक रूप का भी चित्रण कवि ने किया है। महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर पृथ्वी और आकाश दोनो विपण्ण है। दिशाओ मे गम्भीर उदासी है —

'रण शान्त हुआ, पर, हाय अभी भी
धरा अवसन्न, डरी हुई है,
नर-नारियो के मुख-देश पै नाश की
छाया-सी एक पडी हुई है,
धरती नभ दोनो विपण्ण, उदासी
गभीर दिशा मे भरी हुई, है
कुछ जान नही पडता, धरणी यह
जीवित है कि मरी हुई है।[२]

'कुरक्षेत्र' मे दिनकर जी ने प्रकृति के चित्रण की अपेक्षा उसकी शक्ति का वर्णन अधिक किया है। एक प्रकार से प्रकृति नियति का ही दूसरा रूप है। वह मानव कल्याण के सम्पूर्ण वैभव को एक कोष की भाति सयोजित किये हुये है। मानव सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था मे प्रकृति की सम्पूर्ण देन नि शुल्क रूप से सभी को प्राप्त थी। भूमि भी उसी प्रकार सभी को सुलभ थी जैसे आज जल और अनिल निर्विघ्न प्राप्त है।[3] किन्तु मनुष्य प्रकृति पर अधिकार करता गया और आज स्थिति यह है कि वारि, विद्युत, वायु, ताप सब पर उसका अधिकार है

१ कुरक्षेत्र, पचम सर्ग, पृ० ७५
२. वही, पचम सर्ग, पृ० ८४
३. वही, सप्तम सर्ग, पृ० ११८

'प्रकृति पर सर्वत्र है, विजयी पुरुष आसीन
है बधे नर के करो मे वारि, विद्युत, भाप,
हुक्म पर चढता-उतरता है पवन का ताप।
है नही बाकी कही व्यवधान,
लाघ सकता नर सरित्, गिरि, सिन्धु एक समान।'[1]

यही नही आज पृथ्वी का प्रत्येक उपकरण मनुष्य की पहुच मे है :—

'यह मनुज,
जिसका गगन मे जा रहा है यान,
कापते जिसके करो को देख कर परमाणु।
खोल कर अपना हृदय गिरि, सिन्धु, भू आकाश
है सुना जिसको चुके निज गुह्यतम इतिहास।
× × ×
एक लघु हस्तामलक यह भूमि मडल गोल,
मानवो ने पढ लिए सब पृष्ठ जिसके खोल।'[2]

सप्तम सर्ग मे प्रकृति के अनन्त कोष का वर्णन करते हुये कवि ने कहा है कि प्रकृति मे वैभव का अनन्त कोष है। प्रकृति-सम्पदा का निरन्तर उपभोग करने पर भी वह कभी समाप्त नही हो सकती। पृथ्वी से आकाश तक जल, प्रकाश, और पवन न कभी घटते हैं न सिमटते हैं। पृथ्वी अन्न, धन, फल, फूल और रत्न उगलने वाली है, पर्वतो मे रत्न भरे हुये हैं। समुद्र मे मुक्ता, विद्रुम और प्रवाल बिखरे हुये हैं; उनका उपभोक्ता केवल मानव है —

'यह धरती फल, फूल, अन्न, धन, रतन उगलाने वाली,
यह पालिका मृगव्य जीव की, अटवी सघन निराली।
तु ंगशृ ंग ये शैल कि जिनमे, हीरक-रत्न भरे हैं,
ये समुद्र, जिसमे मुक्ता, विद्रुप, प्रवाल बिखरे हैं।'[3]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र मे प्रकृति के सुन्दर संश्लिष्ट चित्र भी हैं किन्तु बहुत कम। इन चित्रो मे दिनकर जी के प्रकृति-चित्रण-कौशल का परिचय तो मिलता ही है साथ ही प्रकृति के सम्बन्ध मे उनकी विचारधारा का भी परिचय मिल जाता है।

---

१. कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग, पृ० ९६
२. वही , वही , पृ० ९९
३. वही, सप्तम सर्ग, पृ० ११२–१३

रस परिपाक

'कुरुक्षेत्र' मे सुनिश्चित प्रवन्ध-योजना का अभाव होने के कारण यह कहना बहुत कठिन है कि काव्य मे प्रधान रस कौन-सा है। वस्तुत. कुरुक्षेत्र मे किसी न किसी भाव की योजना प्रत्येक काव्य खण्ड मे होती गयी है यही 'भाव' अन्ततः रस बनते गये है। 'कुरुक्षेत्र' मे सभी रस तो नही, हा वीर, वीभत्स, भयानक, रौद्र, करुण और शान्त रसो की व्यजना अवश्य उल्लेखनीय है। सम्पूर्ण रसो की स्थिति पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो काव्य मे वीर रस की एक अविच्छिन्न धारा दिखाई देती है। जिसके आधार पर काव्य मे वीर रस की प्रधानता एक सीमा तक स्वीकार की जा सकती है।

वीर रस

भीष्म पितामह और युधिष्ठिर के सवादो मे अनेक स्थलो पर वीर रस की सुन्दर व्यजना हुयी है। भीष्म पितामह का निम्नाकित कथन द्रष्टव्य है.—

"कायरो-सी बात कर मुझको जला मत, आज तक,
है रहा आदर्श मेरा वीरता, बलिदान ही,
जाति-मन्दिर मे जलाकर शूरता की आरती,
जा रहा हू विश्व से चढ युद्ध के ही यान पर।"[1]

वीभत्स रस

"रुधिर-सिक्त, अंचल मे नर के खण्डित लिए शरीर,
मृतवत्सला विपण्ण पडी है धरा मौन, गम्भीर।
सडती हुई विपाक्त गन्ध से दम घुटता-सा जान,
दवा नासिका निकल भागता है द्रुतति पवमान।"[2]

करुण रस

द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ मे भीष्म पितामह के समक्ष युधिष्ठर अपने वन्धु बान्धवो के निधन पर जो शोक भाव व्यक्त करते हैं उसमे करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है:—

"वीर-गति पाकर सुयोधन चला गया है,
छोडे मेरे सामने अशेष ध्वस का प्रसार,
छोड मेरे हाथ मे शरीर निज प्राणहीन,
व्योम मे बजाता जय-दुन्दुभि-सा बार-बार,

---

१. कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग, पृ० २७
२ वही, पचम सग, पृ० ८१, ८२

ग्रौर यह मृतक शरीर जो बचा है शेष,
चुप-चुप मानो पूछता है मुझ से पुकार–
विजय का एक उपहार मे बचा हू, बोलो,
जीत किसकी है ग्रौर किसकी हुई है हार ?''[१]

शान्त रस

काव्य के पचम सर्ग मे युधिष्ठर के मन मे जिस निर्वेद भाव की जागृति होती है अर्थात् सासारिक वासनाओ के प्रति जो विरक्ति का भाव उत्पन्न होता है उसमे शान्त रस की सुन्दर अभिव्यजना है —

"यह होगा महारण राग के साथ युधिष्ठर हो विजयी निकलेगा
नर सस्कृति रण छिन्न लता पर, शान्त सुधा फल दिव्य फलेगा ।
कुरुक्षेत्र की धूल नही इति पथ की, मानव ऊपर ग्रौर चलेगा
मनुका यह पुत्र निराश नही, नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा ।''[२]

वात्सल्य रस

काव्य के चतुर्थ सर्ग मे भीष्म पितामह जहा यह कहते हैं कि युद्ध भूमि मे वे अर्जुन के बाण से गिर गय थे । वे पुत्र वत स्नेह के अधीन थे । उनके इस कथन मे वात्सल्य भाव की सुन्दर झाकी दिखाई देती है.—

"प्रेम अधीर पुकार उठा, मेरे शरीर से, मन से–
लो, अपना सर्वस्व पार्थ, यह मुझको मार गिराओ,
अब है विरह असह्य, मुझे, तुम स्नेह-धाम पहुचाओ ।''[३]

शृ गार, अद्भुत ग्रौर हास्य नामक रसो का कुरुक्षेत्र मे अभाव है । कुरुक्षेत्र मे किसी एक रस के पूर्ण परिपाक के अभाव मे भी काव्य मे स्थान स्थान पर इतने अधिक भावमय स्थल हैं कि प्रस्तुत काव्य विचार प्रधान होते हुए भी पाठक को रससिक्त किए रहता है । कुरुक्षेत्र की रस-योजना में वीर रस की प्रमुखता है । महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो की दृष्टि से वीर, शान्त या शृ गार मे किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिये ।

---

१ कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग, पृ० १७
२. वही, पचम सर्ग, पृ० ९४
३ वही. चतुर्थ सर्ग, पृ० ६७

भाषा शैली

कुरुक्षेत्र' में साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। उसकी भाषा के स्वरूप-निर्माण में सुन्दर शब्द-चयन, लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग, चित्रोपमता, लाक्षणिकता आदि का विशेष योगदान रहा है।

कुरुक्षेत्र' की भाषा में एक ओर वलक्ष-शास्ति, त्रस्त, न्यास, लेलिह्य ऋचा मर्मूर्ष आदि संस्कृत शब्दों का प्रयोग है तो दूसरी ओर सिवा, सनसनी, लबालब लाचार, तूफान, निशान, तस्वीर, दाग, मंजिल आदि उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इनमें से कतिपय को छोड़कर शेष शब्द प्रचलित हैं और उनका प्रयोग भाषा के स्वरूप को सशक्त बनाने के लिए ही किया गया है।

'शब्द-चयन' की सुन्दर और उपयुक्त योजना द्वारा कवि ने भाषा को सुगठित एवं शक्तिशाली बनाया है। कुरुक्षेत्र में कोमल और कठोर दोनों प्रकार के भावों की व्यंजना हुयी है। तदनुसार ही भाषा का प्रयोग हुआ है। कवि को जहा जिस प्रकार के भाव व्यक्त करने हैं उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए निम्न दो स्थल द्रष्टव्य हैं —

"तप्त होता क्षुद्र अन्तर्व्योम पहले व्यक्ति का,
और तब उठता धधक समुदाय का आकाश भी,
क्षोभ से, दाहक घृणा से, गरल, ईर्ष्या, द्वेष से।"[1]

अथवा

"बही न कोमल वायु, कुंज, मन का था कभी न डोला,
पत्तों की झुरमुट में छिपकर, विहग न कोई बोला।"[2]

उपर्युक्त उद्धरणों में भाषा के दोनों रूप द्रष्टव्य हैं।

ओज 'कुरुक्षेत्र' की भाषा का प्रमुख गुण है। सम्पूर्ण काव्य में ओज की स्रोतस्विनी सी प्रवाहित दिखाई देती है। यथा प्रसंग भाषा-शैली सहज और प्रसाद गुण सम्पन्न भी है। भाषा में चित्रोपमता भी है; जैसे—

"शरों की नोक पर लेटे हुए गजराज-जैसे,
थके, टूटे गरुड़-से, स्रस्त पन्नगराज-जैसे,

---

१. कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग, पृ० २२
२. वही, षष्ठम सर्ग, पृ० ६७

मरण पर वीर-जीवन का अगम बल-भार डाले,
दबाते काल को, सायास संज्ञा को सभाले।"[1]

"कुरुक्षेत्र" के कवि ने शब्दो की आवृति द्वारा भी भाषा की शक्ति को बढ़ाया है, जैसे—

शूर धर्म है अभय दहकते, अगारो पर चलना,
शूर धर्म है शोणित असि पर, धर कर चरण मचलना।
शूर धर्म कहते है छाती तान, तीर खाने को,
शूर धर्म कहते हँस कर, हालाहल पी जाने को।"[2]

अथवा

'एक शुष्क कंकाल, मृतो के स्मृति-दर्शन का शाप,
एक शुष्क ककाल, जीवितो के मन का सताप।
एक शुष्क कंकाल, युधिष्ठिर की जय की पहचान
एक शुष्क ककाल, महाभारत का अनुपम दान।'[3]

काव्य मे कतिपय स्थलों पर भाव शक्ति को उद्दीप्त करने वाले प्रसग-गर्भत्व के भी अच्छे उदाहरण मिल जाते है, जैसे :—

भीष्म हों अथवा युधिष्ठिर, याकि हो भगवान,
बुद्ध हो कि अशोक, गाधी हो कि ईसु महान'[4]

लोकोक्तियो एवं मुहावरो के प्रयोग से भी 'कुरुक्षेत्र' की भाषा में सजीवता उत्पन्न की गई है। जैसे—

१. 'दात अपने पीस अन्तिम क्रोध मे।'
२. 'ध्वस-अवशेष पर सिर धुनता है कौन।'
३ 'सबकी सुबुद्धि पितामह हाय मारी गयी।'
४. 'आगया हो द्वार पर ललकारता।'

'कुरुक्षेत्र' मे अनेक शैलियो का प्रयोग हुआ है। जैसे—प्रश्न शैली' दृष्टान्त शैल, तर्क शैली मनोवैज्ञानिक शैली, तुलनात्मक शैली, पुनरावृत्ति-शैली,

१ कुरुक्षेत्र, पृ० ४६
२. वही, पृ० ६०
३. वही, पचम सर्ग, पृ० ८३
४ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ९५

वर्णनात्मक-शैली, नाट्कीय शैली आदि। इनमे से कतिपय के उदाहरण इस प्रकार है :-

प्रश्न शैली—

इसी शैली का काव्य मे सबसे अधिक प्रयोग हुआ है:-
'किसे ज्ञात था खेल खेल मे यह विनाश छाएगा,
भारत का दुर्भाग्य छत पर चढा हुआ आएगा।'[१]

अथवा

'जन्मा है वह जहा, आज जिस पर उसका शासन है,
क्या है यह घर वही ? और यह उसी व्यास का धन है।'[२]

दृष्टांत शैली—

'हिंसा का आघात तपस्या ने कब, कहां सहा है ?
देवो का दल सदा दानवो से हारता रहा है।'[३]

तर्क शैली—

सप्तम सर्ग मे भीष्म पितामह ने भाग्यवाद का खण्डन करते हुए अनेक तर्क प्रस्तुत किए हैं। साथ ही कर्मवादी मनुष्य के परिश्रम के समर्थन मे अनेक प्रमाण भी दिए हैं वहा इस शैली का प्रयोग हुआ है, जैसे—

'पूछो किसी भाग्यवादी से, यदि विधि-अंक प्रबल है,
पद पर क्यो न देती स्वय, वसुधा निज रतन उगल है ?

+ + +

'नर-समाज का भाग्य एक है, वह श्रम, वह भुज-बल है,
जिसके सम्मुख झुकी हुई-पृथिवी, विनीत नभ-तल है।'[४]

---

१. कुरुक्षेत्र, चतुर्थ सर्ग, पृ० ५५
२. वही, सप्तम सर्ग, पृ० ११५
३. वही, तृतीय सर्ग, पृ० ३५
४. वही, सप्तम सर्ग. पृ० ११५. ११६

मनोवैज्ञानिक–शैली

कवि ने जिन स्थलों पर भीष्म पितामह और धर्मराज युधिष्ठिर के मानसिक संघर्ष को अभिव्यक्त किया है वहाँ इस शैली का प्रयोग हुआ है, भीष्म का कथन है कि–

'समझा था मिट गया द्वन्द्व, पाकर यह न्याय-विभाजन
ज्ञात न था है कहीं कर्म में, कठिन स्नेह का बन्धन।'[1]

तुलनात्मक शैली

तृतीय सर्ग में वास्तविक और बनावटी शान्ति का निरूपण करते समय इस शैली का प्रयोग किया गया है।

पुनरावृत्ति शैली

कहीं कहीं एक वाक्यांश की अनेक बार आवृत्ति करके इस शैली का कवि ने परिचय दिया है।[2]

नाटकीय एवं वर्णनात्मक शैलियों का प्रयोग काव्य में बहुत कम हुआ है। नाटकीय शैली में, जैसे–पंचम सर्ग की अन्तिम पंक्तियों में धर्मराज युधिष्ठिर कहते हैं –

'मनु का यह पुत्र निराश नहीं, नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।'[3]

षष्ठ सर्ग के प्रारम्भ में कवि उन्हीं शब्दों की आवृत्ति करते हुए प्रश्न करता है –

'धर्म का दीपक, दया का दीपक,
कब जलेगा, कब जलेगा, विश्व के भगवान।'[4]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में विभिन्न-शैलियों के प्रयोग द्वारा काव्य के उत्कर्ष में तो वृद्धि हुयी ही है। साथ ही शैलियों की प्रचुरता एवं सम्पन्नता को देखते हुये यह भी ज्ञात होता है कि, "कुरुक्षेत्र का कवि शैलियों का धनी है।"[5]

---

१ कुरुक्षेत्र, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६५, ६६
२ वही, पंचम सर्ग, पृ० ८३
३ वही, पृ० ४९
४. वही, पृ० ९५
५ कुरुक्षेत्र मीमांसा, पृ० २०३

अलंकार–योजना

'कुरुक्षेत्र' मे अर्थालकार एव शब्दालकार दोनो का ही प्रयोग हुआ है। विशेषरूप से अर्थालकारो की योजना 'दिनकर' के काव्य–कौशल की परिचायक है। अलकारो के प्रयोग से भाषा के रूप-सौन्दर्य मे तो अभिवृद्धि हुयी है, साथ ही ये भाव व्यजना मे भी सहायक हुए है। कुछ प्रमुख अलकारो के उदाहरण इस प्रकार है —

उपमा

'शरो की नोक पर लेटे हुए गजराज जैसे,
थके टूटे गरुड से त्रस्त पन्नगराज जैसे।'[१]

रूपक

'नर नारियो के मुख देश पै नाश की,
छाया सी एक पडी हुई है।'[२]
अथवा
'नर सस्कृति की रण छिन्न लता पर,
शान्ति सुधा फल दिव्य फलेगा।'[३]

उत्प्रेक्षा

'बाहर से भाग कक्ष मे जो छिपता हूँ कभीः
तो भी सुनता हूँ अट्टहास क्रूर काल का,
और सोते-जागते मे चौंक उठता हूँ मानो,
शोणित पुकारता हो अर्जुन के लाल का।'[४]

सन्देह

'ऋत्विक् पढते है वेद कि ऋचा दहन की ?
प्रशमित करते या ज्वलित वह्नि जीवन की ?
है धधिदा धूम प्रतिमान जयी के यश का ?
या धुधुआता है रोष महीप विदश का ?[५]

---

१ कुरुक्षेत्र, पृ० ४६
२ वही पृ० ८४
३. वही, पृ० ९४
४ वही, पृ० १९
५. वही पृ० ७६

अतिशयोक्ति

'बात पूछने को विवेक से जभी वीरता जाती,
पी जाती अपमान पतित हो, अपना तेज गवाती।'[१]

अपन्हुति

'भरी सभा मे लाज द्रौपदी की न गई थी लूटी,
वह तो यहीं कराल आग थी निर्भय होकर फूटी।'[२]

असगति

'ज्यो-ज्यों साडी विवश द्रौपदी, की खिचती जाती थी,
त्यो-त्यो वह आवृत, दुरग्नि वह नग्न हुई जाती थी।'[३]

उपयु`क्त अलकारो के अतिरिक्त 'कुरुक्षेत्र' मे और भी बहुत से अलकारो के (जैसे, विरोधाभास, दृष्टान्त, विशेषोक्ति, सहोक्ति एव उल्लेख आदि सुन्दर प्रयोग है। शब्दालकारो मे कही कही अनुप्रास और वक्रोक्ति का प्रयोग अवश्य मिलता है किन्तु बहुत कम। मानवीयकरण जैसे नवीन अलकारो के प्रयोग भी काव्य मे मिल जाते हैं। पचम सर्ग मे विजय का मानवीयकरण करते हुए कवि ने इस अलकार का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है :—

'अयि विजय! रुधिर से क्लन्न वसन है तेरा?
यम-दष्ट्रा से क्या भिन्न दसन है तेरा?
लपटों की झालर झलक रही अचल मे,
है घुमा ध्वस का भरा कृष्ण कुन्तल मे।'[४]

प्रतीक-विधान

दिनकर जी ने कुरुक्षेत्र मे अनेक सुन्दर प्रतीको का प्रयोग किया है जो कोमल और कठोर भावो की अभिव्यक्ति मे पूर्णत सहायक है। जैसे—

'पर, हाय, यहाँ भी धधक रहा अम्बर है,
उड रही पवन मे दाहक, लोल लहर है,
कोलाहल-सा आ रहा काल-गह्वर से,
वाडव का रोर कराल क्षुब्ध सागर से।'[५]

---

१. कुरुक्षेत्र, पृ० ६१
२ वही, चतुर्थ सर्ग पृ ५६
३. वही. वही, पृ० ५७
४. वही, पचम सर्ग पृ० ७९
५, वही, पृ० ७५

यहा काल गह्वर, मृत्यु और वाडव भयकर अमर्ष के प्रतीक हैं।

कोमल प्रतीको की भी काव्य मे योजना हुयी है। जैसे—छठे सर्ग मे निम्नांकित काव्यांश दृष्टव्य है।

"चाहिए उनको न केवल, ज्ञान, देवता हैं मागते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान
मोम-सी कोई मुलायम चीज, ताप पाकर जो उठे मन मे पसीज-पसीज,
प्राण के झुलसे विपिन मे फूल कुछ सुकुमार,
ज्ञान के मरू मे सुकोमल भावना की धार,
चादनी की रागिनी, कुछ भोर की मुस्कान,
नीद मे भूली हुई बहती नदी का गान,
रग मे घुलता हुआ खिली कली का राज,
पत्तियो पर गूजती कुछ ओस की आवाज,
आसुओ मे दर्द की गलती हुई तस्वीर,
फूल की, रस में बसी-भीगी हुई, जजीर।"[१]

यहा 'चादनी की रागिनी', 'भोर की मुस्कान' आदि कोमल भावनाओं के सुन्दर प्रतीक हैं।

छन्द-विधान

कुरुक्षेत्र मे विभिन्न प्रकार के छन्दो का प्रयोग हुआ है। अधिकतर मात्रिक छन्दो को ही दिनकर जी ने प्रस्तुत रचना में प्रयुक्त किया है। जैसे सार, रूपमाला, आनन्दवर्द्धक, राधिका, सरसी, वीर आदि। इनके अतिरिक्त सवैया, दुर्मिल, कुन्दलता, रूप घनाक्षरी कवित्त एव दोहा आदि छन्दो का भी काव्य मे प्रयोग हुआ है।

कुरुक्षेत्र के तृतीय, चतुर्थ और सप्तम सर्गो म सार नामक छन्द का प्रयोग किया गया है, जैसे—

"पापी कौन ? मनुज से उसका, न्याय चुराने वाला,
या कि न्याय खोजते विघ्न का, शीश उडाने वाला।"[२]

रूपमाला छन्द का प्रयोग कवि ने षष्ठ सर्ग मे किया है, जैसे—

"व्योम मे पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय,
पर, न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय।"[३]

---

१. कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग, पृ० ९७
२. वही, तृतीय सर्ग, पृ० ४५
३ वही, षष्ठ सर्ग पृ० १०१

कवित्त और सवैयो का प्रयोग द्वितीय, तृतीय, पचम एव सप्तम सर्गों म हुआ है। सम्पूर्ण काव्य मे एक दोहे का प्रयोग सप्तम सर्ग मे हुआ है।

दिनकर जी ने उन्ही छन्दो का प्रयोग किया है जो काव्य के प्रवाह एव गति को बनाये रखने मे सक्षम हैं। वर्णिक वृत्तो का प्रयोग भी काव्य-भाषा के प्रवाह मे साधक हुआ है। कही कही कवि ने मुक्तक छन्द का भी प्रयोग किया है। जैसे काव्य के प्रारम्भ मे ही—

"वह कौन रोता है वहा,
इतिहास के अध्याय पर,

जिसमे लिखा है, नौजवानो के लहू का मोल है
प्रत्यय किसी बूढे कुटिल नीतिज्ञ के व्यवहार का,
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है।"[1]

उपर्युक्त काव्य-पक्तियो मे यद्यपि मात्राओ या तुकान्तता का कोई नियम नही है किन्तु लय के कारण ही छन्द की सृष्टि हुयी है। 'कुरुक्षेत्र' के कवि न प्रसग और भाव के अनुरूप विविध छन्दो का प्रयोग किया है। जो काव्य के छन्द-विधान की सफलता का परिचायक है।

नामकरण

'कुरुक्षेत्र' का नामकरण स्थान की दृष्टि से हुआ है। उसी प्रकार जै साकेत, आर्यावर्त एव हल्दी घाटी आदि महाकाव्यो के नाम स्थानो से सम्बन्धित है कुरुक्षेत्र कुरु प्रदेश को कहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कुरुक्षेत्र वह स्थान है जहा कौरवो और पाण्डवो का विश्व विख्यात युद्ध हुआ था। प्रस्तुत काव्य का मूल प्रतिपाद्य युद्ध, कुरुक्षेत्र का युद्ध ही है। काव्य मे जिन विचारधाराओ एव तथ्यो की व्यजना हुयी है वे सब भी कुरुक्षेत्र के युद्ध को ही आधार बनाकर। इस दृष्टि से काव्य का नामकरण उपयुक्त ही है। महाराज भीष्म पितामह भी युद्ध क्षेत्र मे ही शरशैया पर लेटे हुये हैं और वहो धर्मराज युधिष्ठिर उनसे वार्तालाप करते है। इस दृष्टि से काव्य का सम्पूर्ण विधान कुरुक्षेत्र की भूमि पर ही होता है। अस्तु, काव्य के प्रतिपाद्य एव विधान दोनो ही दृष्टियो से यह नाम उपयुक्त है।

---

१ कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग, पृ० १०१

सर्ग-विधान

सम्पूर्ण काव्य सात सर्गों मे विभाजित है। सर्गों का नामकरण न करके केवल उनकी संख्या ही दी गयी है। छठे सर्ग के अतिरिक्त शेष सभी सर्गों की वस्तु-योजना प्रासंगिक दृष्टि से पूर्वापर नियोजित एवं सुसम्बद्ध है। छठे सर्ग का प्रतिपाद्य और विषय कुछ पृथक् सा प्रतीत होता है। किन्तु वैचारिक दृष्टि से इस सर्ग का अन्य सर्गों मे सम्बन्ध स्पष्टतः नियोजित किया जा सकता है

निष्कर्ष रूप मे कुरुक्षेत्र के शिल्प तत्व पर यदि विचार किया जाय तो उसे प्रबन्ध कविता न कहकर सफल प्रबन्ध काव्य कहना पड़ेगा जिसमें वैचारिक एवं भावात्मक सौन्दर्य की इतनी समृद्ध और उदात्त सृष्टि हुयी है कि उसे महाकाव्य मानने को बाध्य होना पड़ता है। 'कुरुक्षेत्र' का काव्य सौन्दर्य चमत्कार या पाडित्य प्रदर्शन मे नही वरन् गम्भीर भावो की सहज अभिव्यक्ति मे है। वस्तुत. 'भाव, विचार और कला का संतुलित सामन्जस्य 'कुरुक्षेत्र' की सफलता का एक मात्र रहस्य है''[1] कुरुक्षेत्र मे सम्पूर्ण उपकरणो मे चाहे वे छन्द हो, अलकार हो, भाषा या शैली से सम्बन्धित हो,सभी मे सरलता है। यह,सरलता कुरुक्षेत्र की लोकप्रियता और उत्कृष्टता दोनों का कारण बनी है। शिल्प की सरलता का कला की दृष्टि से भी कम महत्व नही है। डा० नगेन्द्र के शब्दो मे —'कुरुक्षेत्र मे आकर दिनकर की कला मे एक स्तुत्य प्रौढता आ गयी है। उन्होने यहा विस्तृत काव्य सामग्री का बिना आयास के प्रयोग करते हुये विराट और कोमल चित्र उपस्थित किए हैं " उसमे कही भी काट छाट, जड़ाव या बनाव —शृंगार प्रयत्न नहीं। और इसका कारण उसकी सबल अनुभूति ही है जो अनायास ही वाग्धारा मे फूट उठती है।'[2]

साकेत-सन्त

प्रकृति-वर्णन

'साकेत-सन्त' मे प्रकृति को सामान्यत परम्परित रूप मे ही चित्रित किया किया गया है। कही कहीं मानवीयकरण-प्रणाली द्वारा भी प्रकृति के चित्र अंकित किये गये हैं। काव्य मे प्रयुक्त प्रसगा के अनुरूप पर्वत(हिमालय),प्रात , सध्या, रात्रि, बसत, ग्रीष्म, वर्षा ऋतुओं का वर्णन करके मिश्र जी ने अपनी प्रकृति पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय दिया है।

---

१ पो० शिव बालक — दिनकर, पृ० २२०

२ डा० नगेन्द्र — विचार और विश्लेषण, पृ० १३४

काव्य के द्वितीय सर्ग मे हिमालय का वर्णन आकर्षक है। वहाँ की प्रकृति मे सुहावने वन, मधुर ऋतुएं और रंगरंगीली इन्द्रधनुषी माया मादक वातावरण प्रस्तुत करते है –

'ऐसा सुहावना वन है, मधु ऋतु की ऐसी वेला।
× × ×
लतिकाएं लगती मानो, किन्नरियां थिरक रही है
द्रुम देख यही दिखता है, नन्दन-द्रुम यही कहीं हो ॥
रत्नो की चित्रित झांकी, सुमनो से झांक रही है।
अवनी निज उर की सुषमा, अम्बर पर आंक रही है ॥
प्रति तरु पर इन्द्रधनुष की, है रंगरंगीली माया।'[१]

माण्डवी के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते समय कवि ने प्रकृति को आलंकारिक रूप मे चित्रित किया है –

'तुम्हारी इस छवि पर है मात, हिमालय का महिमामय गात।
+ + +
कहीं जो खिली अधर मुस्कान, पिघल जाएंगे हिम पाषाण।
+ + +
तुम्हारे चरणों पर बलिहार, रत्नगर्भा का सब शृंगार।
देख कटि, कन्धा, वक्ष विशाल, कौन पूछे वन पशु के हाल ॥'[२]

उषा का वर्णन मानवीयकरण–पद्धति पर किया गया है–

जीवन की नूतन रेखा, जाग्रत हो जग मे आई।
जब जरा उनींदी होकर, रजनी ने ली अंगडाई ॥
दिग्बाला के गालो पर, लज्जा के भाव निहारे
होकर विभोर मस्ती मे, मुंद चले गगन दृग तारे ॥[३]

कवि ने मानवीय कार्य–व्यापारो और चेष्टाओ का आरोपण भी प्रकृति मे बडे सुन्दर ढंग से किया है। यथा–

'मादक मधु से भर भर कर, फूलो की प्याली प्याली।
इतराती है मस्ती मे, वासन्ती वैभव शाली ॥'[४]

आलम्बन पद्धति के आधार पर प्रकृति के रौद्र रूप का भी चित्रण हुआ है–

---

१. साकेत सन्त, द्वितीय सर्ग' पृ० ४०
२. वही, प्रथम सर्ग' पृ० २३–२५
३. वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ३०, ३१
४. वही, वही, छंद ६८

'भय को भी भयभीत बनाने, प्रकृति लगी आँखें दिखलाने
क्षितिज ओर से बढी बिजलियां, चमचम करती तेग ताने।
तडित तिमिर के ओर द्वन्द्व मे—पल पल पर पलटी जयमाला।

जो ज ता वह भी भीषण था, अन्धकार हो या कि उजाला॥'[1]

मानवीय भावनाओ को भी प्रकृति मे प्रतिबिम्बित किया गया है—

'लगी आग जल उठी चिता वह,
भडका कर उर उर की आग।
डूबे शोक सिन्धु मे दिन मणि,
लपट गई क्षितिज तक भाग।'[2]

इसी प्रकार चित्रकूट यात्रा मे भरत की कातर दशा देखकर यमुना—विरह विदग्धा चित्रित की गई है।[3] कही कही प्रकृति को रहस्यात्मक सत्ता के रूप मे भी चित्रित किया गया है। यथा—

दो बाहो का मृदु आलिंगन, मिलते थे मरण और जीवन।
दोनो हरि हर श्यामल उज्ज्वल, यमुना का जल, गगा का जल॥
बढ, जीव ब्रह्म मे लीन हुआ, खोकर अस्तित्व विहीन हुआ।
घुल गया श्याम होकर निर्मल, रहा गया एक गगा का जल॥[4]

इस प्रकार मिश्र जी ने प्रकृति के रमणीय और भयकर दोनो रूपो का चित्राकन किया है यद्यपि प्रकृति—चित्रण का सभी पद्धतियो को कवि ने अपनाया है तथापि सूक्ष्म निरीक्षण का अभाव ही दिखाई देता है।

रसपरिपाक और भावचित्रण कौशल

साकेत-सन्त' मुख्यत भरत के जीवन से सबधित होने के कारण शान्त रस प्रधान महाकाव्य है। शान्तरस का स्थायी भाव निर्वेद है। वैराग्य भाव की इसम प्रधानता है। सासारिक सुखो के प्रति अनासक्ति ही वैराग्य है। अनासक्ति भाव का चरम निदर्शन भरत के चरित्र मे हुआ है। इसलिय काव्य म अनेक स्थलो पर शान्तरस की सुन्दर व्यजना हुई है। पचम सर्ग मे नृपति मत्रणागार मे राज्य-परिवार के सभी सदस्यो एव पुरजनो को वशिष्ट जी का उपदेश निर्वेद भाव मे पूर्ण है।[5] इसी प्रकार महाराज दशरथ के दाह सस्कार के अवसर पर कही गई निम्नाकित पक्तियो मे शान्तरस की परिपक्वता दृष्टव्य है—

---

१ साकेत सत, त्रयोदश सर्ग, पृ० १५८
२ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ८३
३ वही, दशम सर्ग, पृ० ११९
४ वही, सप्तम सर्ग, पृ० १०३
५. वही पचम सर्ग, पृ० ६६

उदधि मे एक बुद्बुद् था, ढला वह,
हवा का एक झोंका था, चला वह।
रहा कब विश्व पर अधिकार उसका,
न अपनी साँस पर अधिकार जिसका।
उडा पछी रहा तृण जाल बाकी,
पढा, बस, खाल से कंकाल बाकी।
मगर वह भी चला निःशेष होने,
अजानी राह पर अस्तित्व खोने॥"[1]

करुण

करुण रस से ओतप्रोत काव्य के अनेक प्रसग हैं। महाराज के मरण एवं चिता आदि के दृश्यो मे करुण का पूर्ण उद्रेक है।[2] इसी प्रकार चित्रकूट मे भरत की शोकाकुल दशा को देखकर धरा भी करुणार्द्र दिखाई देती है:—

'पड़े छाले व्यथा के अश्रु धारे,
सहारा दे रहे काटे विचारे।
धरा करुणार्द्र थी वे बूँद पाकर,
उसासे ले रही उनका छिपाकर॥"[3]

वीर

वीर के स्थायी भाव उत्साह की काव्य मे बडी भव्य झाकियाँ हैं। भरत सेना सहित राम से मिलने जा रहे हैं। मार्ग मे गुह निषाद और अन्य लोगो के मन मे यह सन्देह होता है कि भरत कही राम का अनिष्ट तो नही करने जा रहे है। सब लोग उत्साह मे भर कर भरत से मुकाबला करना चाहते है:—

',बालक बूढे भी जोश भरे,
बढ गये तुरत ही रोष भरे।
कुछ ने झट छेडछाड कर दी,
सेना मे कुछ बिगाड कर दी॥"[4]

इसी अवसर पर निषाद का यह कथन भी उल्लेखनीय हैं:—

---

१. साकेत सन्त, षष्ठ सर्ग, पृ० ७८
२. वही, वही, पृ० ८१
३. वही, दशम् सर्ग, पृ० १२०
४. वही, अष्टम सर्ग, पृ० ९८

"सब नाके साधो, लडो, अडो,
लडकर सेना पर टूट पडो।
वे खा न सकें, वे सो न सकें,
वे हस न सकें, वे रो न सकें,
+ + +
हम तो नर हैं, नर हैं, नर हैं,
फिर हम उनसे कम क्यो कर हैं ?"[1]

शृंगार

"साकेत-सन्त" मे केवल सयोग शृगार का ही निरूपण हुआ है। प्रथम म भरत-माण्डवी के दाम्पत्य-जीवन की झाकियो मे सयोग शृगार की अद्भुत है। भरत और माण्डवी का नया परिणय था, नई उमग थी, नित्य नये रग थे नित्य नये उत्सवो के विधान होते थे।[2] इसी उत्सव बेला की एक निशा मे माण्डवी का मिलन हुआ—

"हजारो दीप हुए अनुकूल करोडो महक उठे शुचि फूल॥
भरत खिल उठे, बढ उठे हाथ, कहा, लो! जीवित वीणा साथ।
मिले फिर से रति और अनग, सजे फिर धन विद्युत का सग॥
+ + +
अधर पर एक मधुर मुस्कान, लोल सी लहरा गई अजान॥"[3]

वीभत्स

"उडा पछी रहा तृण जाल बाकी
मढा बस, खाल से ककाल बाकी।
+ +
गये उड गिद्ध और शृगाल भागे,
सडी सी लोथ चौथी छोड भागे।"[4]

उपर्युक्त रसो की योजना के अतिरिक्त भरत माण्डवी के व्यग्य विनो हास्य की छटा दिखाई देती है।[5]

---

१. साकेत सन्त प्रथम सर्ग, पृ० २६
२. वही, वगी, पृ० ९७
३ वही, प्रथम सग, छद ९
४. वही, पृ० २१
५ वही, षष्ठ सर्ग पृ० ७८, ७९

भाषा शैली

'साकेत सन्त' की रचना खड़ी बोली मे हुई है। काव्य मे खड़ी बोली के प्रौढ और प्राजल रूप का प्रयोग हुआ है। यद्यपि सस्कृत के तत्सम शब्दो का काव्य मे अत्यधिक प्रयोग हुआ है किन्तु उनके कारण भाषा दुर्बोध नही हुई है। मिश्र जी ने सस्कृत के सुगम शब्दो का ही उपयोग किया है। यथा—

"तुम मे बद्ध हुई आ आकर,
ऋषियो की वाणी कल्याणी।
हुए अनार्य्य आर्यसम्मानित,
तरी पतित नारी पापाणी॥"[1]

मिश्र जी ने लघु सामासिक शब्दावली का भी कही कही प्रयोग किया है। जैसे

'विश्व-बन्धुत्व-व्यवस्था बने।'[2]

अथवा

'देखा यवनिन-वैषम्य मृगी भीता ने।'[3]

अरबी फारसी और उर्दू के भी कुछ प्रचलित शब्दो का काव्य मे प्रयोग हुआ है। जैसे—ताज, तमाशा, बेहाल, बाजी, हरदम आदि। लौकिकितयो एव मुहावरो के प्रयोग से भाषा सजीव और शैली भावमय बनी है। जैसे—

तुम्हारा लखकर केशकलाप,
अचल उर पर लोटगें साथ।[4]

अथवा

जिसके हाथो है लाठी
वह भेस हाक ही लेगा।[5]

अथवा

पैरो पर सुने आप कुल्हाडी मारी।[6]

\+ \+ \+

---

१ साकेत सन्त त्रयोदश सर्ग, पृ० १६७
२ वही, द्वादश सर्ग पृ० १५२
३. वही एकादश सर्ग पृ० १३४
४ वही, प्रथम सर्ग, पृ० २४
५. वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ३५
६ वही, तृतीय सर्ग, पृ० ५०

राम का यदि बाल भी बाका हुआ।[1]

+ + ×

अग जग की आँखो का तारा।[2]

मिश्र जी ने पात्रो के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है। वशिष्ट जी की भाषा का रूप तत्सम् परिनिष्ठित है।[3] जब कि गुह निषाद की भाषा साधारण और बोलचाल की है।[4] शब्द-शक्तियो और गुण-रीतियो के प्रयोग का मिश्र जी को पूर्ण ज्ञान है। लाक्षणिक प्रयोगो के कारण 'साकेत सन्त' की भाषा सजीव है। सामान्यत 'साकेत सन्त' की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है। कही कही भाषागत प्रयोग व्याकरण सम्मत नही हैं। कुछ स्थलो पर क्रियापदो का प्रयोग बडा विचित्र है। जैसे–

उसी रात दु स्वप्न भयकर, दिखे भरत को विविध प्रकार।[5]

+ + +

'आज दिखते थे निपट उदास।'[6]

+ + +

दुख देख यही दिखता है।'[7]

'साकेत-सन्त' की भाषा शैली का सबसे बडा गुण प्रवाह और सम्प्रेषणीयता है।

अलकार-योजना

'साकेत-सन्त' की भाषा-शैली को सुन्दर और काव्य के कलापक्ष की समृद्धि के लिय मिश्र जी ने विविध अलंकारो का प्रयोग किया है। कुछ प्रमुख अलकारो के उदाहरण नीचे दिये जा रहे है –

अनुप्रास

'लघु लघु लहराती लहर लहर
छवि छवि छाती छहर छहर '[8]

---

१. साकेत सन्त, सप्तम सर्ग, पृ० ८७
२. वही, त्रयोदश सर्ग, पृ० १८२
३ वही, पचम सर्ग, पृ० ६६
४ वही, अष्टम सर्ग, पृ० ९७
५. वही द्वितीय सर्ग, पृ० ४२
६. वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ५४
७ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ४०
८. वही, अष्टम् सर्ग, १०२।

अथवा

'नव भावना मे भारतीयता का भव्य रूप,
भर कर भारत भरत गुण   गाता है।'[1]

यमक

'भयानक था रजनी का राज,
प्रसाद–रहित प्रासाद–समाज।'[2]
सूना पाकर काल काल ने छापा मारा,
अन्त्य कृत्य का भी न रहा कुछ शेष सहारा'।[3]

उपमा

हृदय यह जैसा शिव अधिवास,
कहाँ होगा वैसा कैलाश।[4]

रूपक

'दिवाला के गालो पर, लज्जा के भाव निहारे।
होकर विभोर मस्ती मे मुंद चले गगन दृग तारे।'[5]

अपन्हुति

'घर सबके घर नही, घाट हैं काल नदी के।
सम्बन्धी हैं जहा बस जुडे, दो ही क्षण के।'[6]

उत्प्रेक्षा

'लतिकाए लगती मानो किन्नरिया थिरक रही हैं।'[7]

विरोधाभस

'भयानक, पर विरति–जननी भली थी,
अपावन पर परम पावन थली थी।'[8]

उपर्युक्त परम्परागत अलकारो के अतिरिक्त 'साकेत सन्त' मे कही कहीं नये' अलकारो के प्रयोग भी दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ विशेषण विपर्यय का प्रयोग –

१. साकेत सन्त, उपक्रम, पृ० १७
२. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ५४
३. वही, पचम् सर्ग , पृ० ६४
४. वही, प्रथम सर्ग, पृ० २५
५. वही, द्वितीय सर्ग पृ० ३१
६. वही, पचम सर्ग पृ० ६८
७ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ४०
८ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ७९

'विहगो की मधुर ध्वनि से मुखरित है उनकी दरिया।
मूर्च्छना श्रवण कर जिसकी, मूर्छित वीणा बासुरिया।'[१]

नामकरण

'साकेत सन्त' का नामकरण पात्रगत आधार पर हुआ है। नामकरण की सार्थकता इस बात म है कि कवि के नाम के अनुरूप काव्य के नायक भरत को 'सन्त' के रूप मे चित्रित किया है। मिश्र जी ने काव्यारम्भ (द्वितीय सर्ग) मे ही भरत जी को सन्त' के रूप मे अ कित किया गया है। इसके अतिरिक्त 'साकेत सन्त' नाम रोचक आकर्षक, साहित्यिक एव व्यजना प्रधान भी है।

सर्ग-सयोजन

'साकेत सन्त' मे चौदह सर्ग हैं। सर्गों का नामकरण न करके उन्हे सख्याक्रम से विभाजित किया गया है। सर्गों का सयोजन कथाक्रम के अनुसार किया गया है। इतिवृत्त-क्रम की दृष्टि से प्रत्येक सग मे पूर्वापर अन्विति है।

इस प्रकार साकेत सन्त' रचनात्मक उपकरणो एव शिल्प तत्त्व की दृष्टि से सफल रचना है। साकेत सन्त' की रचना-विधि के अन्तरग और बहिरग दोनो ही पक्ष महाकाव्योचित गरिमा से युक्त हैं।

दैत्यवंश

'दैत्यवश' मे प्रकृति के अनेक मनोरम चित्र अ कित हैं। महाकाव्य की परिपाटी के अनुसार दैत्यवश म सूर्योदय, चन्द्रोदय, समुद्र, मानसरोवर पर्वत, ग्रीष्म, शरद्, वर्षा, हेमन्त-बसत आ द ऋतुओ का वर्णन हुआ है। सभी प्राकृतिक वर्णनो मे मानसरोवर का वर्णन चित्ताकर्षक है। कवि के शब्दो मे हिमालय के अ क मे वह सरोवर प्रकृति की सुषमा से सम्पन्न है। शिलाओ से घिरा हुआ वह सरोवर लघु सिन्धु सा दिखाई देता है। उसकी तु ग तरग आनदित करने वाली हैं।[२] उसके तट का दृश्य भी बडा मनोहर है —

राज मरालनि की अवली, तट पै जहा केलि करै मदमाती।
त्यो चकई चकवा के वियोगनि ह्वै रही हैं बिरहानल ताती।
+ + +
चन्द्रिका पान करै है चकोर मयकहि दीठि लगाय निहारी।
त्यो घट माहि भरे अति चाव सो चन्द्रकला अ जुरीनि सौं प्यारी।[३]

कवि ने मानवीय सवेदनाओ का आरोपण प्रकृति म किया हैं। दूसरे शब्दो मे मनुष्य के सुख दुख मे प्रकृति भी दुखी—सुखी दिखाई देती है। वामन के जन्म पर प्रकृति सर्वत्र उत्साह पूर्ण दिखाई देती है —

---

१ साकेत सन्त
२ दैत्यवश सप्तम सर्ग पृ० १०८
३ वही, पृ० २११

सुठि सीतल मंद सुगन्ध समीर
नई प्रमदा सम डोलै लगी।
तिमि देव नदी भरि भायनि सों
सुख-वीचिन मंजु कलोलै लगी।
सुर पादप की चढ़ि डारनी पैं
वह स्याम असीसन्हि बोलै लगी।
निज मंजु मजूषा सिगारनि को,
प्रकृति मुद मानिक खोले लगी ॥[1]

यही प्रकृति राजा बलि के बांध कर पाताल भेजे जाने पर उदासीन अंकित की गई है :—

"वह नर्मदा दूबरी पीरो परी, बलिराज के यो विरहानल तायकै।
हरियाली मिटी तरु वृन्दन की, न प्रसून खिलै खरो सोग मनायकै।
सुक सारी भुलाये न बोलें कहू, पुर में जन कोऊ मिलै नहि धायकै।
करुनारस भौ मनो सैन सबै, नगरी में निवास कियो इत आय कै ॥"[2]

कहीं-कहीं परिगणन शैली में भी प्रकृति चित्रण हुआ है। यथा—

"पन्नगी, मोर, मृगा, गज, केहरि, संग रहे धरि भाव विसारत।
पंकज, चन्द्र, चकोर, प्रभा, औ मराल, मृनाल, मनौ हिय हारत।
बिम्ब अनार न खात कबौ सुक, वर्वलिया अन्दनि काट न डारत।
चम्पक औ अलि, राहु, ससि, अरु तारहू टंक पहारनि धारत ॥"[3]

काव्य के अंतिम सर्ग में वर्षा[4], शरद[5], हेमन्त[6], शिशिर[7], वसन्त[8] आदि ऋतुओं का भी वर्णन हुआ है। 'दैत्यवंश' में प्रकृति चित्रण के अनेक स्थल हैं। किन्तु उनमें मौलिक सूझ-बूझ का अभाव ही दिखाई देता है। हां, प्रकृति चित्रण में रमणीयता की कमी नहीं है।

---

१. दैत्यवंश, दशम् सर्ग, पृ० १४५
२ वही, त्रयोदश सर्ग, पृ० १८८
३ वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ५८
४. वही, अष्टादश सर्ग, पृ० २६८
५. वही, वही , पृ० २६९
६ वही, वही , पृ० २७०
७ वही, वही , पृ० २७०
८. वही, वही , पृ० २७१

रसपरिपाक-और भाव चित्रण

'दैत्यवश' मे महाकाव्य की शास्त्रीय परम्परा के अनुसार शृंगार और वीर नामक रसो की प्रधानता है। इनके अतिरिक्त वीभत्स, रौद्र, भयानक, करुण, वात्सल्य, हास्य आदि का भी सफल निर्वाह हुआ है।

संयोग शृंगार

स्वयबर के प्रसग मे जब सिन्धुसुता भगवान विष्णु को जयमाला डालना चाहती है तो उसके हृदय मे रति-भाव की सुन्दर व्यजना हुई है :—

'देखि अचानक और की ओर,
सकोचि मधूक की माल सवारी।
त्यो दुओ कम्पित हाथ उठाय,
दियौ पुरुषोत्तम के गर डारी।
लाजन बोलि सकी न कछू
कृस देह भई पै रोमाचित सारी।
औ सखियानि के सग समोद,
बिनोद-भरी निज गेह सिधारी॥'[१]

वियोग शृंगार

अनिरुद्ध के वियोग मे उषा की दशा—

'परयक पै लोटे विहाल उषा,
मुरझाय गई मानो फूल-छरी।
घनसार उसीर को लेप कियो,
सित कुकुम लौं सो परो बिखरी।
बिजना करते रही, सींसिह लाइ,
गुलाब की नाइ दई सिगरी।
बनि धूम उड्यो सोई, फुट्यो हरा,
बिरहानल मैं इमि जात जरी॥'[२]

वीर रस

देवताओ और असुरो के संग्राम मे कुमार कार्तिकेय तारकासुर, बाणासुर आदि के अदम्य उत्साह और पराक्रम का वर्णन है। वामन के निम्नांकित कथन में

---

१ दैत्यवश, चतुर्थ सर्ग, पृ० ५५
२ वही, त्रयोदश सर्ग पृ० २०१

वीररस की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है :—

'तोरि धरो दिग दन्तिन-दन्त, कहीं भुज ठोकि सुमेर हलाऊं।
सारे सुरारि-समूहनि कौ, अबहो रन प्रांगन मैं बिचलाऊं।
रावरो आयसु पाऊं जु पै, बपुरा बलि को अबै बाँधि लै आऊं।
जौ न करो इतो कारज तौ, तोहि लौटि न आनन मातु दिखाऊं ॥'[1]

करुण रस

पताल लोक जाते समय पिता की सेवा से वंचित होने के कारण बलि के मन अपार शोक की व्यंजना उसके निम्नांकित कथन में व्यंजित है :—

"तात तुम्हारे पुन्य-प्रभावनि इन्द्रहिं समर हरायो।
औ कस्यप-कुल-कलित-ध्वजा कह नभ मण्डल फहरायो॥
दान सबै बसुधा को दै कै हरि को हाथ नवायो।
पै बिरधापन माहिं रावरे पद सेवन नहिं पायो॥"[2]

भयानक रस

'जमधार सी आवत सैन निहारि,
भई भयभीत तिया बिलखानी।
निज अंक सिसून को लै गमनी,
किती अंतर-गेह में जाय लुकानी।
किती नन्दन कानन भागि गई,
मति मूढ़ भई किती गैल भुलानी।'[3]

रौद्र रस

'काल की मूरति धा रदवक्र कौ,
देख्यो प्रचण्ड त्रिसूल घुमावत।
बारिदनाद कै बार ही बार,
धरा कौ चलै बरबंड नवावत।

---

१. दैत्यवंश, दशम् सर्ग, पृ० १६२
२. वही, द्वादश सर्ग, पृ० १८६
३. वही, दशम् सर्ग, पृ० १५४

कदरा सो मुख वाये कढे रद,
खग सी वा रसना लपरावत ।
चन्द्र ग्रसै जिमि राहु चलै,
तिमि सौध के द्वार लख्यो तेहि आवत ।।'[1]

हास्य रस

चतुर्थ सर्ग म शारदा सिन्धु सुता को साथ लेकर स्वयवर म आय हुये प्रत्येक देव दानव का परिचय देती होती सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा का परिचय निम्नाकित प्रकार देती है —

"तीनहू लोक के ये करता, अरु चारहू वेद बनावन वारे।
दाढी भई सन सी सिगरी, सिर पै कहू केस न दीसत कारे।
नारद सो इनके है सपूत, तिहुपुर ज्ञान सिखावन हारे।
प्रेम की पास मैं बाधन को तुम्हे बूढे बबा इत हैं पग्र धारे ।।" [2]

वात्सल्य रस

दशम् सर्ग मे वामन की बाल क्रीडाओं और वामन के प्रति माता के अनुराग भाव क निरूपण मे वात्सल्य की बडी सुन्दर सृष्टि हुई है । [3]

वीभत्स रस

'जोगिनी भूत पिसाच पिसाची, मास काटु धुनि बोलहिं नाची ।।
मच्छहिं मास रुधिर पुनि पीवहिं । आसिख देही वीर दोउ जीवहिं ।।
कोऊ हार आतन के धारत । कोऊ करेजो फारि निकारत ।।
कोऊ मुडन के माल बनावत । कोउ सचोप चरबी तन लावत ।।' [4]

इस प्रकार 'दैत्यवश' मे नव रसो का सुन्दर परिपाक हुआ है । काव्य मे अनेक ऐसे स्थल हैं जहा किसी विशेष रस का पूर्ण परिपाक तो नही हुआ किन्तु स्थायी भाव को पुष्ट करने वाले विभाव, अनुभाव और सचारी भावो का चित्रण अत्यन्त हृदयग्राह्य रूप मे हुआ है । सिन्धुसुता–स्वयवर प्रसग म

---

१ दैत्य वश छन्द–३१ ।
२ वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ५२
३ वही दशम् सर्ग पृ० १४७
४ वही, षष्ठ सर्ग पृ ७९

भगवान विष्णु को देख कर सिन्धुसुता के मन मे लज्जा, वितर्क, हर्ष आदि नाना भावो की सृष्टि एक साथ होती है जिसका कवि ने मनोहारी वर्णन किया है —

"वन्दि तिन्हे मन मे सकुचायकै, सिन्धुजा आगे कछु पग धारी ।
कोटि मनोज लजावत जे, पुरुषोत्तम पै निज दीठि को डारी ।
ठाढी जकी सी छिनेक रही, कर्तव्यहु को न सकी निरधारो ।[1]

इसी प्रकार बाण तनया ऊषा की उन सभी बाल-क्रीडाओ का वर्णन कवि ने किया है जो वात्सल्य रस की पोषक है ।[2] यह कहना अत्युक्ति न होगा कि 'दैत्यवंश' रस योजना की दृष्टि से सर्वांगीन सफल कृति है ।

नामकरण

'दैत्यवंश' का नामकरण कालिदास कृत 'रघुवश' नामक महाकाव्य की अनुकृति पर हुआ है 'दैत्यवश' में दैत्य कुल के हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण, और स्कन्द नामक छः राजाओ की कथा है । अस्तु, नामकरण सार्थक है । हिन्दी की महाकाव्य परम्परा में वंशगत आधार पर केवल दैत्यवश का ही नामकरण हुआ है ।

सर्ग-विधान

'दैत्यवश' मे २८ सर्ग है । काव्य की अनुक्रमणिका में प्रत्येक सर्ग के प्रतिपाद्य विषय का सकेत है । दैत्यवश की सर्ग-योजना का आधार काव्य की कथावस्तु है । सम्पूर्ण सर्गों में पूर्वापर सम्बन्ध-निर्वाह विधिवत् हुआ है ।

भाषा-शैली

'दैत्यवश' में ब्रजभाषा के परिमार्जित रूप का प्रयोग हुआ है । प्रसगानुकूल भाषा प्रसाद, माधुर्य एव ओजगुण सम्पन्न दिखाई देती है । भाषा भावानुवर्तिनी रही है । उदाहरणार्थ शची के हृदय की आकुलता प्रकट करने के लिये कवि ने कोमलकात पदावली का प्रयोग किया है:—

'चारु दुकूलनि त्यागि सची,
तन पै पहरी एक कारिये सारी ।
कंकन किंकिनी नूपर औ-
पदकज सौ पैंजनियानी उतारी ।'[3]

---

१. दैत्यवश, चतुर्थ सर्ग, पृ० ५३
२. वही , त्रयोदश सर्ग, पृ० १९६
३. वही, दशम सर्ग, पृ० १५५

सेना के प्रस्थान का वर्णन करते समय भाषा ओजपूर्ण हो गई है:—

'बाजत सैन सैन पर डका। होत महारव घोर अतका ॥
हाली धरा सेस फन डोले । करि चिक्कार द्विरद बहु बोलें ॥'[1]

भाषा में सजीवता उत्पन्न करने के लिये कवि ने यत्र तत्र प्रसिद्ध सूक्तियो एव लोकोक्तियो-मुहावरो का भी प्रयोग किया है। यथा—

जो खनत औरन के निघन हित कूप मग में जाइकै।
ह्वै सावधान तथापि तेहि गिरत वामें आय कै ॥[2]

अथवा

पूत कपूत बनै तो बनै, तऊ मात कुमातु बनै कबौ नाही।[3]

'दैत्यवश' में व्रजभाषा का प्रयोग होते हुये भी उसमे अन्य भाषाओ के भी अनेक शब्दो का प्रयोग हुआ है। 'दैत्यवश' खडी बोली के गौरव काल की रचना है अस्तु, उसके प्रभाव से कवि मुक्त नही रह पाया है। कही-कही राजस्थानी भाषा के 'पाछै' 'घाल्यो' आदि शब्द भी व्यवहृत हुये है।[4]

'दैत्यवश' की शैली वर्णनात्मक है। दैत्यवश के रचयिता पर सस्कृत काव्य-रचना का पूर्ण प्रभाव पडा है। अस्तु काव्य मे शैली का रूप पौराणिक भी हो गया है। पौराणिक शैली के सुन्दर उदाहरण प्रथम सर्ग में ही द्रष्टव्य हैं।[5]

अलंकार-योजना

'दैत्यवश' की शैली के प्रसाधन अलकार हैं। काव्य मे शब्दा और अर्थालकारो की योजना सफलता पूर्वक की गई हैं। कतिपय प्रमुख अलकारो के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

अनुप्रास

'विकसे वनज वन वगरि वहार वारे,
परिमल पाय भौंर भीर भरि जात है।'[6]

---

१. दैत्यवश, तृतीय सर्ग, पृ० ३७
२. वही, दशम् सर्ग, पृ० १६३
३ वही, षष्ट सर्ग, पृ० ८९
४. वही, प्रथम सर्ग, पृ० ३
५. वही, वही, पृ० ८
६. वही, पचम सर्ग, पृ० ७०

अतिशयोक्ति

दिति मयदानवै बुलाय बनवायो दिव्य-
मंदिर छुवत जाके कलस अकास है ।
रथ टकराय टूटि जैहैं यह भीति मानि,
जात देत अरुन न बाजि वाके पास है ।[1]

उपमा

वृषभनि मध्य लसत गज कैसे ।
जमुना मिली गंग महँ जैसे ॥[2]

अथवा

मूरति-सी करुनारस की, पलका पै परी लखी मातु अकेली ।
काटै गये तरु पै ज्यों चढ़ी, मसली मुरझाई गिरी जनु बेली ॥[3]

उत्प्रेक्षा

प्रातहिं नव-जलधर-वपुष, मनहुँ अपर नगराज ।[4]

अथवा

फारि वर्म हिय माहिं समानी । जनु नागिन बिल माहिं लुकानी ।[5]

विरोधाभास

है सीत याको नीर यद्यपि धरत यह बड़वागि है ।[6]

सन्देह

कै कस्यप वर वंश की, विमल ध्वजा फहरात ।
कै यह बलि नृप को सुजस, कहन अमरपुर जात ॥[7]

उन्मीलित

जोरी मरालनि की तब लौं,
मोतिया चुनिवे तेहि ओर सिधारी ।

---

१. दैत्यवंश, प्रथम सर्ग, पृ० ८
२. वही , षष्ठ सर्ग, पृ० ८८
३. वही , त्रयोदश सर्ग, पृ० १८९
४. वही , षष्ठ सर्ग, पृ० ८५
५. वही , वही , पृ० ९९
६. वही , तृतीय सर्ग, पृ० ३५
७. वही , नवम् सर्ग, पृ० १३५

जो ह्र में ऐसी मिली तहं वा,
नहिं ढूंढ़ि हूं पावति सो निज प्यारी।

परिसंख्या

रहे त्रिसूलहिं सूल, भिषग-गेहुनि खल देख।
पर-नारी कर परस करत तिनहिन अवरेखे॥
जुआ वृषभ के कन्ध, जतन कर दण्ड सोहाही।
नर्तक-गन मे भेद, बान नृप-सासन माही॥[2]

रूपक

मृगपति-सरिस निसंक निसाकर कानन-गगन-विहारी।
मुकता-नखत बिखेरि दियो नभ-तम-गज-कुंभ बिदारी॥
दिजपति ग्रसन पाप सो राहुहिं रोग भयो दुखकारी।
अब विरहिन-मुख-चन्द्र ग्रसन धावत बदन पसारी॥[3]

इस प्रकार दैत्यवंश मे नाना अलकारो का प्रयोग हुआ है जो काव्य की भाषा-शैली के उत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुआ है।

छंद-विधान

'दैत्यवंश' मे विविध छन्दो का सफल प्रयोग हुआ है। छन्द-विधान इतना पुष्ट और सुसगठित है कि कही भी यतिभग एव लय-अवरोध दिखाई नही देता। काव्य मे प्राय: प्राचीन छन्दो का उपयोग किया गया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त मे महाकाव्य की परम्परा अनुसार छन्द परिवर्तन के नियम का अनुपालन कवि ने किया है।

सर्ग क्रमानुसार प्रथम से अठारहवें सर्ग तक इन छन्दो का प्रयोग होता है—घनाक्षरी, रोला, हरिगीतिका, सवैया, दोहा, चौपाई, सवैया, रोला, दोहा, सवैय्या, रूपमाला, सार, सवैय्या, रोला, सार, रूपमाला, रोला और दोहा-चौपाई। इस सूची मे सगीत छन्द का उल्लेख नही किया गया है।

इस प्रकार शिल्प तत्व की दृष्टि से 'दैत्यवंश' के रचयिता ने महाकाव्य की रूढियों का पालन किया है।

---

१ दैत्यवंश, सप्तम सर्ग, पृ० १७२
२. वही, चतुर्दश सर्ग, पृ० २२७
३. वही, द्वादश सर्ग, पृ० १

रश्मिरथी

प्रकृति चित्रण

'रश्मिरथी' चरित्र प्रधान काव्य है जिसमें मानव-प्रकृति (स्वभाव) का तो सुन्दर चित्रण हुआ है किन्तु सृष्टि-प्रकृति के चित्र काव्य मे अत्यल्प है। यद्यपि प्रायः, सध्या, रात्रि, वसत, वन आदि के कुछ चित्र काव्य मे उपलब्ध हैं किन्तु प्रकृति के सश्लिष्ट चित्र कवि ने अ कित नही किये हैं। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से निम्नाँकित स्थल उल्लेखनीय हैं।

द्वितीय सर्ग का आरम्भ ही प्रकृति चित्रण से होता है। परशुराम के आश्रम का वर्णन बडा आकर्षक है। अधित्यका के ऊपर एक विरल कानन है जहा शुभनिर्झर है। वहा भूमि समतल और सुन्दर हैं। हरियाली के बीच एक विस्तृत पावन उटज है जिसके आसपास धान के खेत हैं। वहा शशक, मूसक, गिलहरी, कबूतर घूम घूम कर कण खाते हैं। रसाल की नन्ही झुकी टहनियो पर चीवर सूख रहे हैं। नीचे इंगुद से चिकने पत्थर बिखरे पडे है। वहा के धूम चर्चित तरु श्याम चदन जैसे लगते हैं।[1] ऐसे मनोरम प्राकृतिक चित्रो के साथ साथ प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियो को भी काव्य मे अपनाया गया है। —

उपदेशात्मक रूप में

प्रकृति कर्म को दिखाकर दान की महिमा का उपदेश दिया गया है :—

'देते तरु इसलिये कि रेशो मे मत कीट समायें,
रहे डालियां स्वस्थ और फिर नये नये फल आयें।
सरिता देती वारि कि पाकर उसे सुपूरित घन हो,
बरसे मेघ, भरे फिर सरिता, उदित नया जीवन हो।'[2]

संवेदनात्मक रूप में

महाभारत के युद्ध मे कर्ण के निधन पर प्रकृति मे शोक व्याप्त हो गया :—

छिपे आदित्य होकर आर्त्त घन मे,
उदासी छा गई सारे भुवन मे।
अनिल मथर व्यथित सा डोलता था,
न पक्षी भी पवन मे बोलता था।

---

१. रश्मिरथी, द्वितीय सर्ग, पृ० १०
२ वही , चतुर्थ सर्ग, पृ० ६०

प्रकृति निस्तब्ध थी यह हो गया क्या ?
हमारी गांठ से कुछ खो गया क्या ?'[१]

'रश्मिरथी' मे प्रकृति के रौद्र और रमणीय दोनो रूपो का चित्रण हुआ है ।

रौद्र रूप में चित्रण

'झंझा की ओर झकोर चली, डालो को तोड मरोड चली,
पेडो की जड टूटने लगी, हिम्मत सबकी छूटने लगी,
ऐसा प्रचड तूफान उठा, पर्वत का भी हिल प्राण उठा ।'[२]

रमणीय रूप मे चित्रण

उषा का चित्र इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है —

'सभाले शीश पर आलोक मडल, दिशाओं मे उडाती ज्योतिरचल ।
किरण मे स्निग्ध आतप फेंकती सी, शिशिर कपित द्रुमो को सेंकती सी ।
खगो का स्पर्श से कर पख मोहन, कुसुम के पोछती हिमसिक्त लोचन ।
दिवस की स्वामिनी आई गगन मे, उडा कु कुम, जगा जीवन भुवन मे ।।[३]

प्रकृति के अनेक सश्लिष्ट चित्र काव्य मे यत्र तत्र बिखरे हुये हैं । प्रकृति का मानवीकृत रूप मे चित्रण तो सर्वत्र उपलब्ध हैं ।

रसपरिपाक

दिनकर जी मूलत वीररस के कवि कहे जाते हैं । 'रश्मिरथी' मे कर्ण चरित्र के अनुरूप वीर रस की प्रधानता है । कर्ण केवल युद्धवीर ही नही वरन् दानवीर, धर्मवीर और कर्मवीर के रूप मे भी अ कित किया गया है ।

वीर रस

सप्तम सर्ग मे कर्ण के निम्नांकित कथन मे वीर रस की अपूर्व झांकी है–

'मही का सूर्य होना चाहता हूँ ।
विभा का तूर्य होना चाहता हूँ ।
× × ×
भुजा की थाह पाना चाहता हू ।
हिमालय को उठाना चाहता हू ।
× × ×

---

१ रश्मिरथी, सप्तम सर्ग, पृ० १९९
२ वही षष्ठ सर्ग, पृ० १३१
३ वही , सप्तम सर्ग, पृ० १५३

समूचा सिन्धु पीना चाहता हूं,
धधक कर आज जीना चाहता हू ।[1]

कर्ण के निम्नांकित कथन मे भी अदम्य उत्साह-भाव दिखाई देता है–

'समर की शूरता साकार हूं मैं ।
महा मार्तण्ड का अवतार हू मैं ।
विभूषण वेद-भूषित कर्म मेरा,
कवच है आज तक का धर्म मेरा ।
+ +
भरी श्रो सिद्धियो की आग, आओ,
प्रलय का तेज बन मुझ मे समाओ ।'[2]

रौद्र

तृतीय सर्ग मे सन्धि प्रस्ताव लेकर कृष्ण दुर्योधन के पास आते हैं । वह जब उन्हें बाधने का प्रयत्न करता है तो कृष्ण अपने विराट रूप का प्रदर्शन करते हैं, जिसमे रौद्ररस की व्यंजना है–

'हरि ने भीषण हुंकार किया,
अपना स्वरूप-विस्तार किया,
डगमग डगमग दिग्गज डोले
भगवान कुपित होकर बोले–
जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हा हा, दुर्योधन ! बाध मुझे ।'[3]

भयानक–

टकरायेंगे नक्षत्र निकर,
बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर,
फण शेषनाग का डोलेगा,
विकराल काल रण खोलेगा ।'[4]

बीभत्स–

'कट कट कर गिरने लगे छिन्न,
रुण्डो से मुण्ड अलग होकर,

---

१. रश्मिरथी, सप्तम् सर्ग, पृ० १५६
२. वही, –सप्तम् सर्ग, पृ० १५८
३. वही –तृतीय सर्ग पृ० ३१
४. वही –वही, पृ० ३४

वह चली मनुज के शोणित की,
धारा पशुओं के पग धोकर ।''[१]

करुण—

कर्ण द्वारा घटोत्कच के वध पर सम्पूर्ण पाण्डव चमू मे शोक का वातावरण है जिसमे करुण रस का उद्रेक है ।[२]

वात्सल्य—

पचम सर्ग मे कर्ण और कुन्ती के सवादो मे कुन्ती के ममत्व की व्यजना मे वात्सल्य की सृष्टि करने मे कवि सफल रहा है ।[३]

शृ गार

रश्मिरथी मे शृ गार रस का अभाव है। काव्य मे केवल एक ही स्थान पर सूर्य और कुन्ती को क्षण भर के लिये आमने सामने लाकर स्मृति नामक सचारी भाव की सृष्टि की गई है।

नव रसो मे वीर रस का परिपाक ही प्रस्तुत महाकाव्य की सफलता का प्रमाण है।

नामकरण

प्रस्तुत महाकाव्य का नामकरण वैशिष्ट्यपूर्ण है। 'रश्मिरथी' शब्द जहा एक ओर स्पष्ट है वही दूसरी ओर ध्वन्यात्मक और कलात्मक भी है। 'रश्मिरथी' का अर्थ है—किरणो के रथ पर आरूढ व्यक्ति। कर्ण को रश्मिरथी कहना सर्वथा सार्थक है। वह सूर्य के अ श स उद्भूत ही नही वरन् सूय की भाति ही तेजोमय एवं ओजपूर्ण भी है। काव्य के अ तिम सर्ग मे कर्ण की मृत्यु पर कवि ने 'आलोक-स्यदन' के रूपक द्वारा 'रश्मिरथी' शब्द की सार्थकता प्रस्थापित की है।[४]

सर्ग-योजना

'रश्मिरथी' मे सात सर्ग हैं। सर्गों का विभाजन कथाविकास के आधार पर किया गया है। सर्गों का नामकरण न करके उनका विभाजन सख्यागत आधार पर किया गया है। प्रत्येक सर्ग मे पूर्वापर सम्बन्ध और अन्विति है।

---

१ रश्मिरथी षष्ठ सर्ग, पृ० १३४
२. वही, वही, पृ० १५०
३ वही, पचम सर्ग, पृ० ८५
४ वही, सप्तम सर्ग, पृ० १६७

भाषा–शैली

'रश्मिरथी' की रचना खडी बोली हिन्दी मे हुई है। काव्य मे खडी बोली के प्रचलित एव सहज रूप का प्रयोग किया गया है। वीररस प्रधान कृति होने के कारण भाषा ओजमयी है। अनेक स्थलो पर भाषा प्रसादगुण सम्पन्न भी है। दिनकर जी ने सस्कृत गर्भित शब्दावली और समासपूर्ण पदरचना का प्रयोग न करके स्वाभाविक लाक्षणिक पदो की योजना, लोकोक्तियो एव मुहावरो के प्रयोग, अलकार-विधान एव शैलीगत प्रसाधनो द्वारा भाषा को आकर्षक बनाया है। प्रसगानुकूल भाषा का रूप कही तत्सम्, कही तद्भव और देशज शब्द-प्रयोगो से युक्त है। उदाहरणार्थ भाषा का तत्सम् रूप निम्नाकित पक्तियो मे दृष्टव्य है :—

'चिंता प्रभूत, अत्यल्प हास,
कुछ चाकचिक्य, कुछ क्षण विलास।'[1]

अथवा

'हेषा रथाश्व की, चक्र रोर, दन्तावल का बृंहित अपार,
टकार धनुर्गुण की भीषण, दुर्मद रणशूरो की पुकार।'[2]

भाषा का ओजमय रूप तो काव्य में कही भी देखा जा सकता है। मुहावरो और लोकोक्तियो के प्रयोग से भाषा की शक्ति बढी है। यथा:—

'गुदडी मे रखती चुन चुन कर बडे कीमती लाल।[3]
'कोई न कहो भी चूकेगा सारा जग मुझ पर थूकेगा।'[4]
'धिक्कार नही तो मैं क्या और सुनूगी ?
'काटे बोये थे कैसे कुसुम चुनूगी ?[5]

'रश्मिरथी' मे हिन्दी से इतर भाषाओ के शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। यथा–

सस्कृत के — गह्वर, किल्विष, विभ्राट, हेषा, बृंहित आदि।
उर्दू के — दावादार, रोज, कुर्बानी, खमीर, खातिर आदि।

इसी प्रकार सर्मा, बिसात, अवसेर जैसे तद्भव शब्दो का प्रयोग हुआ है। 'रश्मिरथी' की शैली मे प्रवाह[6] और प्रसग गर्भत्व[7] दोनो गुण विद्यमान हैं।

---

१. रश्मिरथी तृतीय सर्ग पृ० ५३
२. वही सप्तम सर्ग पृ० १६३
३ वही प्रथम सर्ग पृ० १६
४ वही तृतीय सर्ग पृ० ४८
५ वही पचम सर्ग १०२
६ वही, तृतीय सर्ग, पृ० ४९
७. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६१

अलकारो के स्वाभाविक प्रयोग से भी 'रश्मिरथी' की शैली आकर्षक और भाषा सजीव बनी है।

अलंकार-विधान

'रश्मिरथी' मे अलकारो का प्रयोग भाषा की शक्ति सवर्द्धित करने के लिए हुआ है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं: –

अनुप्रास ––

'सोने के दो शैल शिखर–सम सुगठित, सुघर, सुवर्ण।'[१]
'जगत से ज्योति का भेता उठा है।'[२]

उपमा

'वन्य कुसुम सा खिला कर्ण जग की आखो से दूर'[३]

अथवा

'कटि तक डूबा हुआ सलिल मे, किसी ध्यान में रत सा,
अम्बुधि मे आकटक निमज्जित कनक–खचित पर्वत सा।'[४]

उत्प्रेक्षा

'चमक रहा तृण-कुटी-द्वार पर एक परशु आभाशाली,
लौह दड पर जडित पडा हो, मानो, अर्ध अशुमाली।'[५]

अन्योक्ति

'प्रासादो के कनकाभ शिखर,
होते कबूतरो के ही घर,
महलो मे गरुड न होता है,
कचन पर कभी न सोता है।

बसता वह कही पहाडो में,
शैला की फटी दरारो मे।[६]

---

१. रश्मिरथी, प्रथम सर्ग पृ० ६
२ वही, सप्तम सर्ग, पृ० २०३
३ वही, प्रथम सर्ग, पृ० २
४ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ६३
५ वही, प्रथम सर्ग पृ० ११
६ वही तृतीय सर्ग पृ० ५४

अर्थान्तरन्यास

'पर, जानें क्यो, नियम एक अद्भुत जग मे चलता है,
भोगी सुख भोगता, तपस्वी और अधिक जलता है।
हरियाली है जहां, जलद भी उसी खण्ड के वासी,
मरू सी भूमि मगर रह जाती है प्यासी की प्यासी।'[1]

विरोधाभास

'जन्मा लेकर अभिशाप हुआ वरदानी।
आया बन कर कंगाल कहाया दानी।'[2]

दृष्टांत

'पर समझ गई वह मुझको नहीं मिलेगा
बिछुड़ी डाली पर कुसुम न आज खिलेगा।'[3]

अतिशयोक्ति

'तिलभर भी भूमि न कहीं, खड़े
हो जहा लोग सुस्थिर क्षण भर,
सारी रण-भू पर बरस रहे
एक ही कर्ण के बाण प्रखर।'[4]

रूपक अलकार के सुन्दर प्रयोग अन्तिम सर्ग म द्रष्टव्य है।[5]

इस प्रकार नाना अलकारो की सफल योजना कवि दिनकर की सशक्त प्रतिभा का जीवत प्रमाण है। काव्य मे भाषा की प्रकृति और प्रसग के अनुरूप सार, ताटंक, कुलक, रूपमाला आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है। शिल्पविधि की दृष्टि से रश्मिरथी सफल महाकाव्य है। उसका अन्तरग (भावपक्ष) और बहिरग (कलापक्ष) दोनों समृद्ध हैं।

ऊर्म्मिला

प्रकृति-चित्रण

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे प्रत्येक सर्ग मे प्रकृति का किसी न किसी रूप में चित्रण हुआ है। प्रथम सर्ग मे जनकपुरी का वर्णन करते हुए कवि ने प्रकृति का प्राकृ-

---

१ रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग पृ० ५८
२. वही, पचम सर्ग पृ० ९३
३ वही वही पृ० १००
४ वही षष्ठ सर्ग पृ० १४६
५ वही सप्तम सर्ग पृ० १५८

तिक छटा का अ कन किया है। जनकपुरी रम्य उद्यानो एव वाटिकाओ से सजी हुई ऐसी प्रतीत होती है मानो कोई मोद मुग्धा नवल तरूणी हो [1] वहा की पुर वाटिका की डालो डालो मधुर स्वर से गूँज रही है। ओस बिन्दुओ से युक्त टहनिया सद्य स्नाता सदृश्य लग रही है। [2] काव्य मे प्रकृति चित्रण की सभी प्रणालियो को नवीन जी ने अपनाया है। यथा —

आलम्बन रुप मे

गाधार देश की प्राकृतिक सुषम ।का वर्णन करते हुये जनकनदिनी कहती है —

रगमच गाधार देश था चिर नर्त्तकी प्रकृति का,
जहा खल होता रहता था प्रकृति नटी की कृति का,

\+ \+ \+

पर्वत पादस्था उपत्यका शोभित यो होती थी
आरोहण की लय अवरोहण मे मानो सोती थी,
ऊपर से झरने गाते थे नीचे से सब पक्षी,
मानो लगा रहे थे प्राणो के पग्ग आन विपक्षी, [3]

संवेदनात्मक रूप में

नवीन जी ने प्रकृति और मानव हृदय का सामजस्य निरूपित करते हुये प्रकृति को सवेदनात्मक रुप म चित्रित किया है। जैसे—

'सन्ध्या की थपकी दे दे, चुपके से गोद सुलाती,
आती है करुण तमिस्रा, निज अ चल छोर डुलाती,
निशि के अ धियारे मे है, सचित दुख की परछाई,
इस घनी कालिमा म हैं, चिर विप्रयोग की झाई, ।' [4]

उद्दीपन रुप मे

इस पद्धति द्वारा द्वितीय सर्ग मे प्रकृति-चित्रण हुआ है। लक्ष्मण-उर्मिला के मिलन क अवसर पर सम्पूर्ण प्राकृतिक वातावरण मादक दिखाई देता है '—

'पवन डगमग पग धरतो वहो, सकुचित कलियां कुछ हिल उठी;
हृदय मे धारे रेणु पराग, ऋतुमती के रज सी खिल उठो,

---

१ उर्मिला प्रथम सर्ग पृ० १५
२ वही वही पृ० १६
३ वही, प्रथम सर्ग, पृ० ३४
४ वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ३६३

चहकने लगे विहगम बृंद, महक उट्ठे नव कालिका गुच्छ,
दहकने लगी हृदयकी आग, भस्म हो चला काम वह तुच्छ।''[1]

आलंकारिक रुप में

'प्राची दिशा वधूटी के सम श्री ऊर्म्मिला वधू के लोचन,
कुछ कुछ उन्मीलित हैं, उनमे छाए हैं लक्ष्मण रवि रोचन,
अभी आख के ओझल हैं वे, यथा प्रात से पूर्व दिवाकर,
आ पहुंचा आलोक ऊर्म्मिला के कपोल के फुल्ल कमल सर।'[2]

उपयुंक्त पद्धतियो के अतिरिक्त पृष्ठभूमि का निर्माण करने वाली शक्ति के रूप मे भी प्रकृति चित्रित की गई है। प्रकृति का रौद्र रूप काव्य मे अंकित नही हुआ है।

रसपरिपाक और भावचित्रणकौशल

'उर्म्मिला' शृंगाररस प्रधान महाकाव्य है। उर्म्मिला के विरह की प्रधानता के कारण शृंगार के अन्तर्गत भी विप्रलम्भ पक्ष को प्रधानता मिली है। शृंगार के सयोग–वियोग पक्षो के अतिरिक्त काव्य मे करूण, वात्सल्य हास्य, वीर, रौद्र आदि रसो का भी यथाप्रसग परिपाक हुआ है।

संयोग शृंगार

काव्य के प्रथम और द्वितीय सर्गो मे सयोग शृंगार के सुन्दर चित्र हैं। लक्ष्मण–उर्मिला के मिलन मे रति–भाव की सुन्दर व्यंजना हुई है। यथा–

'रखा लक्ष्मण ने मस्तक आन–ऊर्म्मिला की जघा पर और
मूंद कर नेत्र बढा दी भुजा, प्रियतमा की ग्रीवा की ओर,
डोर अरुझा क्रीडा की रम्य, रमण के सुरझ गये सब तार,
थकित क्रीडा ऐसे भुक रही, मेघ ज्यो झुक आय दो चार।'[3]

उपर्युक्त प्रसग मे लक्ष्मण उर्म्मिला आश्रय और आलवन हैं। प्राकृतिक वातावरण और रूप–सौन्दर्य उद्दीपन विभाव हैं लज्जा और हर्ष आदि सचारी भाव हैं। मस्तक, जघा और भुजा का ग्रीवा की ओर ले जाना अनुभाव है। ये सब मिलकर रति नामक स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं।

---

१ उर्म्मिला, द्वितीय सर्ग पृ० १२४
२ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ९७
३ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० १२९

वियोग शृंगार

ऊर्मिला की विरह वेदना काव्य के पचम सर्ग मे व्यक्त हुई है । इस सर्ग के प्रत्येक दोहे मे विप्रलम्भ शृंगार की रससिक्ता है । प्रिय के वियोग मे ऊर्मिला की दशा का चित्र द्रष्टव्य है —

'झुलसत हिय, दहकत हृदय, आशा बरि बरि जात,
तडपत मन, सूखत अधर, रोम रोम मुरझात ।'[1]

करुण

विप्रलम्भ और करुण परस्पर सहयोगी रस है । वियोगिनी ऊर्मिला की शोकाकुल दशा का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है —

'यो उमड रही है करुणा, ऊर्मिला बहु के आगन,
हिय मे निदाघ रहता है, नयनो मे बसता सावन,
इस विरहजन्य तडपन मे, नि सीमित करुण उमडी,
पीडा छाई जनपद मे, वन बसा, अयोध्या उजडी '[2]

वात्सल्य

ऊर्मिला और सीता के बाल्यकाल की झाकिया प्रस्तुत करते हुये कवि ने वात्सल्य रस का निरूपण किया है । दोनो बालिकाओ के प्रति जनक-पत्नी सुनयना के मन मे वात्सल्य का अमित भाव विद्यमान है ।

'अपनी दोनो ललियो की सुन बातें प्यारी प्यारी,
उस रानी ने अपनी सुध बुध सभी बिसारी;
दोनो को दोनो हाथो से खीच लिया गोदी मे,
दोनो ने मिलकर जननी का नेह पिया गोदी मे ।"[3]

हास्य

ऊर्मिला महाकाव्य मे हास्यरस के दो स्थल हैं । प्रथम ऊर्मिला-शत्रुघ्न का सवाद द्वितीय सर्ग मे[4] और लक्ष्मण सीता सवाद अंतिम सर्ग मे । पुष्पक विमान मे बैठकर लका स लौटते हुय देवर लक्ष्मण को चुपचाप बैठे देखकर सीता ठिठोली करती हुई कहती हैं कि कैसे खोये खोय से हो रह हो, कोई वनबाला तो मन मे नही बस गई । तभी लक्ष्मण ने कहा :—

---

१. ऊर्मिला, पचम, सर्ग, ४३७
२ वही , चतुर्थ सर्ग, पृ० ३८७,३८८
३ वही, प्रथम सर्ग, पृ० ६१
४ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० १००

"भाभी, यदि ऐसी ही भोली, होती ये विदेह ललिया,
यदि यो सहज छोड देती ये, रघुकुलजो का हिय श्रासन,
तो क्यो श्राज लका मे होता, बन्धु विभीषण का शासन ?
वाध दाशरथियो को रखती, है विदेह की नन्दिनिया,
बडी चतुर हो तुम मैथिलिया, हो तुम सवमायाविनिया।"[1]

इसी प्रकार शान्ता ननद और ऊर्मिला के पारस्परिक सवाद मे भी हास्य की सुन्दर छटा है।[2]

वीर

गाधार देश की राजकुमारी के उद्बोधनात्मक कथन मे वीररस के स्थायी भाव उत्साह की व्यजना हुई है :—

'कहे न कोई आर्य-देश की ललनाएं कायर हैं,
दिखला दो तुम हृदय तुम्हारे मृदु है पर पत्थर है।
कस लो वेणी, कटि पट बाधो, ले लो धन्वा, भाले,
चलो, करो ऐसे प्रहार जो अरि के हिय मे साले।'[3]

इस प्रकार ऊर्मिला महाकाव्य मे विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता होते हुये भी अन्य रसो का समुचित अनुपात मे परिपाक हुआ है।

नामकरण

'ऊर्मिला' महाकाव्य का नामकरण पात्रगत आधार पर हुआ है। ऊर्मिला प्रस्तुत महाकाव्य की नायिका है। काव्य की रचना उसी के चरित्र की महत्ता के प्रतिपादन हेतु हुई है। गुप्त जी के 'साकेत' की रचना भी यद्यपि ऊर्मिला के चरित्रोद्धार की प्रेरणा से हुई थी किन्तु वहा काव्य के नामकरण और चरित्र दोनो मे ही ऊर्मिला को वह प्रामुख्य नही मिला है जो नवीन कृत 'ऊर्मिला' महाकाव्य में प्राप्य है। अस्तु, काव्य रचना के उद्देश्य और प्रतिपादन दोनो ही दृष्टियो से प्रस्तुत महाकाव्य का नामकरण सार्थक है।

सर्ग योजना

'ऊर्मिला' महाकाव्य छह सर्गो मे विभक्त है। प्रत्येक सर्ग मे कलात्मक प्रसगो के अनुरूप उपशीर्षक भी दिये गये है, जैसे प्रथम सर्ग मे—प्रोत्साहन, प्रार्थना, ध्यान, पुरप्रदक्षिणा, जनकपुर प्रवेश, प्रासाद-प्रागण आदि। प्रत्येक सर्ग का पृथक से नाम-

---

१ ऊर्मिला, षष्ठ सर्ग, पृ० ५९३
२. वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ११३, ११४
३. वही, प्रथम सर्ग, पृ० ४०

करण नही किया गया है किन्तु चतुर्थ और षष्ठ सर्गों के शीर्षक क्रमश 'विरह मीमासा' और 'पूर्ण प्रणाम' दिए गये हैं। सर्ग-योजना यद्यपि कथाक्रम से की गई है तथापि सर्ग योजना मे जिस प्रबन्धात्मकता की अपेक्षा की जाती है, उसका 'ऊर्मिला' महाकाव्य मे अभाव है।

भाषा शैली

'ऊर्मिला' महाकाव्य मे सस्कृत गर्भित खडी बोली का प्रयोग हुआ है। काव्य के पचम सर्ग मे ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। 'ऊर्मिला' महाकाव्य की भाषा प्रसग के अनुरूप अलकृत दिखाई देती है। उदाहरणार्थ द्वितीय सर्ग मे भाषा का रूप प्रसाद गुण सम्पन्न है। यहा लक्ष्मण-ऊर्मिला के मिलन प्रसगो को अकित किया गया है। जैसे—

"मिलू मैं तुम मे। मुझ मे आन, घुलो तुम ज्यों कि सिता की कनी,
पल्लवित हो मम पादप-प्राण, खिलो उसमे तुम कलिका बनी।" [1]

किन्तु जहा कवि को लक्ष्मण ऊर्मिला के महामिलन का चित्र अकित करना है वहा भाषा का रूप गाम्भीर्य से बोझिल हो गया है.—

"निम्नगा वृत्ति हुई म्रियमाण,
ऊर्ध्व-आकृष्ट हो गये प्राण,
हुए रज-सम के कुण्ठित बाण,
हो गया लखन-ऊर्मिला त्राण।" [2]

सस्कृत के प्रचलित अप्रचलित शब्दो का प्रयोग ऊर्मिला के कवि ने स्वतन्त्रता-पूर्वक किया है। जैसे क्वासि, य कश्चित्, अच्छेद्य, मम, स्वम् आदि। अनेक स्थलो पर सस्कृत पदो का यो का त्यो प्रयोग हुआ है। यथा—

'सेवा धर्म परम गहनो योगिनामप्य गम्य'[3]
'स्वर्गादपि गरीयसी,[4] एकोऽहं सोऽहम्[5] आदि।

ब्रजभाषा मे पचम सर्ग लिखा ही गया है। साथ ही ब्रजभाषा के अनेक शब्द जैसे लल्ला, निरो, कोऊ, होले होले आदि काव्य मे अन्यत्र भी व्यवहृत हुये है। उर्दू के प्रचलित शब्दो जैसे खास, तडप, आह, कंजूस आदि का भी प्रयोग हुआ है। भाषा मे रोचकता लाने के लिये प्रचलित लोकोक्तियो एव मुहावरो का

---

१ ऊर्मिला, द्वितीय सर्ग पृ० १४१
२ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० १५४
३ वही , प्रथम सर्ग, पृ० १९
४ वही ,द्वितीय सर्ग, पृ० ४१
५ वही , द्वितीय सर्ग, पृ० १४८ २६६

भी प्रयोग हुआ है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की भाषा का सबसे प्रमुख गुण उसकी व्यंजना शक्ति है।

ऊर्म्मिला काव्य की शैली में नवीनता और प्राचीनता का समन्वय है। काव्य में गीति, नाट्य, संलाप आदि विभिन्न शैलियों का प्रयोग हुआ है। प्रथम से तृतीय सर्ग तक प्रबंध शैली है। चतुर्थ और पंचम सर्गों में गीत-शैली है। पंचम सर्ग में दोहा, सोरठा आदि का प्रयोग प्राचीनता का प्रतीक है।

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की भाषा शैली के प्रसाधन अलंकार हैं। काव्य में अलंकारों का प्रयोग सौन्दर्य-चित्रण और भाव संयोजन में सहायक है मुख्य रूप से उत्प्रेक्षा, उपमा, सन्देह, रूपक आदि अलंकारों का स्वाभाविक और सशक्त प्रयोग है। सर्वाधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा अलंकार का हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :—

> "सद्य : स्नाता सदृश, टहनी बिन्दुओं से भरी है,
> मानो धीरा अचल वसुधा अर्घ्य लेके खड़ी है।"[1]

नवीन उपमायें कवि की कल्पना प्रवणता की प्रतीक हैं। उदाहरणार्थ प्रथम सर्ग में ऊर्म्मिला की दोनों वेणियों की उपमा अनेक उपमानों से दी है।[2]

'ऊर्मिला' महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में अलग छन्द का प्रयोग किया गया है। दोहा, सोरठा और शार्दूल विक्रीडित छन्दों का प्रयोग प्रसंगानुकूल है। चतुष्पदी मात्रिक छन्दों का प्रयोग एकाधिक सर्गों में हुआ है। सर्गांत छंद परिवर्तन नियम का अनुपालन भी कतिपय सर्गों में हुआ है।

समष्टि रूप में प्रौढ़ भावपूर्ण और अलंकृत भाषा, विराट कल्पना वैभव और रससिक्तता जहां 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की शिल्पगत उपलब्धियां है वहीं प्रबंधत्व–निर्वाह में शैथिल्य, भाषा के दो रूपों का और तुकांतता का आग्रह कतिपय अभाव भी हैं।

एकलव्य

प्रकृति-चित्रण

'एकलव्य' महाकाव्य में प्रकृति का सजीव चित्रण हुआ है। काव्य में प्रात, सन्ध्या, रात्रि, ऋतु, वन, उपवन आदि के चित्रण साथ मानवीय मनोभावों एवं प्रकृति के सामंजस्य का निरूपण करने में भी एकलव्यकार सफल सिद्ध हुआ है।

काव्य के द्वितीय सर्ग से ही प्रकृति के सुन्दर चित्र दृष्टिगत होने लगते हैं। हस्तिनापुरी का वर्णन कवि ने कानन कुसुम के रूप में किया है। इसी प्रकार वहां की

---

१ ऊर्म्मिला प्रथम सर्ग पृ० १६
२ वही वही पृ० २५

राजसभा का चित्रण प्रकृति प्रतीकों के माध्यम से किया है।[१] कुरुराज, धृतर द्रोण, भीष्म पितामह आदि के व्यक्तित्व का निरूपण भी प्राकृतिक उपमाओं किया गया है।[२]

पचम सर्ग में प्रकृति के अनेक रमणीय चित्रण हैं। इस सर्ग के आरम्भ सूर्योदय वर्णन है —

'दिवस-सरोरुह की एक खुली पखुडी
पद्मराग-जैसी रवि कोर दिखी प्राची म।

+ + +

फूल खिल मानो वे स-हास खिले मुख हैं
पढ़ते सुगधि के हैं छद अली कठ से।

+ +

रवि-रश्मिया उठी ज्यो सूची-मख तीर हों
छूटने ही वाले हो जो क्षितिज के चाप से।[३]

अष्टम् सर्ग मे एकलव्य जननी की पुत्र-वियोग-जन्य वेदना का वर्णन क हुये षडऋतु वर्णन का अवकाश कवि को मिल गया है।[४] सकल्प और साध नामक सर्गो मे एकलव्य की साधना भूमि वन्य प्रदेश का वर्णन करते हुये वर्मा जी प्रकृति को मानवीय रूप म चित्रित किया है। कवि के शब्दों मे निर्जन अरण्य भू म थी वृद्धा के समान है जो शून्य म विवश एकात बैठी हुई है। वहा के पेड अष्टाव के समान हैं जो जनक-विदेह की सभा मे शास्त्रार्थ हेतु ज्ञान मुद्रा मे खडे हैं झाडियो के झुड जसे वीतरागी सत हैं जो शीश झुका कर चिंतन मे लीन है भूमि म छिपे हुये अपार कुश कटक उदासीन माता के उद्दड बालको के समान है ज चुपचाप लोगों क पैरा म चुभकर कष्ट देते हैं।[५] इसी रूप म प्रकृति का अलकृत रूप म भी चित्रण हुआ है। यथा—

"और ये शिला के खड फैले हुए ऐसे हैं
जैसे कष्ट पुजीभूत होके यहा बैठा है।

---

१. एकलव्य, परिचय सर्ग पृ० ८ २९
२ वही, वही पृ० ३० ६१
३ वही, प्रदर्शन पृ० ९७
४ वही, ममता पृ० १५६ स १६
५ वही, नवम् सर्ग नक्ल्प पृ० ८

अथवा सोमाग्नि के अंगार हैं बुझे हुए
या कि भूमि–भाग्य के ये कठिन कुम्भक हैं।''[1]

परिगणन प्रणाली द्वारा भी एकलव्य मे प्रकृति वर्णन हुआ है। यथा–

'कुरबक, यूथिका, रसाल मंजरी सजे,
मौलश्री, अशोक कामदेव के विशिख हैं।'[2]

स्वप्न सर्ग मे प्रकृति के उग्र रूप का भी चित्रण है.–

'प्रकृति मे क्रान्ति है। अशान्त आधी रात है।
झोंके झूमते हैं। तरु – पत्र हाहाकार में
+ + +
अंधकार की असीम कालिमा के क्रोड मे
क्रूरता का कोश लिए घन घिर आये हैं
+ +
नभ मे प्रचंड ध्वनि जैसे चूर – चूर हो
छिटक गई है दूर दूर की दिशाओ मे।
जैसे नभ खंड खंड होके टूटता सा है
विद्युत – तडप मे दरार दीख जाती है।'[3]

काव्य के अंतिम (दक्षिणा) सर्ग मे प्रकृति को उपदेशात्मक रूप मे चित्रित किया गया है।

इस प्रकार एकलव्य मे प्रकृति को उसको सम्पूर्ण रूपो मे अंकित किया गया है। प्रस्तुत महाकाव्य के प्रकृति चित्रण की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वातावरण और पृष्ठभूमि के निर्माण मे प्रकृति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है

रसपरिपाक और भावचित्रण कौशल

चिन्तन तत्त्व की प्रधानता होते हुये भी 'एकलव्य' मे भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है। भावनाओ का काव्य मे मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन हुआ है। 'एकलव्य' भक्तिरस का महाकाव्य है। प्रारम्भ से अन्त तक एकलव्य की गुरुभक्ति भावना का काव्य मे अक्षुण्ण प्रवाह है।

'काव्यशास्त्र' मे जिन नवरसों का उल्लेख किया गया है, उनमे 'भक्ति' रस को सम्मिलित नही किया गया है। वहाँ भक्ति मात्र भाव के गौण रूप मान गये

---

४ एकलव्य नवम् सर्ग-मत्स्यपुर पृ० [illegible]
१. वही, साधना सर्ग पृ० [illegible]
२. वही, स्वप्न सर्ग, पृ० [illegible]
३. वही, दक्षिणा सर्ग पृ० [illegible]

है—प्रथम प्रियविषयक रति जो शृंगाररस का स्थायी भाव है। दूसरी पुत्र विषयक रति जो वात्सल्य भाव (रस) का स्थायी भाव है। तीसरी देव या गुरु विषयक रति जिसे श्रद्धा या भक्ति-भाव कहते हैं। भक्ति इतना महत्वपूर्ण भाव है कि कालान्तर में इसे स्वतन्त्र रस के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई। काव्यशास्त्र के अनेक आचार्यों ने भक्तिरस की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की है।[1]

एकलव्य का चरित्र गुरुभक्ति का देदीप्यमान प्रतीक है। राजगुरु द्रोण द्वारा शिष्य-रूपमे अस्वीकृत किये जाने के पश्चात् भी एकलव्य ने द्रोणाचार्य को निष्ठापूर्वक गुरु रूप मे वरण कर लिया। द्रोणाचार्य की मृण्मयी प्रतिमा बनाकर अहर्निश साधना कर अभूतपूर्व धनुर्विद बना। किन्तु अन्त मे गुरु के इस प्रण की पूर्ति के लिये कि अर्जुन अद्वितीय धनुर्धर रहे, एकलव्य ने अपना दक्षिणाङ्गुष्ठ काट कर समर्पित कर दिया और गुरुभक्ति का अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया। 'एकलव्य' महाकाव्य के दक्षिणा सर्ग मे भक्तिरस की स्रोतस्विनी प्रवहमान है। एक अंश द्रष्टव्य है—

'गुरु का हृदय खंड-खंड हो अस्तु व।
दक्षिणाङ्गुष्ठ ही हो खंड खंड मेरा जो कि
पार्थ को बना दे अद्वितीय धन्वी विश्व मे।
गुरु प्रणपूर्ति करे सब काल के लिये,
जय गुरुदेव ! यह रही मेरी दक्षिणा।'[2]

एकलव्य का दक्षिणाङ्गुष्ठ-समर्पण उसकी सम्पूर्ण जीवन साधना का समर्पण था। इससे बड़ी गुरु दक्षिणा की कल्पना की नहीं जा सकती। इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य मे भक्तिरस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

वात्सल्य—एकलव्य जननी के माध्यम से काव्य मे वात्सल्य रस की व्यजना हुई है। काव्य का अष्टम् अर्थात् 'ममता' सर्ग वात्सल्य रस का ही उदाहरण है। सम्पूर्ण सर्ग मे 'स्मृति' नामक सचारी भाव के द्वारा एकलव्य जननी के मातृत्व-भाव की अभिव्यक्ति हुई। यथा—

'मैं भी साथ तुम्हारे जाती।
उषा-काल मे तुम्हें उठाने,
मधुर प्रभाती गाती।
तुम उठते करते प्रणाम,
मैं उर से तुम्हें लगाती॥'[3]

---

१. डा० गोविंद त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, भाग १, पृ० १९८
२. एकलव्य-दक्षिणा सर्ग, पृ० २९९
३. वही —ममता सर्ग, पृ० १४९

वीर

एकलव्य के अदम्य उत्साह की व्यंजना मे वीर रस के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इस दृष्टि से साधना सर्ग[1] तथा लाघव और द्वन्द्व नामक सर्गो के कतिपय स्थल उल्लेखनीय हैं।

रौद्र

नीचे एक अंश उद्धृत है जिसमे द्रोणाचार्य के उग्र रूप मे रौद्र रस की अभिव्यक्ति हुई है —

"दांत वज्र जैसे सधि हीन कसे मुख मे,
ओठ भूमि-कंप से फटे हुये शिखर से,
जीभ जैसी सर्पिणी सी ऐंठी निज बाबी में,
स्वेद जैसे आग की नदी बही हो सिर से।
शब्द विष की प्रचंड ज्वाला में बुझे हुए,
+ + +
द्रोण धूमकेतु जैसे अग्निमय हो उठे।[2]

करुण

'ममता' सर्ग मे एकलव्य जननी की शोकाकुल दशा के चित्रण में करुण रस की व्यजना हुई है।[3]

उपर्युक्त रसो के अतिरिक्त अद्भुत[4] और शांत रस के निर्वेद स्थायी भाव[5] का निरूपण यथा प्रसंग काव्य में उपलब्ध है। शृंगार रस का 'एकलव्य' मे अभाव है। 'एकलव्य' महाकाव्य की रस व्यंजना की विशेषता यह है कि उसमे विभिन्न भावो की प्रसगानुकूल मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। चाहे वे भावरस दशा तक कहीं कहीं न भी पहुँचे हो। इन भाव-दशाओ की योजना मनोवैज्ञानिक ढंग से हुई है।

नामकरण

'एकलव्य' महाकाव्य का नामकरण पात्रगत आधार पर हुआ है। नामकरण में यद्यपि कोई नवीनता नहीं है तथापि काव्य के उद्देश्य, कथाविधान एवं चरित्र तत्त्व की दृष्टि से नामकरण सार्थक है।

---

१ एकलव्य, साधना सर्ग, पृ० १८९, १९०
२ वही , परिचय सर्ग, पृ० ५०, ५१
३ वही , ममता सर्ग, पृ० १६६, १६७
४ वही , परिचय सर्ग, पृ० ११
५ वही , साधना सर्ग, में

सर्ग योजना

'एकलव्य' में चौदह सर्ग है। प्रथम सर्ग से पूर्व 'स्तव' है जिसमें कवि ने शिव का स्तवन किया है। यह सामान्यत: मंगलाचरण का ही दूसरा रूप है। सर्गों की संख्या भी दी गई है और प्रत्येक सर्ग का नामकरण भी किया गया है। सर्गों के नामकरण में आकर्षण और नवीनता है। सर्गों का क्रम कथाविन्यास के अनुरूप है।

भाषा शैली

'एकलव्य' की भाषा तत्सम, अलंकृत, विषयानुकूल एवं प्रवाहपूर्ण है। सामान्यत: एकलव्य की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है। भाषा में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण सामर्थ्य है। काव्य के गहन विषयों को भी सुगम शैली एवं सरल भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करने में एकलव्यकार सफल रहा है। जहां कहीं एकलव्य की तेजस्विता एवं दर्प का वर्णन करना है वहां भाषा ओजगुण सम्पन्न हो गई है। 'ममता' सर्ग में एकलव्य जननी के हृदयोद्गारों की व्यंजना में भाषा माधुर्य गुण सम्पन्न भी दिखाई देती है। अलंकारों के समुचित प्रयोग, शैली की सजीवता, नाटकीयता एवं सम्प्रेषणीयता आदि गुणों के कारण एकलव्य की भाषा सजीव और सशक्त है।

'एकलव्य' में सबसे अधिक नाटकीय शैली का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त वर्णनात्मक, संबोधन सूचक, आत्मकथात्मक तथा संवादात्मक शैलियों का भी प्रयोग हुआ है। अष्टम सर्ग में गीत शैली का प्रयोग हुआ है। काव्य की शैली में कवि की गूढ़ से गूढ़ कल्पनाओं को अभिव्यक्ति देने की क्षमता है।

अलंकार–योजना

'एकलव्य' की भाषा शैली के प्रसाधन अलंकार है। एकलव्य में सभी प्रकार की अलंकारों का प्रयोग हुआ है। कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण निम्नांकित प्रकार हैं —

उपमा

श्याम वर्ण किन्तु है प्रदीप्त मुख उनका।
जैसे श्याम तारिका में कांतिमयी दृष्टि है।[1]
आश्रम था हीन जैसे चन्द्र का ग्रहण हो।[2]

रूपक

आधी रात बीती। निद्रा जैसे एक माता है,
जग शिशु को सुलाए स्वप्न सजे अंक में।

---

१ एकलव्य, परिचय सर्ग पृ० ३१
२ वही, वही पृ० ३७

उनको निहारती है, शांत मौन भाव से,
अपने सहस्र नेत्र-तारकों की दृष्टि से।'[1]

श्लेष

'किन्तु परिहास के विवादी स्वरालाप से,
विकृत न होगा उठा उर में जो राग है।'[2]

मानवीकरण

भूमि भांति भांति के सु-छत्र किये धारण,
राजमहिषी की भांति राजती थी राग से,
स्वर्ण मंच मानो अलंकार थे सुदेश मे।
प्रेक्षागार चकित भुजंग सा पड़ा हुआ।[3]

'एकलव्य' मे उपर्युक्त उल्लिखित अलंकारों के अतिरिक्त अपन्हुती, विभावना और व्यतिरेक के भी उदाहरण मिलते हैं।

छन्द-विधान

'एकलव्य' मे अष्टम (ममता) सर्ग को छोड कर शेष सर्गों मे १५ वर्णों वाले प्रमिताक्षर छन्द का प्रयोग किया गया है। यह संस्कृत का ही एक प्राचीन छन्द है जिसमे १५ वर्ण होते हैं। इस छन्द की विशेषता यह है कि एक पूरा वाक्य एक पंक्ति मे भर जाता है, लघु -गुरु और तुक आदि का प्रतिबंध न होने के कारण इस छन्द के द्वारा गति को कवि स्वेच्छानुसार द्रुत या मन्थर कर सकता है। जैसे :-

'घोषणा के साथ ही प्रविष्ट पार्थ हो गये।'[४]
'आधी रात बीती। निद्रा जैसे एक माता है।'[५]

प्रत्येक सर्ग के अंत मे कवि ने चार चरणों को तुकांत रूप दिया है जिसके कारण सर्ग की अंतिम चार पंक्तियां उसी सर्ग की शेष पंक्तियों से अलग हो जाती

---

१. एकलव्य, संकल्प, पृ० १७३
२. वही, धारण, पृ० १३३
३. वही, प्रदर्शन सर्ग, पृ० ९९
४. वही, वही, पृ० १०८
५. वही, संकल्प सर्ग पृ० १७३

हैं। इस परिवर्तन से जहां एक ओर सर्गांत छन्द परिवर्तन की परम्परा का निर्वाह हो जाता है वहीं अंतिम छन्द प्रभावशाली भी प्रतीत होता है और संगीतात्मक सौन्दर्य में वृद्धि भी होती है। 'एकलव्य' के सप्तम (धारणा) सर्ग में तुकांत प्रमिताक्षर छंद का प्रयोग किया गया है। 'ममता' सर्ग में गीता की रचना की गई है। इसलिये वहां मात्रिक छंद का प्रयोग है। उसमें सभी छंद १६मात्राओं वाले हैं।

इस प्रकार 'एकलव्य' शिल्प-विधान की दृष्टिसे सफल रचना है। एकलव्य में शिल्प-तत्त्व के अंतरंग बहिरंग दोनों पक्ष समृद्ध और महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण हैं।



पंचम अध्याय

जीवन-दर्शन

भूमिका

इस अध्याय में आलोच्य महाकाव्यों में प्रतिपादित जीवनदर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। *यहाँ यह उल्लेखनीय है कि* 'जीवनदर्शन' शब्द 'दर्शन' शब्द की अपेक्षा व्यापक है। 'जीवनदर्शन' से अभिप्राय कवि के सम्पूर्ण चिन्तनक्रम तथा काव्य के वैचारिक पक्ष से है। दूसरे शब्दों म महाकाव्यकार का वह दृष्टिकोण जो दार्शनिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सन्दर्भों से कृति में प्रतिफलित होता है, 'जीवन दर्शन' अभिधान से अभिहित किया जाता है। अस्तु, प्रस्तुत प्रकरण में जीवनदर्शन विषयक विवेचन करते समय सर्वप्रथम प्रत्येक महाकाव्य की सृजन प्रेरणा और रचना उद्देश्य की महत्ता एवं साध्यंक्य पर विचार किया गया है। इस विवेचन से यह मुख्य रूप से चिन्तनीय रहा है कि आलोच्य महाकाव्यो मे जिन सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एव दार्शनिक आदर्शों (सिद्धान्तों) की पुनर्प्रतिष्ठा की गई है वे कहाँ तक परम्परागत है और कहाँ तक प्रगतिशील अर्थात युगीन हैं। इसी क्रम मे महाकाव्यकारो की जीवन-दृष्टि को प्रभावित करने वाली महत्त्वपूर्ण समकालीन विचारधाराओं के आदान का भी विवेचन किया गया है। तदन्तर प्रत्येक महाकाव्य मे प्रतिष्ठित चिरतन मानवीय जीवन मूल्यो का सधान किया गया है। जीवनदर्शन सम्बन्धी उपलब्धियो का मूल्याकन भी मानवतावादी चिंतनधारा की प्रस्थापन-विधि के आलोक मे किया गया है।

प्रियप्रवास

महत् उद्देश्य और सृजन प्रेरणा

महाकाव्य के 'स्थायीतत्वों में सर्वप्रमुख स्थान महान् उद्देश्य और महती प्रेरणा का है'[1] आलकारिको ने महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग की प्राप्ति कहा है। किन्तु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि की प्राप्ति ही आज महत्वपूर्ण नही है। प्रत्येक महाकाव्य की रचना के मूल मे कोई न कोई महत् प्रेरणा कार्यरत रहती है, जो सम्पूर्ण महाकाव्य के कलेवर मे प्राण शक्ति के समान आदि से अन्त तक परिव्याप्त

---

१ डा० शम्भुनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २८४

रहती है। 'प्रियप्रवास' की रचना विश्वबन्धुत्व की भावना और लोकसेवा के आदर्श की स्थापना को लक्ष्यगत करके हुई है। वैसे काव्य की 'भूमिका' में प्रियप्रवास की रचना के सम्बन्ध में विभिन्न उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है। सर्वप्रथम इस महाकाव्य की रचना खडी बोली में महाकाव्य लेखन की अभाव पूर्ति के रूप में हुई। जैसा कि कवि ने स्वयं कहा है—'खडी बोली में छोटे छोटे कई ग्रन्थ अब तक लिपिबद्ध हुये हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश सौ दो सौ पद्यों में ही समाप्त हैं। ······ इसलिए खडी बोलचाल में मुझको एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता देख पड़ी, जो महाकाव्य हो······अतएव मैं इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कुछ साहस के साथ अग्रसर हुआ और अनवरत परिश्रम करके इस 'प्रियप्रवास' नामक ग्रन्थ की रचना की।'[1] इसके अतिरिक्त मातृभाषा हिन्दी की सेवा के लिए भी कवि ने इस काव्य का प्रणयन किया। 'प्रियप्रवास' की रचना का एक उद्देश्य यह भी था कि हिन्दी के कवि और लेखक मातृभाषा हिन्दी को महाकाव्यों की रचना से सम्पन्न करें। हरिऔध जी ने स्वय यह स्पष्ट किया है कि'······ महाकाव्य का आभास स्वरूप यह ग्रन्थ १७ सर्गों में इस उद्देश्य से लिखा गया है कि इसको देखकर हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित सुकवियों और सुलेखों का ध्यान इस त्रुटि के निवारण करने की ओर आकर्षित हो।'[2] 'प्रियप्रवास की रचना के द्वारा हरिऔध जी ने इस तथ्य का भी स्पष्टीकरण किया है कि संस्कृतमयी खडी बोली ही राष्ट्रभाषा बनने के योग्य है उन्होंने काव्य की भूमिका में सतर्क प्रमाणित किया है कि संस्कृत गर्भित भाषा भारत वर्ष के अहिन्दी भाषी प्रान्तों के लिए सहज सुगम है, क्योंकि—'भारतवर्ष भर में संस्कृत भाषा आदृत है। बगला, मरहठी, गुजराती, वरन् तमिल और पजाबी तक में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है।'[3] हरिऔधजी के इस कथन से स्पष्ट है कि वे 'प्रियप्रवास' जैसे ग्रन्थ की रचना द्वारा खडी बोली को राष्ट्रभाषा के गौरव से सम्मानित करना चाहते थे। प्रियप्रवास के कवि की इच्छा यह भी थी कि संस्कृत वृत्तों में खडी बोली के माध्यम से काव्य की रचना की जाय।[4] इन सब कारणों के अतिरिक्त 'प्रियप्रवास' की रचना पौराणिक कथाओं की बौद्धिक व्याख्या के लिए भी हुई। पुराणों में वर्णित जिन कथाओं और अवतारों को लोग कपोल कल्पित कहकर त्याज्य मानते थे उन्हें कवि ने तर्क सम्मत एवं बुद्धि ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करके तथा श्रीकृष्ण को महापुरुष के

---

१ प्रियप्रवास की भूमिका—काव्य भाषा, पृष्ठ २

२. वही, वही,—विचार सूत्र, पृ० १

३. वही वही, पृ० २

४. वही, भूमिका—भाषा शैली, पृष्ठ ९

रूप में अंकित करके पौराणिकता की रक्षा की है[1] उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रियप्रवास की रचना खड़ी बोली के गौरव की प्रतिष्ठा, राष्ट्रभाषा प्रेम, पौराणिकता के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण और कृष्ण के व्यक्तित्व को महापुरुष के रूप में अंकित करने की दृष्टि से हुई है।

'प्रियप्रवास' की रचना के जिन कारणों का ऊपर उल्लेख किया गया है वे स्थूल एवं बाह्य है। वस्तुतः महाकाव्य की रचना महान् सांस्कृतिक अनुष्ठान के रूप मे होती है। प्रत्येक महाकाव्य की रचना किसी महत् उद्देश्य की प्राप्ति अथवा किसी महत्वपूर्ण सन्देश के प्रसारण के लिए होती है। प्रियप्रवासकार का मूल उद्देश्य वर्तमान मानव के रिक्त एवं आस्थाहीन हृदय को चरित्र एवं विश्वास का बल प्रदान कर; सामाजिक जीवन के मूल्यगत संक्रमण और पतनोन्मुखी प्रवृत्तियो का लोक-कल्याण,परहित, एवं कर्तव्यनिष्ठा की भावना द्वारा विरोध करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कवि ने एक ओर कृष्ण और राधा के पौराणिक स्वरूप का यथेष्ट रूप से परिमार्जन करके उन्हें लोकोपकारक एवं लोक-सेविका के रूप मे अंकित किया है तो दूसरी ओर राष्ट्र प्रेम, जातीय-गौरव, लोकमंगल, विश्व-कल्याण एवं उत्सर्ग से पूर्ण युग की उन्नत विचार धाराओ एवं जीवन पद्धतियो का निरूपण भी किया है। व्यक्ति के स्वार्थो को समाज के लिए बलिदान कर देने की भावना, विश्वबन्धुत्व के महान आदर्श एवं स्वजातीय गौरव की जिन भावनाओं से अनुप्रेरित होकर 'प्रियप्रवास' का सृजन हुआ है वह निश्चय ही काव्य के महत् उद्देश्य एवं बलवती सृजन प्रेरणा के द्योतक हैं।

२. सन्देश

'प्रियप्रवास' मानवतावादी जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा और युगीन जीवनादर्शों की स्थापना के आग्रहो को पूर्ण करने के प्रयास मे लिखा गया है। 'प्रियप्रवास' के कवि ने बौद्धिकता की अति से आक्रान्त, स्वार्थी, विषयग्रस्त अनास्थावान एवं स्वच्छन्द मानव समाज को परहित, परोपकार, आस्था, संयम, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं स्वदेश प्रेम का सन्देश दिया है। काव्य मे स्वार्थ की अपेक्षा, परमार्थ को, भोगो की अपेक्षा त्याग को, व्यक्तिगत हित की अपेक्षा जातीय एवं राष्ट्रीय हितो को श्रेयस्कर बताया गया है। कृष्ण और राधा की चरित्र सृष्टि के माध्यम से सच्चे लोकसेवी एवं कर्त्तव्य परायण व्यक्तियो की महानता का प्रतिपादन किया है। 'प्रियप्रवास' के सन्देश का प्रसारण काव्य की नायिका राधा के मुख से कवि ने षोडश सर्ग की निम्न पंक्तियो मे कराया है—

---

१. प्रियप्रवास : भूमिका—ग्रन्थ का विषय, पृष्ठ २९—३०

'हो जाने से हृदयतल का भाव ऐसा निराला,
मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये।
मेरे जी मे हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा,
मैंने देखा परम प्रभु को स्वयीय प्राणेश ही मे ,'[१]

राधा के हृदय का यह उदात्त भाव विश्वप्रेम का जनक है। इस भावदशा के कारण राधा के समान मानव की आन्तरिक वृत्तिया इतनी दिव्य और महान् बन जाती है कि प्राणी मात्र मे उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होने लगता है। इस उदात्त भावना के फलस्वरूप ईशोपासना एव भक्ति विषयक आदर्शों मे परिवर्तन हो जाता है। ससार के प्राणिमात्र को विश्व आत्मा का रूप समझकर उनकी यत्न पूर्वक सम्मान एव सेवा ही भक्ति हो जाती है। इस प्रकार प्रियप्रवास के कवि ने समाज कल्याण, जातीय हित, राष्ट्रीय गौरव एव विश्व मगल की भावना का शाश्वत सन्देश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया है।

३. सास्कृतिक निरूपण

महत् सन्देश एव बलवती प्रेरणा से अनुप्राणित होने के कारण 'प्रियप्रवास की रचना का सास्कृतिक महत्व भी कम नही है। जिन व्यापक मान्यताओ, युगीन जीवनादर्शों, चिरन्तन मानवमूल्यो, पौराणिक आस्थाओ और आध्यात्मिक निष्ठाओ को लेकर 'प्रियप्रवास' की रचना हुई। उनके कारण उसमे मानव सस्कृति के उन्नत स्वरूप का निदर्शन हुआ है। स्थूल रूप से भारतीय सस्कृति दो रूपो मे विभक्त दिखाई देती है—

१ दैवीय सस्कृति, तथा
२ मानवीय सस्कृति

'प्रियप्रवास' मे मानवीय सस्कृति का निरूपण हुआ है। काव्य की विषय-वस्तु का पौराणिक आधार होने के कारण प्रियप्रवास मे निरूपित सस्कृति का स्वरूप यद्यपि हिन्दू है, किन्तु काव्य में प्रतिपादित अवधारणाओ का सम्बन्ध विश्व जनीन सास्कृतिक परम्पराओ से स्थापित करना है। प्रस्तुत प्रसग मे हम सस्कृति के सीमित और व्यापक दोनों ही रूपो को देखने का प्रयास करेंगे।

४ प्रियप्रवास मे भारतीय सस्कृति का निरूपण

सहस्राब्दियो पूर्व आर्यों और दूसरी जातियों के मिलन से भारत मे जिस सामासिक सस्कृति के स्वरूप का निर्माण हुआ है। उसे 'भारतीय सस्कृति' अभिधान दिया जाता है। इस सस्कृति की प्रमुख विशेषतायें हैं उदारता,

---

१ प्रियप्रवास षोडश सर्ग, पृ० २५४

समन्वयवाद, आध्यात्मिकता, धर्मपरायणता, वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था आदि।

'प्रियप्रवास' मे कवि ने कृष्ण और राधिका के चरित्र मे भोग और त्याग, प्रवृत्ति और निवृत्ति का सुन्दर समन्वय चित्रण किया है। ब्रजमण्डल मे गोप एव गोपिकाओ के साथ रास-लीलाओ और आनन्द-क्रीडाओ मे मग्न रहने वाले कृष्ण ब्रजवासियो को भयकर आपदाओ से छुडाने मे त्यागमय जीवन का परिचय देते है। वही कृष्ण मथुरा मे राजसी सुखो का उपभोग करते हुए भी जगत हित के कार्यों मे निष्काम भाव से निमग्न रहकर निवृत्ति मार्गी प्रवृत्ति का परिचय देते है।[1] 'प्रियप्रवास' की राधा के जीवन मे कवि ने प्रेम और त्याग, भक्ति और ज्ञान, कर्त्तव्य और तपश्चर्या आदि परस्पर विरोधी भावनाओ का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। विचारधारा के क्षेत्र मे आध्यात्मिकता और भौतिकता, भोग और त्याग तथा सत् और असत् का भी सुन्दर समन्वय हुआ है। राधा का वह दृष्टिकोण जिसके अन्तर्गत वह ब्रह्म को जगत के प्रत्येक प्राणी मे और जगत पति को श्याम मे देखती है, वह जगत और ब्रह्म की स्थितियो का ही समन्वय है।[2]

'प्रियप्रवास' में आध्यात्मिक भावना को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की गई है। भौतिक सुख सुविधाओं से आत्मिक सुख को श्रेष्ठ बताया गया है। ऊधो ने गोपिकाओं को समझाया भी है कि ससार का विपुल सुख जगतहित के सामने तुच्छ है।[3] इसलिये मन को योग द्वारा सम्हाल कर स्वार्थमयी वृत्तियो को जगतहित मे त्याग देना चाहिये। वासनाओं मे मोहित न होने पर ही दु ख का शमन और शाति की प्राप्ति सम्भव है।[4]

धर्म परायणता और भक्ति भावना को भी काव्य मे यथेष्ठ महत्व दिया गया है सांस्कृतिक दृष्टि से धर्म परायणता के दो अर्थ हैं एक तो लौकिक और दूसरा अलौकिक या पारमार्थिक। लौकिकता के अन्तर्गत कर्मकाड, पूजा पद्धति, ईशाराधना, व्रत-नियम आदि आते हैं। पारमार्थिक रूप के अन्तर्गत मानसिक शुद्धि, आचारवादिता, सत्य-अहिसा-युक्त आचरण, अपरिग्रह का भाव एव आस्तिकता की भावना का उल्लेख किया जाता है। 'प्रियप्रवास' मे धर्म-परायणता के दोनों ही रूपो की प्रतिष्ठा हुई है। 'प्रियप्रवास' की यशोदा देवी-देवताओ की श्रद्धापूर्वक पूजा प्रार्थना करती हैं। कुमारी राधा, श्रीकृष्ण को पतिरूप मे प्राप्त करने के लिये भगवती देवी को पूजती एव देवताओ को मनाती हैं। वृन्दावन को पुण्य-तीर्थ-स्थान के रूप मे

१ प्रियप्रवास, चतुर्दश सर्ग २२ से २५
२ वही, षोडश, सर्ग, छन्द ११२
३ वही, चतुर्दश सर्ग – २२
४ वही, वही, – छन्द ३९

ही अंकित किया गया है। विभिन्न पर्वों-उत्सवों के रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति का स्वरूप आज भी रक्षित है। कृष्ण के जन्मोत्सव के उपलक्ष में ब्रज मण्डल के आमोद-प्रमोद पूर्ण जीवन का चित्रण किया गया है। द्वार सुन्दर वन्दनवारों से सजाये गये। नवीन-आम्र पल्लवों के तोरण आगन में बाँधे गये। गृह, गली, द्वार मंदिर और चौराहों पर ध्वजाएं लगाई गयी जो सुरलोक को भी ब्रजप्रदेश के आनंद की सूचना दे रही थी। द्वारों पर जलपूर्ण कुंभ सुशोभित थे, गलियों में पुष्पों की गंध थी। सम्पूर्ण गोधन वसनाभूषणों से अलंकृत एवं सुसज्जित किया गया था। ग्वालिनें मधुसिक्त कंठ से पुलकित होकर गायन कर रही थी। याचक-वृन्द को धन-रत्न दिया जा रहा था। सुन्दर वस्त्र-भूषण धारण किये ग्राम वधूटियां विनोदित एवं विहसती हुई नंद नृप के घर आ रही थी[1] इन वर्णनों में भारतीय संस्कृति का उत्सवपूर्ण एवं उल्लासमय रूप बडी सजीवता से वर्णित किया गया है।

पारलौकिक दृष्टि से सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा की गई है। 'प्रियप्रवास के कृष्ण हिंसा को निद्यकर्म कहते हैं। वे मनुष्य तो क्या एक पिपीलिका के वध को भी उचित नही मानते। [2] किन्तु उनकी यह भी धारणा है कि :—

"समाज उत्पीडक धर्म्म विप्लवी। स्व जाति का शत्रु दुरन्त पातकी।
मनुष्य द्रोही भव प्राणि पुंज का न है क्षमा योग्य वरंच बध्य है।
क्षमा नही है खल के लिये भली। समाज उत्सादक दण्ड योग्य है।
कु-कर्म कारी नर उबारना। सुकर्मियो को करता विपन्न है॥ [3]

'प्रियप्रवास' के कृष्ण सत्य और नीति के सर्वत्र समर्थक रहे हैं। वे अनीतिपूर्ण कार्य से खिन्न होते थे और छोटे को सदैव सत्याचरण की ही शिक्षा देते थे।[4] अपरिग्रह और त्याग की महिमा का तो हरिऔध जी ने काव्य में सर्वत्र ही आख्यान किया है। राधा का जीवन तो अपरिग्रह का आदर्श ही है। इसके अतिरिक्त प्राचीन सांस्कृतिक विश्वासों यथा भाग्यवाद[5] और शकुन[6] आदि का भी यथास्थान उल्लेख हुआ है।

भारतीय संस्कृति में परिवार और समाज को विशेष महत्व दिया गया है। क्योंकि सांस्कृतिक परम्पराओं का संरक्षण यही संस्थाएं अनादिकाल से कर रही हैं। 'प्रियप्रवास' में ब्रज धराधिप नंद का परिवार छोटा होते हुये भी आदर्श है।

---

१. 'प्रियप्रवास, अष्टम सर्ग,— ३ से १६
२ वही, त्रियोदश सर्ग, ७८,७९
३ वही, १३।८०–८१
४ वही, १२।८४ ८५
५ वही, १३।२१.
६ वही, सर्ग ६, छन्द ८

नंद परिवार के सदस्य हैं—माता यशोदा और पुत्र कृष्ण। कवि ने माता-पिता और पुत्र के स्नेह—सौजन्य पूर्ण सम्बन्धो की सुन्दर व्याख्या की है। माता-पिता का पुत्र के प्रति स्नेह और कृष्ण की माता-पिता के प्रति पूज्य भावना का सुन्दर रूप चित्रित है। व्रजमण्डल के समाज का स्वरूप भी मधुर सम्बन्धो और पारस्परिक सम्मान, एकता एव समानता की भावना पर आधारित दिखाया गया है।

इस प्रकार हरिऔध जी ने प्रियप्रवास मे भारतीय सस्कृति के आदर्श रूप को अ कित किया है।

नवीन संस्कृति (मानवतावादी सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना)

'प्रियप्रवास' की रचना उस समय हुई जब भारतवर्ष मे ब्रिटिश शासन की प्रभुसत्ता थी। अ ग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क एव प्रभाव से भारतीय सामाजिक एव राष्ट्रीय जीवन में पुनरुत्थानवादी विचारधारा का सूनपात हो चुका था। प्राचीन विश्वासो, आस्थाओ एव परम्पराओ को नई दृष्टि से देखने का प्रयास प्रारम्भ हो गया था। उस समय भारतवर्ष मे आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, थियोसोफीकल सोसाइटी, रामकृष्णमिशन जैसी अनेक सास्कृतिक सस्थाए अनेक सुधारवादी आन्दोलनो एव विचार परम्पराओ को जन्म दे चुकी थी। हरिऔधजी का इन सस्थाओ से एक सजग साहित्यकार एव बुद्धिजीवी होने के कारण प्रत्यक्ष- परोक्ष सम्बन्ध अवश्य था। "निस्सन्देह तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक क्रान्तियो ने भी अव्यक्त रूप से उन पर प्रभाव डाला। ... .हरिऔधजी पर उस समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियो का भी प्रभाव पड़ा।"[1] अस्तु, 'प्रियप्रवास' मे उस नवीन सस्कृति की व्यजना भी हुई है जिसका निर्माण पाश्चात्य विचारधाराओ से प्रभावित होकर हुआ है। इसे मानवतावादी सस्कृति कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योकि नवीन सस्कृति के सिद्धान्तो, उद्देश्यो एव प्रमुख विचारधाराओ का सम्बन्ध किसी कल्पित अज्ञात सत्ता या शक्ति से न होकर, मानव से है।

जिन नवीन सास्कृतिक आदर्शों की स्थापना प्रियप्रवास मे हुई, ये हैं—कर्मवाद, लोकसेवा, लोकहित, ब्रह्म से अधिक मानव महत्व की स्वीकृति, नारी की महत्ता, लोकहित की भावना और राष्ट्रीयता आदि। यहा यह उल्लेखनीय है कि नवीन मानवतावादी सस्कृति के जिन आधारभूत सिद्धान्तो एव आदर्शो का उल्लेख ऊपर किया गया है, उनका भारतीय सस्कृति से कहीं—कहीं तात्विक भेद अवश्य है, किन्तु विरोध कही भी नही है। उदाहरण के लिये— "भारतीय सस्कृति मे राम को बारह कलाओ का और कृष्ण को सोलह कलाओ का पूर्ण अवतार कहा जाता

---

१ डा० मुकन्ददेव शर्मा—हरिऔध और उनका साहित्य, पृ० २२१

है।''[१] कृष्ण को विष्णु का अवतार प्राचीन भारतीय एवं हिन्दू संस्कृति के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। किन्तु नवीन सांस्कृतिक आदर्शों के अनुसार कृष्ण पुरुष हैं। उन्हें महापुरुष अवश्य कहा जा सकता है। इस प्रकार के नवीन सांस्कृतिक आदर्शों का प्रभाव हरिऔध जी पर पड़ा भी है उन्होंने स्वीकार किया है कि–''काल पाकर मेरी दृष्टि व्यापक हुई, मैं सोचने विचारने और शास्त्र के सिद्धान्तों को मनन करने लगा। उसी के फलस्वरूप मेरे पश्चताद्वर्ती और आधुनिक काव्य हैं। भगवान कृष्णचन्द्र में मुझको श्रद्धा है, किन्तु वह श्रद्धा अब संकीर्णता, एक-देशिता और अकर्मण्यता दोषदूषिता नहीं है।........मानवता का चरम विकास ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है–यही अवतारवाद है।....... अवतारों का सम्बल मानवता का आदर्श ही था .....अतएव उसको उसी रूप में देखने की आवश्यकता है, जो उसका मुख्य रूप है और यही कारण है कि आजकल का मेरा परिवर्तित मत यही है।''[२]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि अवतारवाद के सम्बन्ध में कवि ने नवीन सांस्कृतिक किंवा मानवतावादी दृष्टिकोण को ही अपनाया है। 'प्रियप्रवास' में नवीन सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना कवि के व्यापक सांस्कृतिक दृष्टिकोण की परिचायक है।

प्रियप्रवास में भाग्यवाद के स्वर के साथ साथ कर्मवाद को कहीं भी विस्मृत नहीं किया गया है। अपने मित्र उद्धव को ब्रज भेजते हुये कृष्ण यही कहते हैं कि मैं कार्य व्यस्त हूं। :–

> ''मेरे जीवन का प्रवाह पहले अत्यन्त उन्मुक्त था।
> पाता हूं अब मैं नितान्त उसको आबद्ध कर्तव्य में॥''[३]
> राधा ने भी उद्धव से कृष्ण के प्रति सन्देश भेजते हुये यही कहा है कि–
> ''प्यारे जीवें जगहित करें गेह चाहे न आवें।''[४]

इसी प्रकार लोकहित एवं लोकसेवा की भावनाओं को काव्य में महत्व प्रदान किया गया है। कृष्ण ने कहा है कि.–

---

१. डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना–प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृष्ठ २६२
२. श्री गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश –महाकवि हरिऔध, पृ० १७३, १७४
३. प्रियप्रवास, नवम सर्ग –३
४ वही, षोडश सर्ग –९८

"जी से प्यारा जगत हित औ' लोक सेवा जिसे है।
प्यार सच्चा अवनि-तल मे आत्म-त्यागी वही है।"[१]

प्रियप्रवास मे नारी की महत्ता को भी स्वीकार किया गया है। यशोदा और राधा के माध्यम से क्रमश मातृत्व और पत्नीत्व रूप की व्यजना हुई है। काव्य के अतिम सर्ग मे नारी के समाज सेविका, विश्व प्रेमिका, दया-मूर्ति, मगलकारिणी आदि अनेक रूपो का चित्रण किया गया है। राधा जैसी सामान्य नारी को हरिऔध जी ने दैवी गुणो से मडित करके उसका चरित्रोत्कर्ष किया है। 'प्रियप्रवास' की राधा परम्परा से भिन्न एक प्रगतिशील विचारों की नारी के रूप मे चित्रित हुई है।

नवधा भक्ति के स्वरूप निरूपण मे आर्त्त-उत्पीडितो की सहायता, पतितो के उन्मेष, गिरती जातियो के उत्थान, कगालो, विवश विधवाओ और अनाथाश्रितो को त्राण देने की जो बात कही गई है वह भी नवीन दृष्टिकोण की परिचायक है। 'आत्म-निवेदन' भक्ति-प्रकार का विवेचन करते हुए राधा ने कहा है कि —

"विपद-सिन्धु पडे नर वृन्द के।
दुख निवारण औ हित के लिये।
अरपना अपने तन प्राण को।
प्रथित आत्म निवेदन भक्ति है॥[२]

इस प्रकार नवीन सास्कृतिक जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा का काव्य मे पूर्ण आग्रह दिखाई देता है। 'प्रियप्रवास' की सास्कृतिक पृष्ठभूमि प्राचीन और अर्वाचीन विचारधाराओ एव मान्यताओ से पुष्ट है। उसमे भारतीय सस्कृति के पुरातन और नवीन दोनो रूपो का सुन्दर चित्रण हुआ है।

दार्शनिक पृष्ठ-भूमि

'प्रियप्रवास' की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण मानवतावादी जीवन-दर्शन की मान्यताओ से प्रेरित होकर हुआ है। हरिऔध जी ने किसी विशिष्ट दार्शनिक मतवाद या दर्शन-प्रणाली को काव्य मे साग्रह प्रतिपादित नही किया है। यद्यपि प्रिय प्रवास मे उद्धव एव गोपिकाओ के सवादो मे सूरदास, नन्ददास आदि के भ्रमर गीत प्रसगो की भाति विशिष्ट दार्शनिक मान्यताओ की स्थापना का पर्याप्त अवकाश था, किन्तु हरिऔध जी ने वैसा नही किया है। उन्होने भारतीय दर्शन की उन्ही विचारधाराओ को काव्य-प्रतिपाद्य के रूप मे स्वीकार किया है जो मानव-जीवन के मगल-विधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

---

१ प्रियप्रवास, षोडश सर्ग-४२
२. वही, पृ० २५७

ब्रह्म की परिकल्पना और कृष्ण

वेदान्त दर्शन मे ब्रह्म एक है। वह निर्विशेष तत्त्व के रूप मे सर्वव्यापी और सचेतन है। ब्रह्म की सिद्धि के लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता नही, क्योकि वह स्वय सिद्ध एव स्व प्रकाशमय है। चैतन्य को ही आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। समस्त अज्ञानो से अविच्छिन्न चैतन्य 'ईश्वर' है।''[1] हरिऔध जी भी भारतीय दर्शन की अद्वैतवादी परम्परा से प्रभावित थे। इसलिए उन्होने ब्रह्म को अत्यन्त व्यापक रूप मे ग्रहण किया। उन्होने एक स्थान पर लिखा है कि ईश्वर एक देशीय नही है, वह सर्वव्यापक और अपरिछिन्न है, इसकी सत्ता सर्वत्र वर्तमान हैं, प्राणी मात्र मे उसका विकास है—सर्व खल्विद ब्रह्म नेह ना नास्ति किंचन[2] 'प्रियप्रवास म उनकी इसी धारणा का निरूपण हुआ है। षोडश सर्ग मे राधा ऊधो से कहती है कि शास्त्रो मे प्रभु के असख्य शीशो और लोचनो की बात कही गई है। यह भी कहा गया है कि ब्रह्म मुख, नेत्र, नासिका आदि इन्द्रियो से रहित होकर भी छूता, खाता, श्रवण करता देखता और सू घता है। तात्विक दृष्टि से इसका रहस्य यह है कि ससार के सारे प्राणी इसी ब्रह्म की मूर्तिया है। इसलिए अखिल जगत के असख्य प्राणियो के नेत्र आदि उसी विश्व आत्मा की इन्द्रिया है। सम्पूर्ण ससार के इन्द्रिजन्य कार्य ब्रह्म द्वारा हा परिचालित होते है। तारागण, सूर्य, अग्नि, विद्युत, नाना रत्नो और विविध मणियो मे उसी ब्रह्म की विभा प्रकाशमान है। पृथ्वी, पवन, जल आकाश, पादपो और खगो मे उसी ब्रह्म की प्रभुता व्याप्त है।'[3] निष्कर्ष रूप मे राधा ने यही कहा है कि ब्रह्म विश्व रूप है —

' वे बात हैं प्रकट करती ब्रह्म है विश्व रूपी।
व्यापी है विश्व प्रियतम म विश्व मे प्राण प्यारा॥[4]

इस प्रकार हरिऔध जी ने ब्रह्म की व्यापक से व्यापक परिकल्पना की है।

प्रियप्रवास' मे कृष्ण को ब्रह्म नही माना गया है। कवि ने उन्हें मानव के रूप मे ही चित्रित किया है। पुराणो मे कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। किन्तु 'प्रियप्रवास' मे उन्हे महापुरुष अथवा आदर्श मानव के रूप मे ही अकित किया गया है। श्री गिरीजादत्त शुक्ल गिरीश के शब्दो मे–' प्रियप्रवास मे हरिऔध जी ने श्रीकृष्ण की ईश्वरता को तो अस्वीकार किया है—कम से कम परब्रह्म रूप म तो उन्हे ग्रहण नही किया।'[5] इस प्रकार कवि ने ब्रह्म के सम्बन्ध मे एक व्यापक और मानव कल्याणकारी आदर्श स्थापित किया है।

---

१ डा० उमेश मिश्र—भारतीय दर्शन, पृ० ३५९
२ गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश—महाकवि हरिऔध, पृ० १७३
३ प्रियप्रवास, षोडश सर्ग—१०७ स ११०
४ प्रियप्रवास, पृष्ठ २५५
५ महाकवि हरिऔध, पृ० १७४

जीव

शरीर के बन्धन से युक्त आत्मा को भारतीय दर्शनों मे जीव की संज्ञा दी गई हैं। यह जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न शरीर धारण करता है। मृत्यु के पश्चात् स्थूल शरीर के समाप्त हो जाने पर भी सूक्ष्म शरीर से अपने कर्मों का फल भोगता है। जीवात्मा को बन्धन मुक्ति के लिए मोक्ष नाम की स्थिति का उल्लेख किया गया है। जीव को मोक्ष की स्थिति तत्वज्ञान का बोध हो जाने पर प्राप्त होती है। ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो जाने पर जीव और ब्रह्म मे कोई भेद नही रहता। जीवात्मा और परमात्मा मे भेद का कारण सासारिकता का बन्धन है। अपने पाप–कर्मों के कारण ही जीव बन्धनो मे जकड़ा रहता है। 'प्रियप्रवास' मे हरिऔधजी ने जीवात्मा और परमात्मा दोनो का निरूपण किया है। कंस, व्योमासुर, अघासुर, केशि, पूतना आदि ऐसे ही जीव हैं जो अपने पाप कर्मों द्वारा समाज को पीड़ित करते रहते हैं और अन्ततः दुर्गति को प्राप्त होते है। इसके विपरीत कृष्ण और राधा पुण्य आत्मा हैं जो अपने सत्कर्मों द्वारा समाज, जाति और विश्व का कल्याण करते हुए अनन्त सुख और शान्ति को प्राप्त करते हैं।

जगत

शंकराचार्य ने ब्रह्म और जीव की एकता की स्थापना करते हुए भी जगत को मायामय कहा है। वे 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' सिद्धान्त के समर्थक थे। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से जगत की सत्ता को वे भी अस्वीकार नही कर सके थे। इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि "शंकर ने जगत की सत्ता को व्यावहारिक दृष्टि से सत्य मान कर दुःख से बचने के लिए अनेक विधान प्रचलित किये।"[1] हरिऔधजी ने विश्व को विश्वात्मा का ही रूप माना है उन्होने संसार को परिवर्तनशील तो कहा है किन्तु उसके अस्तित्व को अस्वीकार नही किया है। वास्तव मे प्रियप्रवासकार के जगत विषयक विचारों का सार यह है कि वे संसार को वेदान्तियों की भांति नश्वर, मिथ्या, क्षणभंगुर या असत्य नही मानते वरन् अच्छे कार्यों द्वारा ससार के जीवन को सुखमय बनाने की बात कहते हैं।

मोक्ष

भारतीय दर्शन मे मोक्ष का अर्थ जीवात्मा का शारीरिक बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्म मे लीन हो जाना अर्थात् आत्म साक्षात्कार करना ही मोक्ष है। मोक्ष के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा सासारिक मोह है। यह मोह इतना प्रबल है कि मनुष्य

---

१. डा० विशम्भरनाथ उपाध्याय–हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ११६

वासनाओं में डूबा हुआ अपने वास्तविक स्वरूप को कभी भी जान नही पाता है।[१] मोह से निवृत्ति पाने के लिए हरिऔध जी ने आत्मत्याग की बात कही है। आत्म-त्याग की भावना का विकास तभी सम्भव है जब व्यक्ति सम्पूर्ण विश्व मे विश्वात्मा का दर्शन करता हुआ सर्वभूतहित के कार्यों मे निरत रहे। वास्तव में हरिऔध जी ने जीवन का चरम उद्देश्य मोक्ष नही वरन् लोकहित माना है। अन्ततः मोक्ष प्राप्ति का अर्थ ब्रह्म का साक्षात्कार ही तो है। प्रियप्रवासकार ने उस ब्रह्म-दर्शन के लिए लोकहित को ही सर्वोत्तम मार्ग माना है। प्रियप्रवास' मे लोकहित की भावना को जीवन की सब से महत्वपूर्ण सिद्धि के रूप मे स्वीकृत किया गया है।

भक्ति-भावना

'प्रियप्रवास मे निष्काम भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है —

'शास्त्रो म है लिखित प्रभु की भक्ति निष्काम जो है
सो दिव्या है मनुज तन की सब समसिद्धियो से।'[२]

निष्काम भक्ति द्वारा ही मनुष्य जगत के जीवन और प्राणियो के वास्तविक स्वरूप को पहचान सकता है। भक्ति ही माता-पिता, गुरु एव प्रियजनो के कल्याण साधन की प्रेरणा जाग्रत करती है।[३]

प्रियप्रवासकार ने भक्ति का परम्परित स्वरूप प्रतिपादित न करके उसकी युगीन व्याख्या प्रस्तुत की है शास्त्रो मे श्रवण, कीर्तन, वन्दन, दासता, स्मरण, आत्म निवेदन, अर्चना, सख्य भाव एव पदसेवन भक्ति के नव प्रकार कहे गए हैं। किन्तु प्रियप्रवासकार ने किसी कल्पित ईश्वर की मूर्ति बनाकर उसकी वन्दना अर्चना आदि को भक्ति नही माना है। उसके अनुसार सम्पूर्ण जगत व प्राणिमात्र म विश्वात्मा व्याप्त है। ऐसी स्थिति मे उन्ही की यत्न सम्मान पूर्वक सेवा रक्षा करना सर्वोत्तम भक्ति है।[४] उदाहरण के लिए भक्ति के अर्चना रूप का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि

'सत्रस्तो को शरण मधुरा शान्ति सतापितो को
निर्बोधो को सुमति, विविधा औषधी पीडितो को
पानी देना तृषित जन को, अन्न भूखे नरो को
सर्वात्मा भक्ति अति रुचिरा, अर्चना सज्ञा है।'[५]

---

१ प्रियप्रवास, षोडश सर्ग — ६३
२. वही, षोडश सर्ग पृ० ११३
३ वही, पृ० ११४
४ वही, पृ०११७
५ वही, ही पृ० १२८

नवधा भक्ति की नवीन कल्पना प्रिय प्रवास की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है षोडश सर्ग में कवि ने भक्ति दर्शन का उदार, व्यवहारिक एव युगीन निरूपण किया है। जो मानव जीवन के मगल विधान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

विश्वबन्धुत्व की भावना

विश्वबंधुत्व की भावना का विकास मानवतावादी जीवन-दर्शन की विशेषता है। विश्व के महान से महान दार्शनिकों एवं दर्शन–शास्त्रो का अन्तिम उद्देश्य मानव का कल्याण और जगत्‌हित ही रहा है। 'प्रिय प्रवास' की दार्शनिक विचार धाराओ की अन्तिम परिणति विश्वबन्धुत्व की भावना को स्थापित करने मे ही हुई है। प्रियप्रवासकार ने कृष्ण और राधा के चरित्रो को इसी भावना के अनुरूप विकसित किया है। ये दोनों पात्र कुटुम्ब, जाति, समाज और वर्ग की सकुचित सीमाओ से निकल कर सर्वभूतहित एव लोक-कल्याण मे अपने जीवन को समर्पित कर देते हैं। राधा की भावनाओ का इतना उदात्तीकरण हुआ है कि वे अपने स्वार्थो और हितो को भूलकर यही कामना करती है कि—'प्यारे, जीवें जगहित करे, गेह चाहे न आवें।'

विश्वबंधुत्व भाव की प्राप्ति के लिए कवि ने निष्काम कर्म, सात्विक जीवन, परमार्थ एव आत्मत्याग को श्रेयस् साधनो के रूप मे निरूपित किया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श भारतीय जीवनदर्शन की प्राचीनतम उपपत्ति रही है। प्रियप्रवासकार ने इस आदर्श को व्यवहारिक रूप से चरितार्थ किया है।

इस प्रकार 'प्रियप्रवास' की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण नवीन एवं प्राचीन, भारतीय एव विश्वजनीन दार्शनिक मान्यताओ द्वारा हुआ है। 'प्रियप्रवास' मे भारतीय संस्कृति एव मानवतावादी जीवन दर्शन की वह महत् भूमिका प्रतिष्ठित की गयी है, जिस पर आसीन होकर मानव जाति कल्याण एवं अभ्युदय के पथ पर अग्रसर हो सकती है।

साकेत

सृजन प्रेरणा और उद्देश्य

'साकेत' की सृजन प्रेरणा के अनेक प्रत्यक्ष और परोक्ष स्रोत है। श्री मैथिलीशरण गुप्त रामभक्त वैष्णव कवि थे और जैसा कि काव्य के 'समर्पण' की पक्तियो से ज्ञात होता है।[1] 'निज प्रभु गुणगान' के लिए ही 'साकेत' की प्रेरणा मे कवि की राम-भक्ति का भी पर्याप्त हाथ है।

---

१. काव्य का 'समर्पण' गुप्त जी मे अपने स्वर्गीय पिता सेठ श्री रामचरण जी को किया है।

अपने इष्टदेव का गुणगान करने के लिये कवि को 'साकेत' सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई।[१] 'साकेत' की रचना के उद्देश्य की दृष्टि से विचार कर तो काव्योपेक्षिता 'उर्मिला' के चरित्रोद्धार की प्रेरणा ही प्रस्तुत काव्य के सृजन मे सहायक हुई है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'काव्येर उपेक्षिता' और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता' नामक निबधो से प्रेरणा पाकर भी गुप्त जी ने 'साकेत' की रचना की है। काव्य के 'निवेदन' म आचार्य द्विवेदी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुये गुप्त जी ने अर्थश्लेप द्वारा स्वीकार भी किया है —

"करते तुलसीदास भी कैसे मानस-नाद ?
महावीर का यदि उन्हे मिलता नही प्रसाद।"[२]

व्यक्तिगत रूप से श्री छोटलालजी बार्हस्पत्य, श्रीयुत श्री कृष्णदास, मुंशी अजमेरी जी, सियारामशरण जी आदि महानुभावो ने भी कवि को समय समय पर प्रोत्साहित करके सृजन के लिये प्रेरित किया, जैसा कि 'निवेदन' मे स्वय गुप्तजी ने स्वीकार किया है 'साकेत' महाकाव्य की महत्ता को देखते हुये यह भी प्रतीत होता है कि कवि के मन मे ऐसी महत्वाकाक्षा भी थी कि वह कोई महान् ग्रन्थ लिखे, जिसमे उसके जीवन की भावना का श्रेष्ठतम स्वरूप हो। इस ओर गुप्त जी ने सकेत भी किया है कि—"इच्छा थी कि सबके अन्त मे, अपने सहृदय पाठको और साहित्यिक बन्धुओ के सम्मुख 'साकेत समुपस्थित करके अपनी धृष्टता और चपलताओ के लिये क्षमायाचना पूर्वक विदा लूगा।"[३] इस कथन से प्रतीत होता है कि 'साकेत को कवि अपनी साहित्य साधना की इतिश्री अर्थात् अन्तिम कृति के रूप मे प्रस्तुत करना चाहता था। इसके अतिरिक्त भारतीय सस्कृति की महान् परम्पराओं, जन जीवन की व्यापक अनुभूतियो, युग की समस्याओ और नवीन प्राचीन विचारधाराओ एव मानवतावादी जीवनदर्शो की स्थापना का 'साकेत' म अभिनदनीय प्रयास हुआ है, उसके आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि साकेत का सृजन महत् प्रेरणा का परिणाम है।

महत् प्रेरणा के अनुरूप ही 'साकेत' की रचना का उद्देश्य भी महान् है। 'साकेत' की रचना का मूल उद्देश्य मानवतावादी जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा है। साकेत का वस्तु विधान, पात्र घटनाचक्र परिस्थितिया और उनका निरूपण सब इसी उद्देश्य की प्राप्ति मे सहायक हैं। उर्मिला का चरित्र उत्सर्ग की महिमा का व्यजक है तो साकेत के राम मर्यादा और पुरुषार्थ के प्रतिनिधि हैं। साकेत के राम

१. डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना—साकेत म काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० ४९
२ साकेत—निवेदन, पृ० २
३ वही , वही , पृ० १

धरा को स्वर्ग बनाकर नर को ईश्वरत्व प्रदान करते हैं। यहा सीता परिश्रम की, भरत शील की और लक्ष्मण पराक्रम की महत्ता के सस्थापक हैं। साकेत की रचना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की बेला मे हुई थी। साकेतकार ने सच्चे काव्य सेनानी की भांति भारतीय जीवन, समाज और संस्कृति के विराट रूप को विशद्ता से चित्रित किया है। जातीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय गौरव की स्थापना भी कवि ने साकेत में की है। साकेत के सृजन द्वारा भारतीय धर्म, अर्थ, नीति, राजतन्त्र, परिवार, व्यवहार और सदाचार के चित्रण मे भी कवि सफल रहा है। इन सबके अतिरिक्त साकेतकार भारतीय अतीत के गौरव और युग-धर्म की प्रतिष्ठा के जिन उदात्त लक्ष्यो को लेकर चला था, उसकी प्राप्ति मे भी वह सफल रहा है। अस्तु, उद्देश्य की दृष्टि से 'साकेत' का स्थान राष्ट्रीय एव सास्कृतिक काव्यो मे आता है।

संदेश

'साकेत' के माध्यम से गुप्त जी ने महान् सन्देश प्रसारित किया है। काव्य का महानतम सन्देश राम के उन शब्दो मे अभिव्यंजित हुआ है, जहा वे कहते हैं कि—

भव मे नव-वैभव व्याप्त कराने आया, नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश नही मै यहा स्वर्ग का लाया, इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।[1]

राम के उपर्युक्त कथन मे हमारे युग के सिद्धान्तो, विश्वासो, आशाओं, आकाक्षाओ, नीतियो एव आदर्शों की स्पष्ट घोषणा है। वर्तमान युग की सम्पूर्ण विचारधाराओ का अन्तिम उद्देश्य मानवता का अभ्युदय ही है। साकेतकार मानव को ईश्वरत्व प्रदान कराने का एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान राम के द्वारा सम्पन्न कराता है। समष्टि के लिए व्यष्टि के बलिदान, असत् का तिरस्कार कर सत् की स्थापना और स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ की श्रेष्ठता का सन्देश काव्य के पात्रो के जीवन मे चरितार्थ हुआ है। कर्त्तव्य के लिए जीवन-मरण और राष्ट्र के लिए सर्वस्व समर्पण का भाव साकेत का युगीन सन्देश है। यह आह्वान कितना महत्वपूर्ण है—

"भूल जयाजय और भूल कर जीना मरना,
हमको निज कर्त्तव्य मात्र है पालन करना।

\+ \+

हाय मरण से नही किन्तु जीवन से भीता,
राक्षसियो से घिरी हमारी देवी—सीता।

\+ \+

---

१. साकेत—अष्टम सर्ग, पृ० २३५

> अबला का अपमान सभी बलवानों का है,
> सती धर्म का मान मुकुट सब मानों का है।
> मारो मारो जहां वैरियों का तुम पाओ,
> मर मर कर भी उन्हें प्रेत होकर लग जाओ।''[1]

राष्ट्रीय प्रेम और जातीय स्वाभिमान की भावनाओं को उत्तेजित करने में साकेत के अनेक स्थल उद्धरणीय हैं। साकेतकार ने जहां राष्ट्रीय आदर्शों पर बलिदान होने की प्रेरणा दी है, वहीं विश्व बंधुत्व की भावना के प्रसार की चेष्टा भी की है। भारतीय संस्कृति के दिव्य गुणों और उच्चादर्शों की व्यंजना मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा में निश्चय ही सहायक सिद्ध हुयी है। आर्य धर्म का आदर्श उन के सम्मुख धन को तुच्छ समझना, विवश, बलहीन, दीन और अर्द्धसभ्यों को सभ्य बनाना है। 'साकेत' के राम ने इस आदर्श को पूर्णतः प्रतिष्ठित किया है। वास्तव में 'साकेत' की सार्थकता इस बात में है कि उसके कवि ने प्राचीन भारतीय संस्कृति और जीवन-दर्शन को नवीन जीवनादर्शों के आलोक में प्रस्तुत किया है।

सांस्कृतिक निरूपण

गुप्त जी को राष्ट्र कवि होने का गौरव इसीलिए प्राप्त है कि उन्होंने अपने काव्यों में भारतीय संस्कृति के आदर्शों का पुनराख्यान किया है। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं की सर्वाधिक सफल व्यंजना का क्षेत्र संस्कृति है। सांस्कृतिक दृष्टि से गुप्त जी के काव्यों में 'साकेत' प्रतिनिधि ग्रन्थ है। 'साकेत' में जिन सांस्कृतिक आदर्शों और परम्पराओं की स्थापना हुयी है वे शुद्ध भारतीय हैं, किन्तु अपने व्यापक आधार और परिवेश के कारण उनका महत्व विश्वजनीन है। साकेत के सांस्कृतिक निरूपण की सर्वप्रथम विशेषता उसकी समन्वयवादिता है।

समन्वयवाद

भारतीय संस्कृति का स्वरूप ही समन्वय प्रधान है। साकेत' में ये समन्वय विचारों, सिद्धान्तों, धारणाओं एवं मान्यताओं के माध्यम से व्यक्त हुआ है। राम और सीता, लक्ष्मण और उर्मिला, भरत और माण्डवी के जीवन में भोग और त्याग का समन्वय है। इसके अतिरिक्त 'साकेत' में भक्ति और ज्ञान, धर्म और राजनीति, प्रवृत्ति और निवृत्ति, भावुकता एवं कर्त्तव्य परायणता, मृदुता एवं कठोरता, धर्म एवं तपस्या, काम और मोक्ष आदि का समन्वय राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न के चरित्र द्वारा किया गया है। मानवता एवं दानवता, भक्ति एवं हिंसा, साधुता एवं असाधुता, सहृदयता एवं मदमत्तता, पाण्डित्य एवं मूर्खता आदि का समन्वय रावण, कुम्भकरण, मेघनाद आदि के चरित्रों द्वारा किया है। इसी तरह वनवासी जीवन

---

१. साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ४३०, ४३१

एवं राजसी भोग, सेवक एवं राजा, देश-द्रोह एवं विश्व-प्रेम, रामभक्ति एव भ्रातृ-द्रोह आदि का समन्वय विभीषण के जीवन मे दिखाई देता है और ऐसे ही सयोग-वियोग, भौतिकता-आध्यात्मिकता, भोग एव त्याग, पतिपरायणता एव लोकसेवा, सुकुमारता एवं पराक्रमशीलता आदि का समन्वय उर्मिला के जीवन मे दृष्टिगोचर होता है।[1]

सिद्धान्तो के अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन मे भी साकेत मे समन्वय-वादिता दिखाई देती है। 'साकेत के नगर एव अरण्य जीवन मे भी समन्वय दिखाया गया है। चित्रकूट मे सीता, कोल किरातादि भिल्ल बालाओ से कहती हैं — कि मुझे मेरे करने के योग्य कोई काम बताओ और मेरे नागर भाव को स्वय भेंट के रूप मे स्वीकार करो।[2]

साकेत के लक्ष्मण स्वय भक्ति और मोक्ष के समन्वय की बात कहते है :—

'साधो उसको और मनाओ युक्ति से,
सखे ! समन्वय करो भक्ति का मुक्ति से।'[3]

साकेत की शासन व्यवस्था मे राजतन्त्र है। किन्तु राज्य व्यवस्था मे कवि प्रजा का ही अधिक से अधिक योगदान उपयुक्त मानता है। भरत एक स्थान पर कहते हैं :—

"विगत हो नरपति, रहे नर मात्र
और जो जिस कार्य के हो पात्र,
वे रहे उस पर समान नियुक्त,
सब जीएं ज्यो एक ही कुल भुक्त।"[4]

'साकेत' मे प्रवृत्ति मूलक समन्वय की चेष्टा भी दिखाई देती है। 'साकेत' का कवि रावणत्व (आसुरी वृत्तियो पर) राम की विजय द्वारा इसी सत्य को चरितार्थ करता है कि लोक-कल्याण दानवता मे नही मानवता मे है।

पारिवारिक जीवन

'साकेत' का आदर्श-परिवार भारतीय सस्कृति की सयुक्त परिवार प्रथा का सजीव प्रतीक है। इस परिवार के सदस्य अपने अपने कर्त्तव्य और दायित्व के प्रति पूर्णत. सजग हैं। माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-भाई, पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक आदि के

१ डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना — साकेत मे काव्य सस्कृति और दर्शन पृ० ३२९
२. साकेत अष्टम सर्ग पृ० २२७
३. वही पचम सर्ग पृ० १४२
४. वही, सप्तम, सर्ग पृ० १०२

आदर्श सम्बन्धो का स्वरूप साकेत परिवार मे सहज ही देखा जा सकता है । राम और उनके भाइयो की पत्निया आदर्श कुल वधुए है जो पति के आदेश पर और स्वय कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर बडे से बडा त्याग करने को सदैव प्रस्तुत रहती है । उर्मिला और माण्डवी महलो मे रह कर भी वनवासिनो का सा त्यागमय जीवन व्यतीत करती है । सीता पति परायणता के कारण ही राजसी वैभव को छोडकर वन के सकटो को सहती है । महाराज दशरथ एक आदर्श पिता है जो सत्यनिष्ठा के लिए अपने प्राणो को उत्सर्ग कर देते है । कौशल्या और सुमित्रा आदर्श माताए है । कैकेयी भी कालान्तर मे मातृत्व के उच्चादर्श को प्राप्त कर लेती है । राम मे भ्रातृत्व भाव और भाइयो के प्रति सहज स्नेह है, सीता से एक स्थान पर कहते है:–

> 'रहेगा साथ भरत का मन्त्र,
> मनस्वी लक्ष्मण का बल तन्त्र
> तुम्हारे लघु देव का धाम
> मात्र दायित्व हेतु है राम ।' [1]

इस प्रकार रघु-परिवार के सभी सदस्य पारस्परिक व्यवहार और कर्त्तव्य द्वारा सयुक्त परिवार प्रथा के प्राचीन भारतीय आदर्श की सजीव झाकी प्रस्तुत करते है ।

आदर्श–समाज

'साकेत' मे सामाजिक जीवन के आदर्श रूप का भी चित्रण हुआ है । 'साकेत के समाज का स्वरूप भारतीय है । भारतीय समाज के दो प्रमुख अग हैं – वर्ण–व्यवस्था और आश्रम धर्म । साकेतकार ने समाजिक–व्यवस्था के लिए वर्णाश्रम के महत्व को स्वीकार किया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारो वर्णों के लोग अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आदर्शों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं यद्यपि उच्च वर्णों को साकेतकार ने महत्व दिया है किन्तु निम्न वर्णो या जैसे–शूद्रों का तिरस्कार भी नहीं किया है । साकेत' की सीता कोल–किरात और भिल्ल बालाओ के साथ सखि सार्थिनियो के समान व्यवहार करती है"[2]

ब्राह्मण साकेत के समाज मे पूज्य अवश्य हैं किन्तु उनके प्रति पूज्यनीय भाव केवल द्विज होने के लिए ही नही । परशुराम के प्रति उर्मिला का निम्न वचन द्रष्टव्य है :—

———

१. साकेत, द्वितीय सर्ग पृ० ५७
२ वही, अष्टम सर्ग, पृ० २२७

'द्विजता तक आततायनी, वध मे है कब दोष दायिनी ।'[1]

'साकेत' के राम भी सामाजिक जीवन की प्रत्येक मर्यादा और आदर्श को मानने वाले हैं। वे कहते भी है :—

'मैं आया जिसमे बनी रहे मर्यादा,
बच जाय प्रलय से, मिटे न जीवन सादा ।'[2]

'साकेत' के समाज मे सभी वर्गों के लोग परस्पर मिल जुलकर शिष्टतापूर्ण एवं सुसभ्य जीवन व्यतीत करते हैं। कवि ने सामाजिक जीवन की झाकी निम्न प्रकार से चित्रित की है :—

'एक तरु के विविध सुमनो से खिले,
पौर जन रहते परस्पर हैं मिले ।
स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट उद्योगी सभी,
बाह्य भोगी, आन्तरिक योगी सभी।'[3]

साकेत के निवासी आधि–व्याधि की शकाओ से मुक्त है। वहा का जीवन सुखी और सम्पन्न है। कही किसी को चोरी की चिन्ता नहीं। प्रत्येक आगन मे शिशु केलि–क्रीडाए करते हैं। प्रत्येक घर मे अश्व–शाला और गौ–शाला है।[4]

साकेत निवासी भारतीय सस्कृति के प्रतीक सामाजिक रीति–रिवाजो, पर्व–उत्सवो को बडे उत्साह से मनाते हैं। भारतीय समाज के जन्म, विवाह, मृत्यु आदि सस्कारो का भी साकेत मे वर्णन हुआ है। महाराज दशरथ का अन्त्येष्टि सस्कार महाराज वशिष्ठ भरत द्वारा सविधि सम्पन्न कराते हैं।[5]

साकेत समाज की नारिया उन सम्पूर्ण विधि विधानो को सम्पन्न करती हुयी दिखाई देती हैं, जिनका भारतीय समाज और जीवन मे मागलिक महत्त्व है।

धार्मिकता

'साकेत' के अधिकाश पात्र धर्म और नीति के अनुयायी है, 'साकेत' मे धर्म का स्वरूप दो प्रकार से चित्रित दिखाई देता है –एक तो आध्यात्मिक किंवा दार्शनिक दृष्टि से। दूसरा सामाजिक जीवन मे धर्माचरण के रूप मे। धार्मिकता के प्रथम प्रकार का विवेचन हम आगे करेंगे। जहा तक धार्मिक आचरण का सम्बन्ध है, राम की माता कौशल्या पूजा अर्चन करती हैं, सीता स्वय वन के देवी–देवताओ की

१. साकेत दशम सर्ग, पृ० ३७६
२ वही अष्टम सर्ग, पृ० २३४
३ वही, प्रथम सर्ग पृ० २२
४. वही, प्रथम सर्ग, पृ० २३
५. वही, सप्तम सर्ग, पृ० २१५

उपासना में निरत् रहती है। भरत राम की चरण पादुकाओं की पूजा अर्चना करते है। अयोध्या के नागरिक भी उपासना, आराधना, भक्ति पूर्वक धर्माचरण के कार्यों में निरत चित्रित किए गए हैं। साकेत की धार्मिक भावना का आधार नैतिकता है। इसीलिए साकेत परिवार के सभी पात्र नैतिक शिष्टाचार एव लोक की मर्यादा के अनुसार अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं। राम को ही लें–वे अपने गुरुजनों के समक्ष सदैव विनम्रता एव शिष्टता से पूर्ण व्यवहार करते हैं। माता–पिता की आज्ञा को पूर्ण निष्ठा के साथ पालन करते हैं। भरत और लक्ष्मण आदि अनुज राम के प्रति और सीता, उर्मिला, माण्डवी आदि नारियाँ अपने पतियों के प्रति सेवाभाव द्वारा पूर्ण नैतिक निष्ठा का परिचय देती है।

अन्य जीवन–आदर्श

'साकेत' महाकाव्य में भारतीय सस्कृति के महान् आदर्शों की प्रतिष्ठा कवि ने की है।

राजनीतिक आदर्श

राजनीतिक दृष्टि से साकेत में राजतन्त्रीय–व्यवस्था है। भारतीय सस्कृति में राजा को महत्वपूर्ण स्थान है। एक ओर वह उच्च कुलीन गुणगौरव के कारण पूज्यनीय है। तो दूसरी ओर वह प्रजा के प्रति पितृवत, स्नेहपूर्ण, सद् व्यवहार करने के लिए उत्तरदायी भी है। साकेतकार ने राष्ट्र की एकता और कल्याण की दृष्टि से राजतन्त्रीय व्यवस्था को ही आदर्श कहा है –

"एक राज्य न हो वहुत से हों जहा।
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहा॥"[1]

किन्तु राजा का कर्त्तव्य यह है कि वह प्रजा का प्रतिनिधि बनकर सुख शान्ति की व्यवस्था रक्खे। इसी का आदर्श साकेत की शासकीय व्यवस्था है। जहा —

"नही कहीं गृह कलह प्रजा मे,
है सन्तुष्ट यथा सब शान्त,
उनके आगे सदा उपस्थित,
दिव्य राज कुल का दृष्टान्त।"[2]

साकेतकार ने राज्य का उद्देश्य सुख और शान्ति की व्यवस्था ही माना है। राजा लोकसेवक ही है, निरकुश शासक नही —

"तात राज्य नही किसी का वित्त,
वह उन्ही के सौख्य–शान्ति निमित्त,

---

१ साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २४
२ वही, एकादश सर्ग, पृ० ४०७

स्वर्वलि देते हैं उसे जो पात्र,
नियत शासक लोक सेवक मात्र ।"[1]

'साकेत' के लक्ष्मण तो यहा तक कहते हैं:—

'शासन सब पर हैं, इसे न कोई भूले ।
शासक पर भी, वह भी न भूल कर भूले ।" [2]

"साकेत" के कवि ने राज्य एव शासन के प्रति सहज, उदात्त एवं प्रजातन्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाया है । राम जिस राज्य के शासक हैं ।, वह राज्य जनहित के आदर्श को लेकर ही प्रतिष्ठित हुआ है । साकेतकार ने काव्य मे राजा और प्रजा के सम्बन्धों को आदर्श रूप में स्थापित किया है । प्रजा का राजा मे पूर्ण विश्वास है, इसीलिए साकेत के निवासी वन जाते हुए भी राम से कहते हैं कि:—

"राजा हमने राम तुम्ही को है चुना,
करो न तुम यो हाय, लोकमत अनसुना ।"[3]

और राजा को प्रजा का सेवक और प्रतिनिधि मात्र चित्रित किया है । इस प्रकार साकेत की राज्य व्यवस्था का स्वरूप राजतन्त्र के और प्रजातन्त्र के आदर्शों से समन्वित है ।

नैतिकता और कर्मण्यता

"साकेत" के सास्कृतिक जीवन में नीति और कर्मवाद दोनों का उल्लेखनीय स्थान है । "साकेत" के सभी प्रमुख पात्र नैतिकता, लोक- मर्यादा और कर्त्तव्य-परायणता के प्रति सजग और सचेष्ट हैं । नैतिक आदर्शों को सम्मुख रखकर ही साकेत के राम सीता और लक्ष्मण बनवासी बनते हैं । भरत राजसी वैभव का त्याग करते है । कर्म-निष्ठा का सबसे सुन्दर प्रतीक सीता का चरित्र है, जो चित्रकूट की पर्णकुटी मे राजमहिषी होते हुए भी प्रत्येक छोटा बड़ा कार्य करती हैं । वृक्षो को पानी देने मे, कातने-बुनने मे, एवं अन्य गृह कार्यों के करने मे उन्हें अमित आनन्द का अनुभव होता है । कुटिया मे उनके लिए राजभवन का सुख एकत्रित हो गया । "साकेत" की माण्डवी अपने पति से यही कहती है:-

'स्वामी निज कर्त्तव्य करो तुम निश्चित मन से ।'[4]

द्वादश सर्ग मे उर्मिला के आह्वान पर सब मे कर्त्तव्य की भावना जग जाती

---

१. साकेत सप्तम सर्ग, पृ० २०२, २०३
२. वही, अष्टम सर्ग, पृ० २६०
३. साकेत: पंचम सर्ग, पृ० १२९
४. वही, द्वादश सर्ग, पृ० ४५१

है। माताएं पुत्रो से कहती है– जाओ बेटा, रामकाज क्षणभग शरीरा।' और पत्निया पति से कहती हैं।'जाओ ! अपने राम राज्य की आन बढाओ, वीर वंश की बान देश का मान बढाओ।'[१]

विरहिणी उर्मिला कर्त्तव्य की बेला मे माथे पर सिन्दूर लगाए हुए वीर क्षत्राणी की भांति सैनिको को कर्तव्य की प्रेरणा देती हुयी चित्रित की गयी है।[२] इस प्रकार 'साकेत' में कर्त्तव्य परायणता का उच्चादर्श पात्रो के जीवन मे चरितार्थ हुआ है।

नारी की महत्ता

'यशोधरा', 'साकेत' और 'विष्णुप्रिया' के रचयिता कवि को यदि नारी का कवि कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। गुप्त जी ने 'साकेत' मे नारी के विभिन्न रूपो की स्थापना करते हुए उसकी सास्कृतिक महत्ता का परिचय दिया है। 'साकेत' मे कन्या, कुमारी, अर्द्धांगिनी-पत्नी, माता-बहिन आदि सामाजिक रूपो तथा सती-साध्वी, निशाचरी, सौभाग्यशालिनी और विधवा आदि रूपो म भी चित्रित गया है। पत्नीत्व का आदर्श सीता, उर्मिला और माण्डवी के चरित्र है। वियोगिनी नारी के आकुल-अन्तस् के लिए उर्मिला का चरित्र, मातृत्व की महिमा कौशल्या और सुमित्रा के चरित्र तथा सती साध्वी के रूप मे निशाचरी सुलोचना का चरित्र द्रष्टव्य है। कैकेयी के वैधव्य रूप का अकन करके भी कवि ने उसे समाज की सहानुभूति प्रदान की है। उसे–

"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई"

कहलाया है।[३]

उर्मिला द्वादश सर्ग मे वीरागना भी दिखाई देती है। इस प्रकार नारी के नाना रूपों का अकन करके उसकी महत्ता को कवि ने स्थापित किया है।

विश्वबधुत्व की भावना

'साकेत' की सास्कृतिक विचारधारा विश्वबधुत्व के पुनीत आदर्शों से भी सयुक्त है। साकेतकार ने काव्य के आरम्भ मे ही कहा है कि अखिलेश निर्गुण ब्रह्म ने सारे ससार को पथ दिखाने और सम्पूर्ण भूमि का भार दूर करने के लिए अवतार लिया है ;—

'हो गया निर्गुण सगुन साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।'

\+ \+

---

१ साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ४६५

२. वही, वही, पृ० ४७२

३ वही, अष्टम सर्ग, पृ० २५०

'पथ दिखाने के लिए संसार को,
दूर करने के लिए भू भार को ।
सफल करने के लिए जन दृष्टिया,
क्यो न करता वह स्वय निज सृष्टिया ।'[1]

इसी प्रकार, साकेत- के राम केवल भारत को संकट मुक्त करने के लिए ही आ नही करना चाहते, वरन् वे सम्पूर्ण ससार मे मर्यादा स्थापित करने और ससा उपवन मे खड़े भखाडो को छाटने के लिए आए है, उनका उद्देश्य सम्पूर्ण मान का ईश्वरत्व प्राप्त कराना है उनकी प्रतिज्ञा सम्पूर्ण भूतल को ही स्वर्ग बनाने की

'साकेत' की उर्मिला विरहकी वेदना मे अपनी भावनाओ को विश्वकल्याण उदात्त भावनाओ से साम्य कराती हुई दिखाई देती है। 'साकेत' के नवम सर्ग बादलो से वह यही प्रार्थना करती है कि—'तुम जड-चेतन मे बिजली भर दो,

उद्बोधन बरसो, और त्रिभुवन मानस के घर को रस से पूर्ण करदो।'[3]

उर्मिला अपनी अश्रु धारा को प्रवाहित करके भी यही चाहती हैं कि उस क्षुद्र—दृग बिन्दु बढकर समुद्र हो जाए और अ ततः जगत के उपकार जन्य हृ

साकेतकार ने विभीषण जैसे पात्र के मुख से रावण के प्रति भी कहलाया है कि —

'एक देश क्या अखिल विश्व का
तात चाहता हूँ मैं त्राण।'[5]

इस प्रकार 'साकेत' मे विश्व बन्धुत्व की भावना को भी कवि ने साम किया है

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि साकेतकार ने भारतीय सस्कृति महान स्वरूप को एक द्रष्टा भारतीय कवि की भाँति प्रस्तुत काव्य मे चित्रित कि है। गुप्त जी ने अपूर्व क्षमता के साथ संस्कृति के मूल तत्वो को पहचानकर उन प्रतिष्ठा की है।

'साकेत' के सास्कृतिक निरूपण की सबसे बडी विशेषता यह है कि गुप्त ने एक ओर भारतीय सस्कृति के स्वरूप की प्राचीनता और महानता सिद्ध की तो दूसरी ओर उसकी विश्वजनीनता भी। राष्ट्रीय कवि के रूप मे आर्य सस्कृ

---

१. साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० १८
२. वही, अष्टम सर्ग, पृ० २३५
३. वही, नवम सर्ग, पृ० २६३
४. वही, दशम सर्ग, पृ० ३८६—८७
५. वही, एकादश सर्ग पृ० ४३५

के चिरन्तन तत्त्वो का उद्घाटन करते हुए भी गुप्त जी ने आर्य कवियों की भांति मानवतावादी सस्कृति के आधार भूत तत्त्वो की प्रतिष्ठा 'साकेत' मे युगधर्म के अनुरूप की है । डा० वासदेवशरण अग्रवाल का यह कथन-पूर्णतः सत्य है, 'कि गुप्त जी के काव्य के विषय भारतीय संस्कृति की देन हैं·······किन्तु उसका मानवतावाद विश्व सत्य के साथ जुडा हुआ है ।"[1]

दार्शनिक पृष्ठभूमि

साकेत एक जीवन काव्य है । साकेत का मूल विषय जीवन, मानव-जीवन का निरूपण करना है । इसीलिये साकेत मे कवि की ओर से किन्ही विशिष्ट सिद्धान्तो एव आदर्शों की स्थापना का आग्रह न होकर मानवतावादी जीवन मूल्यों की अभिवृद्धि का सहज प्रयास हुआ है । मानवतावादी दृष्टिकोण की अभिव्यंजना मे भक्ति एवं दर्शन सम्बन्धी यत्किंचत् विचार भी 'साकेत' में स्थान पा गये हैं । 'ना तो हम साकेत को भक्तिपरक ग्रंथ कह सकते हैं और न दर्शन सम्बन्धी विचारों को वहन करने वाला दार्शनिक काव्य ही मान सकते है । कवि ने तो मानवों के जीवन को समुन्नत बनाने के लिये अथवा उनके अभ्युदय के लिये जिन भक्ति एवं दर्शन सम्बन्धी विचारों को उचित समझा है उनको ही यहां स्थान दिया है । अतएव कवि का स्वस्थ मानवतावादी दृष्टिकोण 'साकेत' मे सर्वत्र ही दृष्टि-गोचर होता है । ·······यहा कवि की ईश्वर भक्ति मानव भक्ति मे परिणत हो गई है, उसका ईश्वर प्रेम स्वदेश प्रेम मे परिणत होगया है और उसकी ईश्वर सेवा जन जन की शुश्रूषा म बदल गई है ।"[1] इस प्रकार साकेत वास्तव मे दार्शनिक या भक्तिप्रधान काव्य न होकर वस्तुत : मानव जीवन और मानवीय जीवन से ही सम्बोधित सहज भक्तिदर्शन का काव्य है । 'साकेत' की मानवतावादी जीवन दर्शन का निर्माण दो आधारो पर हुआ है । जो निम्न प्रकार है :—

१. साकेत का कथात्मक आधार प्राचीन, परंपरा प्रसिद्ध, पौराणिक राम-कथा एवं गुप्त जी की वैष्णव भावना के कारण रामभक्ति के सम्प्रदायगत दार्शनिक विचार काव्य मे स्वयमेव आ गये हैं । अतः साकेत की दार्शनिक पृष्ठभूमि भक्ति एव दर्शन से समन्वित है ।

२. साकेत की जीवन-दर्शन विषयक धारणाओं के निर्माण मे युग की प्रचलित विचारधाराओं, मान्यताओं एव सिद्धान्तों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है ।

---

१. डा० उमाकान्त गोयल - मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता–भूमिका, पृष्ठ ग

२ डा० द्वारिका प्रसाद–साकेत मे काव्य दर्शन और संस्कृति, पृ० १८८

सम्प्रदायगत दार्शनिक विचार

(अ) भक्ति विषयक – साकेत मे वैष्णव भक्ति की विचारधारा का प्रतिपादन हुआ है। वैष्णव भक्ति का संबंध उस पद्धति से है जिसके अन्तर्गत भगवान विष्णु को पूर्ण ब्रह्म मान कर उनकी साक्षातकार-प्राप्ति, सान्निध्य एव सायुज्य के लिये वैष्णव भक्त विष्णु के अनेक अवतारो की पूजा, अर्चना चिंतन, वदनाभादि करते है पौराणिक वाड् मय मे अवतारवाद की परिकल्पना के विकास के साथ साथ विष्णु के अवतारो की सख्या मे भी वृद्धि होती गई । महाभारत के नारायणीयोपाख्यान के अनुसार भगवान विष्णु (वासुदेव) के छ अवतार माने गये – वाराह, नृसिंह वामन, भार्गवराम, दशरथ पुत्र राम और कृष्ण। इसके पश्चात् महाभारत मे ही इनके अतिरिक्त चार और अवतारो के नाम जोड कर इनकी सख्या दस मानी गई। वे चार है– हस, कूर्म, मत्स्य, कल्कि। वायुपुराण मे इन अवतारो की सख्या बारह हो गई और उपर्युक्त दस नामो के साथ दत्तात्रेय तथा वेदव्यास दो नाम और जोड दिये गये। श्रीमद् भागवत पुराण मे इन अवतारो की सख्या प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय मे बाइस उल्लिखित है और द्वितीय स्कन्ध मे यह सख्या तेईस हो जाती है। विष्णु के अवतारों में सख्या की निरतर अभिवृद्धि को देखने हुए ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु की भक्ति की महत्ता जैसे जसे बढनी गई, वैसे वैसे अवतारो की सख्या मे भी वृद्धि होता गई। राम विष्णु के ही अवतार हैं। सम्पूर्ण अवतारो मे राम और कृष्ण ही दो ऐसे अवतार हैं जिनके आधार पर अवतारवाद की कल्पना आज तक जीवित है। वास्तव मे राम और कृष्ण ही आज विष्णु के अवतार के प्रतीक मात्र बन गये हैं। इन दोनो अवतारो मे भी राम का चरित्र सम्पूर्ण दैवीय गुणो एव आदर्शों से परिपुष्ट होने के कारण युगो से मानव जाति की प्रेरणा का अक्षय स्रोत रहा है। राम के चरित्र को लेकर आदिकवि के महाकाव्य से आज तक विभिन्न काव्यो की अनन्त सलिला प्रवहमान रही है। वैष्णव भक्त राम का चरित्र गायन आराध्य देव की उपासना एव गुण गाथा के रूप मे भी करते रहे हैं। गुप्त जी का 'साकेत' की काव्य–रचना मे एक उद्देश्य निज प्रभु अर्थात् राम का गुणगान भी रहा है। गुप्त जी नि सदेह एक वैष्णव भक्त एव कवि हैं। अस्तु, साकेत मे वैष्णव भक्ति की विचारधारा और तत्सबंधी सिद्धान्तो की प्रतिपत्ति हो जाना स्वाभाविक ही है।

राम को गुप्त जी अपना इष्टदेव मानते हैं । 'साकेत' के सम्पूर्ण क्लेवर मे राम के प्रति कवि का पूज्य भाव प्रधान रहा है। उन्होने राम को सर्वव्यापक एव परब्रह्म के रूप मे माना है। 'साकेत' के आरम्भ म कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि राम ने ही मानव के रूप मे ससार को पथ–दिखाने एव भू–भार दूर करने के लिये अवतार लिया है :—

"हो गया निर्गुण सगुण साकार है, ले लिया अखिलेश ने अवतार है।

+ + +

किस लिये यह खेल प्रभु ने है किया, मनुज बनकर मानवी का पय पिया।

+ + +

पथ दिखाने के लिये ससार को दूर करने के लिये भू भार को। " [1]

यही नही, काव्य के मुख पृष्ठ पर छपी हुई पक्तियो मे भी कवि ने यह प्रश्न किया है कि :—

"राम तुम मानव हो, ईश्वर नही हो क्या ?
विश्व मे रमे हुए नही सभी कही हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ। ईश्वर क्षमा करे,
तुम न रमो तो मन तुममे रमा करे।"

इन पक्तियो मे वैष्णव भक्ति-भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

वैष्णव भक्तो ने भक्ति को ही जीवन का सर्वस्व माना है। यहा तक कि मुक्ति से अधिक भक्ति ही भक्त के लिये महत्वपूर्ण है। 'साकेत' मे इस प्रकार की विचारधारा भी मिल जाती है। साकेतकार का दृष्टिकोण भक्ति और मुक्ति को ऊँचा या नीचा न बता कर उनका समन्वय करने की ओर रहा है। लक्ष्मण गुहराज निषाद को भक्ति और मुक्ति के समन्वय का उपदेश देते हैं:—

'सखे, समन्वय करो भक्ति का मुक्ति से।'[2]

वैष्णवो के लिये भक्ति भवसागर से पार होने का एक साधन है। साकेत के राम स्वय यह बात कहते हैं कि —

'पर जो मेरा गुण, कर्म, स्वभाव धरेंगे,
वे औरो को भी तार, पार उतरेंगे'[3]

वैष्णव भक्त अपने उपास्यदेव की लीलाओ और महान् कार्यों का गुणगान किया करते हैं। गुप्त जी ने भी काव्य के अष्टम सर्ग मे अपने इष्टदेव राम के महत् गुणो का उल्लेख किया है। उनके राम आर्यों का आदर्श बताने वाले, सुख-शांति हेतु क्रांति मचाने वाले, विश्वासो का विश्वास बनाने वाले, तापित, बाधित, बलहीन-दीन का उद्धार करने वाले, समाज मे मर्यादा स्थापित करने वाले, नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने वाले और भूतल को स्वर्ग बनाने वाले हैं। [4]। इसके अतिरिक्त वैष्णव

१. साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० १८
२. वही सर्ग ५ पृ० १४२
३. वही, अस्टम सर्ग पृ० २३५
. वही वही पृ० २३ : २३५

भक्ति के अन्तर्गत भगवान के नाम स्मरण की महिमा और समर्पण-भाव की भावना को भी गुप्त जी ने साकेत मे अभिव्यक्त किया है। भक्ति को युगीन बनाने के लिये गुप्त जी ने युगानुरूप उदार दृष्टि का भी परिचय दिया है। साकेत के राम गुहनिषाद, वानरो आदि से भी बन्धु-भाव का व्यवहार करते हैं। वैष्णव भक्तो के लिये गुरु का जो महत्व है वह वशिष्ठजी के प्रति राम द्वारा व्यक्त की गई श्रद्धा-भावना मे स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रकार 'साकेत' मे गुप्त जी की वैष्णव भक्ति भावना पूर्णत: अभिव्यक्त हुई है। भक्त मे जो भावुकता पूज्यभाव आराध्देव के प्रति श्रद्धा और समर्पण होना चाहिये वह सब साकेत मे उपलब्ध है।

दर्शन सम्बन्धी

(१) ब्रह्म का स्वरूप और राम–गुप्त जी ने साकेत के प्रथम सर्ग मे प्रारम्भ मे ही यह स्वीकार किया है कि ब्रह्म निर्गुण एवं सगुण दो रूपो मे होता है। वही अखिलेश ब्रह्म भार दूर करने के लिये निर्गुण से सगुण होता है।[१] साकेत के अष्टम सर्ग मे रामको ब्रह्म का सगुण स्वरूप कहा गया है ईश्वर के सभी अनन्त गुण उनमे विद्यमान हैं। ब्रह्म की शक्ति के समान सीता को भी जगत की सृष्टिकारिणी माया के रूप मे कवि ने चित्रत किया है —

> उन सीता को निज, मूर्त्त-मति माया को
> प्रणय प्राण को और कातकाया को।[२]

साकेत के राम पूर्ण ब्रह्म-स्वरूप है। वे जड को भी चेतन करने की सामर्थ्य रखते हैं।[३] वे सत्य शिवं सुन्दरम् की साकार प्रतिमा हैं।[४] वे सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं।[५] उनकी इच्छापूर्ति मे ही सम्पूर्ण जगत का श्रेय है।[६] इस प्रकार गुप्त जी के राम मे ब्रह्म के सम्पूर्ण गुण हैं। जहा तक राम के संप्रदायगत दार्शनिक स्वरूप का प्रश्न है वे विशिष्ट-द्वैतवाद के सन्निकट हैं। ब्रह्म की इस कल्पना के मूल मे गुप्त जी के पारिवारिक संस्कार भी सहायक रहे है। डा० उमाकान्त गोयल ने लिखा है कि "रामानुजाचार्य की परम्परा मे रामानन्द द्वारा प्रचारित एव संशोधित श्री संप्रदाय से इनके परिवार का सर्वाधिक सम्बन्ध रहा है।[७] इसलिये गुप्त जी ब्रह्म के विषय मे विशिष्टा-द्वैतवाद की मान्यताओं के समर्थक दिखाई देते हैं।

---

१. साकेत प्रथम सर्ग पृ० १८
२. वही अष्टम सर्ग पृ० २२१
३. वही पंचम सर्ग १४६
४. वही सप्तम सर्ग २१८
५. वही अष्टम सर्ग पृ० २५२
६ वही नवम सर्ग पृ० ३४०
७. डा० उमाकान्त गोयल मैथिलीकरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता पृ० ४१६

(२) जीव विशिष्टाद्वैत के अनुसार जीव ब्रह्म का अ श है । गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहाकि 'ईश्वर अ श जीव अविनाशी' (रामचरित मानस उत्तर काण्ड दोहा सख्या ११६ के पश्चात) साकेत की उर्मिला भी कहती है ऊर्मि हूँ, मैं इस भवार्णव की नई ।[१] विशिष्टाद्वैतवादी जहा ब्रह्म को स्वतन्त्र व सर्वज्ञ मानते हैं वही जीव को परतत्र और अज्ञ । साकेत मे भरत भी यही कहते हैं —

"हा ! अमर भी मृत्यु करगत जीव
मुक्त होकर भी अधीन अतीव ।[२]

जीव की कर्मानुसार गति है और वह पूर्व जन्म के अनुसार ही ससार मे सुख –दु ख भोगता है । साकेत मे लक्ष्मण कहते हैं कि —

सब भाग्य का ही भोग है
किन्तु भाग्य भी पूव कम का योग है ।[३]

इस प्रकार जीव के बन्धन सासारिक दु ख भोग की प्रवृत्ति एव ब्रह्म मे अभेदता का वर्णन गुप्त जी ने विशिष्टाद्वैतवाद के दर्शन से प्रभावित होकर ही किया है ।

(३) जगत – विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार जगत को सत्य और ईश्वर का चित अ श माना गया है । साकेतकार ने भी जगत को कम क्षेत्र कहते हुए निरन्तर स्थिर रहने वाला बताया है । गुरू वशिष्ठ के शब्दो म -

सतत कर्म क्षेत्र है नर लोक[४]

जगत का नियता ब्रह्म है जो ससार के कार्य व्यापरों का सचालन करता गुप्तजी ने कहा है —

ईश के इ गत के अनुसार हुआ करते हैं सब व्यापार ।[५]

ससार के दु खमय स्वरूप की ओर कवि ने निम्न शब्दो म सकेत किया

इस भव पर है असित वितान तना सदा
जिसके खम्भे दु ख, शोक भय, आपदा ।[६]

सृष्टि की रचना ब्रह्म की लीला और क्रीडा के लिए होती है । ने भी कहा है 'लोकेश लीला धाम ने ससार का पथ दिखाने के लिये किया है ।'[७]

---

१ साकेत नवम सर्ग पृ० ३२१
२ वही सप्तम सग पृ० १९४
३ वही पचम सग पृ० १५३
४ साकेत सप्तम सर्ग पृ० २१२
५ वही, द्वितीय सर्ग पृ० ५६
६. वही, पचम सर्ग, पृ० १४१
७ वही, प्रथम सर्ग, पृ० १८

विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार माया, जीव और ब्रह्म मे भेद उत्पन्न किया करती है। साकेत म इसी का वर्णन करते हुए लक्ष्मण–गुह निषाद से कहते है कि –

"जीव और प्रभु मध्य अडी माया खड़ी,
यह दुरत्यया और शक्ति शाली बड़ी।"[1]

इस प्रकार जीव, जगत, सृष्टि, माया और ब्रह्म विषयक साकेतकार के दार्शनिक विचारो को देखने से यही प्रतीत होता है कि साकेत की दार्शनिक पृष्ठभूमि के निर्माण मे विशिष्टाद्वैतवाद का प्रमुख स्थान रहा है।

साकेत' महाकाव्य की भक्ति और दर्शन सम्बन्धी मान्यताओ का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने साकेतिक रूप मे ही दार्शनिक प्रवृत्तियो को काव्य मे यत्र–तत्र स्थान दिया है। साकेत का दर्शन वस्तुत दर्शन नही, जीवन–दर्शन है। क्योकि साकेत, जैसा कि पहले कहा गया, जीवन–काव्य है। युग की प्रमुख प्रचलित विचारधाराओ से प्रभावित होकर इसके जीवनदर्शन का निर्माण हुआ है।

जीवन–दर्शन पर युगीन विचार धाराओं का प्रभाव

(१) गाधीवादी विचारधारा –

जिस समय साकेत की रचना हुई थी उस समय गाधीजी के व्यक्तित्व और विचार–दर्शन का प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय जन जीवन और चेतना मे व्याप्त था। यद्यपि गाधी जी ने कभी भी यह नही कहा कि उन्होंने किसी नयी दार्शनिक या वैचारिक परम्परा को जन्म दिया है जो गाधीवाद कहलाये तो भी उनका व्यक्तित्व इतना महान था कि उन्होने जिन जीवन–आदर्शो और व्यापक मानवीय विश्वासो को अपनाया तथा आचरण के रूप मे स्वीकार किया वे ही कालान्तर मे गाधीवाद की सज्ञा पा गय। गाधीवाद के दार्शनिक आधार हैं –सत्य, अहिंसा, आस्तिकता, नीति–मूलक धार्मिक आचरण, सामाजिक दृष्टि से सेवाभाव और सुधारवाद (जिसके अन्तर्गत अछूत, असवर्ण जातियो का उद्धार सम्मिलित हैं), आर्थिकदृष्टि से सर्वोदय और समान वितरण। राजनैतिक दृष्टि से रामराज्य के आदर्शों को साकार करना। ये गाधावादी विचारधारा की प्रमुख विशेषताए हैं। गुप्त जी के साहित्य मे यह विचारधारा पूर्ण रूप मे पाईजाती है। साकेत मे गाधीवाद के प्राय सभी आदर्श किसी न किसी रूप मे मिल जाते हैं। साकेत की सीता गाधी जी के आदर्शों के अनुरूप कोल–भिल्ल बालाओं को नीची जातिके होतेहुये भी प्रेम पूर्वक अपना कर उन्हें कातना बुनना सिखाती हैं। साकेत मे राम बनगमन कर रहे हैं, जब प्रजा जन उनको रोकने के लिये रथ क आगे लेट जाते हैं. उनकी भावना मे गाधी जी के सत्याग्रह-आन्दोलन की स्पष्ट छाप दिखाई देती । साकेत मे राम

---

१. साकेत, पचम सर्ग, पृ० १४२

(२) **जीव** विशिष्टाद्वैत के अनुसार जीव ब्रह्म का अ श है । गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा कि 'ईश्वर अ श जीव अविनाशी' (रामचरित मानस उत्तर काण्ड दोहा सख्या ११६ के पश्चात) साकेत की उर्मिला भी कहती है ऊर्मि हूँ, मैं इस भवार्णव की नई ।[१] विशिष्टाद्वैतवादी जहा ब्रह्म को स्वतन्त्र व सर्वज्ञ मानते हैं वहीं जीव को परतत्र और अज्ञ । साकेत मे भरत भी यही कहते हैं —

"हा ! अमर भी मृत्यु करगत जीव
मुक्त होकर भी अधीन अतीव ।[२]

जीव की कर्मानुसार गति है और वह पूर्व जन्म के अनुसार ही ससार मे सुख –दु ख भोगता है । साकेत मे लक्ष्मण कहते है कि —

सब भाग्य का ही भोग है
किन्तु भा य भी पूव कम का योग है ।[३]

इस प्रकार जीव के बन्धन सासारिक दु ख भोग की प्रवृत्ति एव ब्रह्म मे अभेदता का वर्णन गुप्त जी ने विशिष्टाद्वैतवाद के दर्शन से प्रभावित होकर ही किया है ।

(३) **जगत** – विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार जगत को सत्य और ईश्वर का चित अ श माना गया है । साकेतकार ने भी जगत को कर्म क्षेत्र कहते हुए निरन्तर स्थित रहने वाला बताया है । गुरू वशिष्ठ के शब्दो म -

सतत कर्म क्षेत्र है नर लोक[४]

जगत का नियती ब्रह्म है जो ससार के कार्य व्यापरो का सचालन करता है गुप्तजी ने कहा है —

ईश के इ गत के अनुसार हुआ करते हैं सब व्यापार ।[५]

ससार के दु खमय स्वरूप की ओर कवि ने निम्न शब्दो मे सकेत किया है—

इस भव पर है असित विताना तना सदा
जिसके खम्भे दु ख, शोक भय, आपदा ।[६]

सृष्टि की रचना ब्रह्म की लीला और क्रीडा के लिये होती है । साकेतकार ने भी कहा है 'लोकेश लीला धाम ने ससार का पथ दिखाने के लिये ही यह खेल किया है ।'[७]

---

१ साकेत नवम सर्ग पृ० ३२५
२ वही सप्तम सग पृ० १९४
३ वही पचम सर्ग पृ० १५३
४ साकेत सप्तम सर्ग पृ० २१२
५ वही, द्वितीय सर्ग पृ० ५६
६. वही, पचम सग, पृ० १४१
७ वही, प्रथम सर्ग, पृ० १८

विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार माया, जीव और ब्रह्म मे भेद उत्पन्न किया करती है। साकेत मे इसी का वर्णन करते हुए लक्ष्मण–गुह निषाद से कहते है कि –

"जीव और प्रभु मध्य बडी माया खडी,
यह दुरत्या और शक्ति शाली बडी।"[1]

इस प्रकार जीव, जगत, सृष्टि, माया और ब्रह्म विषयक साकेतकार के दार्शनिक विचारो को देखने से यही प्रतीत होता है कि साकेत की दार्शनिक पृष्ठभूमि के निर्माण मे विशिष्टाद्वैतवाद का प्रमुख स्थान रहा है।

साकेत' महाकाव्य की भक्ति और दर्शन सम्बन्धी मान्यताओ का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने साकेतिक रूप मे ही दार्शनिक प्रपत्तियो को काव्य मे यत्र–तत्र स्थान दिया है। साकेत का दर्शन वस्तुत दर्शन नही, जीवन–दर्शन है। क्योंकि साकेत, जैसा कि पहले कहा गया, जीवन–काव्य है। युग की प्रमुख प्रचलित विचारधाराओ से प्रभावित होकर इसके जीवनदर्शन का निर्माण हुआ है।

जीवन–दर्शन पर युगीन विचार धाराओं का प्रभाव

(१) गाधीवादी विचारधारा –

जिस समय साकेत की रचना हुई थी उस समय गाधीजी के व्यक्तित्व और विचार–दर्शन का प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय जन जीवन और चेतना मे व्याप्त था। यद्यपि गाधी जी ने कभी भी यह नही कहा कि उन्होने किसी नयी दार्शनिक या वैचारिक परम्परा को जन्म दिया है जो गाधीवाद कहलाये तो भी उनका व्यक्तित्व इतना महान था कि उन्होने जिन जीवन–आदर्शों और व्यापक मानवीय विश्वासो को अपनाया तथा आचरण के रूप मे स्वीकार किया वे ही कालान्तर मे गाधीवाद की सज्ञा पा गय। गाधीवाद के दार्शनिक आधार हैं –सत्य, अहिंसा, आस्तिकता, नीति–मूलक धार्मिक आचरण, सामाजिक दृष्टि से सेवाभाव और सुधारवाद (जिसके अन्तर्गत अछूत, असवर्ण जातियो का उद्धार सम्मिलित है), आर्थिकदृष्टि से सर्वोदय और समान वितरण। राजनैतिक दृष्टि मे रामराज्य के आदर्शों को साकार करना। य गाधावादी विचारधारा की प्रमुख विशेषताए हैं। गुप्त जी के साहित्य मे यह विचारधारा पूर्ण रूप से पाईजाती है। साकेत मे गाधीवाद के प्राय सभी आदर्श किसी न किसी रूप में मिल जाते हैं। साकेत की सीता गाधी जी के आदर्शों के अनुरूप कोल–भिल्ल बालाओं को नीची जातिके होतेहुये भी प्रेम पूर्ण अपना कर उन्हें कातना बुनना सिखाती हैं। साकेत मे राम वनगमन कर रहे है, जब प्रजा जन उनको रोकने के लिये रथ के आगे लेट जाते हैं, उनकी भावना मे गाधी जी के सत्याग्रह-आन्दोलन की स्पष्ट छाप दिखाई देती । साकेत के राम

---

१. साकेत, पचम सर्ग, पृ० १४२

गाधी जी की भाति शापित और पीडितो का दुख दूर करने के लिए हैं। उनमे अपरिग्रह की भावना विद्यमान है। वे कहते भी हैं—"मैं यहा जोडने नही बाटने आया।"[1] इसी प्रकार 'साकेत' मे गांधीवाद की अन्य सामाजिक, राजनैतिक एव सास्कृतिक विशेषताए भी मिलती हैं।

साम्यवादी विचारधारा

'साकेत' पर साम्यवादी विचारधारा के आधारभूत सिद्धान्तो का भी प्रभाव दिखाई देता है। साम्यवाद समाज मे आर्थिक समता और वर्गहीनताका समर्थक है। साकेत मे गुप्त जी ने उसका न्यूनाधिक रूप मे समर्थन किया है। 'साकेत' के सामाजिक जीवन म सभी वर्ग के लोगो का समान महत्व है। एकादश सर्ग मे शत्रुघ्न भरत के समक्ष राज्य की व्यवस्था का वर्णन करते हुये सामाजिक जीवन के सम विकास की चर्चा करते हैं।[2] 'साकेत' के राम पिछडे वर्ग के लोगो को (वन मे रहने वाले लोग जो रीछ और वानरो की तरह रहते है) सामाजिक समानता का अधिकार प्राप्त कराते हैं[3] 'साकेत' का कवि समाज के लिये व्यक्ति के बलिदान को महत्व देता है। 'साकेत' के राम कहते हैं—'हम हों समष्टि के लिये व्यष्टि बलिदानी।'[4] वास्तव मे साकेतकार साम्यवाद की राजनतिक विचारधारा या क्रान्ति साधनो द्वारा लक्ष्य प्राप्ति का समर्थक नही है। साकेतकार ने साम्यवाद के उग्र नही वरन् सहज और स्वाभाविक सिद्धान्तो को ही स्वीकार किया है।

राष्ट्वादी विचारधारा

गुप्त जी राष्ट्रीय कवि थे। राष्ट्रीयता की भावना उनके काव्य मे सर्वत्र दिखाई देती है। विश्व बन्धुत्व की भावना से अनुप्रेरित होकर भी स्वदेशप्रेम और राष्ट्रीय गौरव को वे कभी भी नही भूले। किन्तु उनकी राष्ट्रीयता सकुचित मनोवृत्तियो का परिणाम न होकर व्यापक सास्कृतिक विश्वासो से पूर्ण है। गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना के जो सूत्र 'साकेत' मे बिखरे हुये है वे निम्नाकित हैं—

१ भारतीय अतीत के गौरव का आख्यान।
२ मातृभूमि के प्रति सम्मान का भाव।
३ स्वतन्त्रता के लिये सघर्ष।

'साकेत' मे भारत की गौरवपूर्ण परम्पराओ, राष्ट्रीय महत्व के प्रतीको (जैसे हिमालय, सरयू आदि) के प्रति सम्मान की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। साकेत की उर्मिला युद्ध के लिये आह्वान करती हुई यही कहती है कि हिमालय का भाल

---

१ साकेत, अष्टम सर्ग, पृष्ठ २३४
२ वही, एकादश सर्ग, पृ० ४०६,४०७
३ वही, अष्टम सर्ग, पृ० २३५
४ वही, वही, पृ० २२३

नही झुकना चाहिए, गंगा, जमुना, सिन्धु और सरयू के पानी की मर्यादा कम नही होनी चाहिये—

"विन्ध्य-हिमालय, भाल भला झुक जाय न वीरो,
चन्द्र सूर्य कुल की रीत कला रुक जाय न वीरो।
चढ कर उतर न जाय, सुनो कुल मौक्तिक मानी,
गगा यमुना सिन्धु और सरयू का पानी।"[१]

'साकेत' मे गुप्त जी ने राम और रावण के युद्ध को भी राष्ट्रीय युद्ध का रूप दिया है। सीता का हरण भारतीय कुल-लक्ष्मी का हरण कहा गया है:—

"राक्षसियो से घिरी हमारी देवी सीता,
बन्दीगृह मे बाट जोहती खडी हुई है।
+ +
पैर धरे इस भूमि पर पामर पापी,
कुल लक्ष्मी का हरण करे वे सहज सुरापी,
भरलो उनका रुधिर कर लो उनका तरपण।"[२]

भरत भी उसी प्रकार के उद्गार व्यक्त करते हैं —

"भारत लक्ष्मी पडी राक्षसो की बन्धन मे,
सिन्धु पार वह विलख रही है व्याकुल मन मे।"[३]

वस्तुतः साकेत' के रचना काल मे भारतवर्ष परतन्त्र था, व्यजना से उपर्युक्त पक्तियो मे गुप्त जी ने सीता के रूप मे भारत माता के बन्धन की ही बात कही है। जहा तक परतन्त्रता की भावना का सम्बन्ध है, साकेतकार ने राष्ट्रीय प्रेम के कारण भी आर्य सस्कृति को सर्वश्रेष्ठ कहा है। राम-रावण युद्ध भी एक प्रकार से आर्य और कौणप सस्कृतियो का युद्ध था जिसमे आर्य सस्कृति ही विजयी हुई।

मानवतावादी विचारधारा

साकेत के जीवन दर्शन को प्रभावित करने वाली सबसे अधिक पूर्ण विचारधारा मानवतावाद की है। सम्पूर्ण काव्य मे जिस जीवन-दर्शन को कवि ने स्वीकार किया है वह मानव कल्याण और विश्व बन्धुत्व की भावनाओ से अनुप्राणित है। सर्वप्रथम गुप्त जी ने अपने इष्टदेव राम को ही मानव कहा है। साकेत के राम

---

१. साकेत, पृ० ४९५
२. वही, द्वादश सर्ग, पृ० ४७१, ४७२
३. वही, द्वादश सर्ग, पृ० ४५४

मानव की महत्ता को स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार करते हैं। ब्रह्म का अवतार भी मानवता की रक्षा के लिये ही हुआ है। साकेत मे कवि का हृदय ईश्वर के गुणगान मे इतना तल्लीन नही दिखाई देता जितना कि वह मानवता के प्रेम मे निमग्न है, उसकी प्रशसा मे लीन है तथा उसकी उन्नति के लिये प्रयत्नशील है।[1] गुप्त जी ने राम के चरित्र मे भी मानव के ईश्वरत्व का निरूपण किया है। राम का चरित्र मानवीय सद्गुणो के कारण महत्वपूर्ण है। 'साकेत' के राम अवतार होने के कारण हमारी श्रद्धा के पात्र नही वरन् उस सन्देश के कारण है जिसमे वे नर को ईश्वरता प्राप्त कराकर भूतल को ही स्वर्ग बनाने के लिये कृत सकल्प है। श्री वाजपेयी जी के शब्दो मे-"साकेत मे प्रथम बार मानव का उत्कर्ष अपनी चरम सीमा पर—ईश्वर के समकक्ष लाकर रखा गया है जो मध्य युग मे किसी प्रकार सम्भव न था। साकेत इसी कारण हिन्दी की प्रथम मानवता-आदर्शवादी या आदर्श मानवतावादी रचना है।"[2]

यहा यह उल्लेखनीय है कि गुप्त जी का मानवतावाद एक विशिष्ट कोटि का है। उसमे मानव महिमा की स्वीकृति है, मानवतावादी मूल्यो की प्रतिष्ठा का आग्रह है और मानवता के मगल-विधान का प्रयास भी है किन्तु मानव की सर्वोपरिता के प्रति गुप्त जी आश्वस्त नही है। मानवतावाद की नवीन विचारधारा के अनुसार मानव ही सर्वोपरि है। वह सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मनुष्य किसी कल्पित सत्ता या शक्ति के अधीन नही वह स्वय अपने भाग्य का विधाता और निर्माता है। प्रकृति की सम्पूर्ण उपलब्धियो पर उसका एकछत्र साम्राज्य है। किन्तु गुप्त जी इस प्रकार के मानवतावादी दृष्टिकोण को 'साकेत' मे स्वीकृत नही कर सके हैं, वे मानव मे ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करके भी ईश्वर को नही भुला सके है मनुष्य के पुरुषार्थ के प्रति आस्थावान होकर भी भाग्य और प्रारब्ध के विश्वास को नही छोड सके है। अस्तु गुप्त जी का मानवतावादी दृष्टिकोण नितान्त नवीन और युगीन नहीं कहा जा सकता। उसमे बौद्धिकता के स्थान पर भावुकता की प्रधानता है। वास्तव मे 'गुप्तजी, भागवतीय मानवता वाद के प्रतीक कवि हैं।"[3] पारिवारिक एव सस्कारगत प्रभावो के कारण गुप्त जी से वस्तुत मानवतावादी जीवन-दर्शन के इसी रूप की अपनाने की अपेक्षा की जा सकती थी।

इस प्रकार 'साकेत' की दार्शनिक भित्ती के निर्माण मे प्राचीन और नवीन विभिन्न विचारधाराओ का योगदान रहा है। 'साकेत' के जीवन दर्शन की सबसे

---

१ डा० द्वारिकाप्रसाद साकेत मे काव्य सस्कृति और दर्शन, पृ० ३८३
२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृ० ९७
३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत—भूमिका मे—डा० उमाकान्त गोयल कृत शोध प्रबन्ध मे—मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय सस्कृत के आख्याता—भूमिका, पृष्ठ, क

महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसमे कवि ने समन्वयवादी पद्धति को अपना कर वेदान्त से लेकर गाधीवाद तक प्रचलित महत्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्तो का सफलता पूर्वक समाहार किया है।

कामायनी

सृजन-प्रेरणा और सदेश

'कामायनी' वर्तमान युग की सर्वोत्कृष्ट काव्य-कृति है। प्रत्येक श्रेष्ठ कलाकृति का निर्माण किसी न किसी सद्प्रेरणा का परिणाम होता है। महाकाव्यो का निर्माण तो निश्चय ही महती सृजन प्रेरणा के परिणाम स्वरूप होता है। 'कामायनी' की काव्य-कला और जीवन-दर्शन के महत् रूप को देखकर यह स्पष्ट आभास होता है कि इस काव्य की रचना किसी बलवती सृजन प्रेरणा का ही परिणाम है। 'कामायनी' के 'आमुख' मे कवि द्वारा किये गये सकेतो से यह प्रतीत होता है कि कामायनी की सृजन प्रेरणा के मूल में प्रसाद जी की प्राचीन भारतीय वाङ्मय के प्रति अनन्यनिष्ठा और प्राचीन इतिहास के प्रति प्रेम का भाव निहित है। यही नही कामायनी की रचना अन्य अनेक युगीन परिस्थितियो के परिणाम स्वरूप भी हुई है। 'कामायनी' का कवि एक व्यापक जीवन-दर्शन से प्रभावित था। भारतीय साहित्य, सस्कृति, इतिहास एव दर्शन के अध्ययन द्वारा उसने जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण स्थिर किया है वह था-आनन्दवाद।

आनन्दवाद की प्रतिष्ठा द्वारा मानव कल्याण की भावना भी 'कामायनी' की सृजन प्रेरणा कही जा सकती है। प्रसाद जी भारतीय सस्कृति के उदात्त स्वरूप को भी 'कामायनी' के माध्यम से अभिव्यक्ति देना चाहते थे। तत्कालीन जीवन-सघर्ष, भौतिकवादी जीवन मूल्यो का उत्कर्ष, यथार्थवादी दृष्टिकोण के अतिशय प्रचार एव विज्ञान के अतिवादी प्रभावो के कारण उत्पन्न जीवन की विषमताओ, विद्रूपताओ, विडम्बनाओ को दूर करने के लिए कवि एक महत् सन्देश भी देना चाहता था। 'कामायनी' की सृजन प्रेरणा का सबसे महत्वपूर्ण कारण कवि का मानवतावादी जीवन दृष्टि और मानवीय जीवन मूल्यो के प्रति आस्था है। इसी आस्था से प्रेरित होकर कवि ने मानव-हिताय कृति के रूप मे 'कामायनी' का सृजन किया है। वास्तव म कामायनी की प्रेरणा शक्ति भारतीय सस्कृति की उदार, व्यापक एव कल्याणाभिनिवेशी दृष्टि है जिसका केन्द्र विन्दु समन्वय है। प्रसाद जी के समूचे साहित्य मे जो जीवनदृष्टि दिखाई पडती है वह समन्वयात्मक है। उनकी प्रेरणा का स्रोत भारत का अतीत ज्ञान-गौरव और ऐश्वर्य-महिमा ही है। फिर भी वे अतीतोन्मुखी या पुनरुत्थानवादी नही है। इसके विपरीत उन पर राष्ट्रीयता, वैज्ञानिकता और लोकतन्त्रात्मक मानवतावाद का गहरा प्रभाव पडा है। इस तरह प्रसाद-साहित्य मे प्राचीनता और नवीनता, आध्यात्मिकता और भौतिकता, यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का सुन्दर समन्वय हुआ है। किन्तु कामायनी

मे प्रसाद के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का और भी विकासित और पूर्ण रूप दिखाई पडता है उसमे प्रसाद जी ने भारतीय सस्कृति और विश्व मानव की सस्कृति मे, राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता मे, व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना मे, विलीन करके मानवतावाद का नवीन और आदर्श रूप उपस्थित किया है । ... यही समन्वयवाद जो मानवतावाद का नवीनतम और आदर्श रूप है, 'कामायनी' की प्रेरणा शक्ति है। यही महती प्रेरणा भारतीय सस्कृति के चिरन्तन तत्वो से पोषित और लोकतंत्रात्मक मानवतावादी विचार धाराओ से अनुप्राणित है।[1]

कामायनी' की महत् प्रेरणा के समान उसका उद्देश्य भी महान है। क्योकि– 'महान कवियो की भाति प्रसाद का काव्य जीवन से अनुप्राणित है और जीवन की अभिव्यक्ति ही उसका उद्देश्य है।'[2] वस्तुत "चिर प्रगति-शील वैज्ञानिक बुद्धि के साथ चिर स्थिर और चिर सयमित श्रद्धा के कल्याणकारी सयोग की प्रतिष्ठा ही कामयानी के कवि का चरम लक्ष्य है।"[3] काव्याचार्यो ने काव्य रचना का उद्देश्य चतुर्वर्ग फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) प्राप्ति बताया है। कामायनी का उद्देश्य आनन्द की उपलब्धि है। कामायनी के नायक मनु आनन्दमय लोक मे पहुचकर ही जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति करते है स्पष्ट है। कि कामायनीकार ने जीवन के महान ध्येय मोक्ष (आनन्द) की प्राप्ति को लक्ष्य बना कर ही प्रस्तुत काव्य की रचना की है। धर्म अर्थ और काम 'कामायनी' मे अपेक्षाकृत गौण रूप मे वर्णित हुए हैं किन्तु उपेक्षित नही। धर्म और काम का तो विशिष्ट रूप'कामायनी' मे चित्रित हुआ है। दया,माया, ममता, प्रेम और अहिंसा आदि उदात्त आदर्शो को ही कवि ने युग धर्म के व्यापक सिद्धान्तो के रूप मे श्रद्धा के माध्यम से प्रतिष्ठित किया है। अर्थ नामक फल की स्थापना 'इडा', 'स्वप्न' और 'सघर्ष' नामक सर्गो मे दिखाई देती है। 'काम' की प्रतिष्ठा मोक्ष के साधन रूप मे ही हुई है। श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा और स्वप्न नामक सर्गो मे काम का मनोवैज्ञानिक रूप से अकन हुआ है। अस्तु, उद्देश्य की दृष्टि से कामायनी तुलसी कृत 'रामचरितमानस' की कोटि की रचना सिद्ध होती है क्योंकि उसका अतिम लक्ष्य लोकमगल ही है।

'कामायनी' महाकाव्य की सृजन-प्रेरणा के मूल मे ही काव्य के सन्देश की ध्वनि भी परिव्याप्त है। 'कामायनी' महाकाव्य का सबसे महत्वपूर्ण सन्देश वैज्ञानिकता और बौद्धिकता के अतिवादी प्रभावो से आक्रात मानवता को समरसता के विचार–दर्शन द्वारा आनन्द की उपलब्धि कराना है। समरसता का सिद्धान्त यद्यपि

---

१ डा० शम्भुनाथसिंह–हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास,पृ० ५९६
२ डा० प्रेमशकर–प्रसाद का काव्य,पृ० ५६१
३. गगाप्रसाद पाण्डेय · बीसवी शती की श्रेष्ठतम काव्यकृति कामायनी, अपनी-बात, पृ० १२

शैव दर्शन की उपपत्ति है किन्तु प्रसाद जी ने कामायनी मे व्यवहारवादी जीवनदर्शन से अनुप्राणित करके मानव जाति के प्रति एक शाश्वत सन्देश के रूप मे प्रसारित किया है। 'कामायनी' मे जिस सामरस्य की बात कही गयी है उसका सम्बन्ध वर्तमान जीवन की असमानताओ एव विषमताओ को दूर करने से है यह समरसता यदि मानव के अन्तर्जगत मे हृदय और बुद्धि की है तो व्यवहार जगत मे आदर्शवादी एव व्यवहारवादी (यथार्थवादी) मूल्यो के समन्वय की है। समन्वय की यह प्रक्रिया मनुष्य की इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सन्दर्भ मे भी प्रस्तुत की गई है। वर्तमान जीवन की विडम्बना ही तो यह है:–

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न, इच्छा क्यो पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें, वह विडबना इस जीवन की॥' १

कामायानीकार ने यह सिद्ध कर दिया कि युद्ध के शासन मे प्रचालित होकर मानव सघर्ष, अशाति, विप्लव और युद्ध को ही जन्म देता है। बौद्धिक अतिवाद मानसिक अशाति का जन्मदाता है। श्रद्धा (अर्थात् हृदय) या भाव-जगत के सान्निध्य मे रहकर ही मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य आनद की प्राप्ति कर सकता है। समरसता के अतिरिक्त प्रसाद जी ने नारी जाति को भी उत्थानमूलक सदेश दिया है। श्रद्धा का चरित्र और कृतित्व नारी के लिये उच्चतम प्रेरक आदर्शो का प्रतीक है। कामायानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सन्देश 'मानवता की जय–विजय' का है। मानवता की जय जीवन के शक्ति–कणो मे समन्वय स्थापित करने मे ही निहित है :–

'शक्ति के विद्युत–कण जो व्यस्त, विकल बिखरे है हो निरूपाय।
समन्वय उनका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।२

'कामायनी' महाकाव्य की उपर्युक्त पक्तियो मे कवि ने जो सन्देश प्रसारित किया है वह सर्वकालीन और विश्व जनीन है। इस प्रकार महत् सृजन प्रेरणा एव महान् सन्देश से अनुप्राणित होने के कारण 'कामायनी' अमर काव्यो की श्रेणी मे निबद्ध होकर एक साथ ही महाकाव्य और महान् काव्य, दोनो है।

सांस्कृतिक निरूपण

महाकाव्य मे जातीय और राष्ट्रीय सस्कृति के निरूपण का प्रयत्न तो होता ही है, विश्व महाकाव्यो मे सम्पूर्ण मानव सस्कृति के निर्माण की भी चेष्टा रहती है। 'कामायनी' मे निरूपित सस्कृति का स्वरूप केवल जातीय एव राष्ट्रीय ही नही वरन् विश्वजनीन है। 'कामायनी' मे सास्कृतिक निरूपण की दृष्टि से दो उल्लेखनीय विशेषताए स्पष्ट दिखाई देती है:—

———

१. कामायनी, श्रद्धा सर्ग ,पृ० ५९
२. का मानी, रहस्य सर्ग, पृ० २७२

१. प्रसाद जी ने भारतीय सस्कृति के दैवीय और मानवीय रूपो की प्रतिष्ठा करते हुये मानवीय सस्कृति को श्रेष्ठ बताया है।

२. भारतीय और पाश्चात्य सस्कृति के आधारभूत सिद्धान्तो, तत्वो और आदर्शो का सम्यक् निरूपण करके दोनो की तुलना मे भारतीय सस्कृति को पूर्ण एव महान् सिद्ध किया है।

देव संस्कृति

प्राचीन भारतीय वाङ्मय मे देव सस्कृति का निरूपण किया गया है। देवताओ का वर्णन मुख्य रूप से वेदो–पुराणो मे मिलता है। वेदो मे उन देवताओ का वर्णन हुआ है जो मुख्यत. प्राकृतिक शक्तियो के प्रतीक है, जैसे प्रकाश का सूर्य और अग्नि जल का वरुण, वायु का मरुत आदि प्राकृतिक शक्तियो को आदिकाल से ही मनुष्य देवो के रूप मे पूजने लगा। इन शक्तियो की सख्या बढती चली गई और वैदिक देव परिवार मे इनकी सख्या ३१ तक मानी जाती है।[1] पुराण काल तक आते आते वैदिक–देव देवता बन गये। "कामायनी" मे जिस देव सस्कृति का निरूपण किया गया है वह अधिकाशत· वैदिक देव –परिवार की सस्कृति है। देव सस्कृति की प्रमुख विशेषताए निम्नाकित बताई गई है :—[2]

१. अलौकिक शक्ति सम्पन्नता।
२ अनन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति ।
३. भव्य एव विशाल भवनो मे निवास ।
४ सगीत प्रियता।
५ अलकार प्रियता ।
६ सोमपान मे रुचि।
७ यज्ञो मे आस्था।
८. विलास-प्रियता।
९. आत्मवाद की प्रबलता ।
१०. अमरता की भावना का प्रसार।

'कामायनी' मे देव सस्कृति की उपर्युक्त विशेषताओ का निरूपण 'चिन्ता' सर्ग मे मिल जाता है। देव सस्कृति के ध्वसावशेष मनु चिन्तित होकर जब देव सृष्टि के विनाश के कारणो पर विचार करते है [illegible] सस्कृति [illegible] हमारे सम्मुख आती है। प्रसाद जी ने [illegible] देव जा[illegible] सम्पन्न थी कि प्रकृति उनके पगतल मे [illegible]

---

१. डा० सम्पूर्णानन्द–हिन्दू देव परिवार [illegible]।
२ डा० द्वारिकाप्रसा[illegible] नी मे काव्य,

चरणों से आनत होकर प्रति दिन कांपती रहती थी।[1] प्रसाद जी ने देवताओं को नित्य विलासी कहा है। उनके मुख सुरा से सुरभित एवं अरुण रहते थे, और नेत्र अनुराग के आलस्य से भरे रहते थे। वे अनंग की पीडाओं का अनुभव कर अंग भंगियोंका नृत्य करते हुये नित्य ही अभिसार की क्रीडायें करते हुये मरन्द उत्सव मनाया करते थे। कवि के शब्दों मे देवता 'विकल वासना के प्रतिनिधि थे।'[2] 'कामायनी' में मनु ने जिन यज्ञों का विधान किया है उनसे भी यही सिद्ध होता है कि यज्ञ मे पशुओं की बलि दी जाती थी और सोमपान किया जाता था।'[3] इस प्रकार कामायनी में देव संस्कृति के जिस स्वरूप का निरूपण हुआ है वह भोग–प्रधान दिखाई देती है। प्रलय होने पर उस सृष्टि का अचानक ही ध्वंस हो गया और उसके एकमात्र जीवित प्रतिनिधि के रूप में मनु शेष रहे:–

'आज अमरता का जीवित हूँ, मैं वह भीषण जर जर दम्भ,
आह ! सर्ग के प्रथम अंक का अधम पात्र मय सा विष्कम्भ।'[4]

मानव संस्कृति

प्रलय के उपरान्त जिस नवीन संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ वही मानव संस्कृति के रूप मे प्रसिद्ध है। भारतीय दृष्टि से इस संस्कृति को आर्य संस्कृति अथवा सीमित अर्थों मे हिन्दू–संस्कृति कहा जाता है। भारतीय संस्कृति का निर्माण अनेक जातीय संस्कृतियो के मिश्रण से हुआ है जिनमे द्रविड, आर्य, शाक्य, हूण, पठान, मुगल अंग्रेज आदि विभिन्न जातियो की सांस्कृतिक विशेषताओं का योगदान प्रमुख है। भारतीय—मानव–संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं :—

१. पंच महायज्ञों का विधान।
२. षोडश संस्कार।
३. वर्णाश्रम धर्म।
४. यम नियमों की व्यवस्था।
५. उपासना पद्धति का प्रचार।
६. समन्वयवाद।
७ नारी की महत्ता।
८. विश्वमैत्री एवं विश्व बन्धुत्व।
९ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का महत्व।
१०. स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना।

---

१. कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृ० ९
२. वही, पृ० १०, ११
३. वही, कर्म सर्ग, पृ० ११६
४. वही, चिंता सर्ग, पृ० १८

भारतीय संस्कृति के दो रूप दिखाई देते हैं-एक प्राचीन और वैदिक जिसमें यज्ञ-विधान, कर्मकाण्ड, उपासना, वर्णाश्रम धर्म एवं यम नियमों की व्यवस्था पर बल दिया गया है। दूसरा नवीन और आधुनिक है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीयता की भावना, विश्वबन्धुत्व, समन्वयवाद आदि को महत्त्व दिया गया है। कामायनी म भारतीय संस्कृति के प्राचीन और नवीन दोनो रूपो का निरूपण हुआ है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति का कर्मकाण्डी स्वरूप

कामायनी म पंच महायज्ञो के स्थान पर मनु के पाक नैतिक कर्मों का उल्लेख किया गया है। 'आशा' सर्ग मे मनु पाक यज्ञ करते हैं। अग्नि होत्र से अवशिष्ट अन्न को भी किसी जीवित प्राणी की प्राप्ति के लिये दूर रख आते हैं।[1] जहा तक संस्कारो का प्रश्न है 'कामायनी' मे श्रद्धा को ग्रहण करने मे पाणिग्रहण संस्कार एवं गर्भाधान संस्कार का उल्लेख मिलता है। आनन्द की प्राप्ति म कैलाश प्रयाण मे वानप्रस्थ और सन्यास आदि आश्रमो के संस्कारो का भी उल्लेख मिलता है। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का भी 'कामायनी' म संकेत है सारस्वत प्रदेश के लोग अपने अपने वर्ग बनाकर परिश्रम करते हुये जीवन बिताते है।[2] जहा तक आश्रम व्यवस्था का सम्बन्ध है मनु के माध्यम से चारो आश्रमो की रूप रेखा मिल जाती है। काव्य के आरम्भ म हिमालय पर यज्ञादि करते हुये मनु ब्रह्मचर्य आश्रम के धर्म का पालन करते हैं। श्रद्धा के मिलन के पश्चात् एवं सारस्वत प्रदेश मे उनकी जीवनचर्या का स्वरूप गृहस्थाश्रमी का है। निर्वेद और दर्शन सर्गों मे राज्य व्यवस्था छोडकर सरस्वती के तट पर मनु की तपस्या मे लीन होना वानप्रस्थ की ओर संकेत करता है।

भारतीय संस्कृति का नवीन रूप

भारतीय संस्कृति के आधुनिक स्वरूप के निर्माण म प्राचीन संस्कृति के आदर्शो का भी महत्वपूर्ण योगदान है। किन्तु नवीन स्वरूप के निर्माण मे आधुनिक युग की विचारधाराओं का पर्याप्त प्रभाव पडा है। भारतीय संस्कृति की एक विशेषता समन्वयवादी प्रवृत्ति है। 'कामायनी' मे समन्वयवाद, समरसता' के सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रतिपादित हुआ है। कामायनीकार ने केवल प्रवृत्तिमूलक समन्वय ही अंकित नही किया है, वरन् व्यक्ति और समाज, अधिकृत और अधिकारी, पुरुष और स्त्री एवं व्यष्टि और समष्टि के समन्वय पर भी बल दिया है। कामायनी' मे नारी की महत्ता पर भी पर्याप्त बल दिया गया है। 'कामायनी की श्रद्धा का चरित्र नारी जाति के सम्पूर्ण विशेषताओ एवं गुणो का केन्द्र है। प्रसाद जी ने कामायनी मे श्रद्धा के जीवन चरित्र को इतने दिव्य और महान् रूप म अंकित किया है कि वह सम्पूर्ण नारी जाति के ऊपर एक

---

१ कामायनी, दर्शन सर्ग, पृ० २५४

'पराशक्ति' के रूप में दिखाई देती है। प्रस्तुत महाकाव्य मे श्रद्धा का चरित्र इस प्रकार विकसित किया गया है कि वह सतत अपने 'स्व' का लय, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व के लिये करती जाती है। उसके चरित्र के विकास मे जीवन के सभी प्रमुख मूल्यो की प्राप्ति का पथ दृष्टिगोचर होता है। इन विशेषताओं के कारण यदि हम श्रद्धा को राष्ट्र सस्कृति की 'आत्मा' कहे तो कोई अतियुक्ति नही। भारतीय सस्कृति के सिवाय विश्व की कोई अन्य सस्कृति श्रद्धा जैसा चरित्र नही उत्पन्न कर सकती।[1]

विश्व बन्धुत्व की भावना कामायनी की सबसे महत्वपूर्ण सास्कृतिक विशेषता है। कामायनीकार ने मानवतावादी जीवन-मूल्यों के आधार पर 'कामायनी' के सास्कृतिक भवन का निर्माण किया है। श्रद्धा मनु के प्रथम मिलन मे ही मानवता की जय और विश्व के कल्याण की बात कहती है। वह किसी राष्ट्र या जातीय सस्कृति के अभ्युदय की बात न कह कर सम्पूर्ण विश्व के मगल की कामना करती है—श्रद्धा चेतना के भाव सत्यो के पूर्ण सुन्दर इतिहास को विश्व के हृदय पटल पर दिव्य अक्षरो से अंकित होने और मानवता की कीर्ति को सर्वत्र फैलाने की बात कहकर विश्व बधुत्व की भावना का परिचय देती है।[2] 'कामायनी' मे कवि ने स्पष्ट शब्दो मे मनु के द्वारा कहलाया है:—

हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमी हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो, जिसमे कुछ कमी नही हैं।
शापित न यहा है कोई तापित पापी न यहा है,
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहां है।[3]

कवि ने विश्व बन्धुत्व एव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के साथ साथ स्वदेश प्रेम एव राष्ट्रीयता की भावना को भी विस्मृत नही किया है। 'कामायनी' मे स्थान स्थान पर पर्वतराज हिमालय, कैलाश, मानसरोवर, सारस्वत-प्रदेश आदि के वर्णन मे देश प्रेम की भावना को व्यक्त किया है। 'इडा' सर्ग मे 'कल्याण भूमि यह लोक' शब्द कहकर स्वदेश प्रेम एव राष्ट्रीय भावना को ही प्रसाद जी ने अभिव्यक्त किया है।

'कामायनी' मे हृदयवादी भारतीय सस्कृति और बुद्धिवादी पाश्चात्य सस्कृति का तुलनात्मक निरूपण करके भी प्रसाद जी ने भारतीय सस्कृति की ही श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है। वैसे कामायनी मे जिन सास्कृतिक-जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा हुई है, वे विश्व जनीन हैं। 'कामायनी' के पारिवारिक, सामाजिक,

---

१. डा० रामलालसिंह—कामायनी अनुशीलन, पृ० २७०
२ कामायनी—श्रद्धा सर्ग पृ० ५८, ५९
३. वही —आनन्द सर्ग, पृ० ८७, ८८

राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक मूल्य भारतवर्ष के लिये जितने उपयोगी है उतने ही विश्व के अन्य राष्ट्रो के लिये भी....... कामायनी मे मानवता की भावनात्मक सत्ता हिन्दू जाति के लिये ही नही, हिन्दुस्तान के लिये ही नही वरन् सारी मानवता की रक्षा के लिए मुखरित हो उठी है। इसलिए 'कामायनी' भारतीय जीवन एव भारतीय साहित्य की ही नही वरन् विश्व साहित्य तथा विश्व जीवन की एक अमूल्य सम्पत्ति बन गई है।" प्रसाद जी विश्व-बन्धुत्व के उदात्त आदर्शों से प्रेरित होकर भी भारतीय आदर्शों से प्रभावित थे। भारतीयता की भावना उनकी सम्पूर्ण साहित्य-चेतना को अनुप्राणित किये हैं। इस दृष्टि से विचार करें तो सभ्यता के जिस विकास को 'कामायनी' मे चित्रित किया है वह पाश्चात्य और पौर्वात्य सभ्यताओ का सम्मिलित रूप है किन्तु भारतीय सभ्यता और सस्कृति के त्यागमय, आध्यात्मिक, कर्मनिष्ठ स्वरूप के सम्मुख पाश्चात्य सभ्यता की यान्त्रिक, भौतिक, भोगप्रधान सभ्यता बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण दिखाई नही देती है। किन्तु कामायनीकार ने दोनो सस्कृतियों के स्वरूप-समन्वय द्वारा जिन आदर्शों की स्थापना की है वे निश्चय ही महत्वपूर्ण हैं। निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि "कामायनी" मे सस्कृति का स्वरूप समन्वयवादी होते हुये भी प्रसाद जी की निष्ठा और आस्था भारतीय (आर्य) सस्कृति के प्रति अडिग हैं।

दार्शनिक पृष्ठ भूमि

'कामायनी' की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण प्रमुख रूप से शैवागमो के प्रत्यभिज्ञा दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन की अनेक महत्वपूर्ण विचार धाराओ के आधार पर हुआ है। बौद्धो के दुखवाद, क्षणिकवाद, शून्यवाद न्याये-वैशेषिक के परमाणुवाद, विज्ञान के भौतिकवाद विकासवाद एव उसके अगभूत परिवर्तनवाद, मध्ययुगीन नियतिवाद, एव आधुनिक गांधीवाद की भी विचारधाराओ का योगदान भी 'कामायनी' की दार्शनिक भित्ति के निर्माण मे स्पष्ट दिखाई देता है। इन सम्पूर्ण दार्शनिक सिद्धान्तो और विचारधाराओं योग से प्रसाद जी ने कामायनी की जो दार्शनिक उपलब्धि की है वह है 'समरसता का सिद्धान्त' और 'आनन्दवाद'। 'कामायनी' की सम्पूर्ण दार्शनिक उपपत्तियो को इन्ही दो शब्दो मे आत्मसात किया जा सकता है।[1]

'कामायनी' मे जिस समरसता जन्य आनन्दवाद की उपलब्धि हुयी है वह मूलत: शैवागमो मे प्रतिपादित सामरस्य एव आनन्दवाद से प्रभावित अवश्य है, किन्तु उसकी पूर्ण अनुकृति-मात्र ही नही। 'कामायनी' का आनन्दवाद दार्शनिक सिद्धान्त या वाद की दृष्टि से प्रसाद जी की अपनी मौलिक सृष्टि है। जिसके निर्माण मे उन्होने मुख्य रूप से शैवदर्शन, बौद्धदर्शन, वेदान्त-दर्शन, उपनिषद् तथा

---

१. डा० रामपालसिंह-कामायनी अनुशीलन, पृष्ठ ७८

वर्तमान युग की साम्यवादी प्रवृत्तियों का आवश्यकतानुसार उपयोग किया है। किन्तु किसी एक मतवाद को पकड़ कर उसकी अंध उपासना प्रसाद जी को अभीष्ट न थी।"[1]

प्रत्यभिज्ञा-दर्शन और कामायनी

भारत में शैवों के पाच सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं.—

१. शैव सम्प्रदाय,

२. पाशुपत-सम्प्रदाय,

३. कालामुख सम्प्रदाय,

४. कापालिक सम्प्रदाय, और

५ वीर शैव सम्प्रदाय।

इन सम्प्रदायो का विकास देश मे भिन्न स्थानो पर और शिवाराधना की भिन्न भिन्न पद्धतियो को अपनाकर हुआ। शैव सम्प्रदाय मुख्यतः तमिल प्रदेश मे, पाशुपत गुजरात मे, वीर शैव मत का प्रचार कर्नाटक प्रदेश मे हुआ। कालामुख और कापालिको के विशेष विवरण उपलब्ध न होने से प्रतीत होता है कि इनकी क्रियाए एव सिद्धान्त इतने गुप्त थे कि आगे चलकर इनकी परम्पराएं नष्ट प्रायः हो गयी।[2]

"सर्व दर्शन सग्रह" नामक ग्रन्थ मे चार शैव दर्शनो का उल्लेख किया गया है—नकुलीश, पशुपति, प्रत्यभिज्ञा, और रसेश्वर दर्शन।[3]

प्रत्यभिज्ञादर्शन का विकास काश्मीर मे हुआ था, इसलिए यह काश्मीर शैव दर्शन नाम से प्रसिद्ध है। इसके मूल प्रवर्तक वसुगुप्त माने जाते हैं। वसुगुप्त के दो प्रधान शिष्य थे, कल्लट और सोमानन्द। कल्लट ने 'स्पन्दनशास्त्र' का और सोमानन्द ने 'प्रत्यभिज्ञा शास्त्र' का प्रवर्तन किया। इस शास्त्र का मूल ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' है। अभिनव गुप्ताचार्य ने उन प्रत्यभिज्ञा सूत्रों पर 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा – विमर्शिनी' नामक टीका तथा 'तन्त्रालोक', 'तन्त्रसार' 'परमार्थसार' आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे।[4] इन्ही ग्रन्थो मे प्रत्यभिज्ञा दर्शन की दार्शनिक विचारधाराओ का विवेचन है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन पूर्णत अद्वैतवादी है जिसके अनुसार 'शिवोऽहम्' की स्थिति को प्राप्त करना जीव का अन्तिम लक्ष्य है। इस दृष्टि से प्रत्यभिज्ञा दर्शन और शकर के वेदान्त दर्शन का प्रतिपाद्य समान है। वेदान्त मे 'अहम्-ब्रह्मास्मि' की

१ डा० विजयेन्द्र स्नातक, कामायनी दर्शन, पृ० १०२

२ डा० बलदेव उपाध्याय–आर्य सस्कृति के मूलाधार, पृ० ३२९

३ वही –सर्व दर्शन सग्रह, पृ० ७०-७८

४ डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना–कामायनी मे काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० ४११

स्थिति को जीव का चरम लक्ष्य माना गया है। वस्तुत "ब्रह्म की प्रत्यभिज्ञा या पहचान हो जाने के कारण ही इसे प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहते हैं।"[1]

१. आत्मा

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार आत्मा को चैतन्य स्वरूप कहा गया है। वहा आत्मा को शक्ति के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है और उसे परम शिव से अभिन्न माना जाता है। 'कामायनी" म प्रसाद जी ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार आत्मा को महाचिति' कहा है जो लीलामय आनन्द करने वाली है —

कर रही लीलामय आनन्द, महाचिति सजग हुयी सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब होते अनुरक्त ॥[2]

प्रसाद जी ने आत्मा के लिए 'चेतना' शब्द का भी प्रयोग किया है –

'चेतना एक विलसती, आनन्द अखड घना था।'[3]

यह आत्मा ही परम् शिव है। इसी शिवरूप आत्मतत्त्व से अर्थात् शिव (आत्मा की 'इच्छा' से) विश्व का निर्माण होता है –

'काम मगल से मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम'।[4]

२. जीव

प्रत्यभिज्ञा दर्शन मे नियास्य आवद्ध जीव पशु' के नाम से सम्बोधित किया गया है।[5]

इस जीव की चार सज्ञाए मानी गयी है—सकल, प्रलयाकल, विज्ञानाकल और शुद्ध'।[6]

जीव को शुद्धस्वरूप की प्राप्ति 'शिवोऽहम्' के ज्ञान द्वारा होती है। 'कामायनी' म मनु जीव के प्रतीक हैं। उनका जीवन चिन्ताग्रस्त है, भोग-विलास की प्रवृत्ति, भेद-बुद्धि, ईर्ष्या, स्वार्थ भावना आदि के कारण वे प्रथम सर्ग से लेकर निर्वेद सर्ग तक तीन प्रकार के मलो एव काल, कला, नियति, राग, विद्यादि छ कचुको स घिरे हुए बन्धन ग्रस्त रहते [redacted]। रहस्यसर्ग मे श्रद्धा के सयोग से इच्छा, क्रिया, ज्ञान के त्रिकोण मिलने म शाम्भव स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसी के परिणाम स्वरूप वे शिवरूप होकर अनन्त अखण्ड शिव की प्राप्ति करते है –

---

१ डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय–हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २५५
२ कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५३
३ वही, आनन्द सर्ग, पृ० २९४
४ वही, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५३
५ ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी, भाग २, पृ० २२०
६ तन्त्रालोक, भाग १, पृ० २१६

"स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो, इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद मे, श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।"[1]

३ जगत

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार सृष्टि या जगत चिति का स्वरूप माना गया है, जो अपनी इच्छा के अनुसार विश्व का उदय या उन्मेष करती है। 'कामयनी' मे प्रसाद जी ने विश्व को 'चिति' की इच्छा का परिणाम ही कहा है, यह ससार महाचिति की लीलामय अभिव्यक्ति होने के कारण आनन्दमय है और आत्मा का ससार के प्रति अनुराग होना भी स्वाभाविक ही है। प्रसाद जी ने जगत् मिथ्या का दृष्टिकोण नही अपनाया–

"अपने दुख सुख से पुलकित, यह मूर्त विश्व सचराचर।
चिति का विराट वपु मगल, यह सत्य, सत्, चिर सुन्दर।"[2]

इस प्रकार प्रसाद जी ने 'कामायनी' मे आत्मा, जीव और जगत की कल्पना प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सैद्धान्तिक आधार पर साकार की है।

तीन पदार्थ

पशु, पति और पाश को सभी शैव दर्शनो की भाति प्रत्यभिज्ञा दर्शन मे इन तीन पदार्थों को स्वीकार किया है। जीव ही पशु है, जो जगत् रूपी पाश मे बन्धा हुआ है। पशुपति (शिवत्व) को प्राप्त नही कर पाता। पशुपति की प्राप्ति उसे शिवत्व बोध (शिवोऽहम्) अर्थात् प्रत्यभिज्ञान होने पर होती है। 'कामायनी' में मनु की स्थिति जीव की है। वे इड़ा के भौतिक आकर्षण मे बधकर भटकते हैं। किन्तु श्रद्धा के सम्पर्क से अन्तत' उन्हें शिवत्व बोध, पशुपति (नटराज) के दर्शनो से होता है। उस स्थिति मे उन्हे सम्पूर्ण ससार एक दिखाई देता है। वे अपने पराये का भेद भूल कर आनन्दमय समरसता–जन्य आनन्द की स्थिति को प्राप्त करते हैं।

आनन्दवाद

'कामायनी' का मूल प्रतिपाद्य आनन्दवाद ही है। यह आनन्दवाद मानव की उस अवस्था का प्रतीक है, जिसमे वह सम्पूर्ण भेदभाव भूल कर विश्व-बन्धुत्व के उदात्त भाव से युक्त होता है। "कामायनी" में आनन्द के जिस रूप की प्रतिष्ठा है वह स्पष्टत. आत्मस्थ है–बाह्य, गोचर विश्व रूप मे प्रसारित आनन्द नही–यह आनन्द स्पष्टतः औपनिषधिक परम्परा से प्रभावित शैवाद्वैत–प्रतिपादित

---

१. कामयानी, रहस्य सर्ग, पृ २७३
२. वही, आनन्द सर्ग, पृ० २८८

अभेद मय आत्मास्वाद है, जिसमें आत्म और परमात्मा के ही नहीं, वरन् आत्म और जगत के भी पूर्ण 'ऐक्य' की भावना निहित है।"[१]

'कामायनी' के आनन्द का स्वरूप जगत् के भौतिक आनन्द से भिन्न है। संसार के जो माधुर्य एवं क्षणिक सुखात्मक अनुभूति या भाव है वह तो वस्तुतः आनन्द की छाया मात्र है। इस आनन्द के प्राप्त होने पर वासना का आकर्षण और अतृप्ति समाप्त हो जाती है। उसका स्वरूप सात्विक है। वह अखंड है। इस आनन्द की उपलब्धि होने पर मानव अभेद की स्थिति का अनुभव करता है। विश्व के बाह्य द्वन्द्व जैसे सुख दुख और जड़ चेतन स्थितियां समरसता के कारण समाप्त हो जाती हैं —

'सब भेद भाव भुलवाकर, दुख सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे! यह मैं हूं, यह विश्व नीड़ बन जाता।'[२]

जगत् के सम्पूर्ण दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति भी हो जाती है। प्रसाद जी ने आनन्दवाद की स्थापना सृष्टि के भौतिक संघर्ष से मुक्ति प्राप्ति करने के लिए की है क्योंकि जगत् की विडम्बनाओं में फंसा हुआ मनुष्य जीवन के वास्तविक सुख को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक वह आनन्द के अध्यात्मिक स्वरूप को पहचान न ले, किन्तु इसका यह अर्थ कभी नहीं कि व्यक्ति पलायनवादी और निवृत्तिमार्गी हो जाए। "प्रसाद का आनन्दवाद सर्ववाद के सिद्धान्त पर स्थित है— सर्ववाद का लक्ष्य निवृत्ति द्वारा उतना सिद्ध नहीं होता जितना विश्व को कर्मस्थल मानने से सिद्ध होता है यह कोरा कर्म नहीं समन्वयात्मक कर्म है।"[३]

कामायनी' में इस ओर संकेत भी किया गया है —

"यह नीड़ मनोहर कृतियों का, यह विश्व कर्म रंगस्थल है।
है परम्परा लग रही यहां, ठहरा जिसमें जितना बल है।"[४]

उपर्युक्त पंक्तियों में काम ने मनु को विश्व की कर्म-रंगस्थली में ठहरने की शिक्षा दी है। श्रद्धा ने भी चिन्ताग्रस्त मनु से यही कहा है—

"दुःख के डर से तुम अज्ञात, जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज, भविष्यत् से बन कर अनजान।"[५]

---

१ डा० नगेन्द्र—कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृ० ५८-५९
२. कामायनी —आनन्द सर्ग, पृ० २८९
३ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृ० ११८
४ कामायनी—काम सर्ग, पृ० ७५
५ वही —श्रद्धा सर्ग, पृ० ५२

संसार (सर्ग) मंगल और श्रेय मंडित है। उसे तिरस्कृत करना उचित नहीं, जिसे तुम जगत् की ज्वालाओं का मूल और अभिशाप समझते हो वह ईश्वर के वरदान का रहस्य भी है। विश्व-भूमा का मधुमय दान है:—

"काम मगन से मडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम।

+ + ×

विषमता की पीडा से व्यस्त, हो रहा स्पन्दित विश्व महान्
यही दुख सुख विकास का सत्य, यही भूमा का मधुमय दान।"[1]

इस प्रकार प्रसाद जी का 'आनन्दवाद' आध्यात्मिक होते हुए भी पूर्णतः अभौतिक नही। आत्मिक होते हुए भी उसकी अनुभूति अशरीरी नही। उसमे कर्म की प्रेरणा और सात्विक सुख की प्राप्ति एक साथ होती है।

समरसता

समरसता शब्द और सिद्धान्त दोनो को ही प्रसाद जी ने शैवदर्शनों से ग्रहण किया है। शैव दर्शनो मे शिव और शक्ति तत्त्व के समन्वय का प्रतिपादन किया गया है। 'कामायनी' मे इस समरसता के सिद्धान्त को कवि ने इच्छा, कर्म और ज्ञान नामक त्रिपुर के समन्वय द्वारा प्रतिपादित किया है कामायनीकार ने यह प्रतिष्ठित किया है कि मानव की इन तीनो प्रवृत्तियों का समन्वय होने पर ही वास्तविक आनन्द की उपलब्धि संभव है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा नामक तीनो शक्तियां क्रमशः पुरुष की बुद्धि, अहंकार और मन को क्रमशः सतोगुणी, तमोगुणी एवं रजोगुणी प्रवृत्तियां है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव मन की इन त्रिवृत्तियो मे सामरस्य स्थापित होने पर वह पूर्णतः की स्थिति को पहुंच कर अखण्ड आनन्द की प्राप्ति उसी प्रकार करता है जिस प्रकार योगी समाधि की अवस्था मे ब्रह्म की अनुभूति। कामायनी कार ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि इच्छा ज्ञान और क्रिया का भिन्न- जीवन की विडम्बना है:—

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यो पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें, यह विडम्बना है जीवन की।"[2]

इन तीनो के मिलन पर मनु को दिव्यानन्द की प्राप्ति होती है। 'मनु' दिव्य अनाहत निनाद का शब्द सुनकर योगियों की भांति परमानन्द की दशा को प्राप्त होते हैं। 'कामायनी' की दार्शनिक उपलब्धियो मे समरसता का सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रसाद जी ने इस सिद्धान्त को जीवन के व्यवहार जगत मे भी प्रतिष्ठित किया है। उदाहरण के लिए उन्होंने पुरुष और स्त्री के संघर्ष को

---

१. कामायनी श्रद्धा सर्ग, पृ० ५३–५४
२. वही, रहस्य सर्ग, पृ० २७२

अभेद मय आत्मास्वाद है, जिसमे आत्म और परमात्मा के ही नहो, वरन् आत्म और जगत के भी पूर्ण 'ऐक्य' की भावना निहित है।"[1]

'कामायनी' के आनन्द का स्वरूप जगत् के भौतिक आनन्द से भिन्न है। ससारमे जो माधुर्य एव क्षणिक सुखात्मक अनुभूति का भाव है वह तो वस्तुतः आनन्द की छाया मात्र है। इस आनन्द के प्राप्त होने पर वासना का आकर्षण और अतृप्ति समाप्त हो जाती है। उसका स्वरूप सात्विक है। यह अखड है। इस आनन्द की उपलब्धि होने पर मानव अभेद की स्थिति का अनुभव करता है। विश्व के बाह्य द्वन्द्व जैसे सुख दुख और जड चेतन स्थितिया समरसता के कारण समाप्त हो जाती हैं।—

'सब भेद भाव भुलवाकर, दुख सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे! यह मैं हूँ, यह विश्व नीड बन जाता।'[2]

जगत् के सम्पूर्ण दु.खो की आत्यन्तिक निवृत्ति भी हो जाती है। प्रसाद जी ने आनन्दवाद की स्थापना सृष्टि के भौतिक सघर्ष से मुक्ति प्राप्ति करने के लिए की है क्योकि जगत् की विडम्बनाओं मे फसा हुआ मनुष्य जीवन के वास्तविक सुख को तब तक प्राप्त नही कर सकता जब तक वह आनन्द के अध्यात्मिक स्वरूप को पहचान न ले, किन्तु इसका यह अर्थ कभी नही कि व्यक्ति पलायनवादी और निवृत्तिमार्गी हो जाए। "प्रसाद का आनन्दवाद सर्ववाद के सिद्धान्त पर स्थित है— सर्ववाद का लक्ष्य निवृत्ति द्वारा उतना सिद्ध नही होता जितना विश्व को कर्मस्थल मानने से सिद्ध होता है यह कोरा कर्म नही समन्वयात्मक कर्म है।"[3]

कामायनी' मे इस ओर सकेत भी किया गया है —

"यह नीड मनोहर कृतियो का, यह विश्व कर्म रगस्थल है।
है परम्परा लग रही यहा, ठहरा जिसमे जितना बल है।"[4]

उपर्युक्त पक्तियो मे काम ने मनु को विश्व की कर्म-रगस्थली मे ठहरने की शिक्षा दी है। श्रद्धा ने भी चिन्ताग्रस्त मुख से यही कहा है।—

"दु ख के डर से तुम अज्ञात, जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज, भविष्यत् से बन कर अनजान।"[5]

---

१. डा० नगेन्द्र—कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृ० ५८-५९
२. कामायनी –आनन्द सर्ग, पृ० २८९
३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृ० ११८
४ कामायनी–काम सर्ग, पृ० ७९
५. वही –श्रद्धा सर्ग, पृ० ५२

संसार (सर्ग) मंगल और श्रेय मंडित है। उसे तिरस्कृत करना उचित नहीं, जिसे तुम जगत् की ज्वालाओं का मूल और अभिशाप समझते हो वह ईश्वर के वरदान का रहस्य भी है। विश्व-भूमा का मधुमय दान है:—

"काम मंगल से मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम।

+ + ×

विषमता की पीड़ा से व्यस्त, हो रहा स्पन्दित विश्व महान्
यही दुख सुख विकास का सत्य, यही भूमा का मधुमय दान।"[1]

इस प्रकार प्रसाद जी का 'आनन्दवाद' आध्यात्मिक होते हुए भी पूर्णतः अभौतिक नहीं। आत्मिक होते हुए भी उसकी अनुभूति अशरीरी नहीं। उसमे कर्म की प्रेरणा और सात्विक सुख की प्राप्ति एक साथ होती है।

समरसता

समरसता शब्द और सिद्धान्त दोनो को ही प्रसाद जी ने शैवदर्शनों से ग्रहण किया है। शैव दर्शनो मे शिव और शक्ति तत्व के समन्वय का प्रतिपादन किया गया है। 'कामायनी' मे इस समरसता के सिद्धान्त को कवि ने इच्छा, कर्म और ज्ञान नामक त्रिपुर के समन्वय द्वारा प्रतिपादित किया है कामायनीकार ने यह प्रतिष्ठित किया है कि मानव की इन तीनों प्रवृत्तियों का समन्वय होने पर ही वास्तविक आनन्द की उपलब्धि संभव है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा नामक तीनो शक्तियां क्रमशः पुरुष की बुद्धि, महंकार और मन को क्रमशः सतोगुणी, तमोगुणी एवं रजोगुणी प्रवृत्तियां है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव मन की इन त्रिवृत्तियो मे सामरस्य स्थापित होने पर वह पूर्णतः की स्थिति को पहुँच कर अखण्ड आनन्द की प्राप्ति उसी प्रकार करता है जिस प्रकार योगी समाधि की अवस्था मे ब्रह्म की अनुभूति। कामायनी कार ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि इच्छा ज्ञान और क्रिया का भिन्न, जीवन की विडम्बना है:—

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें, यह विडम्बना है जीवन की।"[2]

इन तीनो के मिलन पर मनु को दिव्यानन्द की प्राप्ति होती है। 'मनु' दिव्य अनाहत निनाद का शब्द सुनकर योगियों की भांति परमानन्द की दशा को प्राप्त होते हैं। 'कामायनी' की दार्शनिक उपलब्धियो मे समरसता का सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रसाद जी ने इस सिद्धान्त को जीवन के व्यवहार जगत मे भी प्रतिष्ठित किया है। उदाहरण के लिए उन्होंने पुरुष और स्त्री के संघर्ष को

---

१. कामायनी श्रद्धा सर्ग, पृ० ५३–५४
२. वही, रहस्य सर्ग, पृ० २७२

समाप्त करने के लिए समरसता पूर्ण सम्बन्धो की आवश्यकता पर भी बल दिया है। काम ने मनु से कहा भी है:—

'तुम भूल गए पुरुषत्व मोह मे, कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की।'[१]

इसी समरसता को उन्होने जड़ और चेतन का कारण भी माना है, यथा :—

"समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।"

इसी समरसता का उपदेश सारस्वत प्रदेश मे जाती हुयी श्रद्धा अपने पुत्र को भी देती है :—

'सबकी समरसता का प्रचार, मेरे सुत सुन माँ की पुकार।'[२]

'कामायनी' के अन्तिम सर्ग मे तो इस समरसता का बड़ा विशद् प्रभाव चित्रित किया गया है:—

'शापित न यहा है कोई, तापित पापी न यहा है।
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि यहा है।'[३]

इस प्रकार 'कायामनी' मे समरसता के तीन रूप मिलते हैं —व्यक्ति की समरसता, समाज की समरसता, प्रकृति तथा पुरुष की समरसता। व्यक्ति की समरमता श्रद्धा के द्वारा व्यक्त हुयी है। समाज की समरसता के अभाव मे सारस्वत प्रदेश मे विप्लव तथा संघर्ष होता है। प्रकृति तथा पुरुष की समरसता आनन्द सर्ग म दिखाई गयी है।[४]

समरसता परम शान्ति एव आनन्दमय अवस्था की जननी है। उस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर मानव के लिए कुछ भी प्राप्त करना अशेष हो जाता है। यही जीव की जीवन यात्रा समाप्त होती है। अब जन्म मरण मे कुछ भी नही रहता। और अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने से कर्म की गति भी यही शान्त हो जाती है। यही सत्, चित और आनन्द का सामजस्य तथा समरस्य है, यही भारतीय जीवन, दर्शन, धर्म और कर्म चरम लक्ष्य है।[५]

इस प्रकार समरसता का सिद्धान्त 'कामायनी' की अनुपम देन है जिसे कवि ने वर्तमान् असतुलित जीवन के समाधान के रूप मे चित्रित किया है। शैवागमो एव सन्तो से प्रभावित हाते हुए भी यह सिद्धान्त नितान्त युगीन और नवीन है।

---

१. कामायनी, इडा सर्ग, पृ० १६२
२. वही, पृ० २४४
३. वही, आनन्द सर्ग, पृ० २८८
४. डा० रामलालसिह—कामायनी अनुशीलन, पृ० १७८
५. डा० उमेश मिश्र —भारतीय दर्शन, पृ० २५

नियतिवाद

शैवागमों मे नियति को विश्व के क्रिया व्यापारों की संयोजिका शक्ति के रूप मे वर्णित किया गया है । वह कर्मफल देने वाली शिव-शक्ति है । शैवदर्शन मे नियति; कला, विद्या, राग, काल आदि कंचुकों मे एक है, जो जीव को आवृत्त करते हैं । तन्त्रालोक मे नियति को नियमन करने वाली कहा गया है --

"नियति-नियो`वना धत्ते विशिष्टे कार्यमन्डले" [1]

प्रसाद जी ने 'कामायनी' मे इसे (नियति) उस चेतन शक्ति के रूप में ग्रहण किया है जिसके सम्मुख मानव विवश हो जाता है । संसार का समस्त क्रिया व्यापार नियति के द्वारा ही चलता है । वह व्यक्तिगत नही, समष्टिगत है । नियति केवल मनु का जीवन ही परिचालित नही करती, वरन् समग्र ससार उसी से नियंत्रित है । '[2]

'कामायनी मे सर्वत्र ही नियतिवाद का स्वर सुनाई देता है क्योंकि सृष्टि के कर्म चक्र का संचालन वही करती है :—

'कर्मचक्र सा घूम रहा है, यह गोलक बन नियति प्रेरणा,
सब के पीछे लगी हुई है, कोई व्याकुल नयी ऐषणा ।
+ + +
नियती चलाती कर्म चक्र यह, तृष्णा जनित ममत्व वासना-'[3]

काव्यारम्भ मे प्रलय काल की समाप्ति के बाद नियति के शासन को कवि ने सूचित किया है :—

'उस एकात नियति शासन में, चले विवश धीरे धीरे ।
एक शात स्पंदन लहरो का, होता ज्यों सागर धीरे'।' [4]

इडा सर्ग मे कवि ने नियति को एक नटी कहा है जिसका रूप भीषण भी होता है :—

इस नियति नटी के अति भीषण, अभिनय की छाया नाच रही ।
खोखली शून्यता मे प्रतिपद, असफलता अधिक कुलांच रही ॥ [5]

वासना सर्ग मे नियति के कौतुक को देखकर मनु चमत्कृत होते हुए चित्रित किये गये हैं :—

---

१. तन्त्रालोक ६/१६०
२. डा० प्रेमशंकर प्रसाद का काव्य, पृ० ३६८
३. कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २६६-६७
४. वही, आशा, सर्ग, पृ० ३४
५ वही. इड़ा सर्ग, पृ० १५८

देखते थे अग्नि शाला से कुतूहल युक्त,
मनु चमत्कृत निज नियति का खेल बधन युक्त।[1]

संघर्ष सर्ग मे इसी नियति को विकर्षणमयी के रूप मे अंकित किया गया है, जिसे देखकर सभी व्याकुल हो जाते है :—

'ताडव मे थी तीव्र प्रगति,
परमाणु विकल थे, नियति विकर्षण मयी,
त्रास से सब व्याकुल थे।'[2]

'कामायनी' में इस प्रकार नियति को एक नियंता शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु कामायनी का नियतिवाद मनुष्य को अकर्मण्य और निराश नही बनाता वरन् अकर्म से कर्म की ओर प्रवृत्त करता है। "कामायनी" का नियतिवाद भाग्यवाद की उस विचारधारा से भी भिन्न है, जिसमें पूर्व जन्मों के कर्म का फल मानकर व्यक्ति निष्क्रिय भाव से परिस्थितियों की विडम्बना को सहता रहता है। "नियति को प्रसाद जी अचेतन प्रकृति का कार्य कलाप मानते हैं। सचेतन प्रकृति नियति के रूप में ही सक्रिय होती है......प्रसाद जी की दृष्टि मे प्रकृति का नियमन और विश्व का सन्तुलन करने वाली शक्ति नियति है, जो मानव प्रतिवादों की रोकथाम करती है और विश्व का सन्तुलित विकास करने मे सहायक होती है। प्रसाद का यह नियति सिद्धान्त साधारण भाग्यवाद या प्रारब्धवाद से भिन्न है। नियति एक अज्ञेय शक्ति है, किन्तु वह जड और अज्ञान मूलक नही है।"[3]

उपयु'क्त विवेचन से स्पष्ट है कि—"प्रसाद जी ने नियति को भारतीय दर्शन की ठोस चिन्तन-भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। वह विश्व-नियता की इच्छा शक्ति है, प्रसाद जी ने उसको पूर्णतः स्वतन्त्र तथा स्वेच्छाचारिणी माना है। ईश्वर की इच्छा शक्ति होने के कारण अन्य सत्ता नही है। उसके कर्म-चक्र के प्रवर्तन का उद्देश्य सदैव जीव के लिए कल्याणमय है क्योंकि वह अन्त में उसे 'शिव' तत्त्व की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है, जिसे प्राप्त करके यह आनन्द लोक का जीव बन जाता है।"[4]

१. कामायनी, वासना सर्ग, पृ० ८३
२. वहीं, संघर्ष सर्ग, पृ० २००
३. प्रसाद का जीवन दर्शन कला और कृतित्व सुसम्पादक महावीर अधिकारी मे आचार्य वाजपेयी का 'कामायनी का दार्शनिक निरूपण' नामक निबध, पृ० ९३
४. डा० रामगोपाल दिनेश—हिन्दी काव्य में नियतिवाद, पृ० ३०८, ३०९

अन्य दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव

२० वी शताब्दी मे गांधी जी का आविर्भाव, राजनीति के क्षेत्र मे ही नही वरन् तत्कालीन भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रो के लिए अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण था। गाधी जी के विचार (जीवनदर्शन) से हिन्दी काव्य की प्रतिनिधि काव्य धाराएं यथेष्ट रूप मे प्रभावित हुई। युग जीवन की चेतना के आकलन का विराट प्रयास होने के कारण महाकाव्य मे अपने युग की उन्नत विचारधाराओं की प्रतिच्छाया का समावेश होना स्वाभाविक ही है। कामायनी व्यापक अर्थों में एक युगीन महाकाव्य होने के कारण गाधीवाद के मूल सिद्धान्तो से प्रभावित है। काव्य के प्रारंभिक सर्गों मे अहिंसा की जिस विचारणा का समर्थन कवि ने श्रद्धा के माध्यम से कराया है, वह गाधीवादी प्रभाव की व्यजक है। 'कामायनी' की श्रद्धा मनु के हिंसात्मक कार्मों का दृढता से विरोध करती है। अपने पालित पशु की यज्ञ मे बलि दिये जाने पर यह कहती भी है कि किसी देवता के नाते बलि देना कितना धोखा है।[1]

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार साकेत की सीता चित्रकूट मे कोलभिल्ल बालाओ को कातना बुनना सिखाती हैं, उसी प्रकार 'कामायनी' की श्रद्धा भी हाथों मे तकली लेकर बुनती हैं। गाधीवाद के अतिरिक्त डा० नगेन्द्र ने 'कामायनी' पर बौद्धदर्शन के शून्यवाद, क्षणवाद, परमाणुवाद, दुखवाद, तथा विकासवाद और उसके अगभूत परिवर्तनवाद, शक्ति स्पर्धावाद आदि का प्रभाव भी बतलाया है।[2]

शून्यवाद

मौन नाश विध्वस अंधेरा, शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते, तुझको यहां कहा अब ठाव।[3]

क्षणवाद

"जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्यक्त नील घन माला मे,
सौदामिनी सधि सा सुन्दर, क्षण भर रहा उजाला मे।"[4]

परिवर्तनवाद

"विश्व एक बंधन विहीन परिवर्तन तो है;
इसकी गति मे रवि—शशि तारे ये सब जो हैं,
रूप बदलते रहते वसुधा जल निधि बनती,
उदधि बना मरुभूमि जलधि मे ज्वाला जलती।"[5]

---

१. कामायनी, कर्म सर्ग, पृ० १२६
२. डा० नगेन्द्र—कामायनी के अध्ययन की समस्यायें, पृ० ९६–९८
३. कामायनी—चिंता सर्ग, पृ० १८
४. वही, चिंता सर्ग, पृ० १९
५. वही, संघर्ष सर्ग पृ० १९०

परमाणु वाद

"वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई, अपने आलस का त्याग किये,
परमाणु बाल सब दौड़ पड़े, जिसका सुन्दर अनुराग लिये ।"[१]

इनके अतिरिक्त द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद, गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त, गतिशीलता, प्रकाश और वायुमण्डल आदि विभिन्न सिद्धान्तो की ओर भी प्रसाद जी की 'कामायनी' में संकेत मिलते हैं ।[२]

मानवतावाद

कामायनी की संपूर्ण दार्शनिक उपलब्धियों का अन्तिम लक्ष्य मानवोत्थान की भावना है । कामायनी के कथानायक और काव्य-फल (आनन्दवाद) के उपभोक्ता भी मानवता के जनक मनु ही हैं । प्रसाद जी ने दार्शनिक प्रपत्तियो के द्वारा भी यही प्रतिपादित किया है कि मानव अपने जीवन के भौतिक संघर्ष से निवृत्ति तभी पा सकता है जब वह आस्थामूलक संतुलित जीवनदृष्टि का विकास करे । मात्र बुद्धि के द्वारा अनुशासित न होकर हृदय की भी बात सुने । जीवन की भौतिक साधना ही मानव का अन्तिम लक्ष्य नही है, उसका लक्ष्य श्रेयस् की प्राप्ति है । इस दृष्टि से विचार करने पर कामायनीकार का जीवनदर्शन मानव-जीवन का ही दर्शन दिखाई देता है । "सचमुच प्रसाद जी ने दर्शन से जीवन को देखा है और जीवन से दर्शन को । इसीलिए कामायनी की दार्शनिक पीठिका पर वे मानव जीवन का आनन्दपूर्ण भवन निर्माण करने मे सफल हुये हैं ।"[३]

कामायनी का मानवतावादी जीवन दर्शन मानव की जय ध्वनि करने वाली पंक्तियो के शाश्वत सन्देश मे निहित है, जिनमे कहा गया है ।—

शक्ति शाली हो विजयी बनो,
विश्व मे गूंज रहा जयगान ।[४]

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि प्राचीन और नवीन विचार-दर्शनो के उन्नत भावो को आत्मसात करके निर्मित हुई है । उसमे एक ओर प्रत्यभिज्ञा जैसे शैवागमी गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तो की विवेचना है तो दूसरी ओर विज्ञान, मनोविज्ञान, और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जैसे नवीन विचार दर्शनों का भी समावेश है । 'कामायनी' की दार्शनिकता का चरम निदर्शन आनन्दवाद और समरसता के सिद्धान्त हैं ये दोनों सिद्धान्त यद्यपि

---

१. कामायनी, काम सर्ग, पृ० ७२
२. डा० द्वारिकाप्रसाद—कामायनी मे काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ४६३
३. डा० रामलालसिंह—कामायनी अनुशीलन, पृ० १८०
४. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५७

नानों से गृहीत किये गये हैं किन्तु प्रसादजी ने अपनी काव्य प्रतिभा और ना क्षमता के द्वारा उनका जिस सुन्दर ढग से काव्य मे समाहार किया है, नके कारण वे उनकी मौलिक दार्शनिक-उद्भावनाएं बन गये हैं।

कुरुक्षेत्र

श्री रामधारीसिंह दिनकर कृत 'कुरुक्षेत्र' काव्य के सभी समीक्षको ने एकमत जिस तथ्य को मद्दनजर करके इस कृति की महत्ता को स्वीकार किया है, वह है- वन दर्शन। और यह सत्य भी है कि 'कुरुक्षेत्र' काव्यगत उपादानो और कलात्मक तेमानों की दृष्टि से इतनी भव्य रचना नही, जितनी जीवन दर्शन के आलोक दीप्तिमान विराट काव्यकृति। 'कुरुक्षेत्र' मे प्रतिपादित जीवन दर्शन को समालो- कों ने प्रगतिवादी, साम्यवादी, समाजवादी, मानवतावादी प्रवृत्ति मूलक व्यव- रवादि आदि विभिन्न अभिधानो द्वारा सम्बोधित किया है। किन्तु वास्तविकता है कि 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से दिनकर जी ने मानवतावादी जीवन-दर्शन की न्यताओं को ही युद्धवादी विचार दर्शन की पृष्ठभूमि पर प्रस्थापित करने का सफल ास किया है। इस प्रस्थापना के मूल मे कवि की उदात्त जीवनदृष्टि, शावादी कर्ममय जीवन की आस्था निरतर विद्यमान रही है। 'कुरुक्षेत्र' के 'निवेदन' कवि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि-"पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया र 'कलिंग-विजय' नामक कविता, लिखते लिखते मुझे ऐसा लगा मानो, युद्ध की स्या मनुष्य की सारी समस्याओ की जड हो। ......युद्ध निंदित और क्रूर कर्म किन्तु इसका दायित्व किस पर होना चाहिए ? उस पर, जो नीतियो के जाल बिछाकर प्रतिकार को आमन्त्रण देता है ? या उस पर जो जाल छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर है ?" वस्तुत. इन्ही प्रश्न-चिन्हो मे सन्दर्भ 'कुरुक्षेत्र' की जीवन दर्शन विषयक विचारधाराओं और मान्यताओ का विकास ा है।

द्धवादी विचार-दर्शन

'कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन सन् १९४६ मे हुआ। स्पष्ट है कि 'कुरुक्षेत्र' की ना द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि पर हुई। द्वितीय विश्व युद्ध मे जन-धन का कर विनाश महाभारत युद्ध की विभीषिका की अनुभूति पाठक को सहज ही करा ा है। अस्तु, काव्यारम्भ मे कवि चिरकाल से होने वाले युद्ध मे मूल कारणो का ान करता है। वह मानव की स्वार्थ लोलुप वृत्ति, द्रोहाग्नि की प्रज्जवलता एव तशोध की भावनाओं को युद्ध का प्रमुख कारण मानता है। व्यक्तिगत स्वार्थ-भाव प्रेरित होकर ही मनुष्य मे ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिशोध की वृत्तियाँ उत्पन्न होते अन्तत युद्ध की जननी बन जाती हैं। यद्यपि मनुष्य लडना नही चाहता कि-व्यक्ति का स्वार्थ टकरा कर सघर्ष की परिस्थिति उत्पन्न कर देता है

से पूर्व व्यक्ति इस तथ्य पर विचार भी करता है कि क्या युद्ध ही एक मात्र उपचार है ? किन्तु विवश होकर वह लड़ता है और युद्ध की परिसमाप्ति पर विनाश की विभीषिका देखकर पश्चात्ताप करता है। 'कुरुक्षेत्र' में महाभारत युद्ध की परिसमाप्ति पर धर्मराज युधिष्ठिर को इसी प्रकार के मानसिक संताप से ग्रस्त चित्रित किया गया है। वे भीष्म पितामह के समक्ष जाकर कहते हैं *कि महाभारत का भयंकर परिणाम मैं जानता तो भाइयों के साथ भीख माँग कर मर जाता किन्तु रक्तपात नहीं करता।*[1] युद्ध की विभीषिका से आक्रान्त नीतिज्ञ धर्मराज यह निर्णय करने में असमर्थ हैं कि ध्वंसजन्य सुख और शान्तिजन्य दुःख में कौन नीति विरुद्ध है। वे कहते हैं कि :—

> "जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुष्प,
> या महान पाप यहाँ फूटा बन युद्ध है।"[2]

प्रत्युत्तर में भीष्म पितामह कहते हैं कि युद्ध का ज्वालामुखी व्यक्तियों के के लोभ, दाहक घृणा एवं ईर्ष्या-द्वेष के गरल फूटता है। कभी-कभी राजनीतिक उलझनें और देश-प्रेम भी युद्ध के कारण बन जाते है।[3] भीष्म युद्ध को एक अनिवार्यता मानते हैं—

> "युद्ध को तुम निन्द्य कहते हो, मगर, जब तलक है उठ रही चिनगारियाँ।
> भिन्न स्वार्थों के कुलिश संघर्ष की, युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है।[4]

कवि युद्ध को पाप पुण्य से परे, अस्तित्व रक्षण के लिए जीवन धर्म मानता है। तभी तो भीष्म पितामह कहते हैं कि:—

> "है मृषा तेरे हृदय की जल्पना, युद्ध करना पुण्य या दुष्पाप है,
> क्योंकि कोई कर्म है ऐसा नहीं, जो स्वयं ही पुण्य हो या पाप हो।
> \+ \+ \+
> जानता हूँ किन्तु जीने के लिये, चाहिये अंगार जैसी वीरता,
> पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है, जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर।[5]

इसी संदर्भ में प्रश्न उठता है कि युद्ध के लिये उत्तरदायी कौन है ? —

> 'युद्ध को बुलाता है अनीति ध्वजधारी या कि,

---

१. कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग, पृ० १७, १८ (संस्करण सम्वत् २००३)
२. वही, द्वितीय सर्ग पृ० १९
३. वही , वही , पृ० २२
४. वही , सर्ग २/२५
५. वही , सर्ग ३/२४/२५

यह जो अनीति भाल पै दे पांव चलता ?

+ + +

कौन है बुलाता युद्ध ? जाल जो बनाता

या जो जाल तोड़ने को कूद काल-सा निकलता ?[1]

कवि का उत्तर है—

"चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही ।"[2]

युद्ध की समस्या का निदान कैसे हो ? अन्ततः यह प्रश्न शेष रहता है । इस सम्बन्ध में काव्य का अन्तिम सर्ग द्रष्टव्य है जिसमें मानव समाज की सम्पूर्ण समस्याओं (जिसमें युद्ध की समस्या भी सम्मिलित है) का कारण जीवन का वैषम्य कहा गया है । जब तक मनुष्य को न्यायोचित सुख सुलभ नहीं तब तक संघर्ष समाप्त नहीं हो सकता, ऐसी कवि की मान्यता है ।[3] अस्तु, जन समाज में युद्ध का निषेध शांति की स्थापना से हो सकता है और शांति स्थापित करने के लिये उपलब्ध साधनों और सुख सुविधाओं का समान विभाजन आवश्यक है किन्तु स्वार्थ लोलुप वर्ग इन साधनों के सम-विभाजन का बाधक है । समाज में शोषक और शोषित दो वर्ग हैं । इनमें शोषित वर्ग जब तक शक्ति शाली बनकर शोषक से संघर्षरत नहीं होता तब तक स्थायी शांति समाज में स्थापित नहीं हो सकती और युद्ध होते रहते हैं । कवि का मत है —

'रण रोकना है तो उखाड़ विषदन्त फेंको

वृक-व्याघ्र-भीति से मही को मुक्त करदो,

अथवा अजा के छागलों को भी बनाओ व्याघ्र,

दांतों में कराल काल कूट विष भर दो ।'[4]

दिनकर जी का यह दृष्टिकोण निश्चय ही साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित है किन्तु उपर्युक्त उल्लिखित पंक्तियों से पूर्व के पद ही में वे मानवतावादी जीवन दृष्टि को अपनाते हुये जो कुछ भीष्म के मुख से धर्मराज को कहलाते हैं, वही विचार वस्तुतः मूल्यवान निदान प्रतीत होता है —

'दलित मनुष्य में मनुष्यता के भाव भरो,

दर्प की दुरग्नि करो दूर बलवान से,

हिम-शीत भावना में आग अनुभूति की दो,

छीन लो हलाहल उदग्र अभिमान से ।[5]

---

१. कुरुक्षेत्र, तृतीय सर्ग, पृ० ४०

२. वही, चतुर्थ, सर्ग, पृ० ४७

३. वही, सप्तम सर्ग, पृ० १११

४. वही, सर्ग,७/११०

५. वही, सर्ग, ७/१०९

"राजतंत्र द्योतक है नर की, मलिन, निहीन, प्रवृत्ति का,
मानवता की ग्लानी और, कुत्सित कलंक संस्कृति का।"[१]

अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि इस हेय शासन व्यवस्था के बंधन से समाज को मुक्त किया जाय। नवीन समाज संरचना का संकल्प समानता और स्वतन्त्रता के आधारप' होना चाहिये। समाज मे साम्य और स्वातन्त्र्य के मूल्यों की प्रतिष्ठा प्रवृत्ति-मार्गी कर्मवाद द्वारा हो सकती है। इसलिए भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाते हैं कि संन्यास कायरता है, सच्चा मनुजत्व मानव जीवन की ग्रंथियों को सुलझा कर मनुजों को सुखी बनाने मे है। 'कुरुक्षेत्र' के कवि ने कोरे चिन्तन, वैयक्तिक साधना एवं संन्यास आदि को निरर्थक कहा है। उसका मत है –

"केवल ज्ञानमयी निवृत्ति से, द्विधा न मिट सकती है।
जगत छोड़ देने से मन की तृषा न घट सकती है।"[२]

इसलिये धर्मराज युधिष्ठिर को कहा गया है कि कर्मठ सन्यासी बनकर मिट्टी का भार संभालो, क्योंकि –

"ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है, कुछ भी नहीं गगन मे,
धर्मराज! जो कुछ है, वह है मिट्टी म, जीवन मे।"[३]

इस प्रकार लोभ द्रोह, प्रतिशोध आदि के रहते हुये भी तप, त्याग और समानता विधायक ज्ञान के आधार पर आशावादी और कर्ममय जीवन से पूर्ण नवीन समाज रचना के संकल्प मे प्रवृत्त होने को कहा गया है।

आध्यात्मिक निष्ठाएं और नवीन जीवनादर्श

कुरुक्षेत्र का कवि आस्तिक और आशावादी है। कुरुक्षेत्र मे ईश्वर, भगवान, ईश, आदि शब्दों का प्रयोग कवि ने चराचर जगत की संचालिका अदृश्य और अज्ञात शक्ति के लिये ही किया है। कृष्ण को एकाधिक स्थान पर भीष्मपितामह, युधिष्ठिर और स्वयं कवि ने भगवान कह कर संबोधित किया है, किन्तु यह पूज्य भाव के कारण हा। अन्यथा कवि ने संसार के अन्य महापुरुषों की ही भांति श्री कृष्ण को भी श्रद्धेय माना है क्योंकि अवतारवाद मे उसे विश्वास नहीं है —

'भीष्म हो अथवा युधिष्ठिर, या कि हो भगवान,
बुद्ध हो कि अशोक, गांधी हो कि ईसु महान।'[४]

---

१ कुरुक्षेत्र, सर्ग ७/१२५

२ वही, सप्तम सर्ग, पृ० १४५

३ वही, सर्ग ७, पृ०१५०

४ वही, षष्ठ सर्ग, पृ० २५

मानवतावादी जीवनदर्शन

युद्धवादी विचार दर्शन की प्रस्थापना ही काव्य का चरम लक्ष्य नही वह तो आधार भूमि है जिस पर 'कुरुक्षेत्र' के कवि की मूल मान्यताए आधृत हैं। पचम सर्ग के अन्त मे स्पष्ट कहा है कि "कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति पन्थ की, मानव ऊपर और चलेगा अर्थात् कुरुक्षेत्र का युद्ध मानवता का अन्त नही। 'मनुष्यता के विकास का मार्ग युद्ध के बाद भी अक्षुण्ण रह गया है कुरुक्षेत्र मे मनुष्य मरे हैं, मनुष्यता नही मरी। उसी मनुष्यता का नव विकास मानव समाज मे रह कर करना होगा।[1] "मानवता के नव विकास के लिये कवि ने जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है उसका निम्नाकित शीर्षको के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है :—

१ नवीन सामाजिक सरचना का सकल्प।
२ आध्यात्मिक निष्ठाओ म परिष्कार।
३ मानवतावादो जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा।

नवीन सामाजिक सरचना का संकल्प

'कुरुक्षेत्र' में स्थान स्थान पर मानवतावादी जीवन मूल्यो पर आधारित नवीन समाज रचना के सकल्प का आग्रह कवि न व्यक्त किया है। सप्तम सर्ग मे आस्था सयुत दृष्टि से मानवता के पुनर्निर्माण और सामाजिक जीवन के समृद्ध विकास की विचार सरणी को प्रस्तुत किया है। इस सर्ग मे भीष्म पितामह युधिष्ठिर को वैराग्य–भाव त्याग कर जीवन सग्राम मे प्रवृत्त होने का सन्देश देते हैं। मानव समाज के विकास क्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है कि प्रारम्भ मे सब मनुष्य समान और सुखी थे। वे परस्पर विश्वासी और कर्मलीन सन्यासी थे। जनसमाज कुटुम्ब के समान था। सभी धर्म बधन से बधे थे। जन जन के मन पर धर्म नीति का अनुशासन था, राजा का शासन नही था। व्यक्ति का सुख, समाज के सुख से भिन्न नही था। मानव–समाज का जीवन सरल और विकासोन्मुख था।[2] कालान्तर म लोभ वृत्ति उत्पन्न हुई जिसने मनुष्य के मन में वैयक्तिक सग्रह के भाव को जन्म दिया। फलस्वरूप चोरी लूटमार, शोषण, प्रहार, छीना–झपटी शुरू हुई। समाज की शाति भग हो गई। तभी दण्ड–नीति–धारी विक्रमी शासक आया जिसने खड्ग के बल पर समाज मे शान्ति और व्यवस्था तो स्थापित की किन्तु राजतत्रीय शासन प्रणाली द्वारा शनै शनै प्रजा के सम्पूर्ण अधिकारो का भी अपहरण कर लिया। मनुष्य का शरीर ही नही बुद्धि भी राजकीय नियमों के अधीनस्थ हो गई। कवि के मतानुसार राजतन्त्र सस्कृति का कलक है —

---

१. श्री नन्ददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य, पृ० १४६
२ कुरुक्षेत्र–सप्तम सर्ग, पृ० ११८–१२०

"राजतन्त्र द्योतक है नर की, मलिन, निहीन, प्रकृति का,
मानवता की ग्लानी और, कुत्सित कलंक संस्कृति का।"[1]

अस्तु आवश्यकता इस बात की है कि इस हेय शासन व्यवस्था के बंधन से समाज को मुक्त किया जाय। नवीन समाज संरचना का संकल्प समानता और स्वतन्त्रता के आधार पर होना चाहिये। समाज में साम्य और स्वातन्त्र्य के मूल्यों की प्रतिष्ठा प्रवृत्ति-मार्गी कर्मवाद द्वारा हो सकती है। इसलिए भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाते हैं कि सन्यास कायरता है सच्चा मनुजत्व मानव जीवन की ग्रंथियों को सुलझा कर मनुजों को सुखी बनाने में है। 'कुरुक्षेत्र' के कवि ने कोरे चिन्तन, वैयक्तिक साधना एवं सन्यास आदि को निरर्थक कहा है। उसका मत है –

'केवल ज्ञानमयी निवृत्ति से, द्विधा न मिट सकती है।
जगत छोड़ देने से मन की तृषा न घट सकती है।"[2]

इसलिये धर्मराज युधिष्ठिर को कहा गया है कि कर्मठ सन्यासी बनकर मिट्टी का भार संभालो, क्योंकि–

"ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है, कुछ भी नहीं गगन में,
धर्मराज ! जो कुछ है, वह है मिट्टी में, जीवन में।"[3]

इस प्रकार लोभ द्रोह, प्रतिशोध आदि के रहते हुये भी तप, त्याग और समानता विधायक ज्ञान के आधार पर आशावादी और कर्ममय जीवन से पूर्ण नवीन समाज रचना के संकल्प में प्रवृत्त होने को कहा गया है।

आध्यात्मिक निष्ठाएं और नवीन जीवनादर्श

कुरुक्षेत्र का कवि आस्तिक और आशावादी है। कुरुक्षेत्र में ईश्वर, भगवान, ईश, आदि शब्दों का प्रयोग कवि ने चराचर जगत की संचालिका अदृश्य और अज्ञात शक्ति के लिये ही किया है। कृष्ण को एकाधिक स्थान पर भीष्मपितामह, युधिष्ठिर और स्वयं कवि ने भगवान कह कर संबोधित किया है, किन्तु यह पूज्य भाव के कारण हां। अन्यथा कवि ने संसार के अन्य महापुरुषों की ही भांति श्री कृष्ण को भी श्रद्धेय माना है क्योंकि अवतारवाद में उसे विश्वास नहीं है —

भीष्म हों अथवा युधिष्ठिर, या कि हों भगवान,
बुद्ध हों कि अशोक, गांधी हों कि इसु महान।[4]

---

१ कुरुक्षेत्र, सर्ग ७/१२५

२ वही सप्तम सग, पृ० १८५

३ वही सग ७ पृ०१५०

४ वही, षष्ठ सग, पृ० ९५

ससार की गतिविधियो का सचालन करने वाली शक्तियो मे कवि ने प्रकृति, नियति और काल को महत्वपूर्ण माना है। ये सभी शक्तिया ईश्वर नाम्नी परम सत्ता के ही अधीन है। इनमे नियति और काल नामक शक्तिया मानव-जीवन के लिये अकल्याणकारी और ध्वसात्मक है, यथा—

नियति "इच्छा नर की, और फल देती उसे नियति है।
फलता विष पीयूष वृक्ष मे अकथ प्रकृति की गति है।" [१]

काल 'होगा ध्वस कराल, काल विप्लव का खेल रचेगा,
प्रलय प्रगट होगा धरनी पर, हा हा कार मचेगा।' [२]

प्रकृति को कवि ने मानव की कल्याण विधायिका शक्ति के रूप मे अ कित किया है — प्रकृति धन, सम्पत्ति और वैभव का अनन्त भडार है। उसका उपभोग सम्पूर्ण मानव जाति को सुखी समृद्ध बना सकता है :—

"इतना कुछ है भरा विभव का कोष प्रकृति के भीतर,
निज इच्छित सुख-भोग सहज ही पा सकते नारी नर।" [३]

प्रकृति के कण कण मे निहित धन-सम्पत्ति को उपभोग का अधिकारी मनुष्य मात्र है :—

'जो कुछ न्यस्त प्रकृति मे है, वह मनुज मात्र का धन है।
धर्मराज, उसके कण कण का अधिकारी जन जन है।'[४]

किन्तु प्रकृति मे न्यस्त और उपलब्ध उपादानो का उपभोग भाग्यवाद का आवरण चढा कर समाज का एक वर्ग स्वय करता है और दूसरे को वचित रखता है। इसलिये 'कुरुक्षेत्र' मे भाग्यवाद और जन्मातरवाद को शोषण का अस्त्र और अकर्मण्य बनाने वाला विचार कहकर तिरस्कार किया गया है :—

"भाग्यवाद आवरण पाप का और अस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का।।" [५]

अथवा

"ब्रह्मा का अभिलेख पढा—करत निरुद्यमी प्राणी।
धोते वीर कुलक भाल का, बहा भ्रु वो से पानी।।" [६]

---

१. कुरुक्षेत्र चतुर्थ सर्ग, ५०
२ वही, सर्ग, पृ० ४/५४
३. वही. सप्तम सर्ग, पृ० ११३
४ वही, सर्ग, ७/११७
५. वही, सर्ग ७/११५
६ वही, सर्ग ७।११४

भाग्यवाद की भांति ही कवि ने मोक्षवादी विचारणा का भी उपहास किया है। मोक्षवादी चिन्तक जगत को अनित्य और जीवन को नश्वर कह कर मनुष्य को सामाजिक दायित्व के प्रति उदासीन बनाते हैं। कुरुक्षेत्र के रचयिता ने संसार से वैराग्य और निवृत्ति अर्थात् सन्यास की भावना की घोर भर्त्सना की है :—

"धर्मराज सन्यास खोजना, कायरता है मन की।" [1]

+ +

"जनाकीर्ण जग से व्याकुल हो निकल भागना वन में,
धर्मराज है घोर पराजय नर की जीवन रण में।
यह निवृत्ति है ग्लानि पलायन का कुत्सित क्रम है,
निःश्रेयस यह श्रमित पराजित, विजित बुद्धि का भ्रम है।" [2]

इसके स्थान पर कवि ने प्रवृत्ति मार्गी — कर्मवाद की स्थापना की है। निवृत्ति-मार्गी भावना व्यक्ति की निज की मुक्ति और सुख का उपाय है। संसार से पलायन करने वाला व्यक्ति समष्टि हित नहीं कर सकता। जीवन एक समुद्र है। इसकी सतह पर खड़ा जलाभिलाषी खारा जल पाता है किन्तु गोता लगाकर मंथन करने वाला अमृत तत्व का पान और रत्नों की प्राप्ति करता है। जीवन सागर के जल को खारा कहकर छोड़ने वाले पलायनवादी है वे वृक्ष पर बिना चढ़े ही सुधा फल पाना चाहते हैं। अस्तु, संसार का त्याग वे करते हैं जो अकर्मण्य और आत्मभीरू हैं। सच्चा आत्मजयी, पुरुषार्थी और कर्मयोगी तो संसार में रहकर, दूसरों के दुःख दूर करके ही आत्मलाभ और कल्याण करता है। इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट दिखाई देता है कि कवि गीता के निष्काम कर्मयोग की विचारधारा से प्रभावित है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के 'गीतारहस्य' में प्रतिपादित विचारों का 'कुरुक्षेत्र' के रचयिता पर प्रभूत प्रभाव पड़ा है। कर्मवाद का स्वर 'गीता' और 'कुरुक्षेत्र' में कितना समान है यह निम्नांकित उद्धरणों से द्रष्टव्य है :—

गीता — न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

(गीता — अ० ३/५)

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥

(गीता — अ० ३/८)

---

१. कुरुक्षेत्र, सर्ग ७/१२७
२. वही, सप्तम सर्ग. १३२

कुरुक्षेत्र — कर्मभूमि है निखिल महीतल, जब तक नर की काया,
जब तक है जीवन के अणु अणु मे कर्त्तव्य समाया।
क्रिया धर्म को छोड मनुज कैसे निज सुख पायेगा ?
कर्म रहेगा साथ, भाग वह जहा कही जायेगा।[1]

इस प्रकार कवि आध्यात्मिक निष्ठाओ का जहा तक प्रश्न है वे भौतिकवादी जीवन मूल्यो से सम्पृक्त है। वह सासारिक जीवन से परे किसी अलौकिक आध्यात्मिक जगत की कल्पना और मोक्ष साधना को महत्वपूर्ण और श्रेयस्कर नही मानता है। किन्तु यहा यह स्मरणीय है कि वह जड़वादी भौतिकतापूर्ण जीवनपद्धति (मैटीरियलिस्टिक फिलासफी) का भी अ धानुकरणकर्त्ता नही है। जिसके अनुसार 'खाओ पीओ और मौज करो' ही जीवन का सर्वस्व है। वह देह पर मन का आधिपत्य भी चाहता है। लोक कल्याण के लिये वैयक्तिक स्वार्थ के परित्याग और पुरुषार्थ पूर्ण संयमित जीवन की महत्ता को भी उसने स्वीकारा है। धर्मराज युधिष्ठर को सयम और त्यागमय जीवन–भोग का ही उपदेश पितामह ने निम्नाकित शब्दो मे किया है:—

"भोगो तुम इस भाँति मृत्ति को दाग न लगने पाये,
मिट्टी मे तुम नही, [वही तुम मे विलीन हो जाये।
और सिखाओ . भोगवाद की यही रीति जन जन को,
करें विलीन देह को मन मे नही देह मे मन को।
मन का होगा आधिपत्य जिस दिन मनुष्य के तन पर,
होगा त्याग अधिष्ठित जिस दिन भोगलिप्त जीवन पर,
+ + +
उस दिन होगा सुप्रभात नर के सौभाग्य उदय का
उस दिन होगा शख ध्वनित मानव की महाविजय का।"[2]

मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा

यह प्रारम्भ मे ही कहा जा चुका है कि 'कुरुक्षेत्र' मे विभिन्न प्राचीन और युगीन विचारधाराओ का प्रतिपादन होते हुए भी उसका जीवन दर्शन मूलतः मानवतावादी है। काव्य मे सर्वत्र मानव, मानवजगत और मानवीयजीवन की महिमा का ही आख्यान किया गया है। 'कुरुक्षेत्र' के प्रथम पृष्ठ पर ही 'विश्व मानव' के हृदय मे द्वेष भाव को युद्ध के लिये उत्तरदायी ठहराया गया है। युद्ध की विडम्बना का निरूपण और निवृत्ति मूलक का विरोध करके भी कवि अन्ततः मानव की महत्ता को स्थापित करना चाहता है। कुरुक्षेत्र–युद्ध के अवसान पर मानव–शवो को देखकर युधिष्ठिर की आह मे कवि का ही मर्मभेदी आर्त्तनाद सुनाई देता है:—

---

१. कुरुक्षेत्र. सर्ग ७/१३५
२. वही, सप्तम सर्ग पृ० १५० से १५२

"मनु का पुत्र बने पशु भोजन। मानव का यह अन्त।
भरत भूमि के नरवीरों की यह दुर्गति, हा हन्त।"[१]

क्योंकि सम्पूर्ण कलाओं, ज्ञान, विज्ञान और धर्म का वरेण्य कर्ता वह मानव को ही मानता है:-

"नर वरेण्य निर्भीक, शूरता के ज्वलन्त आगार।
कला, ज्ञान, विज्ञान, धर्म के मूर्तिमान आधार।"[२]

किन्तु कुरुक्षेत्र युद्ध के भयंकर विनाश पर कवि मानवता की इति नहीं मानता। वह मानवता के अभ्युदय का ही आकांक्षी है-

"कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति पन्थ की
मानव ऊपर और चलेगा,
मनु का यह पुत्र निराश नहीं,
नव धर्म प्रदीप अवश्य चलेगा।"[३]

'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग में विज्ञान की सम्पूर्ण उपलब्धियों का अनुसंधाता, भोक्ता और नियंता मानव को ही कहा गया है:-

"यह प्रगति निस्सीम। नर का यह अपूर्व विकास
चरण-तल भूगोल। मुट्ठी में निखिल आकाश।"[४]
+ +
"यह मनुज जिसका गगन मे आ रहा है यान,
कांपते जिसके करों को देख कर परमाणु।"[५]

सृष्टि की सम्पूर्ण शक्तियों का नियंता और रचना की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव ही है:-

'यह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।
+ +
यह मनुज, जो सृष्टि का शृंगार।
ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार।,,[६]

---

१. कुरुक्षेत्र, पचम सर्ग, पृ० ८२
२. वही, पृ० ८३
३. वही, पृ० ९९
४. वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ९७
५. वही, सर्ग ६। ९९
६. वही, सर्ग ६। १००

जहां तक विज्ञान और मानव के सम्बन्धों का प्रश्न है कवि वर्टेंड रसल की उस चिन्तन धारा से प्रभावित प्रतीत होता है जिसके अनुसार विज्ञान निर्पेक्ष है, मानव ही उसका निमार्ण एवं सद् असद् प्रयोग करता है। इसीलिये मनुष्य को सचेत किया गया है कि:—

"सावधान, मनुष्य ? यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तजकर मोह, स्मृति के पार।"[1]

विज्ञान मानवता का वरदान और श्रेय तभी बन सकता है जब उसके आविष्कार शिव स्वरूप अर्थात् लोक कल्याणमय हों। इसी प्रकार समता विधायक ज्ञान मानवता के विकास मे सहायक सिद्ध हो सकता है:—

"श्रेय वह विज्ञान का वरदान,
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान।
+ +
श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञान,
स्नेह सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण।"[2]

मानव की अपरिमित शक्ति और सामर्थ्य का बखान करके कवि ने अन्ततः मनुष्य की महत्ता को ही स्वीकृति प्रदान की है। किन्तु दूसरी ओर क्रूर कर्मा मनुष्यो को श्रृगालो और कुक्कुरो से हीन भी कहा है। संहार सेवी मनुष्य को उसने वासना का भृत्य और मनुष्यता का अपमान भी कहा है :—

"यह मनुज ज्ञानी, श्रृगालो, कुक्कुरो से हीन
हो, किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।
+ +
नाम सुन भूलो नही सोचो विचारो कृत्य,
यह मनुज संहारसेवी, वासना का भृत्य।
छद्म इसकी कल्पना, पाखण्ड इसका ज्ञान,
यह मनुष्य, मनुष्यता, का घोरतम अपमान।"[3]

सच्चे मानव की परिभाषा कवि ने निम्नांकित शब्दों मे दी है:—

"श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत,
श्रेय मानव की असीमित मानवो से प्रीत,
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान,

---

१. कुरुक्षेत्र, सर्ग ६। १०२
२. वही, षष्ठ सर्ग, पृ० १०३
३. वही, पृ० १०१

तोड दे जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान,
और मानव भी वही ।"[1]

मानव की उपयुक्त व्याख्या का यह अर्थ नहीं कि कवि पद-दलित और पतित मनुज को हेय मानता हो। वह तो मानव की जय का ही अभिलाषी है.-

'जय हो,, अध के गहन गर्त मे गिरे हुये मानव की,
मनु के सरल अमोघ पुत्र की, पुरुष ज्योति-संभव की।"[2]

मनुष्य मे लोभ, द्रोह, प्रतिशोध की वृत्तियां यदि मानवता के विघ्न हैं तो करुणा, त्याग, तपश्चर्या इत्यादि मानव जाति की रक्षा के सबल भी हैं। इसलिये मानवता की महिमा कभी घट नही सकती। आशा, विश्वास, स्नेह, त्याग आदि जीवन मूल्यो के प्रति मानवीय निष्ठा के बल पर ही 'कुरुक्षेत्र' के अंतिम छन्द में कवि मानवता के उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा से युक्त सन्देश प्रसारित करता है:-

"आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज,
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से,
भावना मनुष्य की न राग मे रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा नही जीवन अनीति से,
हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और
तेज न बढेगा किसी मानव का जीत से,
स्नेह-बलिदान होगे माप नरता के एक,
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।"[3]

इस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य मे प्रतिपादित जीवन दर्शन सम्बन्धी मान्यताओ का समीक्षण करने के उपरान्त इसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि यह एक मानवतावादी जीवनदर्शन से अनुस्यूत कृति है। कुरुक्षेत्र मे जहा एक ओर भाग्य, भगवान, मोक्ष, निवृत्ति, सन्यास आदि परम्परागत रूढ विचारो एव अध्यात्मिक निष्ठाओ का खण्डन किया गया है वही सासारिक जीवन मे आसक्ति तथा मानवीय जीवन मूल्यो (जैसे-त्याग, तप, स्नेह, बलिदान, विश्वास आदि) के प्रति अनन्य आस्था मंडित की गयी है। नियति, प्रकृति एव ज्ञान-विज्ञान के लोकमगलकारी रूप को ही वरेण्य कहा गया है। युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार करके भी उनके सभव निदान की ओर सकेत किया गया है। 'कुरुक्षेत्र' की सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक उपलब्धि 'गीता' के कर्मयोग की सतर्क पुष्टि तथा मानवता के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण की प्रस्थापना है।

---

१ कुरुक्षेत्र, सर्ग ६, पृ० १०१
२. वही, सप्तम सर्ग, पृ० १०५
३. वही, सप्तम सर्ग, पृ० १५४

साकेत सन्त

सृजन-प्रेरणा

'साकेत सन्त' के रचयिता ने अन्य कवियो की भांति काव्य की भूमिका या प्रस्तावना के रूप मे कुछ नही लिखा है, जिसमे काव्य-रचना के उद्देश्य या प्रेरणा के सम्बन्ध मे कुछ संकेत हो। फिर भी स्पष्ट है कि भरत के चरित्र की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिये ही 'साकेत सन्त' की रचना हुई है। यहा यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि 'साकेत सन्त' की रचना पर श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' का पर्याप्त प्रभाव है,[1] किन्तु दोनो की सृजनात्मक प्रेरणा के स्रोत मूलत भिन्न हैं। 'साकेत' महाकाव्य की रचना 'काव्य की उपेक्षिता' उर्मिला के चरित्रोद्धार की दृष्टि से हुई है जब कि 'साकेत सन्त' के चरित नायक भरत का चरित्र राम-काव्यो की परम्परा मे उपेक्षित नही रहा है। वस्तुतः भरत का चरित्र तो इतना गरिमापूर्ण और महान् था कि उसके विशद् चित्रण के लिये एक स्वतन्त्र काव्य की रचना अपेक्षित थी। संभवतः इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने 'साकेत सन्त' महाकाव्य की रचना की। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण काव्य के अध्ययन से एक तथ्य यह सामने आता है कि काव्य मे एक निश्चित विचारदर्शन की प्रतिष्ठा के लिये कवि आद्यात प्रयत्नशील रहा है। इस विचार-दर्शन का आधार भारतीय सस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त हैं। भरत का चरित्र भारतीय सस्कृति के पुनीत आदर्शों का सात्विक प्रतीक है जिन्हें कवि वर्तमान युग जीवन के अशान्त और अन्धकारपूर्ण वातावरण से त्राण के लिये आवश्यक मानता है। 'साकेत-सन्त' के कवि ने कहा भी है कि:—

> "शांति तज क्रांति का बटोही बना विश्व अब,
> तामसी तमिस्रा मे विकल बिललाता है।
> तब भावना मे भारतीयता का भव्य रूप,
> भर कर भारत भरत गुण गाता है।"[2]

भारतीय संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा

'साकेत-सन्त' के जीवन दर्शन का आधार भारतीय संस्कृति के चिरतन आदर्श हैं। इन आदर्शों की प्रतिष्ठा कवि ने दो प्रकार से की है—

१. प्राचीन भारतीय जीवन मूल्यो की श्रेष्ठता का प्रतिपादन द्वारा।

२. पाश्चात्य भौतिकतावादी जीवनादर्शों के निषेध द्वारा।

---

१. (अ) डा० प्रतिपालसिंह—बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, पृ० २६१
(आ) डा० गोविन्दराम शर्मा—हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ३७९

२. साकेत-सन्त, प्रथम सस्करण—'उपक्रम', पृ० १७

काव्य के प्रारम्भ मे ही भरत जब अपनी ननिहाल मे मामा युधाजित के साथ प्राखेट के लिये जाते हैं तो उनके बाण से एक मृग आहत हो जाता है। मृग की कातर दशा को देखकर भरत का भावुक हृदय द्रवित हो जाता है। यही कवि ने युधाजित और भरत के सवाद की योजना की है जिसमे पाश्चात्य और पौर्वात्य आदर्शो और मूल्यो को विवेचना हुई है। युधाजित कहता है कि क्षत्रियो का पशु पर करुणा करना उचित नही। क्षमा तो तापस का धर्म है। प्रशासक को तो कठोर होना चाहिये।[1] नृप को तो ऐसा होना चाहिये कि त्रिभुवन उसके भय से प्रकम्पित रहे। शासक तो सघर्षपूर्ण होता है। क्योकि—

"सघर्ष जगत का भय है, सघर्ष जगत की इति है।
सघर्ष केन्द्र पर निर्भर, अपनो उन्नति की स्थिति है।"[2]

यदि ससार मे जीना और बढना है तो सघर्षरत होना ही पडेगा। ससार मे मत्स्य न्याय प्रसिद्ध है जिसके अनुसार बडा छोटे को खा लेता है। यह अवनी वीरभोग्या है। जो सबल होता है ससार उसी का साथ देता है। अर्थ और काम की सिद्धि मे ही जीवन की सफलता निहित है। इसलिये दया और करुणा की बातें छोड कर स्वय अपने भाग्य विधाता बनो।[3] युधाजित ने भरत से यह भी कहा कि सफल प्रशासक बनने के लिए तुम्हे शोषण की नीति सीखनी होगी। जीवन-रण मे सौभाग्यचक्र बढाने के लिये औरो को कुचलना भी पडेगा।[4] क्योकि—

"क्षुद्रो की बलि वेदी पर,
पनपी है सदा महत्ता।
निर्धन कुटियो को ढाकर,
विकसी महलो की सत्ता।"[5]

युधाजित के कथन का प्रतिवाद करते हुये भरत ने कहा कि करुणा ही सबसे बडा बल है। शासक एक तपस्वी है, जगरक्षा उनका तप है। ससार मे दास या स्वामी होना कर्मों का क्रम है। प्रभुता तो एक भ्रम है।[6] सासारिक जीवन का सार सघर्ष नही वरन् पराशाति की प्राप्ति करना है—

'सघर्ष न सार जगत का, श्रम सीढ़ी मात्र भवन की।
है पराशाति परमोन्नति, जिससे रहती स्थिति मन की।'[7]

---

१ साकेत सन्त, सर्ग २, छद १६ से २५
२ वही , वही , छद २६
३. वही , वही , छद ३१ से ३७
४ वही , वही , छद २८, ३०
५ वही , वही , छद २९
६ वही , वही छद ४२ से ४६
७ वही , वही , छद ४९

भरत ने कहा कि शोषण ही करना है, तो जीवों का नहीं अपितु पापों का करना चाहिये। भरत ने मत्स्य न्याय, दमन पर आधारित सत्ता और ऊंच-नीच को जन्म देने वाले वैषम्य-भाव का भी सतर्क खंडन किया। उन्होंने लोक-व्यवस्था की सुस्थिरता के लिये धर्मार्थ काम की साधना को महत्व देते हुये कहा :—

'कब शांति किसे मिल पाई, कामार्थ धर्म के भ्रम में।
सुस्थिर है लोक व्यवस्था, धर्मार्थ काम के क्रम में।।" [1]

इस प्रकार स्पष्टतः भरत और युधाजित के विचार परस्पर विरोधी हैं। एक ने जीवन में संघर्ष (स्ट्रगल इज़ लाइफ), मत्स्यन्याय (सरवाइवल दी फिटेस्ट) शक्तिमत्ता (माइट इज़ राइट), सत्ता, निष्ठुरता, दमन, शोषण और अर्थ-काम की सिद्धि को महत्व दिया है तो दूसरे ने दया, करुणा, शांति, समता और धर्मार्थ काम की प्राप्ति को जीवन की उपलब्धि माना है। वस्तुतः इन दोनों की मान्यताएं क्रमशः पाश्चात्य और पौर्वात्य जीवनादर्शों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यहां 'साकेत संत' के रचयिता की विचारधारा के उद्घोषक भरत है। कवि के विचारदर्शन की सभी विशेषताएं भरत के चरित्र में चरितार्थ भी हुई हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट प्रगट है कि 'साकेत-सन्त' के कवि क जीवनदर्शन संबंधी मान्यताओं का मूल आधार भारतीय जीवनादर्श हैं। अस्तु, भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शनशास्त्र मिश्र जी के जीवन-दर्शन संबंधी मन्तव्यों की पृष्ठभूमि कहे जा सकते है। किन्तु इसका यह अभिप्रायः नहीं की पाश्चात्य जीवन-दर्शन की उपलब्धियों (जिनका वर्तमान जीवन पर पर्याप्त प्रभाव है) को 'साकेत सन्त' के प्रणेता ने स्वीकारा नहीं है। वह भारतीयता का पुजारी होते हुए भी समसामयिक चिंतनधारा और जीवनबोध के प्रति जागरूक रहा है। इसका प्रमाण काव्य के सम्पूर्ण चिंतनक्रम में उपलब्ध है। उदाहरणार्थ कवि ने भारतीय धर्मशास्त्र की परम्परा के अनुसार राजा को ईश्वर का रूप मानते हुये भी उसके जीवन का सार्थक्य लोकहित माना है—

'भूप इससे ही प्रभु का रूप, कि उसके सिर है इतना भार।
न अपने, किन्तु लोक के लिये, सदा उसका जीवन संचार।।
+ + +
राजसिक शासन का यों खिले, जगन्मंगलमय सात्विक रूप।
कि शासक सेवक होकर मिले, स्वकर्मों में भर प्रेम अनूप।।' [2]

स्पष्टतः यहां प्रशासन के प्रजातांत्रिक स्वरूप को मान्यता प्रदान की गई है, किन्तु राजतंत्र का निषेध नहीं। इसी प्रकार कवि ने यदि भारतीय मान्यता के

---

१. साकेत सन्त, सर्ग २, छंद ५८
२ वही , पृ० १५०, १५४

अनुसार नियति और भाग्य के अस्तित्व को स्वीकार किया है तो पुरुषार्थ की महत्ता का भी प्रतिपादन किया हैं। यथा:—

भाग्यवाद

'पुरुष कुछ नही समय बलवान,
समय के हाथ फलाफल दान।
+ +
भाग्य लिपि का पहले निर्माण,
देह को तब मिलते हैं प्राण।'[१]

नियति

'नियति परतन्त्र मनुज व्यापार,
नियति ही सार, नियति ही सार।
नियति है जगदात्मा का कर्म,
कौन समझेगा पूरा मर्म ॥
विषम यह विधि का रचा विधान,
विधाता समझे या भगवान'[२]

पुरुषार्थ

'यत्न ही हो जीवन का ध्येय, कर्म की गीता सबकी गेय।
भाग्य की बात, भाग्य के हाथ, पुरुष का है पौरुष से साथ।
+ + +
पुरुष है भाग्य विधाता आप, अलस ही पाता है अभिशाप।'[३]

इसी सन्दर्भ मे कवि की ईश-विषयक धारणा भी द्रष्टव्य है। श्री मैथिली-शरण गुप्त की भांति रामकाव्यो (कौशल-किशोर, साकेत सन्त, रामराज्य) के प्रणेता डा० बल्देवप्रसाद मिश्र वैष्णव भावना के कवि है। उनके शब्दो मे.—

'स्वामी एक राम है, उन्ही का धाम विश्व यह।'[४]

मिश्र जी ने 'साकेत सन्त' मे ब्रह्म के लिये ईश, ईश्वर, प्रभु, विभु, विश्म्भर, विश्व पुरुष आदि, पौराणिक अभिधानो का प्रयोग किया है। किन्तु वैष्णव भावना

---

१. साकेत सन्त, सर्ग ४, पृ० ६०, ६१,
२. वही, सर्ग ४, पृ०६१
३. वही, सर्ग १४, पृ० ६२, ६३
४ वही, उपक्रम, पृ०१७

के अनुवर्ती होते हुये भी उन्होने *'जनता मे जनार्दन'* को देखने की बात कहकर ईश्वर और धर्म की मानवतावादी व्याख्या प्रस्तुत की है:–

'मनुज मे शक्ति, मनुज मे भक्ति
जनार्दन का जन जन अवतार ।'[१]

अथवा

'न देखा जिसने भू पर स्वर्ग, नरो मे विश्म्भर भगवान ।
वृथा है प्रेम, वृथा है कर्म, वृथा है उसका सारा ज्ञान ।
जनार्दन को जनता मे लखो, यही सब धर्मों का सार ।'[२]

इसी प्रकार देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता और भारत की महिमा का बखान काव्य मे अनेक स्थलो पर हुआ है किन्तु राष्ट्रीयता की भावना की चरम परिणति विश्वप्रेम मे निदर्शित की गई हैं । कवि के शब्दो मे–

'हो उठें उत्तर दक्षिण एक, तुम्हारा भारत बने अभग ।
बृहत्तर आर्यावर्त ललाम, भरत का भारत हो विख्यात ।
समन्वित संस्कृति इसकी करे, विश्वभर को उज्ज्वल अवदात ।
पूज्य हो इसकी कण कण भूमि, बढे यो महिमा अमिट अपार ।
रहे इच्छुक निर्जर भी सदा, यहा पर लेने को अवतार ।'[3]

अथवा–

"भारत जब तक जग में होगा,
भारतीयता तब तक होगी ।
भारतीयता होगी जब तक,
जग होगा तब तक नीरोगी ।"[४]

उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है कि कवि राष्ट्रोत्थान का आकांक्षी है किन्तु राष्ट्रोत्थान की कामना वह निर्बल राष्ट्रो को हडपन के लिये नही वरन् विश्व–हित और मानवता के उत्कर्ष के लिये करता है:–

'सभी निज संस्कृति के अनुकूल,
एक हो रचे राष्ट्र उत्थान ।
इसलिए नही कि करें सशक्त,
निर्बलो को अपने मे लीन–

---

१. साकेत सन्त,, सर्ग १२, पृ० १४६
२ वही, सर्ग १२, पृ० १५१
३. वही, सर्ग १२ पृ० १४७
४ वही, सर्ग १३, पृ० १८२

इसलिये कि हो विश्व–हित–हेतु,
समुन्नति पथ पर सब स्वाधीन।
विश्व मे फैल जाय सुख शांति,
यही हो जीवन का आदर्श,
इसी मे मानवता की कान्ति,
इसी मे मानव का उत्कर्ष ।'[1]

जिसे हम आज 'सहअस्तित्व' का सिद्धान्त कहते हैं, उसका प्रतिपादन भारतीय मनीषी ने 'सर्वे भवन्तु सुखिन' कहकर बहुत पहले किया था। मिश्र जी ने विश्वमगल की कामना करते हुये उसी सिद्धान्त की पुनर्प्रतिष्ठा साकेत सन्त मे की है।कवि के शब्दो मे—

'सब स्वतन्त्र सब समृद्ध ।
निज उन्नति मे सब ही रहे मद्धि से अविद्ध ।

\+ \+

एक ध्वजा, एक छत्र, एक स्वीय राज्य ऋद्ध ।
विश्व की मनुष्य जाति एक हो प्रभाव इद्ध ।
सिद्ध करें जग–विमुक्ति भारतीयता प्रसिद्ध ।।'[2]

युगीन समस्याओ का निरूपण और निदान

'साकेत सन्त' मे समसामयिक जीवन की अनेक महत्वपूर्ण समस्याओ का निरूपण और निदान प्रस्तुत किया गया है। काव्य के द्वादश सर्ग मे भरत राम से 'जीवन का मर्म' जानने हेतु प्रश्न करते है। उत्तर मे राम सृष्टि के रचनाकाल से लेकर वर्त्तमान युग तक मानवता के विकासक्रम का परिचय देते हुये विश्व जीवन की अनेक उल्लेखनीय समस्याओ पर मूल्यवान विचार प्रस्तुत करते हैं। मिश्र जी के अनुसार चेतना के स्फोट से सृष्टि रचना हुई। विकासक्रम मे वसुधरा पर मानव अवतरित हुआ। अपने विशाल अस्तित्व के कारण सृष्टि और प्रलय के अनेक चक्र लाध कर भी मानव आजतक अचल अटल है। मानव की अपार समृद्धि देखकर देवता भी सहम गय। कालातर मे द्रव्य सघात की लिप्साके वशीभूत होकर मनुष्यो मे परस्पर षडयत्र होने लगे। प्रेम और सत्कर्म दब गये। ईर्ष्या और वैमनस्य का प्रसार होने लगा। अर्थसग्रह की प्रवृत्ति ने पूंजीवाद को जन्म दिया। वही पूंजीवाद जो समाज का अभिशाप बनकर शोषण की नीव पर पनप रहा है:–

---

१ साकेत सन्त, सर्ग १२ पृ० १५३
२ वही, सर्ग १४, पृ० १९७

'द्रव्य संघात, द्रव्य संघात ।
छा गया सिक्कों का वह जाल ।
कौड़ियों पर लुटने ही लगे,
करोड़ों मनुजों के कंकाल ।
कई निर्धन कुटिया कर चूर,
धनी का उठा एक प्रासाद ।
अनेकों को दे दृढ़ दासत्व,
एक ने पाया प्रभुता स्वाद ॥'[1]

पूँजीवादी मनोवृत्ति के कारण जो संघर्ष बढ़ा वह व्यक्तियों तक ही सीमि न रहा वरन् वर्ग, समाज और राष्ट्रों में भी फैल गया । हमारे ही देश में ब्राह् और क्षत्रिय में, आर्य और अनार्य में, दक्षिण और उत्तर में वि रोध और संघर्ष दिख देता है । आर्यावर्त्त और आर्य संस्कृति का पुरातन स्वरूप आज छिन्न भिन्न हो ग है । पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के कारण आज सम्पूर्ण मानव जाति विवश होक कराह रही है—

मनुजता रही कराह कराह आह, है कौन पूछता हाल ।
राक्षसी चक्की में पिस रहे । मनुजता के जर्जर कंकाल ।
अकेला रावण क्यों इस काल, अनेकों खर दूषण के वृंद ।
कुचलते जाते वन मातंग, मनुजता के कोमल अरविंद ।
अनेकों देख रहे ऋषि वृंद, न कोई चलता किन्तु उपाय ।
महा भीषण यह अत्याचार, मनुज मनुजों ही को खा जाय ॥'[2]

इस विडम्बनापूर्ण स्थिति का समाधान सुझाते हुये कवि ने कहा है कि विश्व जीवन में संगठन हो,[3] आर्य और अनार्य संस्कृतियों में मेल हो[4] श्रम धन की महत्ता हो,[5] भौतिक सुख सुविधा के साधन सभी को उपलब्ध हो किन्तु मनुष्य विज्ञान प्रदत्त भौतिक सुख सुविधाओं के अधीन न हो । मनुष्य विज्ञान से नहीं, भारतीय योग विज्ञान की शक्ति से ऐसा विधान करे मानव में जो भगवान छिपा है, वह प्रकट हो —

"हमारे योगों के विज्ञान,
रचें ऐसा विज्ञान नवीन ।
+ +
व्यवस्था एक नई चुपचाप,
विश्व में ऐसा रचे विधान

१ वही, सर्ग, १२, पृ० १४३
२ वही, सर्ग १२, पृ० १४५
३ वही, वही, छंद ४५
४ वही, छंद ४६
५ वही, छंद ४७

कि हर नर के अन्तस् से स्वत',
प्रकट हो छिपे हुये भगवान ।।"[1]

यहाँ भगवान के प्रकट होने से अभिप्राय. मनुष्य मे सद्वृत्तियो की उ‸भा-वना से है । जहाँ तक 'नई व्यवस्था' का प्रश्न है, कवि ने स्वय कहा है कि –'विश्व बन्धुत्व व्यवस्था बने ।'[2] प्रेम और कर्त्तव्य इस व्यवस्था के आधार हो ।[3] कवि की धारणा है कि—

"हृदय से होगा जब तक नही,
प्रेम का क्रियाशील शुचि योग ।
जगत के कर्म क्षेत्र में कभी,
न आगे बढ पायेंगे लोग ।।"[4]

निष्कर्ष

इस प्रकार 'साकेत सन्त' मे प्रतिपादित कवि के जीवन दर्शन संबंधी मन्तव्यों पर विचार करने के अनंतर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि मिश्रजी ने परम्परा-प्रिय होते हुये भी प्रगतिशील जीवन–दृष्टि को अपना कर अपनी चिंतनधारा का निर्माण किया है । उन्होने भारतीय संस्कृति की जिन आधारभूत मान्यताओ का काव्य मे प्रतिपादन किया है उनका महत्व भारत या भारतीयो के लिये ही नही अपितु विश्वजनीन है । पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित होते हुये भी 'साकेत सन्त' वर्त्तमान युग की मूलभूत चेतना से अनुप्राणित काव्य है । 'साकेत सन्त' के माध्यम से त्रेता युग के आदर्श, आर्य संस्कृति की विशेषताएं या भारतीय दर्शन शास्त्र की मान्यताएं ही व्यंजित नही हुई वरन् विश्व–जीवन को प्रेरित और प्रभावित करने वाला महान मानवतावादी सदेश प्रसारित हुआ है जो समग्र मानव जाति की थाती है वह सन्देश है:—

'मनुज जीवन का यह ही मर्म,
आह की गहराई ले जान ।
मनुजता की रक्षा के हेतु,
निछावर करदे अपने प्राण ।
जगायेगा जन जन म भरी,
मनुजता को जो मनुज महान ।

---

१. साकेत सन्त, सर्ग १२, पृ० १५३ १५४
२ वही, वही, छद ४६
३ वही, छद ५२
४. वही, पृ० १४८

विश्व रक्षा हित उसमे शक्ति,
भरेंगे विश्म्भर भगवान ॥"[1]

इसीलिए 'साकेत सन्त' सामान्य काव्य नही महाकाव्य है, और महाकाव्य अपने सन्देश और उद्देश्य की दृष्टि से किसी भाषा, साहित्य, समाज या राष्ट्र की सम्पत्ति ही नही होते वरन् सम्पूर्ण मानवता की धरोहर कहे जाते हैं।

दैत्यवंश

सृजन प्रेरणा

'दैत्यवश' की सृजन प्रेरणा के मूल स्रोत हैं—महाकवि कालिदास कृत 'रघुवश' और माईकेल मधुसूदन दत्त कृत 'मेघनाथवध' नामक महाकाव्य। 'दैत्यवश' की 'प्रस्तावना' म श्री हरदयालुसिंह जी ने बताया है कि 'वाल्मीकि–रामायण' श्रीमद्भागवत और हरिवशपुराण का अध्ययन करने पर उन्हे 'दैत्यवश' के लिए काव्योचित्त सामग्री प्राप्त हुई।[2] काव्य के समष्टि–अनुशीलन से ज्ञात होता है कि 'दैत्यवश' की रचना म कवि की मानवतावादी जीवन–दृष्टि मूलत कार्यरत रही है। वस्तुत 'दैत्यवश' के रचयिता ने दैत्य और राक्षस कहे जाने वाले पात्रो का चारित्रिक औदात्त और सास्कृतिक निष्ठाओ से पूर्ण आचार–व्यवहार प्रस्तुत करके काव्य–लेखन को एक क्रातिक री परम्परा को जन्म दिया है।

जहा तक प्रस्तुत महाकाव्य मे प्रतिपादित जीवन–दर्शन का सबध है उसका स्वरूप दो सन्दर्भों मे विकसित हुआ है। वे सन्दर्भ है—परम्परागत और प्रगतिशील–प्रथम के अन्तर्गत कवि ने अवतारवाद, भाग्यवाद, शकुन, नीति यज्ञवि–धान, कर्मकाण्ड, तपस्या, दान आदि की महत्ता का प्रतिपादन किया है। प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाकर उसने दैत्यो के प्रशासनिक कौशल आदर्श राज्य व्यवस्था और' जनहित सवर्द्धन के कार्यो का महत्वाकन किया है।

परम्परित–सन्दर्भ

'दैत्यवश' मे अनेक परम्परित विश्वासो, मान्यताओं एव आदर्शो का प्रति–पादन हुआ है। काव्य का समारम्भ मगलचरण' से हुआ है। काव्य का समारम्भ 'मगलाचरण' से हुआ है जिसमे कवि ने सरस्वती, महेश और 'पूरण–पुरुष' (ब्रह्म) की वदना की है।[3]

---

१ साकेत सन्त सर्ग, १२, छद २८ पृ० १४६
२ दैत्यवश, प्रस्तावना पृ० ?
३ वही, प्रथम सर्ग, पृ० २, ३

अवतारवाद

अवतारवाद की पौराणिक-कल्पना को कवि ने ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। ब्रह्म का अवतार दैत्यों के हनन-हेतु होता है। यथा-

'जासु के निधन करिबे के हित आपु जग,
पुरुष—पुरातन धरत अवतार है।'[1]

कवि के मतानुसार हेमलोचन के निपात हेतु वराह,[2] हरनांकुस के वध हेतु नृसिंह[3] और बलि का मदमर्दित करने के लिये भगवान ने वामन अवतार लिये।[4] 'दैत्यवंश' के रचयिता ने अवतारवाद की धारणा को किसी नये परिसन्दर्भ में प्रस्तुत नहीं किया है।

भाग्यवाद

भाग्यवाद की विचारणा को काव्य में स्थान स्थान पर स्वीकृति प्रदान की गई है। राजहंस द्वारा शची को भेजे गये सन्देश मे इन्द्र ने कहा है कि—

"भाग मे लोगनि के पहिले, लिखि राख्यौ हुतो चतुरानन जोई।
सौ मिटिहै नही मेटे सची, विधि-रेख मृषा न कबौं कहूं कोई।।"[5]

इसी प्रकार माता अदिति को प्रबोधन करते हुये वामन ने कहा कि दैत्यों से देवों की जो हार हुई है वह विधाता का विधान था जिसे नही टाला जा सकता।[6] कवि का मत है कि भाग्य की रेखाएं कालचक्र की गति के समान हैं—

'भ्रम काल की ले जग'त्यौं नर की,
फिरिबो करै भाग की रेखा नितै।।'[7]

शकुन-विचार

पौराणिक विश्वासो मे शकुन का बडा महत्व है। दैत्यवंश के नरेश यद्यपि अतुल पराक्रमी और पुरुषार्थी थे तथापि वे शकुन विचार के ही कार्य करते थे। वे विवाह और राज्य शासनभार शुभ मुहूर्त मे ग्रहण करते थे।[8] युद्ध प्रयाण के अवसर

---

१. दैत्यवंश, प्रथम सर्ग, पृ० ३
२. वही, वही, पृ० ११
३. वही, वही, पृ० १७
४. वही, दशम् सर्ग, पृ० १४४
५. वही, सप्तम सर्ग, पृ० ११९
६. वही दशम सर्ग छंद, ५१
७. वही वही पृ० १६१
८ वही, प्रथम सर्ग पृ० ९

पर मांगलिक शकुन विजय के प्रतीक थे।[१] दक्षिण भुजा या नेत्र का फड़कना अथवा छींक अपशकुन थे।[२]

तपश्चर्या, दान और यज्ञ-विधान

तपश्चर्या, दान और यज्ञादि अनुष्ठान सभी दैत्यवंशी नरेशों ने सम्पन्न किये। कृच्छ्र तप-साधना करके दितिनन्दन हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ने ब्रह्मा से अमरता का वर प्राप्त किया।[३] दैत्यों ने तपसाधना केवल स्वार्थसिद्धि के लिए ही नहीं की। उदाहरणार्थ बाणासुर ने वृद्धावस्था आते ही अनंत ऐश्वर्य और सुख भोग को त्याग कर शिवाराधन किया। एक पैर पर खड़े होकर अपने शरीर को तप करते हुए सुखा दिया और अन्ततः योग की अग्नि में अपने शरीर को जलाकर शिवलोक गमन किया।[४] दान की महिमा का अनुपम आदर्श राजा बलि ने प्रस्तुत किया। गुरु शुक्राचार्य के समझाने पर भी कि वामन बटु के वेष में भगवान ही उसे छलने आये हैं, बलि ने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया।[५] बलि को इन्द्रलोक छोड़कर पाताल जाना पड़ा। इन्द्रादि देवों को जीतकर सम्पूर्ण वैभव सम्पन्न होते हुये भी दैत्य नरेशों ने अनेक यज्ञ किये। वस्तुतः ये सभी कृत्य दैत्यवंशी नरेशों की आध्यात्मिक निष्ठाओं के ज्वलंत प्रतीक हैं।

प्रगतिशील सन्दर्भ

पौराणिक संस्कारवशात् अद्यावधि दैत्यों में केवल दोष दर्शन ही किया जाता रहा है। 'दैत्यवंश' के रचयिता ने प्रथम बार व्यापक प्रगतिशील दृष्टिकोण अपना कर दैत्यों के प्रशासनिक कौशल एवं जनहित संवर्द्धक कार्यों का दिग्दर्शन कराया है।

१. बलि ने राज्यपदासीन होते ही सर्वप्रथम प्रजानुरंजन के कार्यों की ओर ध्यान दिया। उसने प्रशासन-विधियों में अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये। उसने शिक्षा, स्वास्थ्य एवं कृषि की व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया। सीमाओं की रक्षा के लिए सुदृढ़ सैन्य संगठन किया। सभी दैत्य राजकुमारों को उनके प्रारम्भिक

---

१. वही, पंचम सर्ग, पृ० ६९
२. वही, प्रथम सर्ग, पृ० ६,७
३. वही, सप्तदश सर्ग, पृ० २५१
४. वही, सप्तदश सर्ग, पृ० २५१
५. वही, द्वादश सर्ग, पृ० १८६

जीवन में राजनीति, अस्त्र-शस्त्र प्रयोग एवं सैन्य संचालन विधियोंका ज्ञान कराया जाता था, जिनसे वे भावी जीवन में कुशल प्रशासक बनते थे। बाण जब बड़ा हुआ तो उसे राजनीति पढ़ाई गई, शस्त्र और शास्त्र का ज्ञान कराया गया, व्यूह रचना एवं शासनविधि में पारंगत किया गया। तदनंतर वह शम्भु शैल पर शिवाराधना हेतु गया जहां कठोर तप करके शिव को प्रसन्न कर उससे मनोवांछित वर एवं दिव्यास्त्र प्राप्त किये।[1] इस प्रकार संस्कार-सम्पन्न होकर एवं प्रशासनिक योग्यता प्राप्त करके ही दैत्यकुमार राज्याधिकारी होते थे।

प्रजानुरञ्जन की भावना सभी दैत्यों में थी। देवों से वैर विरोध होने पर भी प्रजा से उनका कोई द्वेष न था। हेमकश्यप ने अपने अग्रज हेमलोचन के वध का देवों से प्रतिशोध लेने के लिये दैत्यों को आज्ञा दी कि आज से देववृन्द हमारे शत्रु हैं। हरिभक्तों को जला दो, भक्तिमार्ग को उखाड़ दो और वाम मार्ग का प्रचार करो। किन्तु यह स्मरण रहे कि प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न हो—

'देखे रहो हो न कष्ट पावै पै प्रजा को नाहिं।'[2]

दैत्यवंशी नरेशों में अस्कद कुमार ने तो प्रजाहित के लिये सम्पूर्ण राज्य का भ्रमण किया। उसने ग्राम ग्राम जाकर यज्ञशालाओं, पुस्तकालयों, औषधालयों, राजमार्गों, वनवीथियों का पर्यवेक्षण किया। जनता के सुख-दुःख की बातें सुनी। कृषक वर्ग से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया—

'खेती सारे ग्राम की, सब निरख्यो नरनाह।
कृषिकन की दुख सुख सुन्यो, मन महं अमित उछाह॥'[3]

इस प्रकार दैत्यों में जनतन्त्रीय प्रशासकों के सम्पूर्ण गुण दिखाई देते हैं। इन प्रशासकीय गुणों का चित्रण "दैत्यवंश" में मानवतावादी दृष्टि से प्रेरित होकर किया गया है।

मानवतावादी जीवन-दृष्टि

शताब्दियों से भारतीय जनजीवन में एक अन्ध विश्वास आधृत दृष्टिकोण विकसित होता रहा है जिसके अनुसार देवों में गुण दर्शन और दैत्यों में दोषारोपण की प्रवृत्ति प्रधान रही है। इस दृष्टिकोण को विकसित करने में पौराणिकता का प्रभाव उल्लेखनीय है। पौराणिकता वृत्ताधारित काव्यों में भी यही दृष्टिकोण सामान्यतः विकसित होता रहा है। इधर विंशति शताब्दी से जिस मानवतावादी जीवन-दृष्टि का विकास हुआ उससे प्रेरित होकर हमारे कवियों ने नये सिरे से देव-दानव संघर्ष की व्याख्या प्रारम्भ की है। दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि

१. दैत्यवंश, द्वितीय सर्ग, पृ० २७
२. वही, प्रथम सर्ग, पृ० १५
३. वही, अष्टादश सर्ग, पृ० २५५

से देवत्व और दानवत्व मानव स्वभाव के ही दो रूप हैं। 'मानव का अविकसित या अपविकसित रूप दैत्य और सुविकसित रूप देव हैं। फलत दैत्य प्रकृति का आदि मानव रूप कहा जा सकता है, जिसमे शारीरिक बल प्रचुर मात्रा मे मौजूद है, क्योंकि वह प्रकृति की सीधी देन है। परन्तु मस्तिष्क बल अधिक नही है। शारीरिक और मानसिक शक्तिया प्राय एक से अनुपात मे किसी वर्ग मे नही पाई जाती। विकासक्रम मे यह भी देखा गया है कि किसी वर्ग मे जैसे जैसे मस्तिष्कीय शक्तियो का विकास होता है, शारीरिक बल का ह्रास भी होता जाता है। छल-प्रपच, धूर्तता, विश्वासघात आदि मस्तिष्क विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल मे बढे चढे हैं तो उनमे सरल विश्वास, सत्य निष्ठा और सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर मे निर्बल हैं, पर चतुर अधिक हैं; वे बात बात मे दैत्यो को धोखा देते हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हे छल लेते हैं।

देव और दैत्य अर्थात् मस्तिष्कीय और शरीरी प्रवृत्तियो के सघर्ष मे मनुष्य की सहानुभूति देवों के प्रति होना स्वाभाविक है, क्योकि वह भी मस्तिष्क के बल से ही शेष सृष्टि पर शासन करता है और अपने लाभ के लिये सृष्टि के इतर प्राणियो पर किये गये अत्याचारो को अत्याचार नही मानता।'[1] अस्तु—

आवश्यकता इस बात की है कि पूर्वाग्रह मुक्त होकर युगीन सदर्भों मे मानवतावादी दृष्टिकोण से देव–दानव सघर्ष की पुनर्व्याख्या की जाय। 'दैत्यवश' के रचयिता ने इसी दृष्टिकोण से देवो और दानवो के कृत्यो का मूल्याकन किया है। इस मूल्याकन मे कवि तटस्थ रहा है। उसकी तटस्था का सबसे बडा प्रमाण यह है कि उसने अपने नायको (दैत्यवशी राजाओ) का उत्कर्ष दिखाने के लिये प्रतिनायको (देवताओ) का अपकर्ष नही दिखाया है।

इस प्रकार 'दैत्यवश' मे यद्यपि गभीर दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं हुआ है तथापि उसमे जिस सहज मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास स्थापित हुआ है वह इस काव्य की इतनी महत्वपूर्ण उपलब्धि है कि जीवनदर्शन की दृष्टि से इस कृति को महाकाव्य की गरिमा प्रदान करती है।

रश्मिरथी

उद्देश्य और सन्देश

'रश्मिरथी' की रचना का उद्देश्य जैसा कि काव्य के रचयिता ने 'भूमिका' मे स्वीकार किया है—'कर्ण चरित्र का उद्धार है।' कवि के शब्दो मे— 'कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से नयी मानवता की स्थापना का ही

---

१. श्री उमेशचन्द्र मिश्र–दैत्यवश की भूमिका, पृ० ६–७

प्रयास है।'[1] इस संकेत के आलोक मे यदि 'रश्मिरथी' काव्य के जीवन–दर्शन संबन्धी मन्तव्यों पर विचार किया जाय तो हम पायेंगे कि इस काव्य का जीवन-दर्शन मानवतावादी है। मानवतावादी जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास यों तो दिनकर जी ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य मे भी किया है, किन्तु उसके एतद् विषयक चिन्तन की चरम परिणति और विचार–दर्शन का प्रौढतम स्वरूप 'रश्मिरथी' मे ही प्राप्त होता है। डा० सत्यकाम वर्मा के शब्दो मे—

"कुरुक्षेत्र' के बाद आने वाला यह महाकाव्य सच्चे अर्थों मे केवल महाकाव्य ही नहीं, बल्कि कवि की दार्शनिक, सांस्कृतिक' कवित्वमय, धर्म सम्बन्धी और रचनात्मक चेतना का सबल और सतर्क प्रमाण भी है। यह अकेला काव्य ही कवि की सम्पूर्ण चेतना और शक्ति का प्रतीक कहा जा सकता है। कवि का जो जीवनदर्शन 'हुंकार' से जागा और जिसकी पूर्णता 'परशुराम की प्रतीक्षा' मे हुई, उसी का केन्द्र–बिन्दु यह 'रश्मिरथी' है। ....इसमे मानवतावाद का एक ऐसा ज्वलन्त सत्य केन्द्र–बिन्दु के रूप मे प्रमुख होकर चला है, जिसने उसे विचारक कवि और दार्शनिक से ऊपर उठा कर महानतम मानवतावादी सिद्ध किया है।"[2] सच तो यह है कि 'रश्मिरथी' के कवि ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक ओर परम्परा–पोषित एवं जर्जरित रूढिवादी मान्यताओं का खंडन किया है तो दूसरी ओर युग–सापेक्ष, प्रगतिशील जीवन-मूल्यों की प्रस्थापना पर बल दिया है। उसने सामाजिक अन्याय के कारण उच्च कुल की झूठी मान-मर्यादा और जाति-वाद के दंभ की भर्त्सना की है; किन्तु श्रम, पुरुषार्थ, तपस्या, दान, मैत्री, सत्व, शील आदि मानवीय गुणों (जीवन-मूल्यों) की महत्ता को सराहा और स्वीकारा है। काव्यारम्भ मे ही कृपाचार्य के जाति-विषयक प्रश्न पूछने पर कर्ण ने जो उत्तर दिया है, उसमे तथाकथित उच्च कुलीन मान-मर्यादा एवं जातिवाद का ।वखंडन किया गया है:—

"जाति, जाति रटते, जिनकी पूंजी केवल पाषंड,
मैं क्या जानूं जाति ? जाति है ये मेरे भुजदंड।
\+ \+
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
जाति जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।
\+ \+
बड़े वंश से क्या होता, खोटे हों यदि काम ?
नर का गुण उज्जवल चरित्र है नहो वंश धन धाम।"[3]

---

१. रश्मिरथी, भूमिका, पृ० घ
२. डा० सत्यकाम वर्मा, जनकवि दिनकर, पृ० ९३
३. रश्मिरथी, प्रथम सर्ग, पृ० ४, ५, ७

से देवत्व और दानवत्व मानव स्वभाव के ही दो रूप हैं
अपविकसित रूप दैत्य और सुविकसित रूप देव हैं।
मानव रूप कहा जा सकता है, जिसमे शारीरिक ब
क्योंकि वह प्रकृति की सीधी देन है। परन्तु मस्तिष्क
रिक और मानसिक शक्तियां प्राय एक से अनुपात
जाती। विकासक्रम मे यह भी देखा गया है कि कि
शक्तियो का विकास होता है, शारीरिक बल का
प्रपच, धूर्तता, विश्वासघात आदि मस्तिष्क दि
दैत्य शारीरिक बल मे बढ़े चढ़े हैं तो उनमे
सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर मे निर्बल
मे दैत्यो को धोखा देते हैं और उनको सरल
लेते हैं।

देव और दैत्य अर्थात् मस्तिष्कीय
मनुष्य की सहानुभूति देवों के प्रति होना
के बल से ही शेष सृष्टि पर शासन करत
इतर प्राणियो पर किये गये अत्याचारो

आवश्यकता इस बात की है कि
मानवतावादी दृष्टिकोण से देव-दानव
के रचयिता ने इसी दृष्टिकोण से देवो
है। इस मूल्यांकन मे कवि तटस्थ रहा
यह है कि उसने अपने नायको (दैत्यव
प्रतिनायको (देवताओ) का अपकर्ष नहीं

इस प्रकार 'दैत्यवश' मे यद्यपि
नही हुआ है तथापि उसमे जिस सहज म
यित हुआ है वह इस काव्य की इतनी म
दृष्टि से इस कृति को महाकाव्य की गरि

रश्मि

उद्देश्य और सन्देश

'रश्मिरथी' की रचना का उद्दे
'भूमिका' मे स्वीकार किया है—'कर्ण चरि
'कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से

---

१. श्री उमेशचन्द्र मिश्र–दैत्यवश की भूमिका

आध्यात्मिक मान्यताएं

आध्यात्मिक मान्यताओ के प्रतिपादन मे कवि का दृष्टिकोण नितात युगीन और प्रगतीशील रहा है। नियति, भाग्य, धर्म आदि आध्यात्मिक विषयो की विवेचना कवि ने युग जीवन के सधर्म मे की है। केवल श्री कृष्ण के सम्बन्ध (उन्हे ईश्वर मानने मे) मे उसके विचारमूल चितनधारा का अपवाद कहे जा सकते है।

ईश विषयक धारणा और श्रीकृष्ण

दिनकर का कवि आस्तिक है। ससार की सचालिका अनत शक्ति मे उसे पूर्ण विश्वास है। इस अनत शक्ति को ईश, जगदीश, भगवान, विधाता आदि कहकर उसने सबोधित किया है तथा अहश्य और सर्वज्ञ माना है

"पर हसते कहो अदृश्य जगत के स्वामी,
देखते सभी कुछ को तब भी अन्तर्यामी। [1]

श्रीकृष्ण को 'रश्मिरथी' मे ईश्वरत्व से सम्पन्न चित्रित किया गया है। वे ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न होने के कारण विलक्षण एव गरिमापूर्ण व्यक्तित्व वाले हैं। कौरवों और पाडवो मे सद्भाव स्थापित कराने के उद्देश्य से वे हस्तिनापुर से पाडवो का मैत्री सन्देश लेकर दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन उनके सद्-परामर्श को न मानकर उल्टा उन्हे बाधने का उपक्रम करता है। तभी कृष्ण कुपित होकर भीषण हुकार करते हुये अपना विराट रुप दिग्दर्शित करते हैं। श्री कृष्ण का वह रुप ब्रह्माड व्यापी था। उस स्वरूप मे उदयाचल भाल, भूमड वक्षस्थल और मैनाक मेरु चरण थे। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि, कोटि-कोटि सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिनेश, रुद्र, लोकपाल आदि उसमे व्याप्त थे। उनकीत जिह्वा से भयंकर ज्वालाए निकल रही थी। त्रिकाल को मुट्ठी मे बाधे सृष्टि के आदि और अन्त का कारण वह विकराल रूप था:—

"उदयाचल मेरा दीप्त भाल, भूमडल वक्षस्थल विशाल।

\+ \+

शतकोटि रुद्र, शतकोटि काल, शतकोटि देवधर लोकपाल।
भूलोक अतल पाताल देख, गत और अनागत काल देख।
अम्बर मे कुंतल जाल देख, पद के नीचे पाताल देख।
मुट्ठी मे तीनो काल देख, मेरा स्वरूप विकराल देख।"[2]

श्री कृष्ण के इस स्वरूप को देखकर सभा सन्न थी, लोग डर के मारे चुप थे या बेहोश पडे थे। 'रश्मिरथी' के कृष्ण का यह रुप गीता के श्रीकृष्ण के उस विराट

---

१. रश्मिरथी, पचम सर्ग, पृ० ९४
२. रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, पृ० ३२, ३३,

काव्य के चतुर्थ सर्ग में देवराज इन्द्र से वार्तालाप करते हुए कर्ण ने कहा है कि —'एक नया सन्देश विश्व के हित वह भी लाया है।[1] और वह सन्देश है—कर्त्तव्यपरायण एवं पुरुषार्थी बनकर सत्पथ पर बढ़ते रहना। जीवन की जय इसी कर्त्तव्य-पालन में निहित है। पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर पांव रखकर चल सकता है। चाहे विश्वरिपु हो जाय, धर्म दगा दे और पुण्य ज्वाला बरसाये, किन्तु मनुष्य को सत्पथ से विचलित न होना चाहिए। कर्त्तव्य-परायणता की यह शक्ति किसी वंश या कुल की धरोहर नहीं, वरन् यह वीर पुरुषों के प्रबुद्ध वक्षस्थल में रहती है।[2] वंशगत उच्चता और कुलीनता के नाम पर शताब्दियों से मानवता का जो तिरस्कार किया जाता रहा है, 'रश्मिरथी' के कवि ने उसका जोरदार शब्दों में प्रतिकार किया है। इसीलिए काव्य का नायक कर्ण उनका आदर्श बनकर अवतरित हुआ है जिन्हें कुल-गौरव की प्रताड़ना सहनी पड़ी है, नीचवंश जन्मा कहकर जग ने जिन्हें धिक्कृत किया है और समाज की विषमता के वह्नि से जो विदग्ध हैं। कर्ण के शब्दों में :—

"मैं उनका आदर्श, जिन्हें कुल का गौरव ताड़ेगा,
नीचवंश जन्मा कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।
+ +
मैं उनका आदर्श कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे
पूछेगा जग, किन्तु, पिता का नाम न बोल सकेंगे।
+ +
मैं उनका आदर्श, किन्तु, जो तनिक न घबरायेंगे,
निज चरित्र बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।
सिंहासन ही नहीं, स्वर्ग भी जिन्हें देख नत होगा,
धर्म हेतु धन, धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा।[3]

अस्तु, प्रकट है कि 'रश्मिरथी' काव्य का उद्देश्य और सन्देश मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित है।

'रश्मिरथी' काव्य के जीवन-दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका युगीन स्वरूप है। काव्य में जिन व्यापक मानवीय विश्वासों और आदर्शों, आध्यात्मिक निष्ठाओं और मान्यताओं तथा चिन्तनीय समस्याओं और धारणाओं का प्रतिपादन किया गया है उन सबका आधार हमारे युग का उन्नत विचार दर्शन है। इस विचार दर्शन को एक शब्द में मानवतावाद अभिधान दिया जा सकता है।

---

१ रश्मिरथी चतुर्थ सर्ग, पृ० ७२
२ वही वही पृ० ७३
३ वही चतुर्थ सर्ग, पृ० ७३, ७४

आध्यात्मिक मान्यताएं

आध्यात्मिक मान्यताओ के प्रतिपादन मे कवि का दृष्टिकोण नितात युगीन और प्रगतीशील रहा है। नियति, भाग्य, धर्म आदि आध्यात्मिक विषयो की विवेचना कवि ने युग जीवन के सघर्ष मे की है। केवल श्री कृष्ण के सम्बन्ध (उन्ह ईश्वर मानने मे) मे उसके विचारमूल चिन्तनधारा का अपवाद कहे जा सकते हैं।

ईश विषयक धारणा और श्रीकृष्ण

दिनकर का कवि आस्तिक है। ससार को सचालिका अनत शक्ति मे उसे पूर्ण विश्वास है। इस अनत शक्ति को ईश, जगदीश, भगवान, विधाता आदि कहकर उसने सबोधित किया है तथा अदृश्य और सर्वज्ञ माना है

"पर हसते कहो अदृश्य जगत के स्वामी,
देखते सभी कुछ को तब भी अन्तर्यामी।[1]

श्रीकृष्ण को 'रश्मिरथी' मे ईश्वरत्व से सम्पन्न चित्रित किया गया है। वे ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न होने के कारण विलक्षण एव गरिमापूर्ण व्यक्तित्व वाले हैं। कौरवो और पाडवो मे सद्भाव स्थापित कराने के उद्देश्य से वे हस्तिनापुर से पाडवो का मैत्री सन्देश लेकर दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन उनके सद्-परामर्श को न मानकर उल्टा उन्हे बाधने का उपक्रम करता है। तभी कृष्ण कुपित होकर भीषण हुकार करते हुये अपना विराट रूप दिग्दर्शित करते हैं। श्री कृष्ण का यह रूप ब्रह्माड व्यापी था। उस स्वरूप मे उदयाचल भाल, भूमड वक्षस्थल और मैनाक मेरु चरण थे। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि, कोटि-कोटि सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिनेश, रुद्र, लोकपाल आदि उसमे व्याप्त थे। उनकी लजिह्वा से भयंकर ज्वालाए निकल रही थी। त्रिकाल को मुट्ठी मे बाधे सृष्टि के आदि और अन्त का कारण वह विकराल रूप था —

"उदयाचल मेरा दीप्त भाल, भूमडल वक्षस्थल विशाल।

\+ \+

शतकोटि रुद्र, शतकोटि काल, शतकोटि देउधर लोकपाल।
भूलोक अतल पाताल देख, गत और अनागत काल देख।
अम्बर म कु तल जाल देख, पद क नीचे पाताल देख।
मुट्ठी मे तीनो काल देख, मेरा स्वरूप विकराल देख।"[2]

श्री कृष्ण के इस स्वरूप को देखकर सभा सभ्य थी, लोग डर के मारे चुप थे या बेहोश पड़े थे। 'रश्मिरथी' म कृष्ण का यह रूप गीता के श्रीकृष्ण के उस विराट

---

१. रश्मिरथी, पचम सर्ग, पृ० ९४
२. रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, पृ० ३२, ३३,

रूप से तुलनीय है, जो उन्होने अर्जुन को दिखाया था।[1] यहा यह उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण को कवि ने ईश्वरीय रूप मे अंकित किया है। कृष्ण के इस पौराणिक रूप का चित्रण विंशति शताब्दी के बुद्धिजीवी पाठक को कितना ग्राह्य और वरेण्य होगा, यह चिंतनीय है। प्रस्तुत काव्य से ७ वर्ष पूर्व लिखित 'कुरुक्षेत्र' काव्य मे दिनकर जी ने कृष्ण को महापुरुष के रूप मे ही अंकित किया है। 'कुरुक्षेत्र' मे अनेक स्थलो पर भीष्म पितामह, युधिष्ठिर और स्वयं कवि ने कृष्ण को भगवान् कहकर सबोधित किया है। किन्तु—"कृष्ण को भगवान् कहने मे उसकी सगुणोपासना नही झलकती अपितु वह उन्हे महापुरुष (अतिमानव) मात्र मानकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है। ...कवि अवतारवाद मे विश्वास नही रखता, अपितु ईश्वर सबधी उसकी कल्पना अधिक व्यापक एव आध्यात्मिक है आधिदैविक नही।[2] 'कुरुक्षेत्र' के कवि दिनकर के लिए अन्य महापुरुषो की भांति श्रीकृष्ण भी श्रद्धेय हैं, ईश्वर नही —

"भीष्म हो अथवा युधिष्ठिर या कि हो भगवान
बुद्ध हो कि अशोक, गाधी हो कि ईसु महान,
सिर झुका सबको, सभी को श्रेष्ठ निज से मान,
मात्र वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान।"[3]

इस प्रकार कृष्ण के सम्बन्ध मे एक दशाब्दी मे लिखे गये दो काव्यो मे दिनकर जी का दृष्टिकोण भिन्न है। 'रश्मिरथी' मे कृष्ण के विकराल रूप-दर्शन द्वारा ही नही, वरन् अन्य अलौकिक घटनाओ के आयोजन द्वारा भी कृष्ण के ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा की गई है। उदाहरणार्थ, अर्जुन की प्रतिज्ञापूर्ति अर्थात् जयद्रथ-वध के लिए —

'माया की सन्ध्या श्याम हुई,
असमय दिनेश हो गये अस्त।"[4]

इसी प्रकार दानव घटोत्कच की सृष्टि तथा कर्ण के रथचक्र के रक्त-कीच मे धस जाने और सम्पूर्ण शक्ति लगाने पर भी न निकलने मे ईश्वरीय शक्ति का चमत्कार-दर्शन ही है।

दिनकर जी के विचार-दर्शन का उपर्युक्त विवेचन के आलोक में विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि कवि की ब्रह्म विषयक धारणा का मूल स्वरूप तो वही है जो 'कुरुक्षेत्र' में प्रतिपादित है, किन्तु 'रश्मिरथी' में पौराणिक ऐतिहासिक कथानक में आमूल चूल परिवर्तन को अवाछनीय मानकर कवि ने

---

१ गीता अध्याय ११, श्लोक १० से ३० तक

२ कुरुक्षेत्र मीमासा, पृ० ११८

३ कुरुक्षेत्र षष्ठ सर्ग पृ० ९०

४ रश्मिरथी, षष्ठ सर्ग, पृ०१३६

इस काव्य के घटनाक्रम को ज्यों–का–त्यों प्रस्तुत किया है जिसके कारण कृष्ण, इस काव्य में ईशावतारी हो गये हैं। 'रश्मिरथी' है भी कथाकाव्य जब कि 'कुरुक्षेत्र' विचार–प्रधान काव्य है। कथाकाव्य में कथानक और विचार–प्रधान काव्य में वैचारिकता (चिंतन) का महत्त्व विशेष होता है। कथाकाव्य की महत्ता के सम्बन्ध में कवि के विचार 'रश्मिरथी' की भूमिका में द्रष्टव्य है। फिर भी इतना तो कहा ही जायेगा कि अपने मूल चिंतनक्रम (जिसके अनुसार ब्रह्म अपौरुषेय है और कृष्ण महापुरुष हैं, ईशावतार नहीं) की रक्षा के लिए अलौकिक घटनाओं को किंचित् परिवर्तन द्वारा बुद्धि–ग्राह्य बनाया जा सकता था। उदाहरणार्थ कुरुजन–सभा में कृष्ण के विराट रूप–दर्शन के स्थान पर उनके तेजस्विता-पूर्ण रूप की झांकी भी अ कित की जा सकती थी, जिसे देखकर दुर्योधन चकित रह जाता, लोग बेहोश तो न होते, आदि।

नियति

नियति को क्रूर अदृश्य शक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। नियति ही बार बार पुरुषार्थी कर्ण से छल करके उसे जीवन संग्राम मे पराजित और निराश करती है। इस सन्दर्भ मे कर्ण के कुछ कथन द्रष्टव्य हैं :—

"सब को मिली स्नेह की छाया, नई नई सुविधाएं,
नियति भेजती रही सदा, पर, मेरे हित विपदाएं।[1]
+ +
अवंचित हू, नियति की दृष्टि मे दोषी बडा हू।[2]
+ +
विलक्षण बात मेरे ही लिये ही,
नियति का घात मेरे ही लिये हैं[3]

स्वयं कवि ने कहा है –

"किया नियति ने वार कर्ण पर,
छिपकर पुण्य विवर से।[4]

कवि ने महाभारत युद्ध की आयोजिका भी नियति को ही माना हैं :—

'हो चुकी पूर्ण योजना नियति की सारी,
कल ही होगा आरम्भ समर अति भारी।'[5]

---

१. रश्मिरथी. चतुर्थ सर्ग, पृ० ७२
२. वही, सप्तम सर्ग, पृ० १५९
३. वही, सप्तम सर्ग पृ० १८८
४. वही चतुर्थ सर्ग पृ० ६३
५. वही पंचम सर्ग पृ० ८१

इतना होने पर भी 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण ने नियति की क्रूरता को नतमस्तक होकर स्वीकार नही किया है, वरन् पुरुषार्थ के बल पर उसका पूर्ण प्रतिरोध किया है। कर्ण कहता है :—

चरण का भार लो, सिर पर संभालो,
नियति की दूतियो ! मस्तक झुकालो।
चलो जिस भांति चलने को कहूं मैं।
ढलो जिस भांति ढलने को कहूं मैं।
न कर छल छद्म से आघात फूलो,
पुरुष हूं मैं, नही यह बात भूलो।
कुचल दूंगा निशानी मेट दूंगा
चढ़ा दुर्दम भुजा की भेंट दूंगा।'[1]

कर्ण के उपर्युक्त कथन मे उस का पौरुष ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानवता के पुरुषार्थ का महान् उद्घोष है। इसी कथन के परिप्रेक्ष्य मे कवि दिनकर के दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता भी द्रष्टव्य है जिस के अनुसार वह मानव की शक्ति और सामर्थ्य को ही सर्वोपरि मानता है। मानव नियति की क्रूरता के प्रतिरोध मे अंत तक संग्राम करने को कृतिसंकल्प है। कर्ण के शब्दों मे :–

चले संघर्ष आठो याम तुम से
करूंगा अंत तक संग्राम तुम से।[2]

कवि ने तो यहा तक कह दिया है कि कर्ण की गौरवपूर्ण जीवनगाथा के समक्ष नियति और भाग्य के संकेत व्यर्थ हैं:—

मगर यह कर्ण की जीवन कथा है
नियति का, भाग्य का इंगत वृथा है।[3]

यही नही, पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर भी पैर रख सकता है :—

नियति भाल पर पुरुष पांव निज बल से धर सकता है।[4]

भाग्य

भाग्यवाद की धारणा का खंडन कवि ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य मे इसे पाप का आवरण और शोषण का शस्त्र कह कर किया था। इसी मान्यता की पुष्टि 'रश्मिरथी' मे कर्ण के निम्नांकित कथन द्वारा हुई है.—

---

१. रश्मिरथी सप्तम सर्ग पृ० १५६
२. वही, वही पृ० १६७
३. वही, षष्ठ सर्ग पृ० १५१
४. वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ७३

"कहा कर्ण ने, वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,
जो है सम्मुख खड़ा उसे पहचान नहीं पाते हैं।
विधि ने था क्या लिखा भाग्य में खूब जानता हूं मैं,
बाहों को पर बली भाग्य से कहीं मानता हूं मैं।
महाराज उद्यम से विधि का अंक पलट जाता है,
किस्मत का पासा पौरुष से हार पलट जाता है।"[1]

धर्म

पौराणिकों ने 'कुरुक्षेत्र' को 'धर्म क्षेत्र' और 'महाभारत' को धर्मयुद्ध कहा है।[2] किन्तु कवि ने इस मान्यता का विरोध किया है। उसके मतानुसार धर्म का; विग्रह, हिंसा, युद्ध या संहार से सम्बंध स्थापित नहीं किया जा सकता। धर्म तो करुणा से उद्भूत होता है:—

"करुणा से कढ़ता धर्म विमल।"[3]

धर्म का वास्तविक स्वरूप कर्ममय साधना एवं जीवन – पथ को त्याग की ज्योति से आलोकित करने मे है। धर्म ध्येय मे नहीं, साधना मे ही निहित है'—

"है धर्म पहुंचना नहीं, धर्म तो जीवन भर चलने मे,
फैला कर पथ पर स्निग्ध ज्योति, दीपक समान जलने मे।

\+ \+ \+

इसीलिये ध्येय मे नहीं, धर्म तो सदा निहित साधन मे।"[4]

अर्जुन द्वारा जयद्रथ के लोमहर्षक एवं अन्यायपूर्ण वध को कवि ने धर्ममय कार्य नहीं माना है। मरना और मारना कभी भी धर्ममय कार्य नहीं हो सकते—

'हो जिसे धर्म से प्रेम कभी, वह कुत्सित कर्म करेगा क्या ?
बर्बर, कराल, दंष्ट्री बनकर, मारेगा और मरेगा क्या?'[5]

चिरंतन जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा

आध्यात्मिक निष्ठाओं के प्रति युगीन किंवा प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाते हुए भी चिरंतन जीवन-मूल्यों की स्थापना के लिए 'रश्मिरथी' का कवि प्रयत्नशील

---

१. रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६६
२. धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः' —गीता, अ० १, श्लोक १
३. रश्मिरथी. षष्ठ सर्ग, पृ० १३७
४ वही, वही, सर्ग, पृ० १३७–३८
५. वही, पृ० १३८

रहा है। दानशीलता, सत्य, मैत्री, समानता, उदारता आदि मूल्यों को प्राचीन कहकर उपेक्षित नहीं किया गया, वरन् उनकी महत्ता का प्रतिपादन काव्य में आद्यात दिखाई देता है।

दान की महिमा

भारतीय संस्कृति मे दान की महिमा अनादि काल से स्वीकृत रही है। दान-कर्म को पुराणपंथी कहकर तिरस्कृत नही किया जा सकता। दिनकर जी ने दान की महिमा का तर्कपूर्ण आख्यान करते हुए इस कार्य को जीवन-धर्म कहा है —

"जीवन का अभियान दान बल से अजस्र चलता है।

+ + +

दान जगत का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है।"[१]

दान स्वत्व का त्याग भी नही है, क्योंकि जो जितना देता है, उतना ही पा भी लेता है। उदाहरण के लिए, वृक्ष फल इसलिए देते हैं कि उनके रेशो में कीड़े न समायें, डालियां स्वस्थ रहे और नये फल आयें। इसी प्रकार नदियां जल देती हैं कि बादल भरपूर होकर बरसें और फिर जलपूरित होकर नया जीवन पायें। इसी सन्दर्भ मे कवि ने राम, दधीचि, शिवि, हरिश्चन्द्र, ईसा गांधी जैसे आत्मदानियो का यशोगान किया है। दानवीरो मे 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण का चरित्र अनुपमेय है। उसने दानव्रत के पालन हेतु अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। जन्मजात कवच और कुंडल तक देवराज इन्द्र को दे दिये। तभी तो कवि ने कहा कहा है कि —

'कर्ण नाम पड गया दान की अतुलनीय महिमा का।'[२]

दान मनुष्य का वह आभूषण है जो उसके चरित्र को अलंकृत नहीं करता, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की गौरव-वृद्धि करता है। कर्ण से इन्द्र की याचना स्वर्ग की पृथ्वी से याचना है —

'स्वर्ग भीख मागने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।'[३]

दान की भांति ही अन्य जीवन मूल्यो के आदर्श का प्रतिपादन काव्य मे यत्र तत्र हुआ है। जैसे—

तपस्या

'नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है,
देता वही प्रकाश, आग मे जो अभीत जलता है।'[४]

---

१ वही, वही, चतुर्थ सर्ग—६०-६१
२ रश्मिरथी चतुर्थ सर्ग, पृ० ६९
३. वही. वही, पृ० ६३
४ वही, पृ० ५६

सत्य

'हार जीत क्या चीज ? वीरता की पहचान समर है,
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता नर है ।"[1]

अथवा

'नही राधेय सत्पथ छोडकर अथ भोक लेगा,
विजय पाये न पाये, रश्मियो का लोक लेगा ।"[2]

मैत्री

तृतीय सर्ग मे कृष्ण जब कर्ण को युधिष्ठिर से मिल जाने का परामर्श देते हैं, तो प्रत्युत्तर मे कर्ण ने जो कहा है उससे मैत्री की महत्ता स्पष्ट झलकती है —

'मैत्री की बडी सुखद छाया, शीतल हो जाती है काया ।
+ + +
मित्रता बडा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन ।
धरती की तो है क्या बिसात, आ जाय अगर बैकुंठ हाथ ।
उसको भी न्योछावर कर दू , कुरुपति के चरणो पर धरदू ।"[3]

श्रम

परिश्रम की महत्ता को कवि ने मुक्त कठ से स्वीकार किया है । काव्य के तृतीय सर्ग मे कहा गया है कि वसुधा का नेता, भूखड विजेता, अतुलित यशक्रेता तथा नवधर्म प्रणेता वही व्यक्ति हुआ है जिसने विघ्नो को सहकर भी श्रम-साधना की है ।"[4]

युगीन समस्याएं

'रश्मिरथी' मे जातिवाद, उच्चकुलीनता, सामाजिक असमानता आदि अनेक समस्याओ की यथाप्रसग विवेचना हुई है । युद्ध की समस्या पर विश्लेषणात्मक ढ ग से कवि ने विचार किया है । उसने समस्याए ही नही, वरन् उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है ।

युद्ध की समस्या और समाधान

युद्धवादी विचार-दर्शन की विस्तृत भूमिका यद्यपि दिनकर जी के 'कुरुक्षेत्र नामक काव्य मे मिलती है, क्योंकि उस काव्य की रचना ही द्वितीय विश्वयुद्ध की

---

१ रश्मिरथी, वही, पृ० ७०
२. वही, सप्तम सर्ग, पृ० १६१
३. वही, तृतीय सर्ग, पृ० ५१
४. वही, तृतीय सर्ग, पृ० २८

रहा है। दानशीलता, सत्य, मैत्री, समानता, उदारता आदि मूल्यों को प्राचीन कहकर उपेक्षित नहीं किया गया, वरन् उनकी महत्ता का प्रतिपादन काव्य में आद्यात दिखाई देता है।

दान की महिमा

भारतीय संस्कृति में दान की महिमा अनादि काल से स्वीकृत रही है। दान-कर्म को पुराणपंथी कहकर तिरस्कृत नहीं किया जा सकता। दिनकर जी ने दान की महिमा का तर्कपूर्ण आख्यान करते हुए इस कार्य को जीवन-धर्म कहा है.—

"जीवन का अभियान दान बल से अजस्र चलता है।

+ + +

दान जगत का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है।"[१]

दान स्वत्व का त्याग भी नहीं है, क्योंकि जो जितना देता है, उतना ही पा भी लेता है। उदाहरण के लिए, वृक्ष फल इसलिए देते हैं कि उनके रेशों में कीड़े न समायें, डालियाँ स्वस्थ रहें और नये फल आयें। इसी प्रकार नदियाँ जल देती हैं कि बादल भरपूर होकर बरसें और फिर जलपूरित होकर नया जीवन पायें। इसी सन्दर्भ में कवि ने राम, दधीचि, शिवि, हरिश्चन्द्र, ईसा, गांधी जैसे आत्मदानियों का यशोगान किया है। दानवीरों में 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण का चरित्र अनुपमेय है। उसने दानव्रत के पालन हेतु अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। जन्मजात कवच और कुंडल तक देवराज इन्द्र को दे दिये। तभी तो कवि ने कहा कहा है कि—

'कर्ण नाम पड़ गया दान की अतुलनीय महिमा का।'[२]

दान मनुष्य का वह आभूषण है जो उसके चरित्र को अलंकृत नहीं करता, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की गौरव-वृद्धि करता है। कर्ण से इन्द्र की याचना स्वर्ग की पृथ्वी से याचना है:—

'स्वर्ग भीख मांगने आज, सच हो, मिट्टी पर आया।'[३]

दान की भांति ही अन्य जीवन मूल्यों के आदर्श का प्रतिपादन काव्य में यत्र तत्र हुआ है। जैसे—

तपस्या

'नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है,
देता वही प्रकाश, आग में जो अभीत जलता है।'[४]

---

१. वही, वही, चतुर्थ सर्ग—६०-६१
२. रश्मिरथी. चतुर्थ सर्ग, पृ० ६९
३. वही. वही, पृ० ६३
४. वही, पृ० ५६

सत्य

'हार जीत क्या चीज ? वीरता की पहचान समर है,
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता नर है ।"[१]

अथवा

'नही राधेय सत्पथ छोडकर अघ ओक लेगा,
विजय पाये न पाये, रश्मियो का लोक लेगा ।"[२]

मैत्री

तृतीय सर्ग मे कृष्ण जब कर्ण को युधिष्ठिर से मिल जाने का परामर्श देते हैं, तो प्रत्युत्तर मे कर्ण ने जो कहा है उससे मैत्री की महत्ता स्पष्ट झलकती है —

'मैत्री की बडी सुखद छाया, शीतल हो जाती है काया ।

+ + +

मित्रता बडा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन ।
धरती की तो है क्या बिसात, आ जाय अगर वैकुंठ हाथ ।
उसको भी न्योछावर कर दू, कुरुपति के चरणो पर धरदूं ।"[3]

श्रम

परिश्रम की महत्ता को कवि ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है । काव्य के तृतीय सर्ग मे कहा गया है कि वसुधा का नेता, भूखड विजेता, अतुलित यशक्रेता तथा नवधर्म प्रणेता वही व्यक्ति हुआ है जिसने विघ्नो को सहकर भी श्रम-साधना की है ।"[४]

युगीन समस्याएं

'रश्मिरथी' मे जातिवाद, उच्चकुलीनता, सामाजिक असमानता आदि अनेक समस्याओ की यथाप्रसंग विवेचना हुई है । युद्ध की समस्या पर विश्लेषणात्मक ढग से कवि ने विचार किया है । उसने समस्याए ही नही, वरन् उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है ।

युद्ध की समस्या और समाधान

युद्धवादी विचार-दर्शन की विस्तृत भूमिका यद्यपि दिनकर जी के 'कुरुक्षेत्र नामक काव्य मे मिलती है, क्योकि उस काव्य की रचना ही द्वितीय विश्वयुद्ध की

---

१. रश्मिरथी, वही, पृ० ७०
२. वही, सप्तम सर्ग, पृ० १६१
३. वही, तृतीय सर्ग, पृ० ५१
४. वही, तृतीय सर्ग, पृ० २८

पृष्ठभूमि पर हुई थी । तथापि युद्ध की समस्या पर 'रश्मिरथी' मे अपेक्षित प्रकाश डाला गया है ।

काव्यारम्भ मे ही कुलीन एव वर्ण व्यवस्था-आधृत समाज की आलोचना करते हुए कवि ने कहा है कि युद्धो का आयोजन ससार से दुःख दैन्य भगाने या पर शोषक पथभ्रात लोगो को धममार्ग पर लाने के लिए नही होता है । युद्ध तो इसलिए होते हैं कि राजे महाराजे विजय का कल्पित सम्मान पाकर मानी हों अथवा राज्यो का सीमा विस्तार करें और लूट-पाट हो । युद्धो की विजय राजाओ की अह वृद्धि करती है । राजा स्वेच्छाचारी होकर समाज को पददलित करते हैं ।[1] अस्तु कवि ने इस समस्या का निदान दो रूपो म प्रस्तुत किया है । प्रथमत समाज का नेतृत्व भोगी विलासी भूपो के हाथो मे रहे । समाज मे श्रेष्ठता का पद कवि कोविद, कलाकार, ज्ञान विज्ञान विशारदो को प्राप्त हो। क्योकि समाज का शुभचिन्तक वर्ग यही है । यह वग असनवसन विहीन एव दीन रहकर भी मानवा भ्युदय की ही बात करता है । इस वग के लोगो को कनक नही ज्ञान, कल्पना और चरित्र की उज्जवलता पर अभिमान है । अस्तु—

"इन विभूतियो को जब तक ससार नही पहचानेगा,
राजाओ से अधिक पूज्य जब तक न इन्हे मानेगा,
तब तक पडी आग मे धरती इसी तरह अकुलायगी,
चाहे जो भी करे दुखो से छूट नही पायेगी ।'[2]

युद्ध के निवारण का दूसरा समाधान क्रातिकारी है । कवि का अभिमत ह कि राजाओ को समझा बुझाकर ज्ञानी और कवि थक गये किन्तु प्रशामक रग खडग के अतिरिक्त किसी भी भाषा को नही समझता । अस्तु ज्ञानियो को भी खडग धारण करके अविचारी एव मदान्ध नृप क आतक से भू को मुक्त करना चाहिए —

'रोक टोक से नही सुनेगा, नृप समाज अविचारी है,
ग्रीवाहर निष्ठुर कुठार का यह मदान्ध अधिकारी है।
इसीलिये मैं कहता हूँ अरे ज्ञानियो ! खडग धरो
हर न सका जिसको कोई भी भू का वह तुम त्रास हरो ।'[3]

दूसरे शब्दो मे, जन क्रांति द्वारा राजतत्र से मुक्ति के उपाय की ओर सकेत किया है । वैसे 'कुरुक्षेत्र' काव्य की भाति युद्ध को एक चिरतन और अनिवाय समस्या मे

---

१ रश्मिरथी, द्वितीय सर्ग, पृ० १४
२ वही , वही , पृ० १५
३ वही , वही , पृ० १६

रूप में इस काव्य में भी कवि ने स्वीकार किया है। महाभारत-युद्ध की समाप्ति के बाद मनुष्य यद्यपि विराट ज्ञानी और मनस्वी हो गया है, किन्तु मनु–मनुज में युद्ध आज भी चल रहा है :—

"महाभारत मही पर चल रहा है,
भुवन का भाग्य रण में जल रहा है।
मनुज ललकारता फिरता मनुज को,
मनुज ही मारता फिरता मनुज को।"[1]

इस विडम्बना पूर्ण स्थिति का मूल कारण अतिशय भौतिकवादी मूल्यों की मानव-जीवन में स्वीकृति है। सुख-समृद्धि के अधीन एवं सत्ता लोलुप होने के कारण मनुष्य पतनशील हो रहा है:—

"होकर समृद्धि–सुख के अधीन,
मानव होता नित तपः क्षीण,
सत्ता, किरीट, मणिमय आसन,
करते मनुष्य का तेज हरण,
नर विभव हेतु ललचाता है,
पर वही मनुज को खाता है।"[2]

इस प्रकार 'रश्मिरथी' काव्य में जीवन दर्शन-सम्बन्धी विचारणा का स्वरूप महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। उसमें एक ओर पुरातन आदर्शों की नवीन और युगीन व्याख्या प्रस्तुत की गई है तो दूसरी ओर चिरतन मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा का प्रबल आग्रह है। जिस 'कर्णधर्म' के प्रसार का सन्देश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया गया है, वह हमारे युग जीवन एवं समाज की वर्तमान परिस्थितियों में सर्वथा वांछनीय है। वह 'कर्णधर्म' है:—

"श्रम से नहीं विमुख होंगे, जो दुख से नहीं डरेंगे,
सुख के लिये पाप से जो नर सन्धि न कभी करेंगे।
कर्ण धर्म होगा धरती पर बलि से नहीं मुकरना,
जीना जिस अप्रतिम तेज से, उसी शान से मरना।।"[3]

---

१. रश्मिरथी, सप्तम सर्ग, पृ० १५३
२. वही , तृतीय सर्ग, पृ० ५४
३. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७४

ऊर्म्मिला

सृजन प्रेरणा और उद्देश्य

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत जनकनंदिनी उर्मिला का चरित्र है। कवि के शब्दों में—"उर्म्मिला स्तवन की लालसा और उस स्तवन को प्रकाश में लाने की इच्छा, चाहे वह वाँझ ही क्यों न हो—मेरी जीवन संगिन रही है।"[1] भारतीय राम काव्य-परम्परा में वाल्मिकी रामायण से लेकर 'साकेत' पूर्व तक के ग्रन्थो मे उर्मिला का चरित्र उपेक्षित प्राय रहा है। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर[2] और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी[3] ने दो महत्वपूर्ण लेख लिखकर साहित्यकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। इन्ही लेखो से प्रेरित होकर श्री मैथिली शरण गुप्त ने 'साकेत' नामक महाकाव्य की रचना कर प्रथम बार उर्मिला के चरित्रोद्धार का विशेष प्रयत्न किया। यद्यपि 'साकेत' की रचनात्मक प्रेरणा का मूल स्रोत और प्रतिपाद्य उर्मिला का ही चरित्र था तथापि कथाकथन के व्यामोह, आराध्य देव श्री राम की यशोगाथा के वर्णन का प्रलोभन आदि ऐसे तत्त्व थे जिनके कारण 'साकेत' मे उर्मिला का चरित्र अपेक्षित रूप में न उभर पाया। इस दृष्टि से श्री बालकृष्ण नवीन कृत 'उर्मिला' महाकाव्य मे उल्लेखनीय प्रयास हुआ है। 'साकेत में उर्मिला का आविर्भाव नवपरिणिता वधू के रूप मे होता है जब कि ऊर्म्मिला महाकाव्य के प्रथम सर्ग के २४० छन्दों मे उर्मिला की बाल्य एवं किशोरावस्था का सविस्तार विवेचन है। यह सम्पूर्ण वर्णन कवि-कल्पना प्रसूत है। अन्य सर्गों में भी मुख्य उर्मिला का चरित्र गान हुआ हो सच तो यह है कि 'उर्म्मिला' महाकाव्य मे ही उर्मिला के चरित्र का पूर्ण प्रतिफलन हुआ है। इस काव्य मे कवि का उद्देश्य रामायणी कथा की घटनाओं का वर्णन करना नहीं जैसा कि काव्य की भूमिका में[4] कवि ने स्वयं स्वीकार किया है। नवीन जी ने रामकथा के उन्हीं प्रसंगो और घटनाओं की संयोजना की है जिनका उर्मिला की चरित्रयोजना से सीधा संबंध है। अस्तु, स्पष्ट है कि उर्मिला का चरित्र गान काव्य की सृजन-प्रेरणा का मूल स्रोत है।

'उर्मिला' महाकाव्य की रचना का दूसरा प्रमुख प्रयोजन आर्य (भारतीय) संस्कृति के समुन्नत जीवनादर्शों को प्रतिष्ठित करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि में

१. उर्म्मिला—श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, प्रथम पृष्ठ
२ प्राचीन साहित्य—काव्येर उपेक्षिता, पृ० ६६
३. कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता—सरस्वती जुलाई १९०८, भाग ९, संख्या—७, पृ० ३१२ से ३१४
४. उर्मिला श्रीलक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृ० च

लिये नवीन जी ने एक ओर आर्य संस्कृति के आधारभूत सिद्धातो की काव्य मे प्रस्थापना की है तो दूसरी ओर रामकथा के घटना–प्रसगो को सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य मे अ कित किया है उदाहरणार्थ राम के वनगमन को कवि ने महान् अर्थपूर्ण आर्य सस्कृति प्रसार यात्रा कहा है।[1] वनगमन के लिये विदा मागते हुये लक्ष्मण उर्मिला से कहते भी हैं कि कैकेयी का वरदान मागना और राम का पितृाज्ञा पालन तो औप चारिकता मात्र है वास्तव मे विपिनगमन तो जन-दुख-भजन एवं सास्कृतिक विजय के उद्देश्य से हो रहा है। [2] कवि के मतानुसार वनवासो लोगो का जीवन अज्ञान की तमिस्रा, विलास और भौतिकता से पूर्ण है। राम का वनगमन भौतिकता को विजित करने के ही निमित्त है :–

आज विजित करने उस भौतिक, दैहिक, शारीरिक बल को,
राम लखन वन गमन कर रहे सग ले आत्म ज्ञान दल को। [3]

वन गमन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये लक्ष्मण उर्मिला से कहते हैं:–

हम संन्यासी विपिन प्रवासी
नवसन्देश प्रचारक हम
मन भय हारी मगल कारी
सब जन गण उद्धारक हम। [4]

इसी प्रकार राम रावण के संघर्ष मे राम की विजय को कवि ने आर्य सस्कृति की विजय कहा है :—

हुई सांस्कृतिक विजय पूर्ण श्री
आर्य राम की मति धृति की
नही शास्त्र विजिता यह लका
यहां विजय है शास्त्रो की
यहा जय है तापस आर्यों के
शुद्ध शब्द ब्रह्मास्त्रो की। [5]

इसी सन्दर्भ में नवीन–साहित्य के अनुसधाता डा० लक्ष्मीनारायण दुबे का मत है कि "आर्य धर्म, सम्यता तथा संस्कृति की महत् उपलब्धियो तथा गरिमा की इसमें (उर्मिला महाकाव्य मे) ऋचाएं लिखी गई हैं इस कृति मे भारत समग्र वसुंधरा को अपने अंक समेट रहा है। भौतिकता, यान्त्रिक सम्यता, विज्ञान आदि

१. उर्मिला श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु पृ० ६
२. वही, सर्ग ३ पृ० २६३
३. वही, पृ० १९६
४. वही, पृ० १२३
५. वही, सर्ग ६, पृ० ५१

के असद् पक्ष का उद्‌घाटन कर कवि ने कामायनी के समान श्रद्धा भक्ति और विश्वास के तीन चिर-तन प्रेरणामय गोलक हमारे युग को प्रदान किये है।''[1] वस्तुत: 'ऊर्म्मिला' जिस युग की रचना है उसके अनुरूप ही भारतीय सस्कृति का महान उद्‌घोष उसमे सुनाई देता है। 'उर्म्मिला' महाकाव्य का प्रणयन राष्ट्रीय-स्वातन्त्र्य सग्राम की वेला मे लखनऊ जेल मे हुआ था। उस समय देशभर मे क्रांति-सत्याग्रह और आन्दोलन हो रहे थे। ऊर्म्मिला महाकाव्य का रचयिता समर के अमर सेनानी की भाति अपनी ओजमयी वाणी से भारतीयता की भावना का जन जन मे प्रसार कर रहा था। कहा जाता है कि महाकाव्यो मे जातीय जीवन, सस्कृति और चेतना का महान् उद्‌घोष होता है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे वह स्पष्ट सुनाइ देता है। एक आलोचक के शब्दो मे :—

''हिन्दी साहित्य मे आज जितने भी महाकाव्य हिन्दी प्रेमियो के हाथ में सुशोभित है, उन महाकाव्यो के कवियो म राष्ट्रीयता की आग, देश भक्ति का मादक यौवन, विप्लव का गाढ़ा उन्माद, विद्रोह का सबल स्वर और जिंदादिली की उछलती कूदती वेगवती धारा नवीन जैसी नही थी और न आज ही है। ········जिन पवित्र भावनाओ के मादक वातावरण में इस महाकाव्य का प्रणयन हुआ, वैसा सौभाग्य किसी भी महाकाव्य को नही प्राप्त है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य के लिये यह गौरव और गर्व का विषय है।''[2]

इस प्रकार स्पष्ट हैं कि उर्मिला के चरित्र की विशद् योजना, आर्य सस्कृति के जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा, युग चेतना की विराट व्यजना के महत् उद्देश्य से प्रेरित होकर 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना हुई है।

आर्य संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा

'आर्य सस्कृति' शब्द तत्वत 'भारतीय सस्कृति' का ही द्योतक है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे दोनो की प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप मे ही हुआ है सत्य, तप, त्याग, यज्ञ, विश्वबन्धुत्व, आत्मवाद, नारी की महत्ता आदि 'आर्य सस्कृति' के आधारभूत सिद्धान्त है। इन सब की 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे प्रतिष्ठा हुई है।

---

१. गवेषणा, अर्द्धवार्षिक पत्रिका-जुलाई १९६३, पृ० ८७ पर 'ऊर्म्मिला का महाकाव्यत्व' शीर्षक लेख

२. वीणा-मई १९६४, पृ० ३०६।

सत्य

काव्य के अंतिम सर्ग मे लंका विजय के अनंतर विभीषण के लंकाधिपति बनने पर राम एक लम्बी वक्तृता द्वारा सत्य की महिमा का बखान करते हैं। वे कहते हैं कि सत्य ही आचरणीय धर्म है। उनका विश्वास है कि सत्य का पक्षधर होने के कारण ही विभीषण राम के समर्थक बने। सत्य की ही जय होती है—

सत्यमेव जयते। संसार मे सत्य ही पूज्य है :—

'सदा एक ही वस्तु पूज्य है.
वह है सत्य, असत्य नही।'[१]

राम की आकांक्षा है कि :—

'असद्विचार पराजित कुंठित, भूलुंठित उन्मूलित हो,
सत्यमेव विजयी हो राजन्, प्रेमविटप फलफूलित हो,
आगे आगे ध्वजा सत्य की, पीछे पीछे जन सेना,
त्रेता का यह धर्म सनातन, जग को विमल ज्ञान देना।'[२]

तप

तप की महिमा का आख्यान करते हुये कवि ने कहा है कि तपोबल से ही ब्रह्माण्ड गतिमय है। तप के अभाव से सृष्टि का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है:-

'यह ब्रह्माण्ड तपस्या के बल, गतिमय सतिमय चलित हुआ,
अणु अणु मे कण कण मे सतत, प्रथम तपोबल ज्वलित हुआ।

+ + +

क्षण क्षण आठो याम न हो यदि, तप तो यह जग कहाँ रहे,
निमिष मात्र मे महाप्रलय हो, सृष्टि कथा फिर कौन कहे।'[३]

यज्ञ

'यज्ञ' शब्द को कवि ने व्यापक अर्थों मे व्याख्यायित किया है। कवि का मत है कि यज्ञाहुति की पुण्य भस्म से ही ईश्वर ने सृष्टि रचना की है। यज्ञ से ही जग मे जनगण-हिताय वृष्टि होती है। उसका मत है कितिल घृत की ईंधन मे आहुतियाँ देना तो प्रवचनापूर्ण परिपाटी है, यज्ञ नही।[४] यज्ञ तो ममार का अनंत गतिमय कर्म सृष्टि के अणु अणु और कण कण मे प्रत्येक क्षण घटित हो रहा है। सृष्टि के

---

१. ऊर्म्मिला, सर्ग ६, पृ० ५५६
२. वही वही , पृ० ५६५
३. वही वही , पृ० ५४९, ५५०
४. वही, सर्ग ३, पृ० २९९

के असद् पक्ष का उद्घाटन कर कवि ने कामायनी
वास के तीन चिरन्तन प्रेरणामय गोलक हमारे युग
'ऊर्म्मिला' जिस युग की रचना है उसके अनुरूप ही
घोष उसमे सुनाई देता है। 'उर्म्मिला' महाकाव्य
संग्राम की वेला मे लखनऊ जेल मे हुआ था। उस
ओर आन्दोलन हो रहे थे। ऊर्म्मिला महाकाव्य का
की भाति अपनी ओजमयी वाणी से भारतीयता
कर रहा था। कहा जाता है कि महाकाव्यो मे
का महान् उद्घोष होता है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव
आलोचक के शब्दो मे :—

"हिन्दी साहित्य मे आज जितने भी
में सुशोभित है, उन महाकाव्यो के कवियो मे
मादक यौवन, विप्लव का गाढा उन्माद, विद्र
की उछलती कूदती वेगवती धारा नवीन
.......जिन पवित्र भावनाओ के मादक वा
हुआ, वैसा सौभाग्य किसी भी महाकाव्य को
के लिये यह गौरव और गर्व का विषय है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उर्मिला के
के जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा, युग चेतना
प्रेरित होकर 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रच

आर्य संस्कृति के आदर्शों को प्र

'आर्य सस्कृति' शब्द तत्वत
'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे दोनो की प्रयोग
सत्य, तप, त्याग, यज्ञ, विश्वबन्धुत्व,
सस्कृति' के आधारभूत सिद्धान्त है। इ
हुई है।

---

१. गवेषणा, अर्द्ध वार्षिक पत्रिका—जुल
ध्यत्व' शीर्षक लेख

२. वीणा—मई १९६४, पृ० ३०६।

लक्ष्मण के उपर्युक्त कथन में आर्य संस्कृति में नारी को प्रदत्त गौरव की भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

विश्वबन्धुत्व

'सर्वेबसधं वकुटम्बकम' के आदर्श को भी काव्य मे चरितार्थ किया गया है। इस आदर्श की प्रतिष्ठा के लिये कवि ने उत्कट राष्ट्रवाद का भी खडन किया है। नवीन जी का मत है कि कभी कभी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति एव अर्थ लिप्सा के वशीभूत होकर समूचा राष्ट्र भी दुष्टतामय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति म हमे राष्ट्र-विमुख भी चलना पड सकता है। अन्यथा शताब्दियो से सचित सत्य, ज्ञान और सस्कृति का वैभव भस्मसात हो जायगा।[1] जनसमूह के हृदय मे आसुरी भाव जगने लगे तो हमे सामूहिकता के भी प्रतिकूल हो जाना चाहिए। क्योकि मनीषियो के लिए तो सारा ससार ही अपना है —

'देश विदेश सकुचित जन का, है अनुचित सकुचित विचार,
है मनीषियो का स्वदेश वह, जहा सत्य, शिव का विस्तार,
है जग के नागरिक सभी हम, सब जग भर यह अपना है,
सीमित देश विदेश कल्पना, मिथ्या भ्रम का सपना है।'[2]

सस्कारों का महत्व

काव्य मे स्थान स्थान पर भारतीय सस्कारो का वर्णन करते हुये उनका महत्व प्रतिपादित किया गया है। ये सस्कृति के बाह्य आधार हैं। उदाहरणार्थ 'विवाह' नामक सस्कार को ही ल। विवाह को कवि ने धर्ममय बधन, दो आत्माओ का मिलन और अभिन्नत्व की जय कहकर अपनी सस्कारगत आस्था प्रकट की है :—

'आर्य धर्म मे यह वैवाहिक बधन परम धर्ममय है,
दो आत्माओ का मिश्रण है, अभिन्नत्व की जय है।'[3]

वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय (आर्य) सस्कृति की अभूतपूर्व विशेषता रही है। काव्यारम्भ मे ही नवीन जी ने इस व्यवस्था के आदर्श रूप का चित्रण किया है। जनकपुरी का ब्राह्मण वर्ग दृढव्रती, धर्मधारी, तपस्वी, योगाभ्यासी, तत्वदर्शी एव मनस्वी हैं।[4] देश की स्वतन्त्रता के रक्षक क्षत्री वलिष्ठ भुजाओ वाले तथा पराक्रमी हैं।[5] वैश्य लक्ष्मी सेवी और व्यवसायी है।[6] शूद्र सेवाभावी हैं और वे इस सिद्धात के पोषक हैं कि—

---

१. ऊर्मिला, सर्ग ६ पृ० ५५६–५५७
२ वही, वही, पृ० ५५८
३ वही, सर्ग २, पृ० ८०
४. वही सर्ग १, छद २८, पृ० १८
५ वही, पृ० १८
६. वही, छद ३१, पृ० १८

महायज्ञ मे सूर्य रश्मियो द्वारा और मेघ धाराएं बरसा कर आहुतिया दे रहे हैं। वस्तुत सर्वभूतहित अपना तन मन दे देना ही यज्ञ है। कवि के शब्दो मे यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार है:—

'शुद्ध यज्ञ है सर्व-भूत-हित-रत हो वर जीवन देना,
शुद्ध यज्ञ है जग—हिताय सब अपना तन मन धन देना।'[१]

उर्मिला तो यहा तक मानती हैं कि लक्ष्मण का वन गमन मानवता के कल्याण-यज्ञ की प्रथम आहुति है।[२]

नारी की महत्ता

आर्य सस्कृति मे नारी को देवी कह कर पूज्यनीय माना है। 'ऊर्म्मिला' के कवि ने इस दृष्टिकोण का विशदता से सम्पादन किया है। काव्य के अन्तिम सर्ग मे सीता और लक्ष्मण मे इस विषय पर एक सुन्दर सवाद की योजना नवीन जी ने की है। कवि का मत है कि नर और नारी मे केवल बाह्य रूप भेद ही हैं, अध्यवत रूप में दोनो का अस्तित्व एक ही हैं। जीवन की सुगति इसमें है कि नर नारी हो, विकसित पूर्ण पुरुष में नारी का प्रतिबिम्ब अनिवार्यत. होता है। नारी के सदय और नारी हृदय से ही पुरुष जगतहित मे लगता है:—

'देवि, नरोत्तम है वह जिसमें, हो नर नारी का मिश्रण,
ऐसे ही नर वर भरते है, जग का सचित वेदना व्रण।
+ +
प्रति विकसित नर मे रहती है, कुछ नारीपन की झाई,
उसी तरह ज्यो विभु में बिम्बित, प्रकृति नटी की परछाई।'[३]

कवि ने स्पष्ट शब्दो में कहा है कि जिस नर में नारीपन का अ श नही, वह नर नही वानर है।[४] नारीत्व की गरिमा का प्रतीक 'ऊर्म्मिला' है जिसे लक्ष्मण चिरप्रेरिका प्रकृति रूपिणी देवी और भक्ति की प्रतिमा मानते हैं.—

'तुम हो प्रकृति रूपणी देवी—तुम हो आदि शक्ति प्रतिमा,
त्वमसि मदिया चिर प्रेरणा—त्वमहि मदीय भक्ति प्रतिमा,
तुम मेरा साहस बल वैभव, तुम मम हास विलास प्रिये,
तुम मम नेह सरणि, तुम मेरा, नव– सन्देशोल्लास प्रिये।'[५]

१. ऊर्म्मिला, सर्ग ६, पृ० ३००
२. वही, सर्ग ३, पृ० ३०१
३. वही, सर्ग ६, पृ० ६१३, ६१४
४. वही, सर्ग ६, पृ० ६१४
५. वही, सर्ग ३, पृ० २२५

लक्ष्मण के उपर्युक्त कथन में आर्य संस्कृति में नारी को प्रदत्त गौरव की भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

विश्वबन्धुत्व

'सर्वेवसर्धवकुटम्बकम' के आदर्श को भी काव्य मे चरितार्थ किया गया है। इस आदर्श की प्रतिष्ठा के लिये कवि ने उत्कट राष्ट्रवाद का भी खंडन किया है। नवीन जी का मत है कि कभी कभी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति एवं अर्थ लिप्सा के वशीभूत होकर समूचा राष्ट्र भी दुष्टतामय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति मे हमें राष्ट्र-विमुख भी चलना पड सकता है। अन्यथा शताब्दियों से सचित सत्य, ज्ञान और संस्कृति का वैभव भस्मसात हो जायगा।[1] जनसमूह के हृदय मे आसुरी भाव जगने लगे तो हमे सामूहिकता के भी प्रतिकूल हो जाना चाहिए। क्योकि मनीषियों के लिए तो सारा ससार ही अपना है:—

'देश विदेश सकुचित जन का, है अनुचित संकुचित विचार,
है मनीषियों का स्वदेश वह, जहां सत्य, शिव का विस्तार,
हैं जग के नागरिक सभी हम, सब जग भर यह अपना है,
सीमित देश विदेश कल्पना, मिथ्या भ्रम का सपना है।'[2]

संस्कारों का महत्व

काव्य में स्थान स्थान पर भारतीय संस्कारो का वर्णन करते हुये उनका महत्व प्रतिपादित किया गया है। ये संस्कृति के बाह्य आधार हैं। उदाहरणार्थ 'विवाह' नामक सस्कार को ही लें। विवाह को कवि ने धर्ममय बंधन, दो आत्माओं का मिलन और अभिन्नत्व की जय कहकर अपनी संस्कारगत आस्था प्रकट की है:—

'आर्य धर्म मे यह वैवाहिक बंधन परम धर्ममय है,
दो आत्माओं का मिश्रण है, अभिन्नत्व की जय है।'[3]

वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय (आर्य) संस्कृति की अभूतपूर्व विशेषता रही है। काव्यारम्भ मे ही नवीन जी ने इस व्यवस्था के आदर्श रूप का चित्रण किया है। जनकपुरी का ब्राह्मण वर्ग दृढव्रती, धर्मधारी, तपस्वी, योगाभ्यासी, तत्त्वदर्शी एवं मनस्वी हैं।[4] देश की स्वतन्त्रता के रक्षक क्षत्री बलिष्ठ भुजाओं वाले तथा पराक्रमी हैं।[5] वैश्य लक्ष्मी सेवी और व्यवसायी है।[6] शूद्र सेवाभावी है और वे इस सिद्धांत के पोषक हैं कि—

---

१. ऊर्मिला, सर्ग ६. पृ० ५५६–५५७
२. वही, वही, पृ० ५५८
३. वही, सर्ग २, पृ० ८०
४. वही सर्ग १, छंद २८, पृ० १८
५. वही, पृ० १८
६. वही, छंद ३१, पृ० १८

'सेवा धर्म. परम गहनो योगिनामप्यगम्य ' [१]

अर्थवाद का खंडन

आर्य संस्कृति की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उसमे अर्थ की प्रधानता कही भी स्वीकार नही की गई है। जब कि पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता के विकास और प्रगति का आधार-स्तम्भ अर्थ को ही कहा गया है। हमारे यहा भोग, सग्रह, भौतिकवादिता, आडम्बरप्रियता के स्थान पर त्याग, तपश्चर्या, सयम, अपरिग्रह, आध्यात्मिकता एव सादगी को स्वीकार किया गया है। 'ऊर्मिला' के रचयिता ने इन्ही तत्वो को भारतीय सस्कृति का आधारमान माना है—

'शुद्ध विचार-प्रौढता ही है,
भित्ति सभ्यता सस्कृति की,
सदाचरण शीलता मात्र है,
द्योतक सस्कृति, मति, धृति की ।' [२]

नवीन जी का मत है कि लोग अर्थोपार्जन को जनसस्कृति का मापदण्ड मान लेते हैं वे सत्-असत् का विचार छोडकर अर्थ सचय को जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। अर्थ सचय की वृत्ति मानव मन को चिन्तन-मनन शून्य और जडवादी बना देती है। वैदिक ऋषियो ने कभी भी अर्थसचय नही किया। वे लोकोत्तर आध्यात्मिक साधना को ही सबसे बडा धन मानते थे। [३] आज ससार मे जो प्रगति हुई है वह अर्थवाद का परिणाम नही है। क्योकि—

''यदि सस्कृति गति लौकिक आर्थिक,
सचय के सग सग चलती,
तो वल्कल वसनो के युग मे,
कैसे ज्ञान ज्योति जलती —'' [४]

अस्तु, मानवता के विकास एव प्रगति का मानदण्ड अर्थ नही हो सकता—

'मानवेतिहास की प्रगति का, मापदण्ड धन धान्य नहीं,
यह समाज सस्कृति जा सकती, नापी धन से कभी नही ।' [५]

आत्मवाद मे आस्था

भारतीय धर्म साधना के अनुसार कवि नवीन ने आत्मा के अस्तित्व और आत्मवाद की विचारधारा को स्वीकार किया हैं। उसने भौतिकतावादी, जडवादी, पदार्थवादी जीवन-दर्शनो से तुलना करते हुए आत्मवाद की श्रेष्ठता का प्रतिपादन

---

१ ऊर्मिला, सर्ग १ छन्द ३२ पृ० १९
२ वही, सर्ग ६, पृ० ५५४
३ वही, वही, पृ० ५५३
४. वही, वही, पृ० ५५४
५ वही, वही, पृ० ५५४

किया है। कवि का मत है कि किस पदार्थ या अन्यशक्ति से चेतन भाव जगा ? इस प्रश्न का उत्तर भौतिकतावादी दार्शनिको के पास नही है।[1] भौतिकतावादी विवेचन शुष्क तर्कों पर आधारित है। इसीलिए–

"भौतिक-वाद चेतना विरहित,
है वह निपट निराशा-वाद,
राजस, तामस गुणमय वह है.
मानव मन का मत्त प्रमाद।"[2]

जबकि आत्मवाद मे अनन्तता है। उसमे रुचिर ज्ञान का वैभव है। उसमे सत्य वृत्ति का प्रभाव है।

इस प्रकार आर्य सस्कृति के सैद्धातिक एव व्यावहारिक दोनो ही रूपो का विवेचन कवि ने प्रस्तुत किया है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे आर्य सस्कृति का महान् और समृद्ध स्वरूप अकित हुआ है। जहा तक सास्कृतिक चेतना के निरूपण का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि–'साकेत' की अपेक्षा 'ऊर्मिला' में आर्य सस्कृति और धर्म की शंखध्वनि अधिक प्रखर और प्रभविष्णु प्रतीत होती है।"[3]

युग चेतना के स्वर

आर्य सस्कृति के महत् आदर्शों की प्रतिष्ठा के साथ साथ 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे युग–चेतना के स्वर भी मुखरित हुये है। समसामयिक जीवन की चेतना को आत्मसात् करके कवि नवीन ने अपनी जीवन–दृष्टि का निर्माण किया है। भारत के अतीत गौरव का गायक कवि नवयुग के स्वागतार्थ भी सन्नद्ध है :–

'आओ ! नवयुग उन्नत मस्तक
हो हम स्वागत करते हैं,
तेरे नव आदर्शो को हम,
शिर आँखो पर धरते हैं।'[4]

नवयुग की नवचेतना से प्रेरित होकर ही कवि जागरूकता को जीवन का धन, सत्याचरण को आत्मचिंतन और जनसेवा को ईश्वरभक्ति कहता है:–

---

१. ऊर्म्मिला सर्ग ६, पृ० ५४७
२. वही , वही , पृ० ५४८
३. डा० लक्ष्मीनरायण दुबे–बालकृष्ण नवीनः व्यक्ति एव काव्य, पृ० ३७१
४. ऊर्मिला, सर्ग, पृ० ५८६

'जागरूकता जीवन धन है,
सत्याचरण आत्मचिंतन है,
निश्छल होकर जगज्जनो की,
सेवा ही प्रभु का वदन है।'[१]

कवि ने मानव और जीवन की व्याख्या भी इसी प्रगतिशील जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर की है। उसके मतानुसारमनुष्य अग्नि पुंज विभु के मन की आग्नेय कल्पना है। मानव की मानवता इसमें है कि वह आग से खेले अर्थात् संघर्षरत रहे।[२] जीवन सचेतन शक्ति का प्रचण्ड गति संक्रमण है जिसका उद्देश्य जड़ता का भेदन कर समता सस्थापित करना है।[३] जीवन धीर गंभीर नीर का प्रवाह है जिसका कार्य जगत की प्यास बुझाना है। जीवन सतत युद्ध है जिसमे गति है, सघर्ष है।[४] नवीन जी ने जीवन की तुलना उस विप्लव-गान से की है जिसके स्वरो मे क्रांति और परिवर्तन का सन्देश है:—

जीवन है चिर विप्लव गायन
स्वर जिसके हैं सतत क्रांति,
गीत भार है नित परिवर्तन,
गायन लय है चिर अशान्ति।'[५]

कवि की कामना है कि हमे विप्लव गान गाते जीवन पथ पर बढ़ना चाहिये। विप्लव के तत्वो का जगत मे अथक प्रसार होना चाहिये जिससे रूढियो का उच्छेदन हो। तिमिर-कालिमा प्रकाश मे परिवर्तित हो।[६]

वादात्मक प्रभाव

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना पर अनेक वादात्मक विचारधाराओ का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इनमे उल्लेखनीय हैं-गांधीवाद, स्वच्छदतावाद, रोमासवाद हालावाद, मानवतावाद आदि।

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना जिस युग मे हुई थी, उस युग का जीवन गाधी जी से प्रभावित था। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी जीवन क्षेत्रो मे गाधीवादी विचारो और सिद्धान्तो को स्वीकृत किया जा चुका था। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे अहिंसा, सत्याग्रह, साम्राज्यवाद का विरोध आदि गाधीवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धातो को स्वीकृत किया गया है। गाधीजी अंग्रेजी

१. ऊर्म्मिला, द्वितीय सर्ग, ६ पृ० ६७
२. वही, सर्ग ६, पृ० ५६७
३. वही, वही, पृ० ५६८
४. वही, सर्ग ६, पृ० ५६६
५. वही , वही पृ० ५७०
६. वही , वही पृ० ५७१

साम्राज्यवाद के विरोधी थे। 'ऊर्म्मिला' के नायक राम भी इसी मनोवृत्ति समर्थक है –

'है साम्राज्यवाद का नाशक
दशरथ नंदन राम सदा,
है भौतिकतावाद विनाशक
जनमन रंजन राम सदा।'[1]

नवीन जी ने राम और रावण को क्रमश आत्मवाद और साम्राज्यवाद का प्रतीक माना है। राम और रावण का संघर्ष वस्तुत आत्मवादी और साम्राज्य-वादी प्रवृत्तियो का ही संघर्ष कहा गया है। एक स्थल पर राम कहते है –

"महामहिम रावण का मेरा, नही व्यक्तिगत था झगडा,
आत्मवाद साम्राज्यवाद का वह था अनमिल भेद बडा।"[2]

'ऊर्म्मिला' की रचना पर रोमांसवाद, स्वच्छंदतावाद, हालावाद आदि का भी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति का तब तक भारतीय जन-जीवन पर प्रभूत प्रभाव पड चुका था। कवि हरिवंशराय बच्चन को हालावाद सबधी कविताए तत्कालीन साहित्यजगत में बहुचर्चित थी। उमरखय्याम की रुबाइयों का अनुवाद लोग बड़े चाव से पढते थे। स्वय नवीन जी हिन्दी साहित्य मे हालावाद के उन्नायको मे हैं और स्वय ऐसी कुछ कविताए लिख चुके थे। 'ऊर्म्मिला' उस प्रभाव से अछूती न रह सकी।'[3] कवि ने उर्म्मिला और लक्ष्मण के प्रेम का निरूपण करते समय लक्ष्मण से कहलाया है –

"तुम रसदात्री, मैं मधुपायी,
तुम प्याली, मैं मतवाला,
मै मदिरा, तुम पात्र मनोहर,
मैं गाहक, तुम मधुशाला,
+ + +
गरल मयी तुम, सुधामयी तुम,
तुम मेरी मदिरा — बाला,
अभयदान देती मदमाती,
मुझको कर दो मतवाला।" [4]

लक्ष्मण ऊर्म्मिला के प्रमालाप वर्णन मे कवि ने रोमांसवादी मनोवृत्तियो का परिचय दिया है। लक्ष्मण का निम्नाकित कथन दृष्टव्य है –

---

१ उर्म्मिला, सर्ग ६, पृ० ५५५
२. ऊर्म्मिला, वही, पृ० ५४१
३ जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव,—नवीन और उनका काव्य, पृ १४०
४. ऊर्म्मिला—सर्ग ३, पृ० २१९, २२०

"अरी रानो क्यो ललचा रहीं ?
लाज से क्यो ठानी है रार ?
तनिक मुख तो कुछ ऊंचा करो,
रच कर लूं नैनो से प्यार।
+ +
अये, गड जाओ हिय मे इसी
भांति लज्जा नौ की पतवार, ।"[1]

दोनो के प्रेममिलन का चित्र भी इसी सन्दर्भ मे दृष्टव्य है:–

"ऊर्म्मिला के उरोज पर झुके, सुलक्ष्मण को निद्रा आ गई,
एक की मृदु गोदी मे एक, युगें से वे ऐसे सो रहे,
द्विवेणी का मानो आवेश, उदधि मे मिलते ही सो रहे,
+ +
ऊर्म्मिला की चादर पर आज चढा लक्ष्मण का चोखा रंग,
बिंध गये वे अनग नाराच, तडप उट्ठा मन का सुकुरंग।" [2]

दाम्पत्य जीवन के मधुर-विनोद एव प्रेम क्रीडाओ के अतिरिक्त देवर-भावी (लक्ष्मण-सीता) के मुक्त-परिहास का चित्रण भी कवि ने किया है जिसमें स्वच्छन्द तावादी प्रवृत्तिया दिखाई देती हैं। लका से लौटते हुये विमान मे देवर-भाभी के एक लम्बे परिहासपूर्ण सवाद की आयोजना की है, जिसके दो अश दृष्टव्य है :—

सीता का कथन—

'धन्य भाग ऊर्म्मिला बहन के,
ऐसा ढोगी पति पाया,
भीतर भीतर रस, ऊपर से,
फैलाई यह यति माया,
सच बोलो क्या करते हो तुम,
सदा ऊर्म्मिला का ही ध्यान।' [3]

लक्ष्मण का प्रतिउत्तर—

'भावी तनिक राम से पूछो,
क्या हो जाता है मन मे,

---

१ ऊर्म्मिला,—सर्ग २, पृ० १४४, १४५
२. वही, सर्ग २, पृ० १४६, १४७
३. वही, सर्ग २, पृ० ५९५

कैसे सोते सोते करते,
बिचरे थे वे वन वन मे,
मैं तो फिर भी छोटा हूं
मेरी कौन बिसात, अहो !' [१]

मानवतावाद हमारे युग का सबसे उन्नत विचारदर्शन है। कवि नवीन ने 'ऊर्म्मिला' मे इस विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तों की प्रस्थापना आद्यात की है। यथा—

'हैं जग के नागरिक सभी हम,
सब जग भर यह अपना है,
सीमित देश विदेश कल्पना,
मिथ्या भ्रम का सपना है।' [२]

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना पर विभिन्न युगीन विचारधाराओ (वादो) का प्रभाव काव्य के रचना-फलक को व्यापक परिवेश प्रदान करता है। काव्य में समकालीन-चिन्तन प्रवृत्तियो का समाहार कवि की युग-जीवन के प्रति सजग आस्था का परिचायक है। सत्य तो यह है कि—"नवीन का कवि सर्वदा से मानवता के प्रति ईमानदार रहा है ....तथा उसकी कुशल अन्तर्दृष्टि ने सदा से ही युग के सत्य को परखा है।"[3] प्रस्तुत काव्य के जीवनदर्शन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि जिस सांस्कृतिक चेतना के समाहार की चेष्टा की गई है वह पौर्वात्य और पाश्चात्य, प्राचीन और अर्वाचीन, आध्यात्मिक और भौतिक जीवनादर्शों से एक साथ प्रभावित है। उसका आधार विश्वमगल की कामना है।—

'आत्म समर्पण की अनहद् ध्वनि,
उठे विश्व के अम्बर मे,
परम मुक्ति की जगे लालसा,
जग मे, सकल चराचर मे।' [४]

एकलव्य

सृजन प्रेरणा और महत् उद्देश्य

'एकलव्य' महाकाव्य की रचना मानवतावादी जीवनदृष्टि से प्रेरित होकर हुई है। काव्याचार्यों द्वारा निर्देशित लक्षणो के अनुसार महाकाव्य का नायक सुर, सद्वंशीय व्यक्ति या क्षत्रिय ही हो सकता है। डा० रामकुमार वर्मा ने निषादपुत्र एकलव्य को महाकाव्य के नायकत्व पद पर आसीन करके व्यापक मानवतावादी

---

१ ऊर्म्मिला, सर्ग ६, पृ० ५९६।
२. वही , वही , पृ० ५५८।
३ केशवदेव उपाध्याय—नवीन दर्शन—अपनी बात
४ ऊर्म्मिला, षष्ठ सर्ग, पृ० ५८७

जीवन-दृष्टि का ही परिचय दिया है। इस सम्बन्ध मे डा० वर्मा ने कहा है कि-'एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है, वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिये भी आदर्श है। वह 'अनार्य' नही, 'आर्य' हैं, क्योंकि उसमे 'शील' का प्राधान्य है। यही उसमे महाकाव्य का नायक बनने की क्षमता है, भले ही वह 'सुर' अथवा 'सद्वंश' मे उत्पन्न 'क्षत्रिय' नही है।'[1] डा० वर्मा की एतद्-विषय जीवनदृष्टि के निर्माण मे बापू के अछूतोद्धार' आन्दोलन का प्रभाव और महाभारत के सूत्रवाक्य नहि मानुषाच्छ्रेष्ठतर हि किंचित्' का योगदान उल्लेखनीय है।[2] जहा तक प्रस्तुत महाकाव्य की रचना के उद्देश्य का सबध है-एकलव्य की गुरुभक्ति के उच्चादर्श एव पुरुषार्थ की महत्ता का प्रतिपादन ही इसके महत् प्रयोजन है।

गुरुभक्ति का आदर्श

एकलव्य' का मूल प्रतिपाद्य गुरुभक्ति के उच्चादर्श की प्रतिष्ठा ही है। एकलव्य का चरित्र इस आदर्श की साकार प्रतिमा है। एकलव्य की गुरुभक्ति विषयक निष्ठा के तीन सोपान हैं। प्रथम है-कामना या सकल्प जो उसे धनुर्विद्या के ज्ञानोपार्जन के लिये प्रेरित करती है, इसे हम 'इच्छाशक्ति' कह सकते हैं। द्वितीय है दीक्षा-प्राप्ति—जो एकलव्य को मनस जगत मे ही प्राप्त होती है क्योंकि निषादपुत्र होने के कारण गुरु द्रोण ने एकलव्य को शिष्य रूप मे स्वीकार नही किया। किन्तु एकलव्य ने मनस जगत मे ही द्रोणाचार्य को गुरु रूप मे वरण कर धनुर्विद्या के ज्ञानोपार्जन का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। इसे हम ज्ञानशक्ति की सज्ञा दे सकते हैं। तृतीय है साधना, इसी साधना के बल पर एकलव्य अद्वितीय धनुर्धर बनता है। एकलव्य की अमोघ साधना पार्थ को पराजित कर देती है। इस सोपान को क्रिया शक्ति अभिधान दिया जा सकता है। तीनो सोपानो की परम परिणति गुरुदक्षिणा म होती है। गुरुदक्षिणा की तुलना मोक्ष दशा से की जा सकती है। क्योंकि गुरु दक्षिणा म अगुष्ठ देकर एकलव्य ने अपने सम्पूर्ण सकल्पो और साधनाओ का समाहार कर दिया। एकलव्य ने महत त्याग के द्वारा गुरुभक्ति का ऐसा उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया कि गुरु द्रोण को भी यह कहना पडा कि 'एकलव्य शूद्र नही विप्र है। उसकी गुरुता म गुरु भी लघु है। उसके दक्षिणागुष्ठ की रक्तधार ने सारा वर्ण मद धो दिया है। उसकी गुरुभक्ति भविष्य के भाल पर तिलक करने वाली है —

'तुम विप्र हो हे शिष्य! गुरु द्रोण शूद्र है।
हा! तुम्हारी गुरुता म गुरु हुआ लघु है।

---

१ एकलव्य आमुख पृ० ६
२ वही पृष्ठ २

सारा वर्ण भेद घुल गया रक्त धार से,

+ +

ऐसी गुरु-भक्ति जो भविष्य के भाल पर,
तिलक बनेगी रवि रश्मि को समेट के ।
पार्थ देखो रक्त, इस एकलव्य वीर का,
जो कि राजवंशों से भी धोया नहीं जायगा ।"[1]

पुरुषार्थ-सिद्धि

जीवन की सिद्धियों में कवि ने पुरुषार्थ को सर्वोपरि माना है। एकलव्य की धनुर्वेद साधना का चरम निदर्शन पुरुषार्थ में ही है। धनुर्वेद दीक्षा-प्राप्ति हेतु एकलव्य के निवेदन करने पर द्रोणाचार्य ने कहा कि धनुर्वेद की साधना तीक्ष्ण बाण की धार जैसी दिन-रात की तपश्चर्या है। अग्निशिखा के समान अशान्त जीवन गति में *आचरण-मार्ग कृपाण की, धार के समान है जिसका लक्ष्य भाग्य के* समान अदृष्ट है। प्रत्युत्तर में एकलव्य ने अनन्य निष्ठा भाव प्रदर्शित करते हुये निश्चयपूर्वक कहा कि मेरा लक्ष्य रात्रि और दिन बाण होगा। जीवन के यज्ञ पर अग्नि का मुकुट धारण कर प्राण के कृपाण पर आचरण करता हुआ मैं धनुर्वेद को स्वेद का अर्घ्य दूंगा। उसने कहा कि यदि मैं लक्ष्यभेद में सफल न हुआ तो दक्षिणांगुष्ठ समर्पित कर दूंगा :—

'देव ! धनुर्वेद को मैं दूंगा अर्घ्य स्वेद का,
दृष्टि एकमात्र लक्ष्य को ही पहचानेगी ।

+ + +

सेवा में समिधा लाया हूं निज अस्थि की,
ब्रह्मचर्य-साधना को स्तंभ बना लूंगा मैं ।

+ + +

यदि लक्ष्य भेद में न सफल बनूं मैं तो
काट के समर्पित करूंगा करांगुष्ठ मैं ।'[2]

स्पष्ट है कि पुरुषार्थ की सिद्धि साधना में है और साधना आत्मविश्वास तथा दृढ़ निश्चय से होती है। एकलव्य ने इस तत्त्व को भली भांति हृदयगम कर लिया था तभी तो पुरुषार्थ बल से अमोघ साधना करके वह पार्थ से भी अधिक पराक्रमी धनुर्धर बन सका।

मानवतावादी जीवन-दृष्टि

'एकलव्य' के जीवनदर्शन का मूल स्वर मानवतावादी है। काव्य की आधारभूत मान्यताओं की प्रस्थापना में आधाते कवि की मानवतावादी जीवन-

---

१. एकलव्य—दक्षिणा सर्ग, पृ० २९७
२. वही—आत्मनिवेदन सर्ग, पृ० १२०

दृष्टि का परिचय मिलता है। उदाहरणार्थ निषादपुत्र होने के कारण एकलव्य को द्रोणाचार्य द्वारा दीक्षित न किया जाना अमानवीय दृष्टिकोण है; जिसका कवि ने तिरस्कार किया है। मानव मानव मे भेद दृष्टि की सृष्टि जातिवाद,की विडम्बना हैं। 'एकलव्य' का रचयिता इस परम्परावादी दृष्टिकोण का समर्थक नही कि धनुर्वेद की दीक्षा के अधिकारी ब्राह्मण और क्षत्रिय ही हैं।[1] द्रोणाचार्य का यह कथन कि.—

'किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारो हैं,
जो कि भूमि पुत्र नही, किन्तु भूमि पति हैं।'[2]

राजतंत्र की विडम्बना है। जिसमे व्यक्ति की योग्यता को अलक्षित करके धनुर्वेद की दीक्षा का अधिकारी राजपुत्रो को ही माना जाता है। कवि के शब्दो मे ऐसी शिक्षा-नीति राजनीति की अनुचरी है :—

'शिक्षानीति राजनीति के पदो है चलती।
शारदा की वाणी यहा बोलती है स्वर्ण मे।'[3]

ऐसे शिक्षा सस्थान जहां की दीक्षा के अधिकारी भूमिपति ही हैं, भूमिपुत्र नहीं; वे गुरुकुल नही राजकुल हैं और राजनीति के अखाड़े हैं, जिनके प्रति कवि का आक्रोश इस प्रकार व्यक्त हुआ है :—

'गुरुकुल है कहा, यहा तो राजकुल है।
+ +
ऐसी राजधानी का विनाश होगा शीघ्र ही,
जो महर्षियो को राजनीति से चलाती है।
जिसने किया है भेद मानव के पुत्रो मे,
भूमिपति, भूमिपुत्र वर्ग हो गये हैं दो।'[4]

एकलव्य भूमिपति नही, भूमिपुत्र है किन्तु भूमिपुत्र होना वह अपने भाग्य का सुयोग मानता है। अपने आत्मबल की सामर्थ्य पर वह भूमिपतियो के पशुबल को चुनौती देते हुये कहता है कि :—

'भूमिपुत्र होना, मेरे भाग्य का सुयोग है,
भूमिपति मे तो मुक्त मानव विकृत है।
+ +

---

१. एकलव्य — आत्मनिवेदन सर्ग, पृ० १२१ से १२३
२. वही, वही, पृ० १२६।
३. वही, वही, पृ० १२६
४. वही, सकल्प सर्ग, पृ० १७७

सावधान, भूमिपति ! हम में भी है शक्ति,
भूमिपुत्र सर्वदा है भूमिबल जानते।
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है,
आत्मबल की हमारे पास सीमा है नहीं।'[1]

अस्तु, कवि की मान्यता है कि भूमिपति भूमि के प्रशासक हो सकते है, सरस्वती के उपासक नहीं। राज्यदंड राज्य का विधान कर्ता हैं, सरस्वती का नहीं। सरस्वती हृदय-निवासनी है जिसकी प्राप्ति शुद्ध साधना से ही हो सकती है। अंततः द्रोणाचार्य स्वयं स्वीकार करते हैं कि शिक्षा सरस्वती की प्रशांत धारा है जिसे कोई नहीं रोक सकता। उसकी प्राप्ति के मार्ग में वंश और वर्ग का भेद अस्वीकार्य है। शिक्षा की निर्बाध प्राप्ति का सबको सहज अधिकार है :—

"शिक्षा तो सरस्वती की धारा है, प्रशान्त है,
है अनन्त जो बही सृष्टि के आरंभ से।
कौन इसे रोक सका और किस मन को,
इसने पवित्र किया नहीं स्पर्श मात्र से,
जाति भेद नहीं, वर्ग-वंश-भेद भी नहीं,
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं।
+ + +
शिक्षा की त्रिवेणी का पवित्र तीर्थराज तो
सृष्टि में समस्त मानवों की कर्मभूमि हैं।"[2]

'एकलव्य' का रचयिता शिक्षण के क्षेत्र की समानता ही नहीं वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानव मात्र की समानता का पक्षधर है। उसने वर्गवाद (भूमिपति और भूमिपुत्र) के साथ साथ शूद्रों की समस्या पर विचार करते हुये जातिवाद पर भी प्रहार किया है। 'साधना' सर्ग में एकलव्य द्रोणाचार्य से स्पष्ट कहता है कि जिन्हें शूद्र कह कर तिरस्कृत किया जाता है वे शूद्र भारत के आदिमवासी हैं। उन पर वन्य वेशधारी और श्यामवर्ण होने के कारण ही अत्याचार किये जाते है। अपने को आर्य कहने वाले लोग उन्हें सदैव पैरों तले मर्दित करते रहे है।[3] एकलव्य पूछता है कि आर्यों ने किस अधिकार से शूद्रों को सेवक बनाया है ? बस इसीलिए कि आर्य गौरवर्ण हैं और उन्हें शक्ति का यश प्राप्त है। कवि के शब्दों में आर्यों का गौरव इस बात में है कि दानवों को भी मानव बनाये और सभी में साम्य-भाव स्थापित हो। शूद्र और ब्राह्मण का भेद निरर्थक है क्योंकि सभी मानवों के अंग समान है:—

———

१. एकलव्य—संकल्प सर्ग, पृ० १०७
२. वही, —स्वप्न सर्ग, पृ० २२२, २२३
३. वही—साधना सर्ग, पृ० १९७

"किन्तु शक्ति मानव की, देव! दानवी नहीं,
मानव की शक्ति तो महान तब होती है.
जब वह दानव को मानव बना सके,
और सब मानवो मे साम्य की हो स्थापना।

+ + +

किन्तु शूद्र और ब्राह्मणो मे भेद कैसा ?
जबकि सम्पूर्ण अ ग मानवो के सब मे ?"[1]

इस प्रकार डा० वर्मा ने हमारे समाज मे वर्गवाद और जातिवाद के कारण उत्पन्न विषमताओं और समस्याओं पर मानवतावादी दृष्टिकोण से विचार किया है। सम्पूर्ण काव्य मे सकल्प, शक्ति, साधना, त्याग, समानता, आत्मविश्वास, पुरुषार्थ जैसे चिरतन मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा पर बल दिया गया है। पौराणिक इतिवृत्त का काव्य होते हुए भी 'एकलव्य' युगीन सन्दर्भों को रूपायित करने मे सक्षम कृति है। एकलव्य के जीवन-दर्शन की एक उल्लेखनीय उपलब्धि उसका जीवन के प्रति स्वस्थ आशावादी दृष्टिकोण है। काव्य के अन्तिम सर्ग मे कवि कहता भी है कि:—

"जीवन नैराश्य की है भूमि नही, मानवो।
सुख दुख बादलो की भाति उड़े आते हैं।
शक्ति मिटती नही, अवतार लेती है,
तुममे सदैव, तुम योग्य तो बनो सही।"[2]

---

१. एकलव्य—संकल्प सर्ग, पृ० १७७
२. वही—साधना सर्ग, पृ० १९८

सम्बन्धी सभी विवेचन मे सर्गबद्धता और इतिवृत्तात्मकता का उल्लेख सर्व प्रथम किया गया है। साथ ही कथानक की व्यापकता और जीवन की सर्वांगीणता के चित्रण पर बल दिया गया है। महाकाव्य-सृजन मे आख्यान तत्त्व की अनिवार्यता आज भी असंदिग्ध है। किन्तु पौराणिक विषयो के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो मे कथा विधान का अध्ययन करने के उपरात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनमे आख्यान तत्त्व का उत्तरोत्तर ह्रास हुआ है। आलोच्य महाकाव्यो मे प्रिय-प्रवास, साकेत, कामायनी, कुरुक्षेत्र, ऊर्म्मिला और एकलव्य मे बृहदाकार आख्यानो के स्थान पर विरल कथासूत्र हैं जिन्हे महाकाव्यकारो ने काल्पनिक विस्तार दिया है। उदाहरणार्थ 'प्रियप्रवास' मे कृष्ण का मथुरागमन, ब्रजवासियो का करुणक्रंदन, यशोदा के मातृ-हृदय की वेदना, कृष्ण का सन्देश लेकर उद्धव का गोकुल-आगमन, गोकुल मे गोप-गोपिकाओ, यशोदा और राधा से कृष्ण की बाल लीलाओ का श्रवण कर मथुरा आगमन तथा कृष्ण का जरासध से त्रस्त जनता की रक्षा के लिए द्वारिका चले जाना मूल घटना प्रसग हैं जिन्हे १७ सर्गों मे विस्तार दिया गया है। आठवें से पन्द्रहवे सर्गों तक कृष्ण की जीवन लीलाए उद्धव के समक्ष गोकुलवासियो द्वारा वर्णित की गई हैं, घटित मे रूप चित्रित नही। इसी प्रकार 'साकेत' की मुख्य कथा राम के राज्याभिषेक से लेकर भरत के राम की चरण पादुकाए लेकर चित्रकूट से अयोध्या लौटने तक की है। जो घटित रूप मे वर्णित की गई है। राज्याभिषेक से पूर्व की घटनाओ का वर्णन उर्मिला की स्मृति के रूप मे और उसके पश्चात् सीताहरण से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने तक की कथा हनुमान जी ने भरत से कही है और वशिष्ट जी ने दिव्यशक्ति से साकेतवासियो को दिखाई है। 'कामायनी' मे मनु की चिता, श्रद्धा से भेंट, पशु यज्ञ और श्रद्धा का त्याग, सारस्वत प्रदेश मे इडा से मिलन और सघर्ष, सारस्वत प्रदेश मे श्रद्धा से मनु का मिलन और वहा से पलायन, श्रद्धा मनु का पुनर्मिलन, नटेश का ताण्डव-नृत्य दर्शन, कलाश यात्रा, त्रिपुरदाह, इडा और कुमारादि की कैलाश यात्रा और मनु का सभी को समरसता का उपदेश आदि मुख्य घटना प्रसग हैं। इन घटनाओ की कालावधि के बारे मे यद्यपि 'कामायनी' मे कोई सकेत नही है। किन्तु डा० शम्भूनाथसिंह के अनुसार ये सभी घटनाए बीस पच्चीस या इससे भी कम समय मे घटित हुई है।[1] 'कामायनी' मे मनु के जीवन के मध्य भाग की ही कथा निरूपित है। प्रलयकाल के पूर्व देवता मनु और कैलाश प्रयाण के पश्चात् मनु के जीवन का कामायनी मे कोई विवरण नही है। 'कुरुक्षेत्र' मे महाभारत युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर और भीष्म पितामह का एक सवाद मात्र है जो वर्षो तो क्या दिनों की भी कथा नही है। 'ऊर्म्मिला'महाकाव्य मे उर्म्मिला के बाल्यकाल और वैवाहिक जीवन की कथा है। किन्तु रामायणी कथा के घटनात्मक विस्तार से वह भी सर्वथा शून्य है। प्रथम

१. डा० शम्भूनाथसिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप, पृ० ६१९

और अंतिम दो सर्गों को छोड़कर बीच के चार सर्गों मे सघन... के अतिरिक्त कोई प्रमुख घटना नही है। 'एकलव्य' मे महाभारत के तीस श्लोकों ... का ही काल्पनिक विस्तार है। 'साकेत संत' 'रश्मिरथी' और 'दैत्य वंश' मे अपेक्षाकृत घटना-विस्तार है किन्तु इन महाकाव्यो मे भी नायको के जीवन की सम्पूर्ण कथा संकलित नही है। वस्तुतः आधुनिक महाकाव्य इतिवृत्तात्मक या घटना-प्रधान नही हैं। और न स्थूल घटनाओ की योजना द्वारा कथा कहना ही आधुनिक महाकाव्यकारो का लक्ष्य है। आलोच्य महाकाव्यो मे केवल ऐसी ही घटनाओ का संयोजन किया गया है जो मूल विषय से संबंधित हैं और उद्देश्य की प्राप्ति मे सहायक है।

जहा तक जीवन की समग्रता के चित्रण का प्रश्न है वह केवल बाह्य वस्तु-व्यापारो और घटनाओ की आयोजना द्वारा ही संभव नही होता। 'जीवन की समग्रता का अर्थ यह भी है कि कवि पात्रो को जीवन को प्रत्येक परिस्थिति मे रखकर उनकी बाह्य और आंतरिक क्रिया-प्रतिक्रिया की भी अभिव्यक्ति करे और मानवीय संबधो के जितने रूप हो सकते हैं सबको मर्मस्पर्शी ढग से उद्घाटित करे। 'अस्तु महत्वपूर्ण यह है कि-महाकाव्य मे 'जीवन का एकांकी या अपूर्ण चित्रण नही होना चाहिये। पूर्णतः, सापेक्ष्य शब्द है। प्रत्येक युग मे जीवन की पूर्णता का स्वरूप परिस्थितियो के अनुरूप भिन्न हो सकता है।'[1] इस कथन के आलोक मे आलोच्य महाकाव्यो के कथा विधान को देखें तो ज्ञात होता है कि इनमे पात्रो को जीवन के विभिन्न परिस्थिति-द्वन्द्वो मे रखकर जीवन की समग्रता का चित्रण किया गया है। आख्यान तत्त्व का ह्रास इस युग की विशेषता है। जो केवल महाकाव्य मे ही नही वरन् सम्पूर्ण आधुनिक कथा साहित्य मे परिलक्षित होती है। आज के उपन्यासो, कहानियो, नाटको और एकांकियो तक मे स्थूल घटना-विस्तार नहीं है। आधुनिक कथा-साहित्य की कृतियो में कथानक का सूत्र इतना क्षीण हो गया है कि एक क्षणिक मार्मिक प्रसंग पर कहानी की रचना हो रही है और एक मनुष्य के मन का विश्लेषण करते करते उपन्यास पूरा हो जाता है। दूसरे आज का बुद्धिजीवी पाठक घटनात्मक विवरणो में रुचि लेता भी नही चाहे वे कथा साहित्य के हो या कथा-काव्य के। इसलिये युग की इस प्रवृत्ति के अनुरूप आधुनिक महाकाव्यो म कथाचयन हुआ है। विस्तृत घटनात्मक वर्णनो के अभाव से इन महाकाव्यों की कथा गतिशील और सरल बनी है। आख्यान तत्त्व के ह्रास से आलोच्य ग्रंथो की महाकाव्योचित गरिमा में कोई अंतर नही आया है। आधुनिक महाकाव्यो की इतिवृत्तात्मक उपलब्धियो का स्वरूप कथानक की व्यापकता में नही वरन् प्रस्तुतीकरण, कथाप्रसगो को नवीन संयोजन विधि, मौलिक प्रसंगोद्भावनाओ, मार्मिक प्रसंगो की सृष्टि और जीर्ण शीर्ण प्राचीन कथानकों की युगानुरूप व्यंजना मे द्रष्टव्य है।

---

१. डा० शम्भूनाथसिंह-हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ६२०

२. कथा के ...प्रस्तुतीकरण एवं संयोजन विधि की नवीनता

विंशति शताब्दी पूर्व के महाकाव्यो मे कथाविधान का मुख्य आधार इतिवृत्तात्मक पद्धति थी। जिसके अन्तर्गत सीधे साधे ढग से नायक के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त घटनाओ का वर्णन किया जाता था। आलोच्य महाकाव्यो मे कथानक के प्रस्तुतीकरण एवं सयोजन विधि मे सर्वथा नवीन पद्धति को अपनाया गया है। इस पद्धति के अनुसार महाकाव्य का कथानक मूलकथा के मध्य, अन्त या ऐसे बिन्दु से प्रारम्भ होता है जिसका काव्य के प्रतिपाद्य से सीधा संबध है। इस बिन्दु से पूर्व या पश्चात् के प्रसग या तो स्मृति रूप मे प्रस्तुत किये गये हैं या दो पात्रो के वार्तालाप द्वारा वर्णित किये जाते हैं। इस प्रविधि से दो लाभ प्रत्यक्ष हुये हैं–प्रथम पाठक अनपेक्षित प्रसंगो की इतिवृत्तात्मक विरसता से बच जाता है। और दूसरे कथानक के प्रस्तुतीकरण मे नाटकीयता आ जाती है।

उपर्युक्त पद्धति का प्रयोग सर्वप्रथम 'प्रियप्रवास' मे मिलता है। 'प्रियप्रवास' की कथा का प्रारम्भ कृष्ण के जन्म या बाल-लीलाओ से नही होता वरन् कृष्ण-कथा के उस बिन्दु से होता है जो ग्रन्थ के मूल विषय से सबधित है। कथानक का मुख्य बिन्दु है प्रिय (कृष्ण) का प्रवास (मथुरा गमन)। प्रिय के प्रवास से ब्रजवासी व्यथित होते है। प्रथम से लेकर सप्तम सर्ग तक नद के मथुरा से लौटकर आने तक एक प्रकार का वर्णन-क्रम है जिसमे ब्रजजनो के कृष्ण के प्रति अनुराग, यशादा के मातृत्व-भाव, राधा की वियोगजन्य मर्मवेदना का वर्णन हैं। आठवें सर्ग मे गोपिया कृष्ण की बाल–लीलाओ का वर्णन करती हैं, नवम से षोडश सर्ग तक उद्धव के गोकुल आगमन पर उनसे गोप, गोपिया, यशोदा, राधा कृष्ण की बाललीलाओ का वर्णन करते हैं। अ तिम सर्ग मे कृष्ण जरासन्ध से पीडित जनता की रक्षा के लिए मथुरा से द्वारिका चले जाते हैं। इस प्रकार 'प्रियप्रवास' मे यद्यपि कृष्ण कथा की बाल्यकाल से लेकर द्वारिकागमन तक की घटनाए प्रकारातर से आ जाती है तथापि उनका इतिवृत्तात्मक निरूपण नही हुआ है वरन् नाटकीय विधि से सयोजन किया गया है। इसी प्रकार 'साकेत' मे यद्यपि सम्पूर्ण रामकथा का प्रसार है किन्तु उसकी योजना भी सर्वथा नूतन विधि से हुई है। 'साकेत' के प्रथम सर्ग का समारम्भ रघुकुल की परम्परा या रामजन्म के वर्णन से नही होता वरन लक्ष्मण–उर्म्मिला के दाम्पत्य जीवन एवं राम के राज्याभिषेक की तैयारियो से होता है। राम के राज्याभिषेक से पूर्व की घटनाओ का वर्णन दशम सर्ग मे उर्म्मिला की स्मृति के रूप मे और चित्रकूट मे भरत–मिलाप के अनतर घटनाएं अंशतः हनुमान जी के मुख से और शेष वशिष्ट जी के योग शक्ति द्वारा व्यक्त हुई हैं। कथा सयोजन मे साकेतकार का मुख्य ध्येय उर्मिला की चारित्रिक गरिमा को प्रतिपादित करने वाली घटनाओ का चयन करना है। 'कामायनी' की कथा का मुख्य सूत्र मनु और श्रद्धा के सयोग से मानवता के विकास का रूपक प्रस्तुत करना है। इस मतव्य की सिद्धि के लिए

कामायनीकार ने वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण आदि ग्रंथो मे बिखरे असख्य आख्यानो–उपाख्यानो मे कतिपय को चुना है। मनु के जीवन के प्रारम्भिक और अतिम अशो की कथा कामायनी मे नही है। किन्तु विरल कथासूत्रो वाले "कामायनी" के कथानक मे रूपक तत्त्व की प्रतिष्ठा, कल्पनाशक्ति के सुन्दर समाहार और सयोजन विधि की विशेषताओ के कारण महाकाव्योचित गरिमा का अभाव दिखाई नही देता है। 'कुरुक्षेत्र' की सम्पूर्ण कथा का विकास भीष्म और युधिष्ठर के सवादो मे नाटकीय शैली मे हुआ है। 'कुरुक्षेत्र' मे घटनात्मक विनियोजन का एकदम अभाव है। 'कुरुक्षेत्र' की कथायोजना महाभारत के एक नितात महत्वहीन प्रसग पर आधृत है। वह प्रसग है महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर धर्मराज युधिष्ठर का व्यामोह और पश्चाताप। किन्तु महाकवि दिनकर के कौशल ने उस महत्वहीन प्रसग को युगीन सन्दर्भों मे सुनियोजित करके महत्वपूर्ण बना दिया हैं। 'एकलव्य' में महाभारत के तीस श्लोको की कथा का महाकाव्योचित विस्तार है। किन्तु यह विस्तार भी वर्णनात्मक नही है। 'एकलव्य' की सभी घटनाओ का आरम्भ द्रोणाचार्य द्वारा सींक से गेंद निकालने वाली घटना पर दो मित्रो के सवाद से होता है। अन्य घटनात्मक प्रसगो का सयोजन भी नाटकीय विधि से हुआ है। 'साकेत सन्त' की रचना पर गुप्त जी के 'साकेत' का प्रभूत प्रभाव है। 'साकेत' के उर्मिला-लक्ष्मण सवाद की भांति 'साकेत संत' की कथा का आरम्भ भरत-माण्डवी के सँवाद से होता है और अन्त दोनो के मिलन से। किन्तु उल्लेखनीय यह है कि 'साकेत सन्त' मे भी कथाविधान की परम्परित पद्धति को स्वीकार नही किया गया है। भरत के चरित्र का उत्कर्ष करने वाले प्रसगो को ही मुख्य काव्य के कथाविधान मे स्थान दिया गया हैं। "दैत्यवश" की कथा के प्रस्तुतीकरण और घटनात्मक विनियोजन मे कोई नवीनता नही है। उसका विकास परम्परित ढग से ही हुआ है। 'रश्मिरथी' का कथाविधान निश्चय ही मौलिकतापूर्ण है। महाभारत के असख्य आख्यानो मे से कर्ण चरित्र के उत्कर्ष विधायक प्रसगो का ही रश्मिरथी मे समाहार हुआ है। नवीनकृत 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की कथायोजना मे काल्पनिकता का सर्वाधिक समाहार हुआ है। आलोच्य महाकाव्यो मे 'कुरुक्षेत्र' के अनन्तर सबसे क्षीण कथासूत्र 'ऊर्म्मिला' का ही है। काव्य का आरम्भ ऊर्म्मिला की बाल्यावस्था की मनोरजक और आकर्षक झाकियो से होता है। जो कवि कल्पना प्रसूत है। ग्रन्थ की 'भूमिका' मे 'ऊर्म्मिला' के रचयिता ने कहा है कि —

"मेरी इस 'उर्मिला' मे पाठको को रामायणी कथा नही मिलेगी। रामायणी कथा से मेरा अर्थ है क्रम से राम लक्ष्मण जन्म से लगाकर रावण विजय और फिर अयोध्या गमन तक की घटनाओ का वर्णन। ये घटनाए भारतवर्ष मे इतनी, सुपरिचिता हैं कि इनका वर्णन करना मैंने उचित नही समझा। इस ग्रंथ को मैंने विशेषकर मन:स्तर पर होने वाली क्रियाओ और प्रतिक्रियाओ का दर्पण बनाने का

प्रयास किया है।.........इसमें जो कुछ कथाभाग है वह गृहीत है–वर्णनात्मक अर्थात् घटना-विवरणात्मक नही।"[1]

नवीन जी का यह दृष्टिकोण वर्तमान युग के अन्य महाकाव्यकारो के मतव्यो से भी समर्थित है। 'कुरुक्षेत्र' के 'निवेदन' मे दिनकर जी ने भी कहा है कि–

"कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नही हुई और न महाभारत को दुहराना मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु, तब यह रचना, शायद, प्रबध के रूप मे नही उतर कर मुक्तक बनकर रह गई होती।"[2] महाकाव्यकारो के इन मतो से स्पष्ट है कि आज के महाकाव्यो मे कथातत्व का महत्व केवल प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से ही है, वर्णनात्मकता की दृष्टि से नही।

३. मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं

आलोच्य महाकाव्यो के कथानको मे कौन-कौन सी प्रसगोद्भावनाएं हुई हैं, इसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय मे किया जा चुका है। उस विवेचन की पुनरावृत्ति यहा अभीप्सित नहीं है। यहां समन्वित दृष्टि से विचारणीय यह है कि महाकाव्यकारो ने जो मौलिक प्रसगोद्भावनाएं की हैं उनसे प्रख्यात वृत्तो की पौराणिकता और ऐतिहासिकता तो खर्व नही हुई है? और पौराणिक वृत्तों के पुनराख्यान मे महाकाव्यकारो ने कल्पनाशक्ति का प्रयोग किस प्रकार किया है?

'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'देयवश' और 'रश्मिरथी' मे जो नवीन प्रसंगोद्भावनाएं महाकाव्यकारो ने की है उनका स्वरूप इतिवृत्तात्मक है। अर्थात् इन कवियो ने प्रख्यात वृत्तो मे बिना कोई आमूलचूल परिवर्तन किये या तो नवीन प्रसंगों की सृष्टि की है अथवा पुराख्यानों को नवीन विधि-क्रम से प्रस्तुत किया है। 'ऊर्मिला' और 'एकलव्य' के रचयिताओ ने पौराणिक वृत्तो का आधारमात्र ग्रहण कर काव्य का सम्पूर्ण कलेवर कल्पना शक्ति से निर्मित किया है। 'कुरुक्षेत्र' की इतिवृत्त-योजना मे घटनात्मकता का अभाव होने के कारण नवीन प्रसगोद्भावना का अवकाश ही नहीं है। मौलिक प्रसगोद्भावनाओ की दृष्टि से प्रसाद कृत 'कामयनी' मे श्लाघनोय प्रयास हुआ है। प्रसाद जी ने काव्य की सभी घटनाओं और प्रसगो को मौलिक विधि से आयोजित किया है। कामायनीकार ने कथासूत्रो की ऐतिहासिकता और पौराणिकता की रक्षा करते हुये उनमे परिवर्तन किये हैं। 'कमयनी' के कथानक में रूपक तत्व का सफल समाहार दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि

---

१. ऊर्मिला–श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृ० प, ■

२. कुरुक्षेत्र–निवेदन, पृ० ३

है। 'कामायनी' के कथानक में इतिहास और कल्पना तथा पौराणिकता और रूपक तत्त्व का अद्भुत समन्वय हुआ है।

४. कथाप्रसंगों में अलौकिकता का परिष्कार

आलोच्य महाकाव्यों में पौराणिक कथाप्रसगों की अलौकिकता का परिष्कार कर उन्हें युगीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'प्रियप्रवास' के कालियनागदमन, गोवर्द्धनधारण, केशी, अघासुर, व्योमासुर आदि केवध से संबधित कथाओं में पर्याप्त संशोधन करके उन्हें बुद्धिग्राह्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'साकेत' में राम और सीता राजकीय एव कौलिन्य गर्व को त्याग कर सहज मानवीय आचरण करते हुये अंकित किये गये हैं। कामायनी के सभी कथाप्रसंग सहज संभाव्य हैं। 'कुरुक्षेत्र', 'ऊर्म्मिला' और 'एकलव्य' में भी यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। 'रश्मिरथी' और 'दैत्यवंश' के अलौकिकतापूर्ण कथाप्रसगों (यथा कर्ण के जन्मजात कवच, कुंडल और कृष्ण का विराट रूप प्रदर्शन तथा समुद्रमंथ और विष्णु का वराह, नृसिंह आदि के रूप में अवतार लेना आदि) में कोई संशोधन-परिवर्तन नहीं किया गया है। किन्तु इन काव्यों में भी अनेक प्राचीन मान्यताओं में परिष्कार अवश्य किया गया है। सूतपुत्र कर्ण और दैत्यवंशी नरेशों को महाकाव्य के नायक का पद प्रदान करना युगीन जीवन-दृष्टि का ही प्रमाण है।

५. महाकाव्योचित गरिमा का प्रश्न

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया है कि आलोच्य महाकाव्यों में कथानकों की महाकाव्योचितगरिमा का परीक्षण उनकी व्यापकता या विस्तृति के आधार पर ही नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रायः सभी महाकाव्यों की रचना विरल कथासूत्रों से हुई है। अस्तु, आधुनिक महाकाव्यों के कथानकों की महाकाव्योचित गरिमा का मुख्य आधार आज यह है कि उनमें युग-जीवन की आकाक्षाओं और संभावनाओं को साकार करने की क्षमता कितनी है। जहाँ तक कथानकों में संधियों और कार्यावस्थाओं आदि के सफल निर्वाह का प्रश्न है, उनका यथाप्रसग विवेचन किया जा चुका है।

इस प्रकार पौराणिक विषयों के आधुनिक महाकाव्यों में आख्यान तत्व का कम से कम प्रयोग होते हुए भी कथातत्व का निश्चित रूप से विकास हुआ है। इस विकास का क्रम पौराणिक उपाख्यानों के जीर्णोद्धार से लेकर मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं तक व्याप्त है।

चरित्र तत्त्व

महाकाव्य के रूप विधायक तत्त्वों में कथानक के अनन्तर चरित्र तत्त्व का स्थान है। महाकाव्य का मुख्य विषय 'मानव जीवन के विविधोन्मुखी विकास को

ही रूपायित करना है। इस ध्येय की सिद्धि के लिये प्रत्येक महाकाव्य मे चरि सृष्टि की जाती है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक महाकाव्य की रचना मूल मे कोई न कोई महत् चरित्र निहित रहता है। श्री रवीद्रनाथ टैगोर ने बार कहा था कि "कवि के कल्पना राज्य पर जब किसी महिमामय व्यक्तित्व अधिकार हो जाता है, तभी महाकाव्य की सृष्टि होती है।"[1] आलोच्य महाका इस कथन की सत्यता के ज्वलंत प्रतीक है। इन मे से प्रत्येक महाकाव्य की सृ प्रेरणा का मूल स्रोत कोई न कोई महिमामय व्यक्तित्व है। आलोच्य महाकाव के चरित्र विधान मे जो विशेषताएं उभरी है वे निम्नांकित प्रकार हैं :—

१ नायक संबंधी दृष्टिकोण मे क्रांतिकारी परिवर्तन

महाकाव्य की चरित्र योजना मे नायक का सर्वप्रमुख स्थान है। व घटनाक्रम का विधायक, फल का भोक्ता और काव्य की सम्पूर्ण गति का नियाम होता है। काव्यशास्त्र मे नायकत्व को महाकाव्य का महान् तत्त्व तक कहा गय है।[2] महाकाव्य के नायकत्व के संबंध मे संस्कृत साहित्य शास्त्र मे विस्तृत उल्लेख है। वहाँ नायकत्व पद का अधिकारी सद्वंशीय, धीरोदात्त एवं सर्वगुण सम्पन्न पुरुष माना गया है। काव्याचार्यों ने नायक के लिये अपेक्षित गुणो की बडी लम्बी लम्बी सूचियां प्रस्तुत की हैं।[3] और विंशति शताब्दी पूर्व तक के महाकाव्यो मे काव्य निर्देशित व्यक्तित्व ही नायकत्व की धारणा के संबंध मे क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन की तीन मुख्य दिशाएं हैं —

(१) आवश्यक नही कि महाकाव्य का नायक सद्वंशीय हो।

(२) आवश्यक नही कि महाकाव्य का नायक धीरोदात्त एवं सर्वगुण सम्पन्न हो।

(३) आवश्यक नहीं कि महाकाव्य के नायकत्व पद पर पुरुष ही प्रतिष्ठित हो।

---

१. मेघनाथ वध की भूमिका, हिन्दी अनुवाद, पृ० १५७

२. डा० गोविन्द त्रिगुणायत–शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, भाग २, पृ० ४९

३. भामह–काव्यालंकार–१।२०, २१
दण्डी–काव्यादर्श–प्रथम परिच्छेद। १५
रुद्रट–काव्यालंकार–१६। ८, ९, १६, १७
विश्वनाथ–साहित्य दर्पण–षष्ठ परिच्छेद। ३१५–१६
धनंजय–दशरूपक–२।१२.
वाग्भट्ट–काव्यानुशासन–नायक प्रकरण, अध्याय ५

१ आलोच्य महाकाव्यों मे सद्वशीय नायक की परम्परा को एकदम अस्वीकार कर दिया गया है। 'रश्मिरथी' मे सूतपुत्र कर्ण (शूद्रवंशी) और 'एकलव्य' मे निषादपुत्र एकलव्य (किरातवंशी) नायक है। यही नही दैत्यवंश' मे हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और स्कन्द नामक छ दैत्यवंशी नायक है। इस प्रकार असद् वशीय पात्रो को आधुनिक महाकाव्यो मे नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। इस परिवर्तित दृष्टिकोण के मूल मे महाकाव्यकारो की मानवतावादी जीवन दृष्टि क्रियमाण रही है। यह परिवर्तन, युग जीवन की भावना के अनुरूप भी हैं। इस सबंध म महाकाव्यो की भूमिकाओ मे कवियों ने सतर्क वक्तव्य प्रस्तुत किये हैं। 'रश्मिरथी के रचयिता दिनकर जी ने कहा है कि—"यह युग दलितो और उपेक्षितो के उद्धार का युग है। अतएव यह बहुत स्वाभाविक है—राष्ट्रभारती के जागरूक कवियो का ध्यान उस चरित्र की ओर जाय जो हजारो वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एव कलकित मानवता का मूक प्रतीक बन कर खडा है। कुल और जाति का अहकार विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नही जो उसके माता-पिता या वश की देन है।"[१] 'एकलव्य' के रचयिता डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है कि—"एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है, वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिये भी आदर्श है। वह अनार्य नही आर्य है, क्योकि उसमे शील का प्राधान्य है। यही उसमे महाकाव्य के नायक बनने की क्षमता है, भले ही वह सुर अथवा सद्वश मे उत्पन्न क्षत्रिय नही है।"[२] 'दैत्यवंश' के रचयिता श्री हरदयालुसिंह ने भी इसी प्रकार के विचार काव्य की प्रस्तावना मे व्यक्त किये हैं।[३] महाकाव्यकारो के उद्धृत मतव्यो से स्पष्टत निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाकाव्य की रचना मे कुलीन नायक की धारणा युगीन सदर्भों मे व्यर्थ सिद्ध हो चुकी है। इन महाकाव्यो के अतिरिक्त 'प्रियप्रवास', 'साकेत' 'कामायनी', 'कुरुक्षेत्र' साकेत सन्त' मे कृष्ण, राम, मनु युधिष्ठिर और भरत यद्यपि सद्वशीय हैं किन्तु वे भी कौलिन्य गर्व को त्याग कर सहज मानवीय रूप म प्रतिष्ठित हुये हैं। इन चरित्रो की महत्ता का आधार उनका सद्वशीय होना नही वरन गुणात्मक आधार है। 'रश्मिरथी' मे कहा गया है —

'बडे वश से क्या होता है, खोटे हो यदि काम ?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है नही वश धन धाम।'[४]

---

१ रामधारीसिंह दिनकर—रश्मिरथी (भूमिका), पृ० ग, घ
२ एकलव्य, आमुख पृ० ६
३ दैत्यवंश, प्रस्तावना, पृ० १
४ रश्मिरथी, प्रथम सर्ग, पृ० ७

२ महाकाव्य के नायक की काव्यशास्त्रीय योग्यताओ मे उसका धीरोदात्त और सर्वगुण सम्पन्न होना भी उल्लिखित है। आलोच्य महाकाव्यो मे यह मान्यता भी उपेक्षित हो गई है। प्राचीन काव्यो मे नायक को सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणो का आगार बनाकर प्रतिष्ठित किया जाता था। एक प्रकार से ऐसे नायक नैतिक और धार्मिक आदर्शों के प्रतीक होते थे। किन्तु इस प्रकार के नायक आज महत्वपूर्ण नही हैं, क्योकि व्यावहारिक जीवन मे ऐसे नायको का मिलना कठिन है। मानवीय चरित्र मे दुर्बलताओ और असगतियो का होना अस्वाभाविक नही। महाकाव्य के नायक को जीवन के सग्राम मे प्रविष्ट होकर सघर्ष करते हुये महत् उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बढना पडता है। अस्तु, परिस्थितिजन्य कारणो से यदि वह विपरीत आचरण करे तो यह चरित्र की विसगति नही कही जा सकती। आधुनिक महाकाव्यों मे मनोवैज्ञानिक एव यथार्थवादी पद्धतियो पर चरित्रो का मूल्याकन किया जाता है, मात्र आदर्शवादी पद्धतियों पर नही।

आलोच्य महाकाव्यो के नायको का चरित्र निरूपण इसी परिप्रेक्ष्य मे हुआ है। 'प्रियप्रवास' की नायिका राधा ने अपनी चरित्रगत दुर्बलताओ को स्वीकार करते हुये उद्धव से कहा है कि—

"मैं नारी हू, तरल उर हू, प्यार से वचिता हूँ,
जो होती हु विकल, विमना, व्यस्त वैचित्र्य क्या है ?"[१]

'साकेत' के लक्ष्मण मे हमे उनके उग्र स्वभाव, भावावेश और क्रोध का परिचय स्थान स्थान पर मिलता है। उर्मिला के चरित्र मे भी बहुत उथल पुथल है। प्रथम सर्ग की प्रेमिका और नवम सर्ग की वियोगिनी उर्मिला द्वादश सर्ग मे सिहनी के समान वीर क्षत्राणी दिखाई देती है। कामायनी के नायक मनु पुराणादि ग्रथो मे मानवता के जनक और मानव सभ्यता के सस्थापक होने के नाते विराट पौरुष और महिमामय व्यक्तित्व मे सम्पन्न दिखाई देते हैं। किन्तु 'कामायनी' में मनु के चरित्र मे गरिमामय व्यक्तित्व के साथ साथ स्खलन और पतन के बिन्दु भी दिखाई देते हैं। उनके चरित्र मे चिन्ता, निराशा, वासनाजन्य कु ठा, अहमवादिता पराजयवादी और पलायनवादी वृत्तिया भी दिखाई देती है। वस्तुत इन्ही वृत्तियो के कारण वे यथार्थ मानव प्रतीत होते हैं। उनका जीवन मानवीय चेतना के सघर्ष की एक व्यापक भूमिका पर अधिष्ठित है। जीवन की पराजय और पश्चाताप ही मनु को अन्तत सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति की ओर उन्मुख करते है। 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर के मानसिक द्वन्द्व का तो बडा भव्य चित्र काव्य मे विम्बित हुआ है।

---

१. प्रियप्रवास, सर्ग १६, छन्द ५०

पुराणों के घर्मराज युधिष्ठिर 'कुरुक्षेत्र' में अपने अघर्ममय कृत्यों की स्पष्ट स्वीकारोक्ति भीष्म पितामह के समक्ष करते हैं। महाभारत युद्ध के महानाश की मानवीय मस्तिष्क पर जो स्वाभाविक प्रतिक्रिया होनी चाहिये, वह युधिष्ठिर पर भी हुई है –

"जिस दिन समर की अग्नि बुझ शांत हुई,
एक आग तब से ही जलती है मन में ;
हाय, पितामह, किसी भांति नही देखता हूं,
मुंह दिखलाने योग्य निज को भुवन में ;
ऐसा लगता है, लोग देखते घृणा से मुझे,
धिक् सुनता हूं अपने पै कण कण में ;
मानव को देख आंखें आप झुक जाती, मन
चाहता अकेला कहीं भाग जाऊं वन में।"[1]

यही युधिष्ठिर पांचवें सर्ग के अन्त तक पहुँचते पहुँचते मानवता के दिव्य आदर्शों के प्रतीक बन जाते हैं। इसी प्रकार के चारित्रिक उत्कर्षापकर्ष की रेखाएं 'साकेत सन्त' के भरत, 'रश्मिरथी' के कर्ण और 'एकलव्य' के द्रोणाचार्य के चरित्रों में भी उभरी हैं। इसके विपरीत 'दैत्यवंश' के नायकों के चरित्रों में उन दिव्य मानवीय गुणों और विभूतियों की प्रस्थापना हुई है जिनके कारण उनके चरित्र भी अनुकरणीय आदर्शों से अनुपूरित दिखाई देते हैं। बलि की दानशीलता, बाण की निःस्वार्थ तपसाधना और अस्कदकुमार की जनहित-साधना कम महत्वपूर्ण चारित्रिक आदर्श नहीं हैं। अस्तु, स्पष्ट है कि आलोच्य महाकाव्यों में नायकों की धीरोदात्तता और सर्वगुण सम्पन्नता इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं जितनी चरित्रगत दुर्बलताओं और सबलताओं को सवहन करते हुये जीवन संघर्ष में ध्येय की सिद्धि और सफलता।

३. आलोच्य महाकाव्यों के अनुशीलन से यह तथ्य भी सामने आता है कि नायकत्व पद के अधिकारी केवल पुरुष ही नहीं वरन् स्त्रियां भी हो सकती हैं। आलोच्य महाकाव्यों में 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'कामायनी', और 'ऊर्म्मिला' नायिका प्रधान है। 'प्रियप्रवास' में राधा, 'साकेत' में उर्म्मिला, कामायनी में श्रद्धा और 'उर्म्मिला' में उर्मिला के चरित्र काव्य नायकों की अपेक्षा अधिक प्रमुख और महत्वपूर्ण हैं। इस परिवर्तन के मूल में हमारे युग की नारी-चेतना के स्वर मुखरित हैं। 'कुरुक्षेत्र' में कोई नारी पात्र नहीं है। 'रश्मिरथी' और 'एकलव्य' में नायिकाएं नहीं हैं, नारी पात्र हैं। यही बात 'दैत्यवंश' पर भी चरितार्थ होती है।

---

१. कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग, पृ० २०

२. चरित्र विश्लेषण पद्धति के परिवर्तित आधारमान

नायकत्व संबंधी दृष्टिकोण मे क्रांतिकारी परिवर्तन के साथ साथ आलोच्य महाकाव्यो के चरित्र विश्लेषण पद्धति मे भी परिवर्तित क्रम दिखाई देता है जिसकी विशेषताए इस प्रकार हैं —

(१) पौराणिक पात्रो का युगानुरूप चित्रण ।

(२) चित्रण पद्धति मे यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक एव मानवतावादी दृष्टि-कोण का विकास ।

(३) महत् जीवनादर्शों से सम्पन्न चरित्रो की प्रतिष्ठा ।

(४) उपेक्षित पात्रो का चरित्रोद्धार ।

१. आलोच्य महाकाव्यो के सभी पात्र पौराणिक हैं । पुराणकारो ने जिस रूप मे उनके चरित्र की प्रतिष्ठा की थी, उसी रूप मे शताब्दियो से उनका व्यक्तित्व और कृतित्व लोक के मानस पटल पर अंकित है । पुराणोत्तर काल से आधुनिक युगपूर्व तक के काव्यो मे भी इन पात्रों की सामान्यत पौराणिक छबि ही अंकित की जाती रही हैं । दूसरे शब्दो मे इस पूर्व के महकाव्यकार बद्धमूल धारणाओ और पूर्वाग्रहो के आधार पर पौराणिक पात्रो को देवीय, दानवीय और मानवीय वर्गों मे वर्गीकृत करके चित्रित करते रहे हैं । आलोच्य महाकाव्यो मे पौराणिक पात्रो को सर्वप्रथम युगीन सन्दर्भों मे चित्रित किया गया है । 'प्रियप्रवास' मे कृष्ण और राधा ब्रह्म या शक्ति के अवतार नही वरन् सच्चे लोकसेवी एव समाजसेविका के रूप मे प्रतिष्ठित किये गये हैं । 'साकेत' के राम और सीता भी अवतारी नही है । वे मानव हैं, हां, मानवो मे आदर्श मानव अवश्य हैं । इस आदर्श का कारण उनके चरित्र मे गुणात्मक उत्कर्ष है । 'साकेत' के राम आर्य सभ्यता के प्रचारक और भारतीय संस्कृति के उद्धारक है । वे विवश, विकल बलहीन, दीन, शापित और तापित मानव समूह को गले लगाकर इस भूतल को स्वर्ग बनाने के संकल्प मे रत हैं । 'साकेत' की सीता श्रमसाध्य जीवनयापन करके गौरव का अनुभव करने वाली नारी है । इसी प्रकार 'कामायनी' के मनु के चरित्र मे युगसंभूत विशेषताए हैं । वे मानव के जनक होते हुये भी मानवीय दुर्बलताओ से ग्रस्त हैं । वस्तुत उनमे आदि मानव की आदिम प्रवृत्तियो का ही स्वाभाविक विकास रूपायित हुआ है । श्रद्धा और इडा नारी के दो युगीन रूपो का प्रतिनिधित्व करती हैं । दया, माया, ममता, सेवा और समर्पण भाव से पूरित नारी का प्रतीक श्रद्धा का चरित्र है । बौद्धिकता की पति से आक्रांत, अहम्वादिनी, रूपगुणगर्विता आधुनिका नारी का प्रतिनिधित्व इडा की चरित्र-योजना द्वारा सम्भव हुआ है । 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर महाभारत के धर्मराज नहीं वरन सामाजिक दायित्व बोध के प्रति सजग व्यक्ति के

रूप मे प्रतिष्ठित हुये है। 'साकेत सन्त' मे भरत और माण्डवी के चरित्र कर्त्तव्य-परायण दम्पत्ति के रूप मे प्रतिष्ठित हुये है। 'रश्मिरथी' मे कर्ण और 'एकलव्य' मे एकलव्य के चरित्र पुरुषार्थी, कर्त्तव्यपरायण एव अनन्य निष्ठावान युवको के चरित्र है जो सामाजिक जीवन की जर्जरित परम्पराम्रो और रूढियो से सघर्ष करते हुये समाज मे प्रतिष्ठित होते हैं। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे लक्ष्मण-ऊर्मिला आधुनिक पारिवारिक जीवन की विडम्बनाम्रो से सघर्षरत अ कित किये गये हैं। नवीन जी की उर्मिला केवल कोमल हृदया भावुक बाला या मूक पतिपरायणा नारी नही है जो वनगमन की राजाज्ञा अपने पति को अ धभाव से स्वीकार करने दे। वह तो ऐसी अन्यायपूर्ण राजाज्ञा का घोर प्रतिरोध करने के लिये लक्ष्मण को प्रेरित करने वाली सजग नारी है। 'दैत्यवश' के दानवीय पात्रो के चरित्र मे सहज मानवोचित गुणो का विकास युगीन प्रेरणाम्रो का ही परिणाम है। इस प्रकार मालोच्य महाकाव्यो के सभी प्रमुख पात्रो को युगानुरूप व्यक्तित्व प्रदान करके प्रतिष्ठित किया गया है। इस परिवर्तन के कारण आलोच्य महाकाव्यो के पात्र मात्र आदर्श की प्रतिमूर्तिया न रहकर हमारे ही जीवन के सुपरिचित व्यक्तित्व बन गये हैं।

२ पौराणिक पात्रो को युगानुरूपता प्रदान करने के लिए आधुनिक महाकाव्यकारो ने चरित्र चित्रण पद्धति मे यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक एव मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया है। प्राचीन महाकाव्यो मे जिस आदर्शवादी चरित्र-चित्रण पद्धति को अपनाया जाता था उसके अनुसार पात्रो की गुणात्मक विभूतियो का ही दिग्दर्शन कराया जाता था, उनके चरित्रगत अभावो के उद्घाटन का प्रश्न ही न उठता था। मालोच्य महाकाव्यो मे ऐसा नही हुआ है। आधुनिक महाकाव्यकारो ने यथार्थवादी-मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाकर चरित्र विश्लेषण किया है। इसके फलस्वरूप पौराणिक पात्रो के प्रति अ धश्रद्धा या सहानुभूतिपूर्ण अथवा घृणा या उपेक्षापूर्ण बद्धमूल धारणाम्रो की शृ खलाए टूट गयी हैं। इस पद्धति से अ कित चरित्रो मे 'साकेत' की कैकेयी 'कामायनी' के मनु, 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर, 'रश्मिरथी' की कुन्ती, 'एकलव्य' के द्रोणाचार्य और अर्जुन तथा दैत्यवश' के देवो और दानवो के चरित्र द्रष्टव्य हैं। इनमें से प्रत्येक पात्र के पुराण या प्राचीन काव्य-प्रतिपादित एव आलोच्य महाकाव्यों मे विश्लेषित चरित्रो की तुलना करें तो हमें अन्तर की रेखाएं स्पष्ट दिखाई देंगी। रामकथा की चिर कलकिता कैकेयी के प्रति युगयुगान्तर का घनीभूत मालिन्य 'साकेत' मे नि शेष हो जाता है। जिस स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर कैकेयी का 'साकेत' मे चरित्राकन हुआ है उसके कारण कैकेयी के प्रति हमारी घृणा सहानुभूति मे बदल जाती है। 'साकेत' मे राम सहित सम्पूर्ण चित्रकूट की सभा उसे धन्य धन्य कहती हैं। 'कामायनी' के मनु के चरित्र मे जिस मानसिक सघर्ष और सकल्प-विकल्प पूर्ण द्वन्द्व का यथार्थवादी चित्रण किया है वह उन्हें सहज मानव सिद्ध करता है। युद्ध की विभीषिका और राजतंत्र की विडम्बना

के कारण 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर और 'रश्मिरथी' के द्रोण के चरित्र मे जिस सत की अवतारणा हुई है उसका आधार भी मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थवादी है 'दैत्यवश' मे देवो के छद्मपूर्ण व्यवहार और दैत्यों की उदार वृत्तियो का उद्घा किया गया हैं। देवो और दानवो के चरित्र विश्लेषण मे 'दैत्यवश' का क भावुक या पूर्वाग्रही नही है। चरित्र-विश्लेषण मे उसकी दृष्टि बौद्धिक, यथा वादी, मनोवैज्ञानिक और मानवतावादी है । 'साकेत सन्त' और 'ऊर्म्मिला' चरित्र विश्लेषण की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पद्धति अपनायी गई है।

३. आलोच्य महाकाव्यो की चरित्र विश्लेषण पद्धति मे यथार्थवादी दृष्टि कोण का प्रसार होते हुये भी महत् जीवनादर्शों की प्रस्थापना प्रत्येक महाकाव के कुछ पात्रों मे हुई हैं। महत् जीवनादर्शों से अभिप्राय उन चिरतन मानवी जीवन मूल्यों से है जिनकी स्वीकृति प्रत्येक युग मे अनिवार्यतः होती रही है। हमा पारिवारिक, सामाजिक और जातीय जीवन के उन्नत आदर्शों की व्यजना आलोच्य महाकाव्यो के जिन चरित्रो मे हुई हैं, वे हैं—'प्रियप्रवास' को राधा और कृष्ण 'साकेत' की उर्मिला, राम और सीता, 'कामायनी' की श्रद्धा, 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म पितामह 'साकेत सन्त' के भरत और माण्डवी, 'दैत्यवश' के राजा बलि, 'रश्मिरथी' के कर्ण, 'ऊर्म्मिला' मे लक्ष्मण और उर्मिला तथा 'एकलव्य' मे गुरुद्रोण और शिष्य एकलव्य। इन पात्रो को हम पारिवारिक सम्बन्धो, सामाजिक दायित्वो और जातीय जीवन की विशेषताओ के उज्ज्वल प्रतीक के रूप मे पाते हैं । इन चरित्रो का वैभव मानवता की अक्षय विभूति है।

४. आलोच्य महाकाव्यो के चरित्र विश्लेषण की एक विशेषता उपेक्षित पात्रों का चरित्रोद्धार है। उत्सर्ग की प्रतिमूर्ति उर्मिला, पुरुषार्थी एव दानवीर कर्ण अनन्य साधक एव गुरुभक्त एकलव्य के चरित्र आर्ष ग्रन्थो मे उपेक्षित प्राय. रहे हैं। किन्तु उनकी चारित्रिक विभूति असीम प्रेरणाप्रद है। अस्तु, आलोच्य महा-काव्यो मे उन्हे सामान्य पात्र ही नही वरन् नायक बना कर प्रतिष्ठित किया गया है। क्योंकि महाकाव्यो के नायक जातीय जीवन की चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं।

५. आलोच्य महाकाव्यो के चरित्र तत्त्व की अंतिम विशेषता नारी निरू-पण की विशेष प्रवृत्ति है। 'प्रियप्रवास' मे राधा और यशोधरा, 'साकेत' मे उर्मिला सीता और कैकेयी, 'कामायनी' मे श्रद्धा और इडा, 'साकेत सन्त' मे माण्डवी, 'दैत्यवश' मे ऊषा, 'रश्मिरथी' में कुन्ती, 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे सीता, सुनयना और उर्मिला तथा 'एकलव्य' मे एकलव्य जननी के चरित्र द्रष्टव्य हैं। नारी के नाना रूपो में उसके पत्नी और जननी दो रूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। आलोच्य महाकाव्यो में सीता, उर्मिला, श्रद्धा और माण्डवी के चरित्र पत्नीत्व

तथा यशोदा, कुन्ती, सुनयना और एकलव्य जननी के चरित्र मातृत्व के अप्रतिम उदाहरण हैं। 'प्रियप्रवास' की राधा कुमारी है पर उसके चरित्र की गरिमा पत्नीत्व मे नही, लोक सेविका बनने मे है। नारी निरूपण सबधी विशेषताओ की दृष्टि से दिनकर कृत 'कुरुक्षेत्र' अपवाद है।

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यो के चरित्र-तत्त्व का समन्वित मूल्याकन करने के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि उनमे पौराणिक पात्रो के युगानुरूप चित्रण, उपेक्षित एव तिरस्कृत पात्रो के पुनर्मूल्याकन, चरित्र निरूपण म यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक एव मानवतावादी पद्धतियो की स्वीकृति तथा नायकत्व सबधी दृष्टिकोण मे परिवर्तन ऐसी प्रवृत्तिया है जो निश्चय ही पौराणिक विषयो के आधुनिक महाकाव्यो मे चरित्र तत्त्व के विकास को व्यजित करती हैं।

रसयोजना तथा शिल्प-तत्त्व

काव्य की सम्पूर्ण विधाओं में महाकाव्य की सर्वोपरिता का आधार उसके महत सन्देश एव उद्देश्य के अतिरिक्त शिल्पगत वैशिष्ट्य भी है। महाकाव्य की योजना मे शिल्पगत वैशिष्ट्य उत्पन्न करने के लिये महाकाव्यकार रूप विधायक तत्त्वो का सयोजन विशेष विधि से करता है। सभी काव्य कृतियो की भाति महाकाव्य की रचना-विधि के भी दो पक्ष हैं—अन्तरग अर्थात् भावपक्ष और बहिरग अर्थात् कलापक्ष। महाकाव्य के अ तरग पक्ष की समृद्धि रस योजना और भावचित्रण कौशल तथा बहिरग की शिल्प विधायक उपकरणो पर निर्भर करती है। शिल्प विधायक उपकरणो की सस्कृत काव्य शास्त्र मे विस्तृत सूचिया दी गई हैं जो यथाविधि आज मान्य नही रही हैं। आलोच्य महाकाव्यो म जिन शिल्प विधायक उपकरणो की स्थिति अनिवार्यत स्वीकार की गई है, वे हैं—प्रकृति चित्रण, नामकरण, सर्गबद्धता, भाषाशैली, अलकार योजना और छद विधान।

अन्तरगपक्ष की समृद्धि रसात्मकता

रस योजना के सम्बन्ध मे काव्यशास्त्रीय निर्देश यह है कि महाकाव्य मे शृ गार, वीर या शात नामक रसो मे से किसी एक की प्रधानता एव अन्य रसो की सम्यक् योजना होनी चाहिये। आलोच्य महाकाव्यो मे 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' मे विप्रलम्भ शृ गार, 'कामायनी' मे शृ गार और शात, 'कुरुक्षेत्र' मे वीर और शात, 'साकेत सन्त' मे शात, दैत्यवश' मे शृ गार और वीर, 'रश्मिरथी' मे वीर, ' उर्मिला' मे शृ गार और 'एकलव्य' मे भक्तिरस (गुरु विषयक रति) की प्रधानता है। आलोच्य महाकाव्यो मे प्रधान रसो की योजना देखने से प्रतीत होता है कि मानो महाकाव्यकारो ने शृ गार, वीर और शांत मे से किसी एक रस की प्रधानता सबधी काव्यशास्त्रीय-रूढि का पालन किया है। किन्तु वास्तविकता यह है कि आधुनिक महाकाव्यकारो ने 'रसविषयक' काव्यशास्त्रीय निर्देश का प्रयत्न-

पूर्वक पालन नहीं किया है। वस्तुत: रस विशेष की प्रधानता वाला नियम विषय वस्तु की अनुरूपता के कारण चरितार्थ हो गया है। दूसरे आलोच्य महाकाव्यों मे शास्त्रीय ढग की रसात्मकता की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्राधान्य के कारण भावाभिव्यजना अधिक सशक्त हुई है। यद्यपि एक दो रसो की अन्त सलिला, प्रच्छन्न रूप से सम्पूर्ण काव्य में प्रवाहित होती रही है किन्तु जीवन के नाना सघर्षों मे रत पात्रो के क्षण क्षण परिवर्तित मनोभावो की व्यजना के कारण गभीर रसवत्ता की अपेक्षा सफल भावाभिव्यक्ति ही आलोच्य महाकाव्यो की विशेषता है। इसके अतिरिक्त आलोच्य महाकाव्यो की कथावस्तु मे घटनात्मकता की सघन योजना के अभाव मे पूर्ण एव सावयव रसनिष्पत्ति की अपेक्षा भी नही की जा सकती है। अस्तु,

आलोच्य महाकाव्यो मे शास्त्रोक्त पद्धति की रसयोजना न होते हुये भी भावनाओ, अनुभूतियो एव मनोवृत्तियो के चित्रण पर विशेष बल दिया गया है। इस दृष्टि से 'कामायनी' और 'कुरुक्षेत्र' द्रष्टव्य है जिनमे पाश्चात्य ढग की प्रभावान्विति (यूनिटी आव इफेक्ट) रसात्मकता स भी महत्वपूर्ण बन पडी है। अ गी रस के अतिरिक्त अन्य रसो की योजना भी आलोच्य महाकाव्यो मे प्रसगानुकूल हुई है। जिसका सोदाहरण विवेचन चतुर्थ अध्याय मे किया जा चुका है।

बहिरंग पक्ष : प्रकृतिचित्रण

प्रकृति मानव की आदि सहचरी है। मनुष्य का उससे अनादि सबध है। यह सम्बन्ध इतना स्वाभाविक और पुरातन है कि मानव का प्रत्येक कार्य-व्यापार किसी न किसी रूप मे प्रकृति की चेतना और प्रेरणा से प्रभावित रहता है। मनुष्य स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रेमी है, और प्रकृति का सौन्दर्य शाश्वत है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, पर्वत, समुद्र, वन, उपवन, पादप, पुष्प, पशु, पक्षी, कीट, पतग, ऋतुएं आदि प्रकृति-सुषमा के शाश्वत उपादान हैं जो सृष्टि के आरम्भ से आज तक मानव की सौन्दर्य वृत्ति के पोषक रहे हैं। मानव सभ्यता, सस्कृति, ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य और काव्य सभी की रचना और विकास मे प्रकृति की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण रही है। मानवीय-ज्ञान एव चेतना के अन्य रूपो की अपेक्षा काव्य का प्रकृति से घनिष्ठ सबध रहा है। कवियों ने अपने कल्पना-विलास के उपकरण, भावाभिव्यजन के प्रसाधन, अलकरण वृत्ति के उद्घोषक प्रतीक, सौन्दर्य चेतना के प्रतिमान प्रकृति से ही सजोये हैं। यद्यपि साहित्य की सभी विधाओ में प्रकृति चित्रण किसी न किसी रूप मे होता ही है तथापि महाकाव्य मे प्रकृति-चित्रण का अधिक अवकाश होता है। क्योंकि उसमें प्रकृति का प्रयोग उस पृष्ठभूमि के रूप मे होता है जिस पर कथा प्रसगों की निर्मिति, घटनाक्रम का विकास, चरित्र-विश्लेषण की प्रक्रिया और रसात्मकता की स्थितिया निर्भर करती

है। काव्य मे प्रकृति-चित्रण की अनेक प्रणालिया प्रचलित हैं। उनमे से आलो महाकाव्यो म प्रकृति चित्रण मुख्यत. निम्नाकित रूपों मे हुआ है —

१ उद्दीपन रूप मे, २. आलवन रूप मे, ३ आलकारिक रूप मे, ४. वातावरण के रूप मे, ५ मानवीयकरण रूप मे, ६ सवेदनात्मक रूप मे, ७ उपदेशात्मक रूप मे, ८. दूत-दूती रूप म, ९. प्रतीकात्मक रूप म, १०. रहस्यात्मक रूप में।

आलोच्य महाकाव्यो के सम्पूर्ण प्रकृति चित्रण की दो उल्लेखनीय विशेषतायें यह हैं कि प्रथम उसके द्वारा कथानको की क्षीणता को दूर किया गया है और दूसरे मानवीय स्वभाव-चित्रण मे प्राकृतिक उपादानो का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही परम्परित शैली का प्रकृति-चित्रण जैसे बारहमासा, षड्ऋतुवर्णन, दूतीत्व कर्म आदि का भी निरूपण कतिपय आलोच्य महाकाव्यो मे हुआ है। प्रियप्रवास और 'कामायनी' का आरम्भ और अवसान प्रकृति-चित्रण से ही होता है। किन्तु दोनो के निरूपण मे अन्तर यह है कि छायावादी काव्यधारा की प्रतिनिधि रचना होने के कारण 'कामायनी' मे जहा प्रकृति-चित्रण कौशल का चरम निदर्शन है वहाँ 'प्रिय-प्रवास' मे सर्गों की कलेवर वृद्धि और खानापूर्ति के लिये किया गया प्रकृति-चित्रण कही कही जी उबाने वाला भी है। 'साकेत' मे जहा-जहा प्रकृति मानवीय सवेदनाओ की पृष्ठ-भूमि के रूप मे उतरी है वहा हृदय ग्राह्य है। 'कुरुक्षेत्र' मे प्रकृति के रौद्र रूप के सश्लिष्ट-चित्र प्रभावकारी हैं। 'साकेत-सन्त' और 'दैत्यवश' का प्रकृति चित्रण परम्परित है। 'रश्मिरथी' में प्रकृति-चित्रण को कवि ने कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया है किन्तु जो भी प्रकृति-चित्र अकित किये गये हैं वे प्रभावपूर्ण हैं। 'ऊर्मिला' महाकाव्य में उद्दीपन रूप मे प्रकृति का अधिक चित्रण हुआ है। 'कामायनी' के अनन्तर सर्वश्रेष्ठ प्रकृति चित्रण 'एकलव्य' महाकाव्य मे हुआ है। 'एकलव्य' मे यद्यपि प्रकृति-चित्रण की सभी पद्धतिया अपनाई गई हैं किन्तु मानवीय सवेदनाओ की सवाहिका बन कर प्रकृति इस काव्य मे सर्वोत्कृष्ट रूप मे चित्रित हुई है।

समष्टि रूप मे आलोच्य महाकाव्यो का प्रकृति-चित्रण महाकाव्यकारों के चित्रण-कौशल का परिचायक होने के साथ साथ महाकाव्य की शिल्प विधि का विशिष्ट अग बन कर भी प्रस्तुत हुआ है। यद्यपि आधुनिक महाकाव्य प्रकृति-काव्य नहीं हैं तो भी उनमे प्रकृति, मानव-प्रकृति का अभिन्न अग बन कर अधिष्ठित हुई है। प्रसन्नता का विषय यह है कि सभी आलोच्य महाकाव्यो में अन्य प्रणालियो के साथ-साथ मानवीयकरण पद्धति द्वारा भी प्रकृति-चित्रण हुआ हैं। आज के कवियो की आस्था प्रकृति के स्थूल रूप-चित्रण मे नहीं है। इसीलिये स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण काव्यो मे बहुत कम हुआ है। प्रसाद, दिनकर और

डा० रामकुमार वर्मा के महाकाव्यो मे मानव और प्रकृति के रागात्मक सबधो के अविस्मरणीय मनोरम दृश्य है।

नामकरण

सस्कृत के आचार्यों मे विश्वनाथ ने नामकरण के सम्बन्ध मे कहा है कि महाकाव्य का नामकरण कवि, कथावस्तु, नायक या अन्य किसी पात्र के नाम के आधार पर होना चाहिये। किन्तु प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसके वर्ण्य विषय पर आधृत होना चाहिये। आलोच्य महाकाव्यो मे प्रियप्रवास, साकेत और कुरुक्षेत्र का नामकरण कथानक के आधार पर हुआ है। इनमें भी 'प्रिय-प्रवास' का आधार घटनात्मक और 'साकेत' तथा 'कुरुक्षेत्र' का स्थानगत है। कामायनी, साकेत-सन्त, दैत्यवश, रश्मिरथी, ऊर्म्मिला और एकलव्य के नामकरण का आधार पात्रगत है। इनमे भी 'साकेत सन्त' और 'रश्मिरथी' नाम पात्रों की चारित्रिक विशेषताओ पर आधारित हैं। आलोच्य महाकाव्यो मे कामायनी' और 'रश्मिरथी का नामकरण पर्याप्त व्यजनापूर्ण है।

सर्ग-संयोजन

महाकाव्य की शिल्प योजना मे सर्गबद्धता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सस्कृत काव्य के महाकाव्य सम्बन्धी प्रत्येक विवेचन मे महाकाव्य की व्याख्या सर्गबद्ध-काव्य के रूप मे की गई है। वास्तव में महाकाव्य प्रबन्धात्मक कथाकाव्य है। सर्ग-योजना का महत्व, प्रबन्धत्व के सफल निर्वाह एव कथावस्तु के सम्यक् सयोजन और विभाजन दोनो दृष्टियो से है। महाकाव्य के सर्गों की सख्या एव नामकरण आदि के सम्बन्ध में भी काव्यशास्त्र में निदश किया गया है।

आलोच्य महाकाव्यो की सर्ग योजना कथाक्रम के अनुरूप हुई है। सख्या की दृष्टि से प्रियप्रवास म १७ साकेत में १२, कामायनी म १५ कुरुक्षेत्र मे ७, साकेत सन्त मे १४, दैत्यवश मे १८, रश्मिरथी मे ७, ऊर्म्मिला मे ६, और एकलव्य म १४ सर्ग हैं। जहा तक सर्गो के नामकरण का प्रश्न है—कामायनी और एकलव्य के प्रत्येक सर्ग का नामकरण किया गया है किन्तु प्रियप्रवास, साकेत, साकेत सन्त, दैत्यवश और रश्मिरथी में केवल सर्गों का सख्याक्रम ही दिया गया है। 'ऊर्म्मिला' में सख्याक्रम के साथ साथ चौथे व छठे सर्गों का नामकरण भी किया गया है। 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी' और 'ऊर्म्मिला' में आठ सर्गों वाली रूढ़ि का भी अनुपालन नही किया गया है।

भाषा-शैली

महाकाव्य की भाषा-शैली का स्वरूप अन्य काव्य रूपो की तुलना में विशिष्ट और गरिमापूर्ण होता है। गुण, रीतिया, शब्द-शक्तिया, अलकार वक्रोक्ति-कथन आदि शैली विधान के प्रमुख उपकरण हैं। किन्तु इन सबका सबध शैली के बाह्य रूप से है। महाकाव्यो की शैली में एक गाम्भीर्य निहित रहता है। शैली मे गाम्भीर्य भाषागत अलकृति या क्लिष्ट शब्द योजना से नही वरन् कवि के चिन्तन की परिपक्वता और सुदीर्घकालीन साहित्य साधना से आता है। महाकाव्य की शैली के तीन प्रमुख गुण है-सम्प्रेपणीयता, प्रसगगर्भत्व और व्यजना-शक्ति।

आलोच्य महाकाव्यो की भाषा शैली मे ये गुण उपलब्ध है। भाषा की दृष्टि से 'दैत्यवश' को छोडकर शेष सभी आलोच्य महाकाव्यो की भाषा खडीबोली हिन्दी है। दैत्यवश व्रजभाषा मे लिखा गया है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य का पूरा पचम सर्ग व्रजभाषा मे है, शेष सर्ग खडी बोली मे रचे गये हैं। खडी बोली की अभिव्यजना शक्ति का स्वरूप आलोच्य महाकाव्यो के लाक्षणिक प्रयोगो, चित्रात्मकता, मूर्त्त-अमूर्त्त विधान, नये नये प्रतीको और बिम्बो की योजना मे दृष्टव्य है। 'प्रियप्रवास' मे खडी बोली का सस्कृतनिष्ठ स्वरूप है। 'साकेत', 'साकेत-सन्त' और 'रश्मिरथी' की भाषा अपेक्षाकृत सरल होते हुए भी साहित्यिकता से पूर्ण है। 'ऊर्म्मिला' की भाषा भी सस्कृत गर्भित है। 'कामायनी' मे खडी बोली की रचनात्मक सामर्थ्य का समृद्ध स्वरूप है। राष्ट्रभाषा के रूप मे खडी बोली के जिस रूप को प्रतिष्ठित किया जाना है, उसका आदर्श उदाहरण 'कुरुक्षेत्र' की भाषा मे दृष्टव्य है। भाषा एव शैलीगत अन्य विशेषताओ की विस्तृत विवेचना 'शिल्प-तत्त्व' के अन्तर्गत की जा चुकी है। यहा तो उल्लेखनीय यह है कि आलोच्य महाकाव्यो मे खडी बोली के जिस स्वरूप का विकास हुआ है वह उसकी रचना-सामर्थ्य का परिचायक है।

अलकार-योजना

महाकाव्य मे भाषा की प्राणवत्ता, शैली के रूप प्रसाधन, मानवीय एव प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण, कलात्मक व्यजना एव भावात्मक प्रभावोत्पादन के लिए अलकारो का विशेष महत्व है। आलोच्य महाकाव्यो मे अलकारो की सर्वथा सार्थक योजना हुई है। भारतीय अलकारशास्त्र के प्रमुख शब्दार्थालकारो के साथ साथ विशेषण विपर्यय, मानवीयकरण, ध्वन्यर्थ व्यजना जैसे पाश्चात्य काव्यशास्त्रोल्लिखित अलकारो का भी आधुनिक महाकाव्यो मे प्रचुर प्रयोग हुआ है। अलकार योजना की दृष्टि से 'कामायनी' अग्रगण्य है। 'दैत्यवश' और 'साकेतसन्त',

परम्परा प्रसिद्ध अलकारो (जैसे अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक, उपमा, अन्योक्ति, समासोक्ति आदि) का प्रयोग अधिक हुआ है। शेष महाकाव्यो मे उत्प्रेक्षा और रूपक की प्रमुखता के साथ प्रसगानुकूल सभी प्रकार के अलकारो का प्रयोग हुआ है।

छन्द विधान

छन्द काव्य का सगीत हैं। वे काव्य की शैली के रूप-निर्माण के साथ साथ महाकाव्य के रचयिता की अनुभूतिपूर्ण मनोदशा की सफल अभिव्यक्ति के साधन भी हैं। महाकाव्य के विशाल कलेवर मे विविध छन्दो की योजना पाठक की मनोवृत्ति के रमण कराने तथा कवि कर्म का परिचय देने के लिये अपेक्षित है। महाकाव्य की छन्द-योजना के सम्बन्ध मे सस्कृत काव्यशास्त्र मे सर्गांत छन्द परिवर्तन के नियम का विधान भी किया गया है। किन्तु आलोच्य महाकाव्यो में इस नियम का साग्रह अनुपालन नही हुआ है। 'प्रियप्रवास' मे प्रथम दो सर्गों को छोडकर तथा साकेत, साकेतसन्त और दैत्यवश मे सर्गांत छन्द परिवर्तन के नियम का विधिवत् पालन हुआ है। 'कामायनी', 'रश्मिरथी' और 'ऊर्म्मिला' मे इस नियम का पालन नही हुआ है। 'कुरुक्षेत्र' और 'एकलव्य' मे तुकात और अतुकात छन्दो का मिश्रित प्रयोग हुआ है। आलोच्य महाकाव्यो मे भाव, भाषा, प्रसग और शैली के अनुरूप सामान्यत छन्द योजना हुई है। 'प्रियप्रवास' सस्कृत के वर्णिकवृत्तो मे लिखा गया है। अन्य महाकाव्यो मे वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दो का प्रयोग हुआ है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' तथा डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' मे कतिपय नये छन्दो की भी उद्भावना की है। 'कुरुक्षेत्र' तथा 'एकलव्य' के अतुकात छन्द प्रयोगो मे भी यति और लय का स्वरूप सर्वथा रक्षित रहा हैं।

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यो की शिल्पविधि का समन्वित मूल्याकन करने के उपरात इस निष्कर्ष पर सहज मे पहुँचा जा सकता है कि इन महाकाव्यो के अन्तरग और बहिरग दोनो पक्ष समृद्ध हैं। शिल्प विधान से सम्बन्धित अगणित नवीन एवं मौलिक प्रयोग आलोच्य महाकाव्यो के प्रकृति चित्रण की प्रणालियां, नामकरण, सर्गयोजना, भाषा-शैली की रूप रचना, अलकृति एव छन्द योजना मे दिखाई देते है जो शिल्प तत्त्व के विकास को व्यजित करते हैं।

जीवन-दर्शन

जीवन दर्शन महाकाव्य की महार्घता का आधार तत्त्व है। वस्तुतः जीवन-दर्शन ही वह कसौटी है जिसके आधार पर काव्य और महाकाव्य के तात्विक अन्तर को स्पष्ट किया जा सकता है। जीवनदर्शन से अभिप्राय उस सजीवनी शक्ति से है जो युगों युगो तक जीवित रहने के लिए महाकाव्य को अमरता प्रदान करती है।

यह उल्लेखनीय है कि 'जीवनदर्शन' शब्द 'दर्शन' की तुलना में व्यापक पर्यवाची है। जीवनदर्शन के अन्तर्गत महाकाव्यों मे प्रतिपादित दार्शनिक ही नहीं अपितु सास्कृतिक और आध्यात्मिक विचारणाओं का भी समाहार किया जाता है। आलोच्य महाकाव्यों मे जीवनदर्शन से सम्बन्धित उपलब्धियो का मूल्याकन तीन सन्दर्भों मे किया जा सकता है :—

१. दार्शनिक और आध्यात्मिक मान्यताओं का निरूपण।
२. सास्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा।
३. सृजन प्रेरणा, उद्देश्य और सन्देश की महत्ता।

१. आलोच्य महाकाव्यो में 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'कामायनी' और 'साकेत सन्त' मे दार्शनिक मान्यताओं का परम्परित स्वरूप भी रक्षित है। जैसे 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' मे ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष सम्बन्धी विचार सुगमता से मिल जाते हैं। 'कामायनी' मे प्रत्यभिज्ञा दर्शन की मूल दार्शनिक उपपत्तियो का निरूपण है। 'साकेतसन्त' मे ईश्वर, माया और जगत के सम्बन्ध मे दार्शनिक मान्यताओं का पर्याप्त विवेचन है। किन्तु 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी' और 'एकलव्य' में दार्शनिकता के स्थान पर आध्यात्मिक मान्यताओं का निरूपण है। वस्तुतः इन महकाव्यो मे परम्परित ढग से निरूपित मान्यताओं का स्थान सास्कृतिक और आध्यात्मिक आदर्शों ने ले लिया है।

२ इस शोधप्रबन्ध की भूमिका मे कहा जा चुका है कि महाकाव्य जातीय जीवन और सास्कृतिक चेतना के आकलन का सास्कृतिक प्रयास होते हैं। इस कथन की पुष्टि मे आलोच्य महाकाव्यो मे निरूपित सांस्कृतिक धारणाओं का व्यापक परिवेश द्रष्टव्य है। 'प्रियप्रवास' मे भारतीय संस्कृति के पारलौकिक और पार्थिव तत्वो की प्रतिष्ठा के साथ नवीन मानवतावादी सस्कृति के आदर्शों की भी प्रतिष्ठा हुई है। 'साकेत' में समन्वयवादिता, धार्मिकता, पारिवारिक जीवन, सामाजिक व्यवस्था, नैतिकता, कर्मण्यवादिता, नारी की महत्ता, विश्वबन्धुत्व जैसे भारतीय सास्कृतिक आदर्शों का निरूपण है। 'कामायनी' मे देव सस्कृति की मूलभूत विशेषताओं के साकेतिक चित्रण के साथ-साथ मानव-सस्कृति के प्राचीन (कर्मकाण्डी) और नवीन (मानवतावादी) दोनो रूपों का निरूपण है। 'कुरुक्षेत्र' मे इस प्रकार का सास्कृतिक विवेचन तो नही किन्तु नवीन सामाजिक-सरचना के सकल्पो एव आध्यात्मिक निष्ठाओं के विवेचन से भारतीय सस्कृति की मूलभूत विशेषताओं का समाहार अवश्य है। 'साकेतसन्त' मे आद्यांत भारतीय सस्कृति के उदात्त आदर्शों की प्रतिष्ठा का प्रयत्न है। इस प्रयत्न में कवि ने भारतीय जीवन के सास्कृतिक आदर्शों और पश्चिम के भौतिकतावादी सांस्कृतिक मूल्यो का तुलनात्मक निरूपण करते हुये भारतीय सस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है।

'दैत्यवश' मे दैत्यकुलीन नरेशो के द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले सास्कृतिक अनुष्ठानो की प्रासगिक चर्चा है । 'रश्मिरथी' मे नवीन मानवतावादी सांस्कृतिक आदर्शों की प्रस्थापना का श्लाघनीय प्रयास है । 'ऊर्म्मिला' मे आर्य सस्कृति के मूलभूत आदर्शों (यथा सत्य, तप, यज्ञ, धर्माचरण, नारी का सम्मान, वर्णाश्रम-व्यवस्था-पालन, विश्वबन्धुत्व, सस्कारपूर्ण जीवनयापन आदि) की, अर्थवाद और भौतिकतावादिता का खंडन करते हुये प्रतिष्ठा की गई है । 'एकलव्य' मे आर्यसस्कृति की रूढ मान्यताओ का खडन करते हुये निषाद सस्कृति के परिपार्श्व मे नवीन मानवतावादी सस्कृति की वरेण्य विशेषताओ की महिमा का बखान किया गया है । इस प्रकार सास्कृतिक निरुपण आलोच्य महाकाव्यो के जीवन-दर्शन का अभिन्न अग दिखाई देता है । किन्तु विशेषता यह है कि सास्कृतिक निरुपण मे सभी महाकाव्यकारो ने मानवतावादी सस्कृति के उदात्त आदर्शों को सहर्ष स्वीकृत करते हुये काव्यो मे प्रतिष्ठित किया है ।

३ महाकाव्यो की रचना महती सृजन प्रेरणा का परिणाम होती है । इसलिये उनका लक्ष्य भी महान होता है । 'प्रियप्रवास' की सृजन प्रेरणा के अनेक स्रोतो मे खडी बोली के गौरव की प्रतिष्ठा, राष्ट्रभाषा प्रेम, पौराणिकता के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण, कृष्णचरित्र को महापुरुष के रूप मे अ कित करने की लालसा मुख्य हैं । 'साकेत' की रचना का मुख्य प्रयोजन उपेक्षिता उर्मिला का चरित्रोद्धार होते हुये भी इष्टदेव का गुणगान, भारतीय सस्कृति की महान् परम्पराओ, युगीन समस्याओ एव मानवतावादी जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा 'साकेत' की सर्जना के महत्व-पूर्ण मन्तव्य रहे हैं । 'कामायनी' की सृजन-प्रेरणा के मूल मे प्राचीन भारतीय वाङ्-मय के प्रति अनन्य आस्था, मनु और श्रद्धा के माध्यम से मानवता के विकास का रूपाकन करने की आकाक्षा और समरसता जन्य आनन्दवाद की प्रतिष्ठा रही है । 'कुरुक्षेत्र' की रचना का मूल प्रयोजन युद्धवादी विचारदर्शन की भूमिका पर आज के सन्त्रस्त मानव मन मे व्यापक मानवीय विश्वास, मानवतावादी जीवन मूल्यो के प्रति अनन्य निष्ठा और आशावादी कर्ममय जीवन की आस्था उत्पन्न करना है । 'साकेत सन्त' का सृजन भरत के चरित्र गायन के लिए ही नही अपितु भारतीय सस्कृति के पुनीत आदर्शों के प्रसारण हेतु भी हुआ है । 'दैत्यवश' स्पष्टत मानवतावादी जीवन मूल्यो की पुनर्प्रतिष्ठा के आग्रहो की सपूर्ति मे लिपिबद्ध हुआ है । 'रश्मिरथी' मे कर्ण चरित्र के उद्धार का प्रयास ही नही, वरन् परम्परा-पोषित जर्जरित रूढिवादी मान्यताओ को खडित कर प्रगतिशील मूल्यो की प्रतिष्ठा का काव्यमय सकल्प है । 'साकेत' की रचना वर्षों पश्चात नवीन कृत 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की सृष्टि ऊर्मिला के चरित्रोद्धार की दृष्टि लेकर ही नही हुई अपितु आर्य सस्कृति के समुन्नत आदर्शों को नवीन जीवनदर्शन के आलोक में सस्थापित करने के प्रयोजन की सिद्धि हेतु हुई है । 'एकलव्य' जातिवाद, वर्गवाद, कुलीनतावाद आदि प्रवादो का खडन करके

सामाजिक जीवन की समानता और पुरुषार्थ की महत्ता को सिद्ध करने के लिये रचा गया है। गुरुभक्ति के जीवन्त प्रतीक एकलव्य के उपेक्षित चरित्र की महिमा का प्रारूयान भी एकलव्यकार के मूल मन्तव्य की सिद्धि का माध्यम रहा है।

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यो मे से प्रत्येक की रचना महती सृजनप्रेरणा के फलस्वरूप हुई है। दूसरा प्रश्न है–इन महाकाव्यो के उद्देश्य और सन्देश की महत्ता का। महाकाव्यकारो कीसृजन–प्रेरणा से सम्बन्धित जिन मन्तव्यो की ऊपर चर्चा की गई है, उनमे चर्चित अनेक दृष्टि-बिन्दुओ को छोडकर यदि विचार करें तो एक शब्द मे इन सभी महाकाव्यो का महत् उद्देश्य और सन्देश है—मानवतावाद की प्रतिष्ठा। आलोच्य महाकाव्यो में क्या कथा–चयन, क्या चरित्र योजना, क्या सांस्कृतिकनिरुपण और क्या दार्शनिक उपपत्तिया-सभी का मिलन बिन्दु मानवतावाद है। मानवतावादी कोई सामान्य विचार नही वह हमारे युग-जीवन के उन्नत बोध से प्रतिफलित विचार-दर्शन है जिसका मूल आधार सांस्कृतिक निष्ठाए हैं। मानवतावाद केवल साहित्य या काव्य जगत मे निरूपित विचारदर्शन नही वरन् चिंतन के सभी क्षेत्रो में स्वीकृति प्राप्त युगीन महत्व का विचार है। आज स्वदेश और विदेश के साहित्य मे सर्वत्र मानवतावाद का स्वर एक उद्घोष के रूप मे सुनाई देता है। मानवीय मूल्यो की महिमा का प्रतिपादन, मानव जीवन के अन्तर्बाह्य संघर्ष की निर्भीक व्यंजना, मानव की मर्यादा और शक्ति की सर्वोपरिता की स्वीकृति आदि कतिपय प्रवृत्तिया हैं जो आधुनिक महाकाव्यो मे मानवतावादी चिन्तनधारा का प्रतिनिधित्व करती है।

आलोच्य महाकाव्यों में से प्रत्येक के रचयिता ने प्रयत्नपूर्वक मानवतावादी जीवनदर्शन की प्रतिष्ठा की है। प्रियप्रवासकार के मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण ही पुराणो के राधा–कृष्ण 'मानवता की महनीय विभूति' बन सके हैं। उनका चरित्र, व्यवहार और जीवनादर्श सभी मानव हिताय है। यहा तक कि कृष्ण की ईशावतारवादी परिकल्पना और नवधा भक्ति जैसी आध्यात्मिक मान्यताओ से भी 'प्रियप्रवास' के कवि ने युगानुरूप परिष्कार किया है। 'साकेत' के राम तो मानो मानवतावाद की उद्घोषणा ही करते है जब वे कहते हैं कि—

'भव मे नव वैभव प्राप्त कराने आया।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया॥
सन्देश यहा मैं नही स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥'[1]

---

१. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २३५

'कामायनी' में समरसता जन्य आनन्दवाद की प्रतिष्ठा द्वारा मानवता की विजय का ही संदेश कवि प्रसाद ने दिया है:—

'शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरूपाय;
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।' [१]

'कुरुक्षेत्र' में सृष्टि की सम्पूर्ण शक्तियों का नियन्ता और रचना की सर्वोत्तम कृति मानव को ही कहा गया है:—

'यह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।
+ + +
यह मनुज जो सृष्टि का शृंगार।
ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार।' [२]

युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुये भी 'कुरुक्षेत्र' के कवि ने मानवता की जय का ही आख्यान किया है :—

'कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति पन्थ की,
मानव ऊपर और चलेगा;
मनु का यह पुत्र निराश नहीं,
नवधर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।' [३]

'साकेत सन्त' के रचयिता मिश्र जी परम्पराप्रिय होते हुये मानवतावादी जीवन-दृष्टि से पूर्णतः प्रभावित हैं। सम्पूर्ण काव्य में आद्यान्त वर्त्तमान युग की मूलभूत चेतना अनुप्राणित है। पूंजीवादी और साम्राज्यवादी अनाचारों से जर्जरित मानवता के सम्बन्ध में मिश्र जी ने कहा है कि :—

'मनुजता रही कराह कराह, आह! है कौन पूछता हाल।
राक्षसी चक्की में पिस रहे, मनुजता के जर्जर कंकाल॥' [४]

ऐसे जर्जरित मानव-समाज की रक्षा के लिये 'साकेत सन्त' के कवि की आकांक्षा है कि :—

---

१. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५९
२. कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग, पृ० १००
३. वही , पंचम सर्ग, पृ० ६४
४. साकेत सन्त, द्वादश सर्ग, पृ० १४५

'मनुजता के जीवन का मर्म,
आह की गहराई ले जान।
मनुजता की रक्षा के हेतु,
निछावर करदे अपने प्राण।' [१]

'दैत्यवंश' की सम्पूर्ण रचना का आधार ही मानवतावादी है। 'दैत्यवंश' का मूल प्रयोजन दैत्य और दानव कहे जाने वाले पात्रों में मानवीय गुणों का सधान करके उनके मानवोत्थानकारी आदान को स्वीकृति प्रदान करना है। 'रश्मिरथी' मे मानवता के मूक प्रतिनिधि कर्ण का चरित्रांकन कवि दिनकर के मानवतावादी दृष्टिकोण का ही परिचायक हैं। 'रश्मिरथी' मे उदात्त मानवीय आदर्शों की समाहृति के कारण कर्ण का चरित्र 'कर्ण धर्म' का प्रतीक बन गया है। ऐसा 'कर्ण धर्म' जो मानवता की प्रतिरोधी प्रवृत्तियो (जैसे जातिवाद, कुलीनवाद, सामाजिक असमानता आदि) का निषेध करके मानव की महत्ता के आदर्श प्रस्थापित करता है। नवीन कृत 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे आर्य संस्कृति के चिरंतन आदर्शों की प्रतिष्ठा होते हुये भी उसके जीवनदर्शन का मूल स्वर मानवतावादी है। 'ऊर्म्मिला' का कवि नवयुग के नव आदर्शों का स्वागत करता हुआ कहता है कि :—

'जागरूकता जीवन धन है,
सत्याचरण आत्मचिंतन है,
निश्छल होकर जगज्जनो की,
सेवा ही प्रभु का भदन है।' [२]

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य में जीवन के प्रति कवि का दृष्टिकोण भ युगीन है ?

'जीवन है चिर विप्लव गायन,
स्वर जिसके हैं सतत क्रांति,
गीत भार है नित परिवर्तन
गायन लय है चिर अशांति।' [३]

'एकलव्य' मे 'भूमिपुत्र' और 'भूमिपति' के संघर्ष मे 'भूमिपुत्र' की विजय मानवतावादी दृष्टिकोण का ही प्रतिफलन है। एकलव्यकार ऐसी मानवीय शक्ति के उदय मे आस्था प्रकट करता है जो जीवन के नैराश्य को समाप्त करने वाली है :—

---

१. साकेत सन्त द्वादश सर्ग, पृ० १४६
२. ऊर्म्मिला—द्वितीय सर्ग, पृ० ७९
३. वही—षष्ट सर्ग, पृ० ५७०

"जीवन नैराश्य की है, भूमि नही मानवो !
सुख दुख बादलो की भांति उडे आते हैं।
शक्ति मिटती नही है, अवतार लेती है।
तुम मे सदैव, तुम योग्य तो बनो सही।" [1]

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यो के माध्यम से विश्व जीवन को प्रेरित करने वाला महान् मानवतावादी सन्देश प्रसारित हुआ है। ऐसा सन्देश जो समग्र मानव जाति की थाती है। इसीलिये आलोच्य ग्रन्थ सामान्य कोटि की काव्य कृतिया नही वरन् सच्चे अर्थों मे महाकाव्य हैं। पौराणिक विषयो के ये आधुनिक हिन्दी महाकाव्य अपने महत् सन्देश और व्यापक उद्देश्य की दृष्टि से हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य हिन्दी समाज या हिन्द की ही सम्पत्ति नही वरन् सम्पूर्ण मानव जाति के धरोहर कहे जा सकते हैं। आलोच्य महाकाव्यो के जीवन दर्शन मे ऐसी सास्कृतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक मानवीय निष्ठाए प्रतिफलित हुई हैं जो अनन्तकाल तक मानव जाति की प्रेरणा का अजस्र स्रोत बन कर उसे आप्यायित करती रहेगी। साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से आलोच्य महाकाव्यो की रूप रचना मे महाकाव्य तत्व का जो विकास हुआ है वह हिन्दी महाकाव्य परम्परा की महत्त्वपूर्ण सृजनात्मक एव काव्य-शास्त्रीय उपलब्धि कही जायगी।

उपसंहार

इस प्रकार पौराणिक विषयो के आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का समालोचनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि रामायण और महाभारत के रचनाकाल से महाकाव्य सृजन की जो धारा प्रवाहित हुई थी, उसका मूल स्रोत अव्याहत रूप से आलोच्य महाकाव्यो के रूप मे आज भी सतत प्रवहमान है। प्रस्तुत अध्ययन क्रम मे दो महत्वपूर्ण प्रश्न मेरे सामने आये है, जिन पर 'उपसंहार' मे ही विचार किया जा सकता है। प्रथम यह कि क्या पौराणिक विषयो के आधुनिक हिन्दी महाकाव्य 'रामायण', महाभारत' और 'मानस' की भाति अक्षय कीर्ति के स्तम्भ बन सकगे ? और क्या आधुनिक महाकाव्यो के रचयिता वाल्मीकि व्यास और तुलसीदास के समान प्रतिभा सम्पन्न महाकवि हैं ? दूसरा प्रश्न है कि विज्ञान युग के बौद्धिक परिवेश और हिन्दी-उपन्यास की अभूतपूर्व प्रगति के सन्दर्भ मे महाकाव्यो की उपयोगिता यथावत बनी हुई है ? दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि वर्त्तमान युग मे महाकाव्य सृजन की सभावनाए क्या हैं ?

किस काव्यकृति को महाकाव्य कहा जाय और किस को नही ? इस सम्बन्ध मे प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की 'भूमिका' मे महाकाव्य के रूप विधायक तत्वों का विवेचन करते समय विस्तार से विचार किया जा चुका है। उन्ही आधारो पर पौराणिक विषयो के अगणित प्रबन्ध काव्यो मे से प्रियप्रवास, साकेत कामायनी, कुरुक्षेत्र, साकेत सन्त, दैत्यवश, रश्मिरथी, ऊर्मिला और एकलव्य को महाकाव्य के रूप मे स्वीकृति प्रदान की गई है। और इस दृष्टि से इन महाकाव्यो के रचयिता महाकवि कहलाने के सर्वथा अधिकारी हैं। वस्तुत युग जीवन की चेतना को आत्मसात् करने के कारण महाकाव्य युग की देन कहे जाते हैं। प्रत्येक युग के निर्माण मे भिन्न भिन्न प्रकार की परिस्थितियो का योगदान रहता है। अस्तु, युगीन परिस्थितियो की प्रेरणा का परिणाम होने के कारण महाकाव्य के स्वरूप मे भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। अपने युगीन सन्दर्भों में आधुनिक महाकाव्य भी किसी प्रकार से अतीत के आर्ष महाकाव्यों से कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह बात दूसरी है कि आधुनिक महाकाव्यो का रचना-फलक रामायण, महाभारत और रामचरितमानस जैसे युगप्रवर्त्तक महाकाव्यो की भाति व्यापक नही है;

ही वाल्मीकि, व्यास या तुलसीदास की भांति आलोच्य महाकाव्यों के रचयिता संत और साधक हैं। किन्तु युग चेतना (नवजागरण) का महाउद्घोष, जातीय जीवन का प्रतिनिधित्व, नवीन सामाजिक संरचना के उदात्त संकल्प, आध्यात्मिक निष्ठाओं के परिष्कार, महत् शाश्वत आदर्शों की प्रतिष्ठा और कलात्मक औदात्त के कारण आलोच्य महाकाव्य हिन्दी के गौरव-ग्रन्थ हैं।

दूसरा प्रश्न है—वर्त्तमान युग में महाकाव्य की सृजन संभावनाओं का। प्राय कहा जाता है कि गद्य युग का महाकाव्य उपन्यास है। टिलीयार्ड ने तो महाकाव्य के भविष्य पर विचार करते हुए कहा था कि 'उन्नीसवीं शताब्दी तक आते आते महाकाव्य की धारा का लोप उपन्यास के प्रवाह में हो गया है।'[1] स्वर्गीय श्री नंददुलारे जी वाजपेयी ने भी कहा था कि-'आधुनिक युग के महाकाव्य-स्थानापन्न के रूप में उपन्यास को स्वीकार किया गया है।'[2] इसी प्रकार के मत कतिपय अन्य विद्वानों द्वारा भी प्रकट किये गये हैं। किन्तु इस प्रकार के अभिमत अधिकांशत उपन्यास और महाकाव्यों के तुलनात्मक सन्दर्भों में उपन्यास की महत्ता को व्यंजित करने के लिये प्रकट किय गये हैं। वस्तुत महाकाव्य की रचना उपन्यास की रचना से तत्त्वत भिन्न उद्देश्यों एवं संकल्पों की पूर्ति हेतु होती है। महाकाव्यों की रचना मानवीय चेतना के प्रगतिशील सोपानों को रूपायित करने के लिये होती है। उपन्यासों के काल्पनिक वृत्तों में जहाँ जीवन का प्रस्तुत यथार्थ व्यंजित होता है वहां महाकाव्यों के इतिवृत्त विधान में अतीत की प्रेरणाएं, वर्त्तमान की संवेदनाएं और अनागत की संभावनाएं साकार होती हैं। इसी प्रकार महाकाव्यों की परिनिष्ठित मानवीय आदर्शों को चिरंतन प्रतीक बनकर अनन्तकाल तक मानव जीवन की प्रेरणा का अक्षय स्रोत बनी रहती है। महाकाव्य का वैशिष्ट्यपूर्ण रचना-शिल्प भी कम महत्वपूर्ण नहीं होता। मानव की कलात्मक अभिरुचि को संतुष्ट करने में महाकाव्य के विशिष्ट रचना शिल्प का उल्लेखनीय अनुदान है। फॉक्स के शब्दों में—हमारी कलात्मक अभिरुचि की पूर्ति महाकाव्य के रूप में ही हो सकती है "महाकाव्य द्वारा समाज की जैसी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है, वैसी उपन्यास द्वारा न तो कभी हुई और न हो ही सकती है।'[3] महाकाव्यों में प्रतिपादित जीवन-दर्शन तो ऐसी संजीवनी शक्ति है जो युगों युगों तक उन्हें अमरत्व प्रदान करती है। अस्तु,

१ ई० एम० डब्लू० टिलीयार्ड–दी इंगलिश एपिक एण्ड इट्स बैकग्राउन्ड, पृ० ५३०–३१

२ हिन्दी अनुशलन–धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक–१९६०, पृ० ५२५ पर वाजपेयी जी का लेख, शीर्षक–'राष्ट्रीय–साहित्य'

३ रॅल्फ फॉक्स—उपन्यास और लोकजीवन, पृ० २७ (अनुवाद–नरोत्तम नागर)

स्पष्ट है कि महाकाव्य-सृजन की संभावनाओं का प्रश्न मानवीय संवेदना और चेतना के विकसनशील स्तरों से सम्बद्ध है। जब तक मानवीय-संवेदना और चेतना के विकास की संभावनाएं बनी रहेंगी, तब तक महाकाव्य-सृजन की संभावनाएं भी अशेष नहीं होंगी। महाकाव्य-सृजन की संभावनाएं ही नहीं अपितु उनका महत्व, पार्थक्य और आवश्यकता भी प्रत्येक युग में बनी रहेंगी। पौराणिक विषयों के आधुनिक महाकाव्यों का समृद्ध स्वरूप देखकर विश्वास किया जा सकता है कि हिन्दी महाकाव्य-रचना का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है।

—:०:—

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

संस्कृत के मूल व अनूदित ग्रन्थ

१ काव्यालकार — भामह
२. काव्यादर्श — दण्डी
३ काव्यालकार — रुद्रट
४. काव्यानुशासन — हेमचन्द्र
५ दशरूपक — धनजय
६. साहित्यदर्पण — विश्वनाथ
७. रामायण (गीताप्रेस सस्करण)
८. महाभारत ,,
९ गीता ,,
१०. श्रीमद्भागवत ,,
११ पुराण ग्रन्थ—विष्णुपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, शिवपुराण, मार्कण्डेय पुराण, देवीभागवत-पुराण, नारदपुराण, हरिवश - पुराण—गीताप्रेस-गोरखपुर के
१२ वायुपुराण (हिन्दी) अनुवादकः रामप्रसाद त्रिपाठी—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी के ग्रन्थ

१. अर्धनारीश्वर — रामधारीसिंह दिनकर
२. अंगराज — आनद कुमार
३. आधुनिक साहित्य—नददुलारे वाजपेयी
४. आर्य सस्कृति के मूलाधार — प० बल्देव उपाध्याय
५. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय — डा० दीनदयाल गुप्त
६. आधुनिक हिन्दी काव्य मे निराशावाद — डा० शम्भूनाथ पाण्डे
७. आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान — डा० श्यामनदन किशोर

८ उर्वशी – रामधारीसिंह दिनकर
९. ऊर्म्मिला – बालकृष्ण शर्मा नवीन
१०. उपन्यास और लोक जीवन – मू० रैल्फ फाक्स (अनु० नरोत्तम नागर)
११. एकलव्य – डा० रामकुमार वर्मा
१२. कामायनी – जयशकर प्रसाद
१३. कुरुक्षेत्र – रामधारी सिंह दिनकर
१४ कैकेयी – केदारनाथ मिश्र
१५. कृष्णायन – द्वारिकाप्रसाद मिश्र
१६ कृष्ण चरितमानस – पद्मुम्न टुगा
१७. काव्य के रूप – बाबू गुलाबराय
१८. काव्य रूपो के मूल स्रोत और उनका विकास – डा० शकुन्तला दुबे
१९. कामायनी मे काव्य-संस्कृति और दर्शन – डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
२० कामायनी के अध्ययन की समस्याए – डा० नगेन्द्र
२१. कामायनी दर्शन – डा० कन्हैयालाल सहल और डा० विजयेन्द्र स्नातक
२२. कामायनी सौन्दर्य – डा० फतेहसिंह
२३. कामायनी अनुशीलन – डा० रामलाल सिंह
२४. कामायनी दर्शन – डा० केदारनाथ दुबे यतीन्द्र
२५. कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा – प्रो० शिवकुमार मिश्र
२६. कुरुक्षेत्र मीमांसा – कातिमोहन शर्मा
२७, खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ – विश्म्भर मानव
२८. गुप्त जी की कला – डा० सत्येन्द्र
२९. जयभारत – मैथिलीशरण गुप्त
३०. जयशकर प्रसाद : चिन्तन और कला—स० डा० इन्द्रनाथ मदान
३१. जनकवि दिनकर – डा० सत्यकाम वर्मा
३२. डा० नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबध – भारतभूषण अग्रवाल
३३. तारकवध – गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश
३४. तुलसीदास – डा० माताप्रसाद गुप्त
३५. दैत्यवंश– हरदयालु सिंह
३६. दमयन्ती – तारादत्तहारीत
३७. दिनकर – शिवबालक
३८. नल नरेश – पुरोहित प्रतापनारायण
३९. नवीन दर्शन – केशवदेव उपाध्याय
४०. नवीन और उनका काव्य – जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव
४१. प्रियप्रवास – अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
४२. प्रियमिलन – नर्मदेश्वर झा

४३ पार्वती – डा० रामानन्द तिवारी
४४. प्रियप्रवास मे काव्य, संस्कृति और दर्शन – डा० द्वारिकाप्रसाद
४५. प्राचीन साहित्य (हिन्दी अनुवाद) लेखक – रवीन्द्रनाथ टैगोर
४६ प्रसाद का काव्य – डा० प्रमशंकर
४७ प्रसाद के नारीपात्र – डा० देवश ठाकुर
४८. बालकृष्ण शर्मा नवीन . व्यक्ति और काव्य – डा० लक्ष्मीनारायण दुबे
४९ बीसवींशताब्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति कामायनी – गगाप्रसाद पांडे
५० बीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य – डा० प्रतिपाल सिंह
५१. भारतीय दर्शन – डा० उमेश मिश्र
५२. भागवत सम्प्रदाय–प० बल्देव उपाध्याय
५३ मध्यकालीन धर्म साधना – डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
५४ मेघनाथ वध – अनु० मैथिलीशरण गुप्त
५५. महाकवि हरिऔध – गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश
५६. महाकवि हरिऔध और प्रियप्रवास – डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
५७ मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य – डा० कमलाकात पाठक
५८ मैथिलीशरण गुप्त . कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता – डा० उमाकांत
५९. रश्मिरथी – रामधारीसिंह दिनकर
६०. रावण – हरदयालुसिंह
६१. रामराज्य – बल्देवप्रसाद मिश्र
६२. रामकथा : उत्पत्ति और विकास – डा० कामिल बुल्के
६३. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन – डा० गार्गी गुप्त
६४. वैदेही वनवास – अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
६५. वैचारिकी – शचीरानी गुर्टू
६६. विचार और निष्कर्ष – वासुदेव
६७ विदेशों के महाकाव्य – अनु० गोपीकृष्ण गोपेश
६८. वैदिक संस्कृति का विकास – अनु० डा० मोरेश्वर दिनकर पराडकर
६९, साकेत – मैथिलीशरण गुप्त
७०. साकेत संत – बल्देवप्रसाद मिश्र
७१. सारथी – डा० रामगोपाल दिनेश
७२. सेनापति कर्ण –लक्ष्मीनारायण मिश्र
७३. सूर और उनका साहित्य – डा० हरवंशलाल शर्मा
७४. साहित्यालोचन – डा० श्यामसुन्दरदास
७५. साहित्यिक निबंध – राजनाथ शर्मा
७६ संस्कृति के चार अध्याय – रामधारीसिंह दिनकर

७७. सर्वदर्शन संग्रह–प० बल्देव उपाध्याय
७८. साकेत : एक अध्ययन –डा० नगेन्द्र
७९. साकेत दर्शन–त्रिलोचन पाण्डेय
८०. साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन–डा० द्वारिका प्रसाद
८१. साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव–डा० कन्हैया लाल सहल
८२. श्री रामचन्द्रोदय–रामनाथ ज्योतसी
८३. श्री राधा का क्रम विकास–डा० शशिभूषणदास
८४. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, भाग १ व २–डा० गोविन्द त्रिगुणायत
८५. हरिऔध और उनका साहित्य–डा० मुकुन्ददेव शर्मा
८६. हिन्दी के अस्सी वर्ष–शिवदानसिंह चौहान
८७. हिन्दी काव्य मथन–दुर्गाशंकर मिश्र
८८. हिन्दी काव्य में नियतिवाद–डा० रामगोपाल शर्मा दिनेश
८९ हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य–डा० गोविन्दराम शर्मा
९० हिन्दी महाकाव्यो में नारी चित्रण–श्यामसुन्दर व्यास
९१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास–डा० शम्भूनाथसिंह
९२ हिन्दी साहित्य का इतिहास–रामचन्द्र शुक्ल
९३ हिन्दी साहित्य की भूमिका–डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
९४ हिन्दी साहित्य . बीसवीं शताब्दी–आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
९५. हिन्दी साहित्य पर आंग्ल प्रभाव–डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा
९६. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि–डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
९७. हिन्दू देव परिवार का विकास–डा० सम्पूर्णानन्द
९८ हिन्दी साहित्य कोश–स० डा० धीरेन्द्र वर्मा

पत्रिकाएं

१. गवेषणा, अंक १९६३
२. जनभारती, अंक सं० २०२१
३. वीणा, अंक फरवरी १९६१
४. सरस्वती १९०८
५. सरस्वती संवाद (महाकाव्य विशेषांक) १९५९
६. साहित्य सन्देश, अप्रैल १९६२
७. हिन्दी अनुशीलन–धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, १९६०

अंग्रेजी के ग्रन्थ

१. ए हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर–एम० विन्टरनिट्ज
२. ए हिस्ट्री आव एन्शियेंट संस्कृत लिटरेचर–मैक्स मूलर

३. ए बिरौफहिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर-कोकिलेश्वर शास्त्री
४. एन आउट लाइन आव दी रिलीजस लिटरेचर आव इंडिया-डा० जे० एन० फर्कुहर
५ इंग्लिश एपिकएंड होरोइक पोइट्री-एम० डिक्सन
६. एनसाइक्लोपीडिया आव लिटरेचर, भाग १-कैसल्स
७. एपिक एंड रोमास-डब्लू० पी० केर
८. एपिक स्ट्रेन इन इंगलिस नोबेल-इ० एम० डब्लू टिलीयार्ड
९. फराम वरजिल टू मिल्टन-सी० एम० बावरा
१०. हिन्दू रिलीजन्स-एच० एच० विल्सन
११. पोइटिक्स. अरिस्टाटिल, सम्पादित टी० ए० मोक्सन
१२. दी एपिक-एबरक्राम्बी।
१३. दी इंगलिस एपिक एण्ड इट्स बैक ग्राउंड-इ० एम० डब्लू टिलीयार्ड
१४. वैष्णवइज्म, शैवइज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्ज्-डा० भंडारकर